खेल-खिलाड़ी विश्वकोश

भारत के उन खिलाड़ियों को—

जिन्होंने खेल के मैदान में देश का गौरव बढ़ाया

मूल्य : अस्सी रुपये (80.00)

संस्करण : 1989
राजपाल एण्ड सन्ज़, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006
KHEL-KHILARI VISHWAKOSH by Yog Raj Thani

ISBN 81—7028—050—8

खेल-खिलाड़ी विश्वकोश

योगराज थानी



राजपाल एण्ड सन्ज़

आत्म निवेदन

पल-पल हलचल और रोमांच, यही से खेल जगत की सही पहचान। खेलकूद के महत्त्व, उपयोगिता और अनिवार्यता को आप अस्वीकार नहीं कर सकते। बच्चा पैदा होते ही पालने में खेलता है और आप उससे खेलते हैं। इस आधार पर दुनिया का हर व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में खेलों से जुड़ा है।

खेल अपने आपमें इतना व्यापक और विविध है कि गांव, गलियों, प्रादेशिक खेलों को गिनती कर पाना मुश्किल है। ऐसे में 'खेल-खिलाड़ी विश्व कोश' तैयार करना लगभग असम्भव-सी बात लगती है।

फिर एक खेल के अनेक रूप हैं। क्रिकेट को ही लें, इतिहास, विकास, तकनीक रिकार्ड और आंकड़े। रिकार्ड और आंकड़े इतनी जल्दी-जल्दी बदलते हैं कि इस कसौटी पर तो हर पुस्तक अधूरी और अपूर्ण जान पड़ती है।

यह हिन्दी में अपने ढंग का पहला अनूठा प्रयास है। जहां पहल का सुख मिलता है, वहीं कुछ खामियों और कमियों का रह जाना स्वाभाविक है।

किसी एक व्यक्ति के साधन किसी संस्थान की तुलना में यदि सीमित होते हैं तो लग्न, साधना और निष्ठा संस्थान की तुलना में असीमित होती है। राजपाल एंड संज़ के प्रबंधक और संचालक श्री विश्वनाथ के दृढ़ संकल्प, निश्चय और साधन से अधिक साधना के फलस्वरूप ही इसका प्रकाशन सम्भव हो पाया है।

इतिहास नहीं बदलता, रिकार्ड और आंकड़े बदलते हैं। देश के खेल प्रेमी पाठकों को इस पुस्तक में सब कुछ मिल जायेगा, यह दावा करना तो एक प्रकार का दम्भ होगा। हां, इतनी बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि इस एक पुस्तक में आपको बहुत कुछ मिल जाएगा। हां, यदि इसमें कहीं अधूरापन जान पड़े तो आपकी रचनात्मक आलोचना का भी स्वागत होगा।

'खेल भावना', और 'टीम भावना' से आप सब का सहयोग मिलेगा। इसी विश्वास के साथ, असम्भव को सम्भव कर दिखाने भर का यह मेरा प्रयास है। ध्यान रहे कि चिन्तनशील बनने से कर्मशील बनना कहीं ज्यादा अच्छा है। आप किस सोच में पड़ गए, आपके सुझावों और आलोचना का स्वागत है, पूरी खेल भावना के साथ...

13 अप्रैल, 1989 (बैसाखी) —योगराज थानी

विषय-सूची

क

ग

च

ज

ट

ड



अ

अजहरुद्दीन, मोहम्मद

अजहरुद्दीन (जन्म : 8 फरवरी, 1963 हैदराबाद) को लोकप्रियता जादू की छड़ी से मिल गयी हो ऐसी बात नहीं है। इसके लिए उसे पर्याप्त क्रिकेट साधना करना पड़ी। किन्तु जिस तेजी के साथ अजहर ने क्रिकेट की दुनिया में पदार्पण किया, उसकी मिसाल ढूंढे नहीं मिलेगी। उसे लंबे समय तक टेस्ट मैच का दरवाजा नहीं खटखटाना पड़ा। क्रिकेट में आने की प्रेरणा उसे अपने चाचा जैनुल आबदीन से मिली जो उस समय हैदराबाद यूनिवर्सिटी टीम के कप्तान थे। बल्लेबाजी के गुर भी उसे चाचा ने ही सिखाये। अजहर 10वीं कक्षा का छात्र था, तभी उसे दक्षिण क्षेत्र की टीम की ओर से इंग्लैंड के स्कूली बच्चों के विरुद्ध खेलने का अवसर मिल गया जिसमें आत्मविश्वास के साथ बनाये गये 42 रनों ने उसमें क्रिकेट के प्रति गहरी दिलचस्पी पैदा कर दी। उसने कूच विहार ट्रॉफी, विज्जी ट्रॉफी में अच्छे प्रदर्शन किए जिसके आधार पर 1981 में हैदराबाद की तरफ से रणजी ट्रॉफी में खेलने के लिए चुन लिया गया। किंतु अभी सफलता उससे कुछ दूर थी। उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। कालेज तथा विश्वविद्यालय स्तर पर उसके सफल प्रदर्शन को देखकर पुनः 1983-84 में वह रणजी ट्रॉफी के लिए चुना गया। आंध्र प्रदेश के खिलाफ 119 रनों की बेहतरीन पारी ने उसके भाग्य के द्वार खोल दिए। फिर तो अजहर ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। कर्नाटक तथा तमिलनाडु जैसी शक्तिशाली टीम के विरुद्ध क्रमशः 66 व 59 रन की बेहतरीन पारी ने अजहर को दलीप ट्रॉफी के योग्य सिद्ध कर दिया। दक्षिण क्षेत्र की तरफ से खेलते हुए उसने 226 रन बनाये जो अजित वाडेकर के रिकार्ड से मात्र तीन रन कम था। इसके बाद रवि शास्त्री के नेतृत्व में जिंबाब्वे भ्रमण उसकी दूसरी प्रमुख उपलब्धि थी जहां उसने सफल प्रदर्शन कर अपने को टेस्ट मैचों के स्तर का सिद्ध किया। इंग्लैंड के खिलाफ जयपुर तथा अहमदाबाद में बनाये गये क्रमशः 52 तथा

151 रनों की सर्वश्रेष्ठ पारियों ने उसे टेस्ट मैच के दरवाजे पर पहुंचा दिया।

टेस्ट क्रिकेट में पदार्पण के साथ ही लगातार तीन शतक बनाने वाले अजहरुद्दीन एकमात्र खिलाड़ी हैं।

भारत इंग्लैंड की पिछली शृंखला में उन्होंने यह करिश्मा कर दिखाया। उनके पहले तक इंग्लैंड के बिल पान्सफोर्ड, वेस्टइण्डीज के अॅलविन कालीचरण और ऑस्ट्रेलिया के डग वाल्टर्स के लगातार दो शतकों के रिकॉर्ड अब तक दर्ज थे। अजहरुद्दीन ने एक ही झटके में उनके रिकॉर्डों को खंडित कर डाला।

क्रिकेट विशेषज्ञों का कहना है कि अजहरुद्दीन के इस विरले रिकार्ड की बराबरी करना वर्षों तक संभव नहीं हो सकेगा। भारत के पूर्व टेस्ट क्रिकेट खिलाड़ी एम० एल० जयसिम्हा कहते हैं कि क्रिकेट में आए दिन नए रिकार्ड बनते रहते हैं और पुराने टूटते हैं। जैसे रवि शास्त्री के छः छक्के। पर अजहर ने जिस ढंग से अपने शतक बनाए हैं, वह कुछ अलग ही बात है। यह नवोदित और युवा खिलाड़ी मैदान पर ऐसे पेश आता है जैसे वह एकदम से परिपक्व बल्लेबाज हो। उनका आत्म विश्वास कमाल का है। एक अन्य क्रिकेट समीक्षक लिखते हैं— *अजहरुद्दीन ऑफ साइड पर दोनों से कोई भी कदम घुमाकर ड्राइव कर सकते हैं।*

टेस्ट रिकार्ड : 24 टेस्टों में 1646 रन सर्वाधिक स्कोर 199 रन

अर्जुन पुरस्कार

वर्ष के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों को 'अर्जुन पुरस्कार' से अलंकृत करने की प्रथा का शुभारम्भ 1961 में किया गया था। इनका उद्देश्य उन्हें उत्साहित करना था। लेकिन सच तो यह है कि जिस उद्देश्य से इसकी योजना बनायी गयी थी उसकी पूर्ति नहीं हो रही है। देश में अर्जुनों की सूची ज्यों-ज्यों लम्बी होती जा रही है त्यों-त्यों विभिन्न खेलों का स्तर गिरता जा रहा है।

अर्जुन पुरस्कार प्राप्त खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं—

1961		पी० के० बनर्जी	फुटबाल
कुमारी एम० लुम्सडेन	महिला हाकी	पी० जी० सेठी	गोल्फ
गुरबचन सिंह	एथलेटिक	महाराजा कर्णीसिंह (बीकानेर)	
सरबजीत सिंह	बास्केट बाल		निशानेबाजी
नन्दू नाटेकर	बैडमिंटन	बजरंगी प्रसाद	तैराकी
रामनाथन्कृष्णन	लान टेनिस	जयन्त सी० वोहरा	टेबल टेनिस
एल० डी० साऊजा	मुक्केबाजी	ए० पालनीचामी	वॉलीबाल

ए० एन० घोष	भारोत्तोलन	कुमारी स्टीफी डिसूजा	एथलेटिक
सलीम दुर्रानी	क्रिकेट	चुन्नी गोस्वामी	फुटबाल
मैनुअल एरोन	शतरंज	ईश्वर राव	भारोत्तोलन
के० एम० जैन	स्क्वैश	चरणजीत सिंह	हॉकी
महाराजा प्राणसिंह	पोलो		
पृथ्वीपाल सिंह	हाकी	1964	
शामलाल	जिम्नास्टिक	शंकर लक्ष्मण	हाकी
		मक्खन सिंह	एथलेटिक
1962		विशम्भर सिंह	कुश्ती
तरलोकसिंह	एथलेटिक	राव राजा हनूतसिंह	पोलो
विल्सन जोन्स	बिलियर्ड	मंसूर अली खां उर्फ	
मीना शाह	बैडमिंटन	नवाब पटौदी	क्रिकेट
पद्म बहादुर मल	मुक्केबाजी	जरनैलसिंह	फुटबाल
टी० बलराम	फुटबाल	गौतम दीवान	टेबल टेनिस
नरेशकुमार	लान टेनिस		
नृपजीत सिंह	वालीबाल	1965	
एल० के० दास	भरोत्तोलन	केनेथ पावेल	एथलेटिक
मालवा	कुश्ती	दिनेश खन्ना	बैडमिंटन
		विजय मंजरेकर	क्रिकेट
1963		अरुणलाल घोष	फुटबाल
अशोकसिंह मलिक	गोल्फ	कुमारी एलवेरा ब्रिटो	हाकी
मेजर ठाकुर कृष्ण सिंह	पोलो	बलबीर सिंह	भारोत्तोलन
जी० अंधाल्कर	कुश्ती	उधमसिंह	हाकी

अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत भारतीय एवरेस्ट अभियान दल :

लेफ्ट० कमा० एम० एस० कोहली, श्री गुरदयाल सिंह मेजर मुल्कराज, श्री एच० सी० एस० रावत, कैप्टेन एच० एस० अहलुवालिया, कैप्टेन ए० एस० चीमा, श्री नवंग गोम्बू, श्री अंग कामी, कैप्टेन ए० के० चक्रवर्ती, श्री जी० एस० भंगू, लेफ्ट० बी० एन० राणा, मेजर एन० कुमार, श्री सी० पी० वोहरा, श्री सोनाम वांग्याल, एच० वी० बहुगुणा, वी० पी० सिंह, जे० सी० जोशी, डॉ० डी० पी० तेलंग, सी० बालकृष्णन।

1966		चन्दू बोर्डे	
अजमेर सिंह	एथलेटिक्स	बी० एस० बरुआ	एथलेटिक्स

युसुफ खान	फुटबॉल
वी० जे० पीटर	हॉकी
गुरुबक्श सिंह	हॉकी
कु० सुनीता पुरी (चन्द्रा)	हॉकी
जयदीप मुखर्जी	लॉन टेनिस
रीमा दत्त	तैराकी
कु० उषा सुन्दराजन	टेबल टेनिस
मोहनलाल घोष	भारोत्तोलन
भीमसिंह	कुश्ती
पी० जी० सेठ	गोल्फ
हवा सिंह	मुक्केबाजी

1967

मोहिन्दरलाल	हॉकी
हरबिंदर सिंह	हॉकी
जगजीतसिंह	हॉकी
अरुण शाह	तैराकी
प्रवीण कुमार	एथलेटिक्स
भीम सिंह	एथलेटिक्स
अजीत वाडेकर	क्रिकेट
पी० मगराज	फुटबॉल
राजकुमार पीताम्बर	गोल्फ
फारुख खोरामजी	टेबल टेनिस
खुशीराम	बास्केटबॉल
प्रेमजीतलाल	लॉन टेनिस
सुरेश गोयल	बेडमिंटन
जॉन गेवियन	भारोत्तोलन
मुख्तियारसिंह	कुश्ती

1968

जोगिन्दरसिंह	एथलेटिक्स
जीत वालिया	एथलेटिक्स
प्रसन्ना	क्रिकेट
वलवीरसिंह	हॉकी
डेनिस स्वामी	मुक्केबाजी
गुरदयालसिंह	बास्केटबॉल
राजकुमारी राजश्री	निशानेबाजी

1969

हरलेक सिंह	दौड़कूद
दीपू घोष	बेडमिंटन
हरि दत्त	बास्केटबॉल
बिशनसिंह बेदी	क्रिकेट
इंदरसिंह	फुटबॉल
भुवनेश्वरी देवी	निशानेबाजी
वैद्यनाथ दास	तैराकी
अनिल नाभट	स्क्वैश
मास्टर चन्दगीराम	कुश्ती
मीर कासिम अली	टेबल टेनिस

1970

मोहिन्दर सिंह गिल	दौड़कूद
दमयंती ताम्बे	बेडमिंटन
अब्बास मुंतसिर	बास्केटबॉल
जमाला मरका	बेडमिंटन
माइकल फरेरा	बिलयर्ड
दिलीप सरदेसाई	क्रिकेट
सैयद नईमुद्दीन	फुटबॉल
अजीत पाल सिंह	हॉकी
सुधीर भास्कर राव	खो-खो
जी० जगन्नाथ	टेबल टेनिस
अरुण कुमार दास	भारोत्तोलन
सुदेश कुमार	कुश्ती
सोहराब जमशेद	नौकायन

1971

एडवर्ड सिक्वेरा	दौड़कूद
कु० शोभा मूर्ति	बेडमिंटन

मनमोहनसिंह	बॉस्केटबॉल
मुत्तु स्वामी वेपु	मुक्केबाजी
वेंकटराघवन	क्रिकेट
पी० कृष्णामूर्ति	हॉकी
चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह	फुटबॉल
कु० अमला सूबेदार	खो-खो
भीमसिंह	निशानेबाजी
श्यामलाल सलवान	भारोत्तोलन
श्रीमती केटी खोरामजी	टेबल टेनिस
भंवरसिंह	तैराकी

1972

विजय सिंह चौहान	दौड़कूद
प्रकाश पदुकोण	बेडमिंटन
जयम्मा श्रीनिवासन	बेडमिंटन
सतीश मोहन	बिलियर्ड
चन्द्रराम नारायण	मुक्केबाजी
एकनाथ सोलकर	क्रिकेट
चन्द्रशेखर	क्रिकेट
माइकल किंडो	हॉकी
प्रेमनाथ	कुश्ती
बलवंतसिंह	वॉलीबॉल
अनिल कुमार मंडल	भारोत्तोलन
अंजना देसाई	गोल्फ
सदानंद महादेव सेठी	कबड्डी
उद्यान चिनुभाई	निशानेबाजी

1973

श्रीरामसिंह	दौड़कूद
अब्दुल करीम	बेडमिंटन
एस० के० कटारिया	बास्केटबॉल
मेहतावसिंह	मुक्केबाजी
श्याम सोम	बिलियर्ड
खान मो० खान	नौकायन

अफसर हुसैन	नौकायन
मगन सिंह	फुटबॉल
कु० भावना	खो-खो
भोलानाथ	कबड्डी
बी० सिंह	गोल्फ
कु० मोटविया	हॉकी
पी० गणेश	हॉकी
टिंगू खटाऊ	तैराकी
जगरूप सिंह	कुश्ती
जी० एम० रेड्डी	वालीबॉल
नीरज बजाज	टेबल टेनिस

1974

टी० सी० मोहानन	दौड़कूद
शिवनाथ सिंह	दौड़कूद
अशोक कुमार	हॉकी
कु० अजिन्दर कौर	हॉकी
रोमन घोष	बेडमिंटन
कु० नीलिमा सारोलकर	खो-खो
विजय अमृतराज	लॉन टेनिस
मंजरी भार्गव	तैराकी
अविनाश सारंग	तैराकी
श्याम सुन्दर राव	वॉलीबॉल
वेलाई स्वामी	भारोत्तोलन
सतपाल	कुश्ती
ए० के० पुंज	बास्केट बॉल
अंजन भट्टाचार्य	गूंगे-बहरे क्रिकेट

1975

वी० अनुसूइया बाई	दौड़कूद
हरीचंद	दौड़कूद
एल० ए० इकबाल	बाल बेडमिंटन
हनुमानसिंह	बास्केट बॉल
सुनील गावसकर	क्रिकेट

अमरसिंह साइकिलिंग
एस० के० जमशेद गोल्फ
मंजु रेवनाथ जिमनास्टिक
रूपा सैनी हॉकी
गोविंदा हॉकी
ऊषा बसंत नागरकर खो-खो
जनार्दन इनामदार खोखो
वीरेन्द्रपालसिंह पोलो
सुनीता देसाई तैराकी
एम० एस० राना तैराकी
कु० के० सी० एलिमा वॉलीबॉल
रनवीरसिंह वॉलीबॉल
दलबीर सिंह भारोत्तोलन

1976

गीता जुत्शी दौड़कूद
बहादुर सिंह दौड़कूद
अमी घिया बेडमिंटन
ए० समक्रिस्टदास बाल बेडमिंटन
शांता रंगास्वामी क्रिकेट
एच० एस० सोधी एक्युसट्रेन
शेखर रामचन्दरन खो-खो
शैलजा सालोखे टेबल टेनिस
जिमी जॉर्ज वॉलीबॉल
बाला मुरुगनाथन भारोत्तोलन

1977

सतीश कुमार अपंग एथलीट
टी० विजयराघवन बास्केट बॉल
श्रीमती मीता रावल्ली गोल्फ
मार्सा लौरेल हॉकी
लूना फर्नांडीस हॉकी
कंवल ठाकुर सिंह बेडमिंटन
हरचरणसिंह हॉकी
तमिल सेल्वन भारोत्तोलन
गुंडप्पा विश्वनाथ क्रिकेट
वीरेन्द्रसिंह थापा मुक्केबाजी
ए० रामराव वॉलीबॉल

1978

मिनोती महापात्र साइकिलिंग
ई० करुणाकरण भारोत्तोलन
कुट्टी कृष्णन वालीबॉल
अरविंद सेवुर स्नूकर
माले राय शरीर सौष्ठव
सुब्रतो दत्ता पावर लिफ्टिंग
कु० शकुंतला मंधारीनाथ कबड्डी
सी० सी० मछैया बॉक्सिंग,
राजेन्द्र सिंह कुश्ती
शेरनाज करमानी अपंग स्पोर्ट्स
सुरेश बाबू दौड़कूद
रंधीर सिंह निशानेबाजी
एंजल मेरी दौड़कूद
निरुपमा मांकड़ लॉन टेनिस
गुरदेव सिंह फुटबॉल
सुरेन्द्रसिंह मोंधिया नौकायन

1979

कपिलदेव क्रिकेट
कु० इंदु पुरी टेबल टेनिस
आर० ज्ञानशेखरन दौड़कूद
ओमप्रकाश बास्केटबॉल
बख्शीससिंह मुक्केबाजी
सुनील कुमार पात्र शरीर सौष्ठव
प्रसून बनर्जी फुटबॉल
वासुदेव भास्करन हॉकी

कु० रेखा मुण्डम्मन	हॉकी
आर० के० मनचंदा	स्क्वैश
सुरेश मिश्र	वॉलीबॉल

1980

रमेश कृष्णन	लॉन टेनिस
चेतन चौहान	क्रिकेट
सैयद किरमानी	क्रिकेट
गोपाल सैनी	दौड़कूद
सैयद मोदी	बेडमिंटन
नाइक इमाक अमलदार	मुक्केबाजी
मो० हबीब	फुटबॉल
मो० शाहिद	हॉकी
श्रीमती एलिजा नेल्सन	हॉकी
कु० रोहिणी खाडिलकर	शतरंज
शांता राम जाधव	कबड्डी
मनजीत दुआ	टेबल टेनिस
जगमिंदर सिंह	कुश्ती

1981

कृष्ण दास	तीरंदाजी
साबिर अली	दौड़कूद
जी० मनमोहन	मुक्केबाजी
दिलीप वेंगसरकर	क्रिकेट
सुधीर करमाकर	फुटबॉल
वर्षा सोनी	हॉकी
जरीर करंजिया	नौकायन
मोनिका तकलकर	खो-खो
सुषमा सारोलकर	खो-खो
बी० सी० संधु	पर्वतारोहण
चन्द्रप्रभा अटवाल	पर्वतारोहण
रेखा शर्मा	पर्वतारोहण
हर्षवंती बिष्ट	पर्वतारोहण
शरद पी० चौहान	निशानेबाजी

विजय कुमार सत्पथी	भारोत्तोलन
कु० मोनिका नाथ	कबड्डी

1982

चार्ल्स बोरोमियो	दौड़कूद
चांदराम	दौड़कूद
एम० डी० वालसम्मा	दौड़कूद
पार्थो गांगुली	बेडमिंटन
कु० मधुमिता गोस्वामी	बेडमिंटन
कौर सिंह	मुक्केबाजी
अजमेर सिंह	बास्केटबॉल
मोहिन्दर अमरनाथ	क्रिकेट
समिन्दर सिंह बरार	घुड़सवारी
रघुवीर सिंह	घुड़सवारी
लक्ष्मण सिंह	गोल्फ
परसिस मदान	तैराकी
भुवनेश्वरी कुमारी	स्क्वैश
बी० चन्द्रशेखर	टेबल टेनिस
जी० ई० श्रीधरन	वॉलीबॉल
तारासिंह	भारोत्तोलन
करतारसिंह	कुश्ती
फारुख तारपोरे	नौकायन
एफ० ऊनवाला	नौकायन
जे० ऊनवाला	नौकायन

1983

कुमारी पी० टी० उषा	खेलकूद
कैप्टन सुरेश यादव	खेलकूद
श्री सुभाष अग्रवाल	बिलियर्ड्ज
कुमारी सुमन शर्मा	बास्केटबॉल
श्री राधे श्याम	बास्केटबॉल
श्री जसलाल प्रधान	मुक्केबाजी
श्री दिब्येन्दु बरूआ	शतरंज
कु० डायना इदुलजी	क्रिकेट

कु० अमिन रोहिन्टन अर्चना साइकिलिंग
कु० शांति मलिक फुटबाल
ज़फर इकबाल हॉकी
कु० माया काशीनाथ कबड्डी
कु० वीना नारायण पारव खो-खो
लैफ्टि कर्नल आर० एस० सोढी पोलो
मेजर प्रवीण कुमार उबेराय नौकायन
श्री मोहिन्दर लाल निशानेबाजी
कु० अनीता सूद तैराकी
श्री आर० के० पुरोहित वॉलीबॉल
श्री विस्पी के० दारोगा भारोत्तोलन

1984

कु० शिनी के० अब्राहम खेल-कूद
श्री राज कुमार खेलकूद
श्री डी० राजारमण बॉल बैडमिंटन
श्री प्रवीण महादेव थिपसे शतरंज
श्री रवि शास्त्री क्रिकेट
कैप्टन गुलाम मुहम्मद खान घुड़सवारी
कु० राजबीर कौर हॉकी
श्री एस० प्रकाश खो-खो
श्री पी० जे० जोसफ पावर लिफटिंग
कैप्टन मो० अमीन नाईक नौकायन
श्री ओम बी० अग्रवाल बिलियर्ड्ज एवं स्नूकर
श्री खजान सिंह तैराकी
कुमारी सैली जोसफ वॉलीबॉल
कर्नल दर्शन कुमार खुल्लर पर्वतारोहण
कुमारी बेछन्द्री पाल पर्वतारोहण

1985

आर० एस० बल एथलेटिक्स
आशा अग्रवाल एथलेटिक्स
आदिल जहांगीर सुमेरीवाला एथलेटिक्स
सुनीता शर्मा जिमनास्टिक
एस० सोमाया हॉकी
प्रेम माया सोनी हॉकी
मेहर चंद भास्कर शूटिंग
महावीर सिंह कुश्ती
गीत सेठी बिलियर्ड्स और स्नूकर
आनंद अमृतराज लान टेनिस
कमलेश मेहता टेबल टेनिस
शुभांगी कुलकर्णी क्रिकेट
विश्वनाथन आनंद शतरंज
सुरेखा कुलकर्णी खो-खो
फू दोरजी पर्वतारोहण
तारानाथ शिनाय तैराकी (मूक बधिर)
गुलशन राय साहसिक खेल

1986

कुमारी सुमन रावत एथलेटिक्स
जय पाल सिंह मुक्केबाजी
मोहम्मद अजहरुद्दीन क्रिकेट
कुमारी सन्ध्या अग्रवाल क्रिकेट
जैकम मार्टिन कारवाल्हो हॉकी
कुमारी रमा सरकार कबड्डी
सी० बैलूर वॉलीबाल
भगीरथ समाए निशानेबाजी
लैफ्टिनेंट ध्रुव भंडारी बाल नौकायन
प्रेमचन्द शरीर सौष्ठव
ले० कर्नल के० एम० राव तृष्णा के कप्तान साहसिक खेल
जगमोहन सपरा भारोत्तोलन
आरती प्रधान साहसिक खेल

देश के श्रेष्ठ खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित करने की प्रथा का शुभारम्भ 1961 में हुआ था।

अर्जुन पुरस्कार विजेता क्रिकेट खिलाड़ी

खिलाड़ी का नाम	जिस टीम की ओर से खेलते हैं	वर्ष
सलीम दुर्रानी	राजस्थान	1961
मंसूर अली खान पटौदी	हैदराबाद	1964
विजय मंजरेकर	महाराष्ट्र	1965
चन्दू बोर्डे	महाराष्ट्र	1966
अजीत वाडेकर	बम्बई	1967
इरापल्ली प्रसन्ना	मैसूर	1968
बिशन सिंह बेदी	दिल्ली	1969
दलीप सरदेसाई	बम्बई	1970
एस० वेंकटराघवन	तमिलनाडु	1971
बी० चन्द्रशेखर	मैसूर	1972
एकनाथ सोलकर	बम्बई	1972
सुनील गावस्कर	बम्बई	1975
गुण्डप्पा विश्वनाथ	कर्नाटक	1977
कपिल देव	हरियाणा	1979
चेतन चौहान	दिल्ली	1980
सैयद किरमानी	कर्नाटक	1980
दिलीप वेंगसरकर	बम्बई	1981
मोहिन्दर अमरनाथ	दिल्ली	1983
रवि शास्त्री	बम्बई	1984
मोहम्मद अजहरुद्दीन	हैदराबाद	1986

अजीतपाल सिंह

15 मार्च 1975 का दिन भारत के किसी भी हाकी प्रेमी को हमेशा याद रहेगा, यही वह दिन था जब क्वालालंपुर (मलेशिया) में हुए तीसरे विश्व कप में

भारत विश्व चैंपियन बना था। यों तो 1928 से 1956 तक ओलिंपिक स्वर्ण पदक जीतकर भारत ने विश्व विजेता के सिरमौर को बराबर अपने कब्जे में रखा लेकिन 1964 में एक बार फिर ओलिंपिक स्वर्ण जीतने के बाद भारत का प्रदर्शन कभी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं रहा। हाकी के पतन में एकाएक 1975 की जीत से आशा का एक नया वातावरण बन गया। एक बार फिर भारत का हाकी प्रभुत्व सिद्ध हो गया।

इस जीत से जिस खिलाड़ी को सर्वाधिक प्रसिद्धि और वाहवाही हासिल हुई, वह था टीम का कप्तान अजीत पाल सिंह। विश्व कप के साथ अजीत पाल का उतना ही स्वागत हुआ जितना विश्व कप जीतने के बाद क्रिकेट कप्तान कपिल देव का हुआ था। किंतु 1976 में वर्ष भर बाद ही मांट्रियल ओलिंपिक खेलों में सात बार का विजेता भारत सातवें स्थान पर आ गिरा अर्थात अजीतपाल सिंह वह खिलाड़ी रहा जिसके नेतृत्व में भारत ने विजय की बुलंदियों को भी छुआ और पराजय की गहराइयों को भी नापा।

अजीतपाल सिंह का जन्म पटियाला के निकटवर्ती गांव (जिसे हाकी का तीर्थ कहा जाना चाहिए) संसारपुर में 1 अप्रैल, 1947 को हुआ था। संसारपुर ने भारतीय हाकी को कई अनमोल रत्न दिये हैं।

1966 में पूना में खेली गयी राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिता में पंजाब की ओर से एक दुबले-पतले छात्र ने भी भाग लिया था और सेंटर हाफ के रूप में एक प्रतिभाशाली खिलाड़ी के सभी गुण उसमें मौजूद थे, सेंटर हाफ खिलाड़ी में रक्षा और आक्रमण दोनों तरह के खेल का सम्मिश्रण होना चाहिए। जहां एक ओर उनका काम विपक्षी खिलाडियों को अपनी ओर के मैदान में बढ़ने से रोकना होता है वहां दूसरी ओर अपने विंगर्स को गोल करने के लिये उपयुक्त समय पर उचित गोल के अवसर प्रदान करना भी सेंटर हाफ की ही जिम्मेदारी होती है। अजीत पाल में उन दिनों यह विशेषतायें स्पष्ट दिखायी देने लगी थी।

इसी वर्ष भारत को जापान में पूर्व ओलिंपिक खेलों में भाग लेना था। अजीत पाल को भी बतौर 'ट्रायल' वहां भेजा गया। 1967 में लंदन में हुए पूर्व ओलिंपिक खेलों में भी अजीत का प्रदर्शन संतोषजनक रहा। उस समय उनकी आयु मात्र 20 वर्ष की थी।

1968 में अजीत पाल सिंह का खेल अपने यौवन पर आ चुका था। उन्हें तब पंजाब विश्वविद्यालय टीम का कप्तान बना दिया गया। इसी वर्ष उनके लिए एक और महान उपलब्धि भी प्राप्त हुई जब मैक्सिको ओलिंपिक खेलों के लिये उनका नाम भारतीय टीम में शामिल कर लिया गया।

1970 में बैंकाक एशियाई खेलों में अजीत पाल स्थायी सदस्य के रूप में

भारतीय टीम में शामिल थे। भारत इस बार भी फाइनल में पाकिस्तान के हाथों हारा था।

1971 में हाकी में विश्व कप प्रतियोगिता का शुभारंभ हुआ। प्रतियोगिता का आयोजन पाकिस्तान में किया जाना था, लेकिन ऐन वक्त पर वहां के कुछ धार्मिक नेताओं ने धमकी दी कि यदि भारतीय टीम पाकिस्तान में खेलने आयी तो वे मैदान में आग लगा देंगे, फलस्वरूप प्रतियोगिता बार्सिलोना (स्पेन) में आयोजित की गयी, अजीत पाल सिंह को पहली बार भारतीय टीम का नेतृत्व सौंपा गया। सेमीफाइनल में फिर चिर प्रतिद्वंद्वियों भारत-पाकिस्तान का मुकाबला हुआ। अजीत पाल की कोशिशों से ही सेंटर फारवर्ड राजविंदर ने गोल करके भारत को 1-0 से आगे कर दिया लेकिन बाद में भारत यह मैच 1-2 से हार गया।

1972 में हरमीक सिंह के नेतृत्व में भारतीय हाकी टीम म्यूनिख ओलिंपिक में उतरी। अजीत पाल को तब तक विश्व का सर्वश्रेष्ठ सेंटर हाफ माना जाने लगा था। अजीत के शानदार प्रदर्शन के बावजूद भारत इस बार तीसरे स्थान पर खिसक गया।

दूसरा विश्व कप एमस्टरडम (हालैंड) में हुआ। इस बार अजीत पाल उप कप्तान बने और कप्तानी मिली ए० वी० गणेश को। भारत इस बार फाइनल में पहुंचा लेकिन हालैंड से पेनल्टी स्ट्रोक की लड़ाई में मात खा बैठा। भारत की ओर से अजीत पाल के अलावा हरमीक ही पेनल्टी स्ट्रोक को गोल में बदल सके थे।

1974 के तेहरान एशियाई खेलों में अजीत पाल फिर कप्तान बने और फिर भारत-पाकिस्तान की टीम फाइनल में पहुंची, फाइनल में पहला गोल पाकिस्तान ने किया लेकिन अजीत पाल ने पेनल्टी स्ट्रोक से उसे उतार दिया। मैच 1-1 की बराबरी पर खत्म हुआ और दोबारा खेले गये मैच में भारत 0-2 से मात खा बैठा।

1975 का वर्ष अजीतपाल के लिए सफलता का चरमोत्कर्ष साबित हुआ जब भारत ने 11 वर्ष के अंतराल के बाद अपनी श्रेष्ठता विश्व कप जीतकर सिद्ध की। विश्व कप को देश भर की सैर करायी गयी, विजय गीत गाये गये और भव्य स्वागत हुआ।

जितना सुखद यह वर्ष रहा इससे अगला वर्ष उतना ही दुखद था, जब मांट्रियल ओलिंपिक में भारत की पराजय हुई। इसका एक कारण एस्ट्रो टर्फ भी था लेकिन सारा दोष कप्तान अजीत पाल पर डाला जाने लगा। यह स्थिति देखकर अजीत ने संन्यास की घोषणा कर दी। संन्यास ग्रहण करते समय उनके शब्द थे, "हम युवाओं को आगे आने का अवसर देना चाहते हैं।" वैसे, सीमा सुरक्षा

दल की ओर से अजीत आज भी हाकी मैदान में अपने उत्कृष्ट खेल का जादू जगा रहे हैं। टीम में वे सदैव बतौर 'सेंटर हाफ' खेले—जो उनकी प्रिय पोजीशन रही।

अजीत वाडेकर

बाए हाथ से खेलने वाले अजीत वाडेकर भारत के मशहूर बल्लेबाज हैं। 1971 में जिस भारतीय क्रिकेट टीम ने वेस्टइंडीज का दौरा किया और वहां ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की, वाडेकर उस टीम के पहली बार कप्तान नियुक्त किए गए थे। उनके नेतृत्व में भारतीय टीम ने इतिहास में पहली बार भारत-वेस्टइंडीज टेस्ट शृंखला जीती। उसके बाद उन्होंने इंग्लैण्ड जाने वाली भारतीय टीम का नेतृत्व किया।

अजीत वाडेकर का जन्म 1 अप्रैल, 1941 को बम्बई में हुआ। 1958 में वह पहली बार प्रकाश में आए जब उन्होंने अन्तर विश्वविद्यालय में दिल्ली विश्वविद्यालय के खिलाफ 351 मिनट में 324 रन बनाए और अन्त तक आउट नहीं हुए।

17 जनवरी, 1967 का उनके जीवन में विशेष महत्व है। यह उनके जीवन का वह ऐतिहासिक दिन था जिसने उन्हें भारतीय टीम में स्थाई स्थान दिला दिया।

टेस्ट मैचों में वाडेकर की बल्लेबाजी का प्रदर्शन

देश	टेस्ट	पारी	आउट नहीं	रन संख्या	सर्वाधिक रन संख्या	औसत
इंग्लैंड	14	28	1	838	91	31.11
आस्ट्रेलिया	9	18	1	548	99	32.23
वेस्टइंडीज	7	11	0	230	67	20.90
न्यूजीलैंड	7	14	1	497	143	38.23
कुल	37	71	3	2113	143	31.07

अनीता सूद

एशिया में सबसे कम समय में इंग्लिश चैनल को पार करने का गौरव अनीता सूद को प्राप्त है। उन्होंने इसे पार करने का 8 घंटे और 15 मिनट का एशियाई रिकार्ड स्थापित किया। भारत में तैराकी की स्थिति, और परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपने मीठे कड़वे मिले-जुले भावों से उन्होंने कहा था :

"भारत में तैराक क्यों नहीं पनप पाते—इसके पीछे कारणों का एक लंबा सिलसिला है। अब से कुछ वर्ष पहले तक तो केवल तैराक, उनके परिवार जन या मित्र ही जानते थे कि फलां जगह पर प्रतियोगिता हो रही है। हालांकि अब स्थिति सुधरी है लेकिन फिर भी सुधार, प्रचार और प्रसार की काफी गुंजाइश मौजूद है।"

"हमारे यहां तरणतालों (स्वीमिंग पुल) का जाल बिछा होना चाहिए था किंतु हैरानी की बात है न, कि हमारे यहां स्तरीय तरणतालों की संख्या 40-45 के करीब ही है। यदि किसी को तैराकी का शौक है तो पहले किसी क्लब से ही संपर्क करना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो हालत और भी खराब है। वहां जोहड़ों या ऐसे ही किसी स्थान पर तैराकी की पिपासा शांत होती है।"

"अब तक मैं सामान्यतः पुरुष तैराकी का ही जिक्र कर रही थी। महिलाओं के बारे में सोचें तो वहां भारतीय संस्कृति और सभ्यता आड़े आ जाती है। हम चाहे कितना ही आगे बढ़ गए हैं लेकिन यह एक सच्चाई है कि हमारे यहां आज भी महिला को सौंदर्य (कोमलता) का ही रूप माना जाता है। तैराकी के लिए भुजाओं के साथ-साथ पूरे शरीर का बलिष्ठ और सौष्ठव होना जरूरी है किंतु भारत मे कोई भी मां यह नहीं चाहती कि उसकी बेटी ऐसी 'मर्दानगी' दिखाए। इसके अलावा सामान्यतः लड़कियां लज्जावश तैराकी में आने से कतराती हैं। और फिर इस धारणा से भी तो छुटकारा पाना मुश्किल है कि अंततः लड़की को शादी करके घर पर ही बैठना है।"

"भारत में तैराकी के आधुनिक संसाधनों का भी नितांत अभाव है। प्रशिक्षण के लिए प्रयोग की जाने वाली मशीनें तो दूर तैराकी के लिए ताल भी संयोजित नहीं हैं जिनमें सभी तरह की सुविधाओं की कमी है।"

बंबई निवासी और विले पारले स्थित सामना बाई नारसू स्कूल की 18 वर्षीया छात्रा अनीता सूद का भारतीय तैराकी में आगमन एक स्वर्णिम घटना है। सांवले रंग की 'साढ़े 5 फुट लंबी' छरहरे बदन की अनिता ने केवल 9 वर्ष 6 माह की आयु में ही तैराकी के क्षेत्र में कदम रखा था। पिछले 5 वर्षों में अनीता ने बेहिसाब सफलताएं हासिल की।

इन तमाम सफलताओं के पीछे उसका दमखम और हौसला तो है ही, इन

सबसे बढ़कर उसका आत्मविश्वास है, जो कठिन-से-कठिन मुकाबलों में भी कायम रहता है।

12 अक्तूबर, 1978 को भोपाल के प्रकाश तरण पुष्कर में 35वीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में 18 दलों के 400 तैराकों (340 पुरुषों व 60 महिलाओं) ने हिस्सा लिया।

तैराकों के इस विशाल जमघट में 12 वर्षीया अनीता ने रमादेवी, परसिस मदान और रुखसाना सेठना जैसी जानी-मानी जलपरियों के विरुद्ध अपने विलक्षण खेल से उपस्थित जनसमुदाय को आश्चर्यचकित कर दिया।

सभी मुकाबलों में अनीता और रमादेवी के बीच कड़ा संघर्ष देखने को मिला, लेकिन प्रत्येक कदम पर अनीता पहले स्थान पर रही। प्रतियोगिता के परिणामों ने सिद्ध कर दिया कि अनीता उम्र में कितनी ही छोटी क्यों न हो, तकनीकी दृष्टि से कहीं बड़ी उम्र की तैराकों से बेहतर है। एक ऊंचे दरजे की फ्रीस्टाइलर के रूप में अनीता ने इस बार काफी नाम कमाया।

प्रतियोगिता के पहले दिन उसने 100 मीटर फ्रीस्टाइल में 19.2 सेकंड से पहला स्थान प्राप्त किया। 13 अक्तूबर को प्रतियोगिता के दूसरे दिन अनीता ने 200 मीटर फ्रीस्टाइल में स्वर्ण पदक जीता—समय 2 मिनट 35.0 सेकंड।

बंबई की जानी-मानी तैराक करुणा मीरचंदानी ने 1975 में कानपुर के भारतीय तकनीकी संस्थान में आयोजित महिलाओं की तैराकी स्पर्धा में एक साथ 5 मुकाबलों में स्वर्ण पदक जीतकर चमत्कारी खेल का प्रदर्शन किया था। अनीता 1980 में लखनऊ के कंवर दिग्विजय सिंह स्टेडियम के तरणताल में एक साथ 6 स्वर्ण पदक जीत कर मीरचंदानी से एक कदम और आगे बढ़ गई।

यह 37 वीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता थी। सबसे पहले अनीता ने 100 मीटर फ्रीस्टाइल में 1 मिनट 1.4 सेकंड से राष्ट्रीय रिकार्ड स्थापित किया।

अनीता ने इसके अलावा 200, 400 व 800 मीटर फ्रीस्टाइल और 200 व 400 मीटर व्यक्तिगत मैडले में पहला स्थान प्राप्त कर अपनी विशेष बहादुरी का परिचय दिया।

अनीता की आश्चर्यजनक सफलताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत में अभी उसके मुकाबले की कोई तैराक नहीं है। वह प्रतिदिन कम-से-कम 3 घंटे तैराकी का अभ्यास करती है। इस कठिन अभ्यास के बाद जब वह थकी हुई तालाब से बाहर निकलती है तब वह भोजन में मांस, मछली, अंडा लेती है। अनीता के अनुसार इस भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा पर्याप्त होती है, जो हर तैराक का दमखम बनाए रखने के लिए बहुत जरूरी है। वह रोजाना फल खाती है। रात को सोने से पहले अनीता दूध पीना भी नहीं भूलती।

विदेशों के मुकाबले हमारे देश में तैराक क्यों नहीं हैं? इस प्रश्न के जवाब में

अनीता का कहना है, "इसका सबसे बड़ा कारण हमारे देश में ऊंचे दरजे के तैराकी के तालाबों का बहुत कम संख्या में होना है। ऊंचे दरजे के तालाब हमारे देश में केवल 40-45 ही है, जब कि सोवियत रूस मे इस तरह के तालाब 1,500 हैं। चेकोस्लोवाकिया मे 300 से ज्यादा हैं। पूर्वी जर्मनी जैसे ढाई करोड़ की आबादी वाले देश में तो खुले तालाबों का जाल बिछा हुआ है। वहां 213 इनडोर तालाव हैं। सिर्फ वर्लिन के फोडरिखरोम पार्क स्वीमिंग पुल से औसतन 2,70,000 तैराक हर साल लाभ उठाते हैं।"

14 नवंबर, 1981 को मद्रास मे 38वीं राष्ट्रीय तैराकी प्रतियोगिता शुरू हुई। प्रतियोगिता में अनीता ने न केवल 8 स्वर्ण पदक जीते, बल्कि 7 राष्ट्रीय रिकार्ड भी बनाने में सफल हो गई। पहले ही दिन उसने दो नए रिकार्ड बनाए। मद्रास प्रतियोगिता के कुछ समय वाद कलकत्ता के फ़ोर्ट विलियम में ईस्टर्न कमांड स्वीमिंग पुल में 5 दिन की राष्ट्रीय आयु वर्ग तैराकी प्रतियोगिता हुई। इसमें अनीता कोई खास चमत्कार नही दिखा पाई। फिर भी 400 मीटर फ्रीस्टाइल में उसने नया कीर्तिमान बनाया। उसने 4 मिनट 53.6 सेकंड का समय लिया। इससे पहले 5 मिनट 12.4 सेकंड का कीर्तिमान परमिम मदान के नाम था।

अनीता ने इतनी छोटी उम्र में जो बड़ी सफलताएं प्राप्त की हैं, उसका कारण उसकी कड़ी मेहनत और लगातार अभ्यास तो है ही, प्रशिक्षक दिग्विजयकर और पूर्वी जर्मनी से विशेष रूप से आमंत्रित प्रशिक्षक बर्ड जोंक से सीखे तैराकी के महत्त्वपूर्ण गुर भी हैं।

अनीता का तैरने का अपना एक विशेष अंदाज है। वह सही स्ट्रोक्स पर बहुत ज्यादा ध्यान देती है। सर्दियों में जब वह तैराकी का अभ्यास नहीं कर पाती तब वह पूरा ध्यान जिमनास्टिक की ओर लगा देती है। तंदुरुस्त रहने के लिए जिमनास्टिक अच्छा खेल है। तैराकी के चारों स्ट्रोक में प्रशिक्षित अनीता की मनपसंद स्पर्धा 100 मीटर फ्रीस्टाइल है।

अनुसुइया बाई

मद्रास की अनुसुइया बाई ने महिला एथलीटों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर ली है। अनुसुइया बाई (कद 1.67 मीटर, वजन 65 किलो) एक साथ एथलेटिक के कई मुकाबलों मे भाग लेती हैं। यों मुख्य रूप से वह 100 मीटर की दौड़ और चक्का फेंकने की प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेती हैं। पिछले दो वर्षों में चार बार वह 100 मीटर की दूरी को 12.0 सेकंड में पार कर चुकी है। आज से 15-16 साल पहले एथलेटिक मे स्टीफी डिसूजा और एलिजाबेथ डेवनपोर्ट का बोलबाला हुआ करता था लेकिन डेवनपोर्ट कभी भी 40 मीटर से दूर चक्का नहीं फेंक पाई जबकि अनुसुइया बाई का रिकार्ड 45.96 मीटर है।

23 वर्षीया अनुसूइया बाई पहली बार 1970 में कटक में हुई अंतर-विश्व-विद्यालय प्रतियोगिता में प्रकाश में आईं। तब उन्होंने चक्का फेंकने मे दूसरा स्थान प्राप्त किया था। उसके बाद जयपुर में हुई प्रतियोगिता में उन्होंने गोला फेंकने और 400 मीटर में प्रथम प्राप्त किया। 1973 में पहली बार उन्होंने चक्का फेंकने में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त वह गोला फेंकने में प्रथम और 800 मीटर मे तीसरे स्थान पर रही। 1973 में ही उन्होंने मास्को मे हुई विश्व छात्र खेलों में चक्का फेंकने में हिस्सा लिया।

हालांकि मनीला में हुई पहली एशियाई एथलेटिक प्रतियोगिता में कुमारी अनुसूइया बाई चौथे स्थान पर रही लेकिन उन्होंने 43.66 मीटर चक्का फेंक कर अपने राष्ट्रीय रिकार्ड में सुधार किया। दिसंबर 1973 में लुधियाना में हुई खुली प्रतियोगिता में उन्होंने छोटे फासले की दौड़ों में हिस्सा लेना शुरू किया। हालांकि 100 मीटर की दौड़ में पहली बार दौड़ी थी लेकिन इस पर भी 100 मीटर के फासले को उन्होंने 12.6 सेकिंड में पूरा करके दूसरा स्थान प्राप्त किया। इसमें श्रीरूपा चटर्जी ने 12.2 सेकिंड के राष्ट्रीय रिकार्ड की बराबरी करके पहला स्थान प्राप्त किया था। दो महीने बाद ही जयपुर में हुई अंतर राज्य प्रतियोगिता में कुमारी अनुसूइया ने इस दूरी को 12.5 सेकिंड में पूरा किया। सिओल में जब उन्होंने 100 मीटर को 12.1 सेकिंड में पूरा करके स्टीफी डिसूजा का रिकार्ड भंग किया तो समाचार पत्रों में उनका नाम मोटी-मोटी सुर्खियो मे छपा। उसी वर्ष अजमेर में हुई खुली प्रतियोगिता में उन्होंने अपने ही रिकार्ड में 1 सेकिंड का सुधार कर इस दूरी को 12 सेकिंड में पूरा किया।

सितम्बर, 1977 में डूसलडोर्फ में हुई पहली विश्व कप (एथलेटिक) प्रतियोगिता में उन्हें एशिया की रिले टीम में शामिल किया गया।

अब्दुल हफीज कारदार

दोनो देशों की ओर से खेलने वाले तीन खिलाड़ियों के प्रदर्शन की अगर तुलना की जाए तो हफीज कारदार का ही प्रदर्शन सबसे अच्छा है। कारदार ने भारत की ओर से तीन टेस्ट तथा पाकिस्तान की ओर से 23 टेस्ट खेले (सभी मे कप्तान थे)।

कारदार का जन्म 17 जनवरी, 1925 में हुआ। लाहौर में जन्मे कारदार बाएं हाथ के बल्लेबाज तथा धीमी गति के गेंदबाज थे। प्रथम श्रेणी की क्रिकेट मे पदार्पण 1943-44 में उत्तर भारत की टीम से हुआ। 1947 से 1949 तक आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी और 1948 से 1950 (1949 में कप्तान) तक इंग्लिश काउंटी क्रिकेट में वारविकशायर के लिए खेले।

भारत की ओर से कारदार 1946 में इंग्लैंड के दौरे पर गए। वहां उन्होंने

तीनों टेस्ट खेले। तीनों टेस्टों में उन्होंने 80 रन बनाए जिसमें उनका उच्चतम स्कोर 43 था।

कारदार 1950 में पाकिस्तान चले गए। उन्होंने पाकिस्तान के लिए 23 टेस्टों में नेतृत्व किया जिसमें पाकिस्तान के लिए छह टेस्ट जीते, छह हारे और 11 बराबर रहे।

कारदार पाकिस्तान में क्रिकेट के जनक माने जाते हैं। उन्होंने अपने क्रिकेट जीवन में 6814 रन बनाए और 44 विकेट (औसत 24.55) भी लिए।

अमर सिंह

4 दिसंबर, 1910 को राजकोट में जन्मे लाला अमर सिंह भी भारत के शुद्ध तेज गेंदबाज थे। इनका नाम उस समय विश्व के तूफानी गेंदबाजों में बड़ी श्रद्धा से लिया जाता था। अपने बड़े भाई एल० राम जी से उन्होंने गेंदबाजी का प्रशिक्षण लिया। 1931 में कुछ समीक्षकों ने अमर सिंह को सर्वाधिक तूफानी गेंदबाज बताया। उनमे असीम पराक्रम था।

1932 मे निसार के जोड़ीदार के रूप में अमर का भी चयन हुआ। लार्ड्स टेस्ट की दोनों पारियों में उन्होंने 2-2 विकेट लिए। बल्लेबाजी में अमर सिंह ने पहली पारी में तो 5 ही रन बनाए पर दूसरी पारी में धुआंधार बल्लेबाजी करते हुए 51 रन बनाए जिसमें आकाश की ऊंचाइयों को छूता हुआ एक छक्का भी था। उससे पहले औपचारिक दौरे के प्रथम श्रेणी मैचों में अमर सिंह ने 2,262 रन देकर 111 विकेट लिए साथ ही बल्लेबाजी करते हुए दो शतक भी बनाए।

1933-34 मे जार्डिन के नेतृत्व में भारत आई इंग्लैंड टीम के विरुद्ध 3 टेस्ट मैचों में 14 विकेट लिए। मद्रास टेस्ट में 86 पर 7 विकेट उनका सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था। उसी टेस्ट में दूसरी पारी में तेज बल्लेबाजी करते हुए 48 रन भी बनाए। राजकोट मे एक प्रथम श्रेणी मैच में एम० सी० सी० के विरुद्ध मात्र 22 मिनट मे शतक जमाया।

1936 के इंग्लैंड दौरे में ओवल टेस्ट में भारत कमजोर स्थिति में दबकर खेल रहा था। अमर सिंह ने पिच पर आते ही मात्र 30 मिनट में 44 शानदार रन बना डाले। उनकी उस पारी को देखकर नेविल कार्डस ने कहा कि 'मैं अपनी सारी जिंदगी अमर सिंह की यह पारी नहीं भूल पाऊंगा।'

अमर सिंह ने लंकाशायर काउंटी टीम का प्रतिनिधित्व भी किया। अपने जीवन के 7 टेस्ट में एक अर्द्धशतक की मदद से 292 रन बनाए। 858 रन देकर 30.64 की औसत से 28 विकेट लिए। रणजी ट्रॉफी प्रतियोगिता में 100 विकेट लेने वाले प्रथम गेंदबाज व 1000 रन बनाने वाले दूसरे बल्लेबाज होने का गौरव पाया।

21 मई, 1940 को काल के क्रूर हाथों ने इस आस्थावान क्रिकेट खिलाड़ी को असमय ही दुनिया से उठा लिया। अपनी छोटी-सी क्रिकेट यात्रा में अमर सिंह ने विश्व व्यापी सफलताएं पाईं व भारत का नाम उजागर किया।

अमरनाथ, मोहिंदर

मोहिंदर ने 1969-70 में 19 वर्ष की आयु में टेस्ट, क्रिकेट में प्रवेश किया था, (उनका जन्म 24 सितम्बर, 1950 को पटियाला में हुआ। कद 5 फुट 11 इंच) लेकिन बिल लॉरी की आस्ट्रेलियाई टीम के खिलाफ टेस्ट खेलने के बाद लगभग सात वर्ष तक वह अंधेरे मे खोये रहे, 1976 में उनकी वापसी हुई। पाकिस्तान दौरे के समय वह तीन वर्ष के अंतराल के बाद दूसरी बार टेस्ट क्रिकेट में लौटे, इस बार पुन: प्रवेश अधिक सफल और विस्फोटक रहा।

अपनी इस सफलता को मोहिंदर एक संयोग नहीं मानते, उनसे बातचीत के बाद यह मत सत्य बन जाता है।

उन्हीं के शब्दों मे, क्रिकेट मेरी नस-नस में है आप सभी जानते है कि मेरे पिता लाला अमरनाथ अच्छे खिलाड़ियों में से एक रहे हैं, इसलिये घर में हमेशा क्रिकेट का वातावरण बना रहा था, अरुचि का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

जहां तक मैं जानता हूं, मैं हमेशा लगन से खेला हूं, पर मालूम नहीं यह हालात कैसे पैदा हो गये कि मुझे टीम से निकाल दिया गया, परंतु मैंने हिम्मत नही हारी, मैं यह जरूर कहूंगा कि हर तरह के हालात से गुजरने के बाद मैंने बहुत कुछ सीखा है।

हां, अवश्य, उनके नाम की वजह से हमें शुरू-शुरू में काफी लाभ हुआ, जैसे स्कूलों कालेजों में प्रवेश आदि, क्रिकेट में हर मौके पर हमें समझाने के लिये वह तैयार रहे लेकिन टीम में मेरे चयन के लिये उनका कभी हाथ नहीं रहा। मेरा टीम से कई वर्षों तक बाहर रहना इसका स्पष्ट प्रमाण है।

दरअसल फिलहाल मैं अपने आपको एक सफल बल्लेबाज की हैसियत से ही स्थापित करना चाहता हूं, मैं इसके लिये व्यायाम करता हूं, हर सुबह दौड़ लगाता हू और बल्लेबाजी के हर शॉट के लिये लगातार प्रयत्न करता हू।

अपने टेस्ट जीवन में मोहिंदर ने बहुत अधिक उतार-चढ़ाव देखे हैं, वह अधिकांशत: चयन-समिति की राजनीति का भी शिकार रहे हैं, अब उन्हें हर ओर सराहा जा रहा है, लेकिन यह विडंबना है कि अपने 14 वर्ष के टेस्ट जीवन मे यह 9 वर्ष तक टेस्ट क्रिकेट से निष्कासित रहे।

टेस्ट रिकार्ड : 69 टेस्टों में 11 शतकों की सहायता से 4378 रन बनाये उच्चतम स्कोर 138।

अमरनाथ, लाला

भारतीय क्रिकेट के इतिहास में लाला अमरनाथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हें पहला भारतीय शतक बनाने का गौरव प्राप्त हुआ। 1933-34 में बम्बई में इंग्लैंड के विरुद्ध पहला टेस्ट खेलते ही उन्होंने शतक बनाया था। उनके खेल से तत्कालीन वायसराय लार्ड विलिंगडन इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वयं मैदान में आकर लाला अमरनाथ की शानदार बल्लेबाजी की प्रशंसा की। उस समय भारतीय टीम में नायडू, मर्चेंट, मुश्ताकअली जैसे चोटी के बल्लेबाज थे, मगर टेस्ट मैच में सबसे पहले शतक बनाने का श्रेय लाला अमरनाथ को ही प्राप्त हुआ। इस टेस्ट में भारतीय खिलाड़ी पहली पारी में केवल 219 रन बनाकर आउट हो गए थे और इंग्लैंड ने पहली पारी में 438 रन बना रखे थे। जब भारतीय खिलाड़ियों ने दूसरी पारी शुरू की तब भारतीय टीम ने 2 विकेट पर केवल 17 रन बनाए। पर इसके बाद लाला अमरनाथ ने बल्ला संभाला और हर गेंद पर चौके मारना शुरू कर दिया। तब इंग्लैंड के गेंदबाजों के हाथ-पांव फूलने लगे। इंग्लैंड की टीम के कप्तान जारडाइन परेशान दिखाई देने लगे। इंग्लैंड की टीम में वेरिटी, निकोलस क्लार्क और लैंग्रिज जैसे गेंदबाज थे, मगर लाला अमरनाथ को आउट करने में सब अपने आपको बेबस पा रहे थे। तीसरे दिन का खेल समाप्त होने तक लाला अमरनाथ ने 102 रन बना लिए थे और आउट नहीं हुए थे। चौथे दिन वह 118 रन बनाकर आउट हुए। उस समय भारतीय टीम का नेतृत्व सी० के० नायडू कर रहे थे।

उसके बाद लाला अमरनाथ क्रिकेट के खेल में निरन्तर आगे और आगे बढ़ते रहे। 1947-48 में आस्ट्रेलिया का दौरा करने वाली भारतीय टीम का नेतृत्व भी लाला अमरनाथ ने ही किया। आस्ट्रेलिया के दौरे पर भी इनका प्रदर्शन बहुत शानदार रहा। जब भारत के तीन खिलाड़ी बिना कोई रन बनाए आउट हो गए तो लाला अमरनाथ ने 228 रन बनाकर भारत की स्थिति को मजबूत बनाया। उन्होंने 228 रन बनाए और इस पर भी आउट नही हुए। इनके इस अभूतपूर्व प्रदर्शन पर आस्ट्रेलिया की जनता और आस्ट्रेलिया के क्रिकेट समीक्षकों ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। आज भी क्रिकेट पर उन्होंने अपनी पकड़ ढीली नही होने दी। छोटे बड़े सभी खिलाड़ी, कप्तान, चयनसमिति के सदस्य सभी उनसे मिलने को लालायित रहते हैं। उन्होंने अपने जीवन में केवल 24 टेस्ट खेले और 15 टेस्टों में कप्तानी की।

अमृतराज, आनंद

आज आनंद जो कुछ भी है उसमें उसकी मां मैगी का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह अपने समय में टेनिस की खासी अच्छी खिलाड़ी रह चुकी हैं। जब

आनंद सिर्फ आठ वर्ष का था, तभी से मेंगी ने उसे टेनिस की बारीकियों से अवगत करा दिया था।

आनंद ने 1972 में मद्रास विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम० ए० किया। जिस समय वह उभर ही रहा था, तभी से उसने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू कर दिया था। अपने टेनिस जीवन के बारे में वह कहता है—'1974 में मैंने डेविस कप टूर्नामेंट के मुकाबलों में फाइनल तक अपने देश का प्रतिनिधित्व किया। फाइनल तक पहुंचने के लिए हमें रूस तथा आस्ट्रेलिया की सितारों से भरी शक्तिशाली टीमों को हराना पड़ा। मैंने टेनिस के सर्वाधिक प्रतिष्ठित विम्बल्डन टूर्नामेंट में कई बार भाग लिया। इसी प्रतियोगिता के युगल मुकाबलों में मैं 1976 में अपने भाई विजय के साथ सेमी फाइनल तक और 1981 में क्वार्टर फाइनल तक पहुंचा।'

आनंद को उसकी टेनिस के क्षेत्र में प्राप्त सफलताओं तथा उपलब्धियों के लिए अनगिनत पुरस्कार तथा ट्राफियां मिल चुकी हैं। कुछ समय पूर्व भारत सरकार ने उसे उसकी टेनिस के क्षेत्र में की गई महान सेवाओं के लिए अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया था।

अपनी महिला प्रशंसकों के संबंध में पूछे जाने पर उसने कहा—'आप माने या न मानें, लेकिन सच्चाई यह है कि आप अपनी महिला प्रशंसकों के आकर्षण से दूर नहीं रह सकते।'

यह पूछने पर कि क्या उनकी कभी कोई गर्लफ्रेंड रही है, तो आनंद ने मुस्कराते हुए कहा—'शादी से पहले मेरी कई गर्लफ्रेंड हुआ करती थीं, जिनको अभी भी मैं पूरी तरह से भुला नहीं पाया हूं। अपनी पहली गर्लफ्रेंड के साथ पहली मुलाकात को मैं कभी नहीं भुला सकता। बहुत मजा आया था। यह घटना 1971 की है और मेरी उम्र यही कोई 17-18 वर्ष रही होगी।'

अमृतराज, विजय

आपका जन्म 14 दिसम्बर 1953 को हुआ। आपने 1970, 1971 और 1972 में जूनियर राष्ट्रीय लान टेनिस चैम्पियनशिप जीती और 1972 तथा 1973 में भी राष्ट्रीय चैम्पियनशिप जीती। 1974 में डेविड कप टूर्नामेंट में आपने भारत का प्रतिनिधित्व किया और प्रतिभाशाली खेल से भारत को इण्टर ज़ोनल फाईनल में पहुंचाया। 1973 और 1974 में आपने अनेक महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीत टूर्नामेंट जीते। अपनी उपलब्धियों से आपकी गणना अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत के चोटी के टेनिस खिलाड़ियों मे की जाती है। अभी कई वर्षों तक आप को टेनिस के खेल में सक्रिय रहना है आशा है कि भविष्य में आपको अन्तर्राष्ट्रीय टेनिस में और अधिक ख्याति प्राप्त होगी।

स्वर्गीय गौस मोहम्मद के बाद अंतर्राष्ट्रीय टेनिस को रामनाथ कृष्णन् भारत की देन थी। रामनाथन कृष्णन् के बाद मद्रास के ही भाइयों की जोड़ी विजय और आनंद अमृतराज और फिर रमेश कृष्णन् से भारत को आशाएं बनी। लेकिन कृष्णन् की तरह उनके बाद आने वाले खिलाड़ी भी वह ऊंचाइयां नहीं छू सके।

विम्बलडन टेनिस में 1981 का वर्ष विजय अमृतराज के लिए गर्व का महत्व था, उसके बाद विजय का प्रदर्शन भाग लेने वाले किसी भी साधारण खिलाड़ी की ही तरह रहा। 1981 में विजय क्वार्टर फाइनल तक पहुंचे थे, जहां जिमी कोनोर्स ने उन्हें परास्त किया। कभी वे नामी खिलाड़ियों को पराजित कर देते हैं तो कभी नौसिखिए खिलाड़ियों से सीधे सेटों में हार जाते हैं। 1981 तक विश्व के बीस चोटी के खिलाड़ियों में उनकी गिनती होती रही।

टेनिस एक खेल नहीं रहा अब यह व्यवसाय बन गया है। विजय कहते हैं कि राष्ट्रीय भावना के कारण ही वे डेविस कप में भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अबेबे बिकिला

इथोपिया का अबेबे बिकिला दुनिया का ऐसा पहला इन्सान रहा है जिसने मैराथन दौड़ (यह दौड़ 26 मील 385 गज लम्बी होती है) को दोबारा जीतकर खेल-कूद के इतिहास में अपने नाम का एक नया अध्याय जोड़ दिया। अब तक कोई भी खिलाड़ी इस दौड़ को, जो दुनिया की सबसे जटिल और सबसे लम्बी दौड़ मानी जाती है, दूसरी बार नहीं जीत सका है।

बिकिला इथोपिया सम्राट के अंग-रक्षक दल के सदस्य थे। उन्होंने 1960 और 1964 की दोनों ओलम्पिक प्रतियोगिताओं में मैराथन दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त किया 1960 रोम ओलिम्पिक में उन्होंने 26 मील 365 गज की दूरी तय करने में 2 घं० 15: 16.2 मि० लिया, जबकि 1964 टोक्यो ओलिम्पिक में यह रिकार्ड 2 घंटा 12:11.2 मि० का रहा है। पांच फुट दस इंच लम्बे बिकिला इथोपिया के लौहपुरुष माने जाते थे। इथोपिया की जनता में बिकिला का महत्व उतना ही है जितना कि वहां के बादशाह हेले सेलासी का है। अंग-रक्षक के राजसी ठाट में जब बिकिला वहां के बाजारों में घूमते थे तो वहां की जनता उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ती थी।

इस रिकार्ड को 1980 मास्को ओलिम्पिक में पूर्वी जर्मनी के डब्लू सीयरपिंसकी ने 2 घं० 11:03.0 मि० में पूरा कर तोड़ा, बिकिला ने 1968 मैक्सिको ओलिम्पिक में भी भाग लिया था, 10 मील तक दौड़ा भी, पर पैरों में चोट लग जाने से वह प्रतियोगिता से हट गया, उसकी मृत्यु 25 अक्तूबर, 1973 को हुई।

बिकिला का जन्म एक साधारण किसान परिवार में अगस्त, 1932 को

हुआ। किन्तु अपनी साधना और तपस्या से उन्होंने वह स्थान प्राप्त कर लिया जो दुनिया के बहुत कम खिलाड़ियों को प्राप्त होता है।

अमीर इलाही

अमीर इलाही ने भारत की ओर से एक तथा पकिस्तान की ओर से पांच टेस्ट मैच खेले।

अमीर इलाही का जन्म 1सितंबर, 1908 को हुआ। लाहौर में जन्मे अमीर दायें हाथ के बल्लेबाज तथा लेग ब्रेक और गुगली गेंदबाज थे। प्रथम श्रेणी क्रिकेट में उनका पदार्पण 1934-35 में हुआ। रणजी ट्रॉफी में वे दक्षिण पंजाब, उत्तर भारत और बडौदा की तरफ से खेले। 1936 में उन्हें 'विजी' के नेतृत्व में इंग्लैंड गयी भारतीय टीम के साथ जाने का अवसर मिला जहा उन्हे कोई खास सफलता नही मिली। 1947-48 में भारत की ओर से आस्ट्रेलिया के दौरे पर गये जहां उन्होंने प्रथम टेस्ट खेला।

इलाही 1950 मे पाकिस्तान चले गये। 1952-53 मे पाकिस्तान का टेस्ट क्रिकेट में उदय हुआ—भारत के विरुद्ध शृंखला से। शृंखला के पांचो टेस्ट इलाही ने खेले लेकिन वह एक बार फिर असफल रहे, पांच टेस्टों मे उन्होंने महज 65 रन बनाये और सात विकेट लिये।

28 दिसंबर, 1980 को अमीर इलाही की मृत्यु हुई।

असलम शेर खां

भारत के मशहूर राइट, फुल बैक और पेनल्टी कार्नर के दक्ष असलम शेर खां का जन्म 15 जुलाई, 1953 को हुआ और विक्रम विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की। 1975 मे जिस भारतीय टीम ने विश्व कप जीतने का गौरव प्राप्त किया था उसमें उन्होने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उस ऐतिहासिक विजय के बाद उन्होंने कहा था—"मेरे वालिद मरहूम अहमद शेर खां 1936 मे भारतीय टीम में थे, जिसने बर्लिन ओलम्पिक में स्वर्ण पदक जीता था। 1967 मे उनका इन्तकाल हो गया। मैंने बचपन में भोपाल के अपने गली-मुहल्लों मे हाकी खेलनी शुरू की। उस समय भी, जैसे खाना-पीना जरूरी होता है, वैसे ही हाकी मेरे लिए थी। मैं घर में अकेला ही लड़का हूं मां-बाप का। मां घबराती थी कि सड़क पर खेलता है, मोटर वगैरह न आ जाए, लेकिन वालिद कहते थे, इसकी हड्डी बनने का यही वक्त है, अभी जो सीख गया, सो सीख गया, नहीं तो देरी हो जाएगी।"

"सबसे पहले मैं नेहरू हाकी में खेला था 1969 मे, और तब पहली बार मुझे महसूस हुआ कि अच्छा खेल लोगों को आकर्षित कर सकता है। मैंने कभी मेहनत

करने में कोताही नहीं की। मेरी एक ही इच्छा थी, अपने वालिद की तरह ऊंचे दरजे की हाकी मैं भी खेलूं, वतन के लिए जीत हासिल करूं, अल्लाह ताला ने वह ख्वाहिश पूरी कर दी।"

"मेरा भी यही मानना है कि हमें हिन्दुस्तानी ढंग की हाकी खेलनी चाहिए, उसीमें फायदा भी है। जहां तक मेरा सवाल है, मुझे हाकी में परेशानी इसलिए भी नहीं आई, क्योंकि यह तो मेरा घर का खेल है।"

अश्वारोहण

यों तो आश्वारोहण स्पर्धाएं 19वीं शताब्दी में ही अधिक सुनियोजित की गईं, इनके क्लब और संगठन बने, पर ये इसे कोई महत्त्व या व्यापक स्वरूप नहीं दे पाए। आधुनिक ओलम्पिक खेलों में इन स्पर्धाओं को पहली बार 1900 के पेरिस ओलम्पिक में शामिल किया गया।

लेकिन प्राचीन ओलम्पिक में घोड़े किसी न किसी रूप में शामिल किये जाते थे। ईस्वी पूर्व 680 में आयोजित ओलम्पिक खेलों में पहली बार रथदौड़ का आयोजन किया गया। ओलम्पिक में दो प्रतियोगिताएं हुईं—क्वाडरिगा—जिसमें चार घोड़ों ने एक रथ को खींचा था और 'बीगा'—जिसमें दो पहिए वाले रथ में दो घोड़े जुते थे। रथ के 'सारथी' प्रायः गुलाम होते थे। मालिकों को इससे संतोष हो जाता था कि घोड़े उनके हैं। जीत की रकम मालिक को मिलती थी और बेचारे गुलामों को सिर्फ 'निशानी फीते' से तसल्ली करनी पड़ती थी।

648 ईसा पूर्व में 33वें ओलम्पिक खेलों में घुड़दौड़ भी शामिल की गई। 396 ईसा पूर्व के आते-आते इन ओलम्पिक खेलों में दो दौड़ते घोड़ों पर एक सवार के खड़े होने जैसे करतब शामिल हो गए।

आधुनिक युग में प्रथम विश्व-युद्ध के बाद अश्वारोहण से सम्बन्धित संगठनों और क्लबों ने राष्ट्रीय सभों का रूप धारण किया। 15 नवम्बर, 1921 को बेल्जियम, डेनमार्क, इटली, अमेरिका, जापान, फ्रांस, स्वीडन और नार्वे के राष्ट्रीय संगठनों ने मिलकर संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अश्वारोहण महासंघ की स्थापना की। भारत भी इसका सदस्य बना, पर अभी हमारी उपस्थिति औपचारिकता मात्र है। 1960-70 तक पेरिस में हुए विश्व-आश्वारोहण प्रदर्शनों में भारतीय घुड़सवार जाते रहे है। हर साल दिल्ली के लालकिले के सामने होने वाले अश्व-प्रदर्शन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में हमारे पास प्रतिभाओं की कमी नहीं है। आस्ट्रेलिया, फ्रांस, और ब्रिटेन की यात्राओ से हमारे घुड़सवारों को अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव प्राप्त होता रहा है।

1900 के पेरिस-ओलम्पिक में आश्वारोहण-स्पर्धाओं में एक लम्बी कूद थी और एक ऊंची। इसके बाद 1912 तक इन खेलों को ओलम्पिक में शामिल नहीं

किया गया। लेकिन 1912 के बाद अश्वारोहण-स्पर्धाओं में काफी सुधार आया और ये खेल तेजी से लोकप्रिय होने लगे। 1912 में सैन्य कौशल का आयोजन हुआ। इसमें व्यक्तिगत और टीम—दोनों प्रकार की स्पर्धाएं थीं 1920 में 20 और 40 कि० मी० की दौड़ें हुईं। 1928 में एक बार फिर सेना ने खेलों में भाग लिया।

इस खेल की वर्तमान स्पर्धाएं 1932 में लॉस एंजिल्स खेलो से शुरू हुईं। अब तक जर्मनी और स्वीडन ने सात-सात बार और फ्रांस व रूस ने तीन-तीन बार स्वर्ण-पदक हासिल किए हैं। स्वीडनवासी हेनरी सेन्ट सायर ने चार बार स्वर्ण-पदक जीतकर एक रिकार्ड स्थापित किया है। उन्होंने ये पदक 1952 में हेलिसकी और 1956 में स्टाकहोम के खेलों में प्राप्त किए थे। दूसरे घुड़सवारों में, जर्मनी के जोसेफ नेकरमान, लिसलोद और विलमके ने दो-दो तमगे 1964 के तोकियो और 1972 के म्यूनिख खेलों में हासिल किए।

अशोक कुमार

हाकी जादूगर ध्यानचंद के सुपुत्र अशोक कुमार भी अपने पिता की ही भांति देश के सर्वश्रेष्ठ हाकी खिलाड़ियों के रूप में जाने जाते हैं। 1950 में झांसी में जन्मे अशोक कुमार 1969 से राष्ट्रीय हाकी मंच पर उभरे। तेज-तर्रार सेंटर फारवर्ड के रूप में अशोक कुमार ने जल्द ही अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान बनाई। पहली बार 1970 बैंकाक एशियाई खेलों के लिए अशोक को चुना गया। उनके बाद से हाकी से संन्यास लेने तक अशोक भारतीय टीम के अभिन्न सदस्य रहे।

अपने पिता की ही भांति अशोक की तेज दौड़, चुस्त ड्रिब्लिंग और टीम के सदस्यों से मिलकर खेलने की क्षमता विपक्षियों में दहशत पैदा कर देती थी। क्वालालंपुर में सन् 75 में आयोजित विश्व कप के फाइनल में पाकिस्तान के विरुद्ध यह अशोक का ही गोल था जिसने हमें विश्व विजेता का खिताब दिया। अशोक ने 72,76 ओलिंपिक तथा 71, 73, 75, 78 विश्व कप में खेलने के अलावा 70, 74 और 78 के एशियाई खेलों में भारत का प्रतिनिधित्व भी किया।

अशोक मांकड

अशोक मांकड को भारतीय टीम में पहले-पहल उस समय लिया गया था जब भारत को प्रारम्भिक बल्लेबाज की सर्वाधिक परेशानी थी। आस्ट्रेलिया की बिल लारी की टीम के विरुद्ध 1969 में अशोक को आजमाने के लिए भारतीय टीम में लिया गया था लेकिन पहले ही टेस्ट में शानदार 74 रन बनाकर उसने मजबूत नींव रखी। पहला (बम्बई) टेस्ट ड्रा रहा। दूसरे टेस्ट (कानपुर) में भी

आस्ट्रेलिया के साथ हार-जीत का फैसला न हो पाया किन्तु अशोक मांकड ने दोनों पारियों में ठोस 64 और 68 रन बनाकर फारूख इंजीनियर के साथ प्रारम्भिक विकेट की साझेदारी में शतक उड़ाए। इसके बाद आया—दिल्ली टेस्ट। भारतीय क्रिकेट के इतिहास में यह टेस्ट स्वर्णिम अक्षरों में लिखा गया है क्योंकि उस टेस्ट में भारत ने पहली बार आस्ट्रेलिया को परास्त करने में सफलता प्राप्त की थी। यद्यपि उस विजय का सेहरा किसी एक खिलाड़ी के सिर पर नहीं बांधा जा सकता क्योंकि जहां बेदी और प्रसन्ना ने अपनी घातक गेंदबाजी से आस्ट्रेलिया की कमर तोड़कर रख दी थी वहां अजित वाडेकर और विश्वनाथ के साथ अशोक मांकड ने अपने टेस्ट जीवन का सर्वोच्च स्कोर बनाते हुए विरोधी कप्तान बिल लारी का गर्व चकनाचूर कर दिया था। लेकिन मांकड के लिए यह टेस्ट भुलाए नहीं भूलता क्योंकि प्रथम पारी में भारतीय टीम जिस तरह लड़खड़ाकर उखड़ती जा रही थी, उस स्थिति में मांकड अपनी सूझबूझ भरी बल्लेबाजी का प्रदर्शन न करता तो भारतीय टीम उस गौरव से वंचित रह जाती।

अशोक मांकड ने अब तक कुल मिलाकर 22 टेस्ट मैचों की 42 पारियां खेली हैं जिनमें तीन बार अविजित रहते हुए वह 991 रन बना चुका है जिसमें सर्वाधिकार स्कोर आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 97 रन है। उसने 6 बार अर्द्धशतक का मार्क पार किया और अपनी औसत 25.41 दर्ज की। मांकड ने इंग्लैंड के विरुद्ध 5, आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 8, वेस्टइंडीज के विरुद्ध 4 और न्यूजीलैंड के विरुद्ध 5 टेस्ट मैच खेले हैं। मांकड के दुर्भाग्य का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह एक हजार रन और पहले शतक से कुछ ही दूरी पर रह गया—ठीक उसी तरह जैसे टेस्ट टीम में प्रवेश का दावेदार होने के बाद चयनकर्ताओं ने हमेशा उससे आंखें फेर ली।

आ

आई० एफ० ए० शील्ड

फुटबाल के क्षेत्र में आई० एफ० ए० शील्ड का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है। इस प्रतियोगिता की शुरुआत 1893 में कलकत्ता में हुई थी। 1911

में पहली बार मोहन बागान ने इस शील्ड पर कब्जा किया था। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में इस जीत का अपना एक विशिष्ट स्थान है। नंगे पांव मैदान में उतरने वाले देशभक्त भारतीय खिलाड़ियों द्वारा सूट-बूट से लैस अंग्रेज खिलाड़ियों को हराना कोई कम महत्त्व की बात नहीं थी। इसलिए यह कहा जाता है कि स्वाधीनता संग्राम में मोहन बागान क्लब का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

मैच के दूसरे दिन रविवार को लोग हजारों की संख्या मे आई० एफ० ए० शील्ड का दर्शन करने के लिए पहुंचे। मुसलमानों ने भी मोहन बागान के इन खिलाड़ियों का खुले दिल से स्वागत किया और कहा—'यह प्रसन्नता विश्वव्यापी थी।' मुस्लिम स्पोर्टिंग क्लब के सदस्य खुशी के मारे पागल हो उठे थे और जमीन पर लोट-पोट होते हुए उन्होंने एक स्वर से कहा था—"आज हमारे हिन्दू भाइयों की जीत हुई है।" स्टेट्समैन ने कहा—"आनेवाली पीढ़ी पर इस जीत का अच्छा प्रभाव पड़ेगा।" 1977 में भी इस शील्ड पर मोहन बागान ने अपना अधिकार जमाया था। 1978 मे इसमें सोवियत संघ की सुपर लीग टीम अरारत इरेवान ने भी भाग लिया था। फाइनल में मोहन बागान और अरारत इरेवान के बीच मुकाबला 2-2 से बराबर रहा। स्वाधीनता के बाद यह पहला अवसर था जब किसी विदेशी टीम को संयुक्त विजेता के रूप में छः महीने तक ट्राफी अपने पास रखने का गौरव प्राप्त हुआ।

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह शील्ड प्रतियोगिता भारतीय फुटबाल एसोसिएशन द्वारा ही आयोजित की जाती है। यह भारत की तीसरी प्रमुख प्राचीन प्रतियोगिता है, जिसका आयोजन 1893 मे किया गया।

आज यह भारत की ऐसी प्रमुख प्रतियोगिता है जो एक से अधिक केन्द्रों पर खेली जाती है। इस प्रतियोगिता को पहली बार जीतने वाली भारतीय फुटबाल टीम मोहन बागान थी, जिसने 1911 मे ईस्ट यार्क को पराजित किया। तब से अब तक मोहन बागान की टीम इस शील्ड पर 15 बार कब्जा कर चुकी है। ईस्ट बंगाल की टीम ने इस शील्ड को 17 बार जीता है। 3 बार तो उसने लगातार इस शील्ड को जीता है। मुहम्मडन स्पोर्टिंग ने इस शील्ड को 5 बार जीतने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

आनंद, विश्वनाथन

विश्वनाथन आनंद अब अधिकृत तौर पर ग्रैंडमास्टर बन गए हैं। विश्व शतरंज फेडरेशन (फीडे) ने यह घोषणा की। इसके साथ ही 64 खानों के इस खेल में 18 वर्षीय आनंद अब खेल के दिग्गज खिलाड़ियों की सूची में शामिल हो गए।

मद्रास के कालेज छात्र आनंद शतरंज में इतना बड़ा दर्जा पाने वाले पहले भारतीय खिलाडी हैं।

'फीडे' ने साथ ही विश्व शतरज चैंपियनशिप के कॅंडीडेट मुकाबले के चार क्वार्टर फाइनल मैचों का भी समय तय कर दिया है। फीडे ने इन मैचों को अगस्त में करवाने की घोषणा की है। ब्रिटेन, कनाडा और बेल्जियम को एक-एक मैच करवाने का जिम्मा सौंपा गया है।

आबिद अली

आबिद अली का जन्म 21 जुलाई, 1947 को हुआ। वह अब तक 17 टेस्ट मैचों में भारत का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में वह हैदराबाद तथा दक्षिण क्षेत्र की ओर से खेलते हैं। 1971 मे इग्लैंड का दौरा करने वाली भारतीय टीम में भी उन्हें शामिल किया गया। तब तक वह 17 टेस्ट मैचों में 649 रन बना चुके थे। टेस्ट मैचों मे उनका सर्वोच्च स्कोर 81 है। वे 1949 रन देकर कुल 32 विकेट ले चुके हैं। वे अत्यन्त निकट से फील्डिंग करते हैं। 1968-69 में उन्होंने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का तथा बाद में वेस्टइंडीज का भी दौरा किया था।

आर्मस्ट्रांग वारविक डब्लू

(विक्टोरिया)—जन्म 22 मई, 1871। मृत्यु 13 जुलाई, 1947। 'बिग शिप' के नाम से मशहूर 6 फुट 2 इंच कद के आर्मस्ट्रांग के नेतृत्व में आस्ट्रेलिया ने 10 में से 8 टेस्ट जीते। भारी-भरकम होने के बावजूद गजब की फुर्ती। मौजी और खरखरे मिजाज के कारण आस्ट्रेलिया क्रिकेट-बोर्ड से सम्बन्ध हमेशा तनावपूर्ण। 50 टेस्टों में 2863 रन तथा 87 विकेट।

आरती साहा गुप्ता

आरती साहा भारत की ऐसी पहली महिला तैराक हैं जिन्होंने इंग्लिश चैनल पार करके अपना तथा अपने देश का गौरव बढाया है। इंग्लिश चैनल फ्रांस तथा इंग्लैंड के बीच के समुद्र को कहते हैं। वैसे तो इस सागर की दूरी 21 मील है, मगर जब कभी कोई तैराक इसकी अशांत लहरों मे घिर जाता है तो उसके लिए यही फासला और भी लम्बा और कष्टप्रद हो जाता है।

आरती साहा (विवाह के बाद इनका नाम आरती गुप्ता हो गया है) ने इग्लिश चैनल को पार करके सचमुच एक ऐसा साहसपूर्ण कार्य किया है जिससे भारतीय महिलाएं प्रेरणा ग्रहण कर सकती हैं। आरती साहा को बचपन से ही तैरने का बेहद शौक था। जब वह केवल दो वर्ष की ही थी कि उनकी मां चल

बसी। उनके पिता ने उन्हें बड़े लाड़-प्यार से पाला। बचपन से ही आरती साहा को इंग्लिश चैनल पार करने की धुन सवार हो गई थी। पहले प्रयास में उन्हें सफलता नहीं मिली। मगर उन्होंने भी हिम्मत नहीं हारी और 29 सितम्बर, 1959 को दूसरे प्रयास में इंग्लिश चैनल पार करके ही दम लिया। उन्होंने इस सागर को 16 घंटे और 20 मिनट में पार किया।

आसिफ इकबाल, रजवी

जन्म 6 जून, 1943। भारतीय खिलाड़ी गुलाम अहमद का भतीजा। आजकल कैंट काउंटी का कप्तान। 1967 के ओवल टेस्ट में पाकिस्तान का स्कोर 8 विकेट पर 65 रन था, तब इन्तखाब के साथ नवें विकेट के लिए 190 रन बनाए। टेस्ट रिकार्ड : 58 टेस्टों में 3595 रन, 50 विकेट।

इ

इंग्लिश चैनल के तैराक

किसी पर्वतारोही से किसी ने एक बार यह पूछ लिया था कि आप अपनी जान जोखिम में डालकर इतने ऊंचे-ऊंचे पर्वतों पर क्यों चढ़ते हैं। उसने मुस्कराकर उत्तर दिया था : पर्वत हैं तो इसलिए हम चढ़ते हैं। यही उत्तर समुद्र पार करने वाले तैराक भी दे सकते हैं और कह सकते हैं कि समुद्र हैं तो हम अपनी जान जोखिम में डालकर इनपर विजय प्राप्त करते हैं। तैराकी के क्षेत्र में इंग्लिश चैनल का जिक्र यहां-वहां अवश्य हो जाता है क्योंकि इसकी परम्परा काफी पुरानी है।

तैराकी के क्षेत्र में समुद्र पार करने की शुरुआत मैथ्यू वेब ने की। पिछली सदी में वह अक्सर भारतीय बन्दरगाहों में देखे जाते थे। 1875 में वेब ने पहली बार चैनल पार किया। उस समय तक लोग कभी यह सोच भी नहीं सकते थे कि भयंकर जीवों से भरपूर इंग्लिश चैनल को कोई इनसान तैरकर पार कर सकता है। लेकिन वेब ने यह करिश्मा कर दिखाया और पहल का श्रेय प्राप्त किया। कहा जाता है कि वेब भारतीय बन्दरगाहों पर ब्रिटिश जहाज लाया करते थे और इस तरह दोनों देशों में व्यापार बढ़ाने में उनका योगदान भी उल्लेखनीय है। समुद्र में बार-बार अपने जहाज लाने या ले जाने और तूफानी समुद्रों में तैरने के शौक के

कारण ही उन्होंने बहुत-से डूबते लोगों की जानें बचाईं। जिनमें एक उनका सगा भाई भी था।

इंग्लिश चैनल पार करने से पहले वेब ने ब्लैकवाल पायर से ग्रेवसेंड तक 20 मील लम्बी अपनी तैराकी 4 घंटे 45 मिनट में पार की। उनका यह रिकार्ड 34 साल तक बरकरार रहा। 12 अगस्त, 1875 को उन्होंने इंग्लिश चैनल पार करने की पहली कोशिश की, लेकिन 6 घंटे 49 मिनट तैरने के बाद उन्हें अपना यह अभियान बीच में ही छोड़ देना पड़ा। 15 दिनों के बाद उन्होंने फिर तैयारी की और इस बार वह विजयी रहे। जुलाई, 1883 में नियागरा जलप्रपात के करीब तैरने के प्रयास में उन्होंने अपनी जान गंवा दी। इस प्रकार के खतरे के खेल में हिस्सा लेने में अपनी जान का खतरा तो बना ही रहता है।

वेब के 36 साल बाद तक भी कोई तैराक इंग्लिश चैनल पार करने में सफल नहीं हो सका, हालांकि इसके लिए 70 बार प्रयास किए गए। इंग्लिश चैनल पार करने वालों को इंग्लैंड से फ्रांस या फ्रांस से इंग्लैंड वाली कोई भी एक दिशा चुननी होती है। वेब ने इंग्लैंड से फ्रांस वाला रास्ता चुना था।

एक जमाना था जब इंग्लैंड और फ्रांस के बीच की 21 मील चौड़ी इंग्लिश चैनल को तैर कर पार करना असंभव समझा जाता था। आज यही किशोर-किशोरियों के लिए बाएं हाथ का खेल समझा जाता है।

सबसे छोटी उम्र में इस साहसिक अभियान में सफलता प्राप्त करने का श्रेय भारत के ठाणे (महाराष्ट्र) की 14 वर्षीया छात्रा आरती प्रधान को प्राप्त हुआ। आरती बंबई के निकट ठाणे के आनंदीबाई जोशी इंग्लिश मीडियम स्कूल में 10वीं कक्षा की छात्रा है। आरती का कहना है कि उसने छः वर्ष की उम्र से ही तैराकी में भाग लेना शुरू कर दिया था। पिता जब-जब तरणताल जाते थे, उसे साथ ले जाते थे। आरती को बचपन से ही अंतर्राष्ट्रीय तैराक बनने की इच्छा थी। वह तो पूरी हो गई है। बस, अब डाक्टर बनने की इच्छा बाकी है।

आरती के ही शब्दों में, "छः साल से 11 साल की उम्र तक मैं लगातार तरणताल जाती थी। तब मैं 11 साल की हुई, तब मैंने ठाणे में चलने वाली तीन महीने का तैराकी का प्रशिक्षण लिया। सबसे पहली प्रतियोगिता पुणे के 'डाल-फिन स्वीमिंग पुल' में हुई। वहां मुझे दो छोटे-छोटे पदक प्राप्त हुए। पहले जिला स्तर की, फिर राज्य स्तर की प्रतियोगिता मे भाग लिया।

"मेरी अंतर्राष्ट्रीय तैराक बनने की इच्छा बचपन से ही थी। लेकिन 'इंग्लिश चैनल' पार करने से पहले बंबई के 'गेटवे आफ इंडिया' से धरमतर की 33 किलो-मीटर की दूरी से मेरा आत्मविश्वास बढ़ा। तभी मैंने 'इंग्लिश चैनल' पार करने की घोषणा कर दी। प्रशिक्षक करी डिकसन ने बताया कि इंग्लिश चैनल पार करने के लिए बदन पर ग्रीस लगाना बहुत जरूरी होता है क्योंकि इससे मछलियों

के काटने का असर नहीं होता और शरीर का तापमान बना रहता है।

"इंग्लिश चैनल पार करने वाली एशिया की सबसे छोटी उम्र की लड़की होने के कारण मेरा ठाणे में बहुत सम्मान हुआ। स्कूल की तरफ से मुझे 2,500 रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।"

इंग्लिश चैनल की विकास यात्रा में सबसे पहले कैप्टन मैथ्यू वेब का नाम लिया जाता है। उसने 24-25 अगस्त, 1875 में सबसे पहले इसे पार करने का गौरव प्राप्त किया था। जहाँ तक भारतीय तैराकों का सवाल है, सबसे पहले यह गौरव प्राप्त करने वाला भारत का पहला तैराक पश्चिम बंगाल का मिहिर सेन था। लेकिन उसके साथ केवल इतना ही नहीं, बल्कि सात विभिन्न सागर पार करने का विशेष महत्त्व है। भारतीय महिलाओं में सबसे पहले आरती साहा का नाम आता है। फिर आरती प्रधान और अनीता सूद का। एशिया में यदि सबसे कम उम्र में 'इंग्लिश चैनल' पार करने में आरती प्रधान का नाम है तो सबसे कम समय में (8 घंटे और 15 मिनट) अनीता सूद का।

पुरुष तैराकों में यह करिश्मा दिखाने वालों के नाम हैं—डा० विमल चंद्र, अविनाश सारंग, विजय जैन। विजय जैन ने 1983 में इस चैनल को 8 घंटे और 42 मिनट में पार करके एशियाई रिकार्ड बनाया था। ऐसा अद्वितीय गौरव पाने वाला यह पहला एशियाई तैराक बना।

आज बहुतों को यह विश्वास भी नहीं होगा कि भारत का एक ऐसा भी तैराक है, जो मूक बधिर और आंखों में मद्धम रोशनी के कारण अपंगों की श्रेणी में आता है। उसका नाम है तारानाथ शिणोय। उसने खराब परिस्थितियों के बावजूद फ्रांस से इंग्लैंड तक की साहसिक यात्रा को पूरा किया। विकलांग वर्ष में भारत का सर्वश्रेष्ठ तैराक बनने का गौरव पाने वाला शिणोय तब सेंट्रल रेलवे, बम्बई में क्लर्क के पद पर काम करता था। उससे एक वर्ष पहले भी वह अपने प्रयास में असफल रहा था। जब उसे दूसरे प्रयास में सफलता मिल गई तो उसे इस बात का कोई गिला नहीं रहा। क्योंकि देर-सवेर उसके जीवन की अभिलाषा तो पूरी हुई।

फिर आती है भारतीय महिलाओं की बारी। अनीता सूद की उम्र तब 23 वर्ष की थी। बंबई के कालिज में स्नातक की छात्रा ने पहले तैराकी में एकसाथ कई राष्ट्रीय कीर्तिमान स्थापित किए। फिर लम्बी दूरी में चैनल पार करने की धुन सवार हुई।

वह जानती थी कि एशिया में अब तक सब से कम समय में पार करने वाली महिला तैराक जापान की तोशियो ओगवा है। जिसका कद 5 फुट [illegible] इंच है। अनीता का कहना है, "मैंने 9 साल की उम्र में तैराकी में भाग लेना शुरू किया था। लेकिन चैनल पार करने के अभियान में भी तो आर्थिक सहायता की आवश्य-

कता होती है। इसके लिए मेरे पिता ने किसी तरह मित्रों और सहयोगियों से 1,00,000 रुपये की धनराशि प्राप्त की।"

और अनीता द्वारा नया रिकार्ड स्थापित करने के बाद उसने कहा, "आज मेरे जीवन की सबसे बड़ी मनोकामना भी पूरी हो गई है।"

अब तक दुनिया में केवल 22 महिलाओं को चैनल पार करने का गौरव प्राप्त था और अनीता 23वीं तैराक है। 10 दिन पहले ही आरती प्रधान ने एक कीर्तिमान स्थापित किया था, अनीता ने दूसरा। अब चैनल पार करना भारतीय महिलाओं के बाएं हाथ का खेल बन गया है। फिर बड़ी-से-बड़ी चुनौती को स्वीकार करने के लिए कोई उम्र छोटी नहीं होती।

यह भी एक संयोग की ही बात है कि पहली बार भारत की जिस महिला ने यह गौरव प्राप्त किया, उसका नाम आरती साहा है। उसने 1959 में इस चैनल को 16 घंटे और 20 मिनट में पूरा किया था। उसके बाद उसने यह भी स्वीकार किया था कि इस चैनल का सबसे छोटा मार्ग यों तो 21 मील का है, लेकिन ज्वार भाटे के समय पानी के खिंचाव में फंसने के कारण कई बार तो तैराक को 40 मील से अधिक की दूरी पार करनी पड़ जाती है। सागर की लहरों के बारे में कोई नहीं बता सकता कि कब वे मित्र बनकर आपका स्वागत करेंगी और कब शत्रु बनकर आपका विरोध।

आरती साहा के बाद आरती प्रधान, अनीता सूद ने इस चैनल को पार किया। उसके बाद राजीव गाडगिल ने इस दूरी को 10 घंटे 15 मिनट में पूरा किया। जहां तक अनीता सूद का सवाल है, उसने 8 घंटे 15 मिनट का एशियाई रिकार्ड स्थापित किया। इस प्रकार भारत के 10 खिलाड़ी इंग्लिश चैनल पार करने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

पुरुषों में सबसे कम समय में इसे पार करने का रिकार्ड अमरीका के पेनी ली डीन स्वैम का है (समय 7 घंटे 40 मिनट)। महिलाओं में यह रिकार्ड हालैंड की इरेन वान डेर लान का है। (समय 8 घंटे 0.6 मिनट)।

एशिया की सबसे छोटी उम्र की लड़की आरती प्रधान है। पर विश्व में सबसे छोटी उम्र का गौरव है एबला अंदेल खेरी को है, जिसने 13 वर्ष और 36 दिन की उम्र में यह गौरव प्राप्त किया।

फिर शुरू हुई इस चैनल को लगातार दो बार और तीन बार पार करने की प्रतियोगिता। इसकी सूची भी काफी लम्बी है। न्यूजीलैंड के फिलिप रश ने चैनल को तीन बार आर-पार करने का कारनामा भी कर दिखाया। उन्होंने बिना कहीं रुके तीन बार पार करने में 28 घंटे और 21 मिनट का समय लगाया। अब तो लगता है कि वह दिन दूर नहीं, जब कोई तैराक इसे चार बार आर-पार करने का गौरव भी प्राप्त कर लेगा।

भारत के जो तैराक इस क्षेत्र में अब तक सफलता प्राप्त कर चुके हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं : मिहिर सेन, आरती साहा, ब्रिजन दास, अविनाश सारंग, विमल चंद्र, तारानाथ शिणोय, आरती प्रधान, अनीता सूद और राजीव गाडगिल।

लम्बी दूरी का हर तैराक इग्लिश चैनल को तैरकर पार करना अपने जीवन का परम लक्ष्य मानता है। कल तक जिसे असंभव माना जाता था, आज वह स्कूली छात्र-छात्राओं के बाएं हाथ का खेल माना जाता है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि बड़े काम के लिए कोई उम्र छोटी नहीं होती।

इफ्तेखार अली खां (नवाब पटौदी—स्वर्गीय)

1932 का वर्ष भारतीय क्रिकेट के इतिहास मे एक विशेष महत्त्व रखता है। इसी वर्ष भारत ने सर्वप्रथम 'अधिकृत' टेस्ट खेला और इसी वर्ष विस्डन ने दो भारतीय क्रिकेट खिलाड़ियों को सम्मानित किया। इनमें से एक थे स्वर्गीय नवाब पटौदी और दूसरे थे सी० के० नायडू।

नवाब पटौदी (इफ्तेखार अली खां) ने अपने विद्यार्थी जीवन में ही क्रिकेट खेलना शुरू कर दिया था। पटौदी आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के छात्र थे। यहां यह बता देना उचित होगा कि क्रिकेट में कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों में पुरानी प्रतिद्वन्द्विता है। एक बार दोनों विश्वविद्यालयों की टीमों के बीच मैच हो रहा था। कैम्ब्रिज की टीम के एक खिलाड़ी रेटक्लिफ ने 5 घंटे और 40 मिनट के खेल में 201 रन बना लिए। दूसरे दिन जब आक्सफोर्ड की बारी आई तो पटौदी के नवाब ने बड़े आत्म-विश्वास के साथ अपने कप्तान से कहा कि मैं रेट-क्लिफ से ज्यादा ही रन बनाकर लौटूंगा। और उन्होंने अपने वादे और वचन का पालन किया। उन्होंने 238 रन बनाए और फिर भी आउट नही हुए।

5 जनवरी, 1952 को पोलो खेलते हुए उनकी मृत्यु हो गई।

इमरान खान

इमरान की गिनती आज श्रेष्ठ हरफनमौला खिलाड़ियों के साथ-साथ विश्व के दूसरे नम्बर के तेज गेंदबाज के रूप मे की जाती है। 130 किलोमीटर की रफ्तार से गेंद फेंककर उसे स्विंग कराने की कला का बेहतरीन फनकार इमरान ही है। इमरान की गेंदबाजी में स्पीड और मूवमेंट का अद्‌भुत सामंजस्य पाया जाता है।

25 नवम्बर, 1952 को जन्मे इमरान खान माजिद खान के रिश्ते मे भाई हैं। उन्होंने अपना प्रथम श्रेणी क्रिकेट जीवन 1969-70 में शुरू किया था।

अपने टेस्ट जीवन का पहला मैच इंग्लैंड के विरुद्ध खेला। 3 जून, 1971 को बरमिंघम मे खेले गए इस टेस्ट में आसिफ, मसूद, परवेज व इन्तखाब आलम के

रहते वह कोई विकेट तो नहीं ले पाए, किन्तु अपनी तूफानी गति के साथ गेंद को अन्दर-बाहर स्विंग कराने की योग्यता व गेंद को एकाएक कंधे के ऊपर उठा लेने की क्षमता की बदौलत उन्होंने बल्लेबाजों को निरंतर परेशान किए रखा। इमरान ने पहली विकेट दूसरे टेस्ट में (इंग्लैंड के विरुद्ध), 50वीं विकेट 13वें टेस्ट में (वेस्टइंडीज के विरुद्ध), 100वी विकेट 26वें टेस्ट में (भारत के विरुद्ध), 150वीं विकेट 37वें टेस्ट में (श्रीलंका के विरुद्ध) और 200वी कराची टेस्ट में प्राप्त की। यह उनका 45वां टेस्ट था। जिन देशों के खिलाफ खेलते हुए इमरान को यह सफलता हासिल हुई, उसका विवरण इस प्रकार है :

आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 13 टेस्टों मे 60 विकेट, वेस्ट इंडीज के विरुद्ध 9 टेस्टों में 35 विकेट, भारत के विरुद्ध दस टेस्टों में 41 विकेट, न्यूजीलैंड के विरुद्ध पांच टेस्टों में 24 विकेट, इंग्लैंड के विरुद्ध सात टेस्टों में 26 विकेट व श्रीलंका के विरुद्ध एक टेस्ट में 14 विकेट।

इमरान ने 45 टेस्टों में 13 बार पांच या अधिक विकेट लिए। एक मैच में दस विकेट लेने का करिश्मा उन्होंने दो बार दिखाया। गेंदबाजी में उनका सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन रहा—88 रन पर आठ विकेट। यह करिश्मा उसने लाहौर में श्रीलंका के विरुद्ध तीसरे टेस्ट में दिखाया। उन्होंने पहली पारी में 177 गेंदों पर 57 रन देकर आठ विकेट व दूसरी पारी में 137 गेंदों पर 58 रन देकर 6 विकेट लिए। इमरान ने कराची टेस्ट तक कुल 11,568 गेंदों पर 4896 रन देकर 206 विकेट लिए। पाकिस्तानी गेंदबाजों के लिए इस स्तर तक पहुंचना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

पाक क्रिकेट जगत के लिए खान परिवार आदर्श रहेगा। पाक क्रिकेट के लिए डॉ० जहांगीर द्वारा रखी गई नींव आज वटवृक्ष में परिवर्तित हो चुकी है।

टेस्ट रिकार्ड : 73 टेस्टों में 4 शतकों के साथ 2860 रन उच्चतम स्कोर 135 (और आउट नहीं)।

इन्द्र सिंह

इन्द्र सिंह, जिनका जन्म 23 दिसम्बर, 1943 को हुआ था, भारतीय टीम के एक सर्वोत्कृष्ट फारवर्ड पंक्ति के फुटबाल खिलाड़ी माने जाते हैं। बहुत वर्षों तक वह मर्डेका प्रतियोगिता, जो एशियाई प्रतियोगिता मानी जाती है, में भाग लेने वाली भारतीय टीम मे चुने जाते रहे हैं। एक बार जब अखिल एशियाई फुटबाल टीम का चयन किया गया तो उसमे उन्हें शामिल कर लिया गया। उन्होंने जालंधर की लीडर्स फुटबाल टीम की ओर से डी० सी० एम० प्रतियोगिता, डूरंड और रोवर्स कप प्रतियोगिताओं में भाग लिया और इस प्रकार अखिल भारतीय फुटबाल की प्रतियोगिताओं में लीडर्स क्लब, जालंधर ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त

किया। 1962 से 1967 तक वह राष्ट्रीय प्रतियोगिता में पंजाब की ओर से खेलते रहे। 1964-67 के दौरान वह मर्डेका फुटबाल प्रतियोगिता मे सर्वश्रेष्ठ फारवर्ड खिलाड़ी माने जाते रहे।

इवान लेंडल

शिखर पर पहुंचने की ललक किसे नही होती। क्षेत्र चाहे कोई भी हो, उसमें आगे बढ़ने की होड़ तो हमेशा लगी रहती है। और फिर टेनिस के तो कहने ही क्या ? अपार धन के साथ-साथ नम्बर एक का अद्वितीय सम्मान, अन्य खेलों की अपेक्षा लान टेनिस में कुछ ज्यादा ही है।

विश्व का नम्बर एक खिलाड़ी बनने की होड़ के साथ प्रकृति का यह नियम जुड़ा हुआ है, 'जो आता है, उसे जाना होता है।' इस परिवर्तनशीलता में बोर्ग, मैकनरो के बाद अब जो नया नाम जुड़ा वह है चैकोस्लोवाकिया का इवान लैंडल। चेकोस्लोवाकिया के चोबीस वर्षीय खिलाड़ी का पूरा टेनिसजीवन ही संघर्षमय रहा है। 8 मार्च 1960 को जन्मे इवान ने 1978 मे लड़कों का जूनियर विम्बलडन खिताब जीता था, आस्ट्रेलिया के किशोर जैफ टरपिन को हराकर। लेकिन विम्बलडन का पुरुष एकल जीतने मे रामनाथनकृष्णन की तरह वह अब तक असफल रहे हैं।

1981 का वर्ष इवान के लिए मिश्रित नतीजों का रहा। उस साल खेले 44 मैचो में से 34 में वह सफल रहे। लेकिन विम्बलडन के घास कोर्ट उन्हें रास नहीं आए। कई अच्छे मैच जीतने के कारण विम्बलडन 81 मे लैंडल की चौथी वरीयता रही। पर वह दूसरे चक्र में भी नही पहुच पाए। उन्हे आस्ट्रेलिया के चार्ली फंकट ने पहले दौर मे हराकर प्रतियोगिता से बाहर कर दिया था।

अगला वर्ष इवान के लिए ज्यादा बडी सफलताएं लेकर आया। उन्होंने मास्टर्स टूर्नामेंट, वर्ल्ड चेम्पियनशिप टेनिस फाइनल और टूर्नामेंट्स ऑफ चेम्पियन्स जैसी महत्त्वपूर्ण प्रतियोगिताएं जीतकर खूब यश और धन कमाया। इवान लैंडल को वर्ष 82 में 20 लाख डालर से अधिक की पुरस्कार राशि मिली। ग्राड प्री रैंकिंग के आधार पर लैंडल को विश्व वरीयता सूची में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त रहा। 1982 के विम्बलडन में वे नही खेले। लेकिन ग्रेंड स्लैम की दो प्रमुख खुली प्रतियोगिताओं के फाइनल में इवान पहुचे।

क्ले कोर्ट विशेषज्ञ खिलाड़ी के नाम से चर्चित चैक चेम्पियन 1982 में फ्रेंच ओपन के फाइनल में स्वीडन के मैट्स विलेंडर के हाथों हारे। फिर सितम्बर मे खेली गई अमेरिकन ओपन के फाइनल में उसे जिमी कोनोर्स के सामने घुटने टेकने पड़े। 'ग्रेंड स्लैम' की प्रमुख प्रतियोगिताओं के फाइनल मे बार-बार पराजित होना किसी भी खिलाड़ी का मनोबल डिगा सकता था। लेकिन वे अपनी असफल-

ताओं से किंचित परेशान नही हुए और अपने मंसूबों पर अडिग रहे।

वर्ष 83 में इवान लेंडल को तीसरी वरीयता मिली। उस वर्ष वे मास्टर्स खिताब को बचाने के अलावा कुछ अधिक नही कर सके। फ्रेंच ओपन में सेमी-फाइनल तक भी नहीं पहुचे। क्वार्टर फाइनल मे उन्हें यानिक नोहा ने जबर्दस्त शिकस्त दी। विम्बलडन मे इवान की भिड़त अमेरिका के जॉन मेकनरो से सेमी-फाइनल मे हुई। एक संघर्षपूर्ण मुकाबले में उन्हें अमेरिकी के सामने घुटने टेकने पड़े। दिसम्बर में 'ग्रेंड-स्लैम' की चौथी बड़ी चेम्पियनशिप आस्ट्रेलियाई इनडोर ओपन के फाइनल में बड़े आत्मविश्वास के साथ लेंडल पहुचे। लेकिन वहा उनका मानमर्दन, एक बार फिर स्वीडन के मेट्स विलेंडर ने किया। चार विभिन्न ग्रेंड स्लैम प्रतियोगिताओं के फाइनल में इवान लेंडल, बावजूद अच्छे प्रदर्शन के कोई खिताब नही जीत पाए तो उन्हें समीक्षकों ने फाइनल का खिलाड़ी घोषित कर दिया।

विम्बलडन में जीत हासिल करने का सपना पूरा नही हुआ।

ईरानी कप

जेड आर० ईरानी उन हस्तियों में से एक हैं जो जीवन पर्यंत ही क्रिकेट के प्रति समर्पित रहे। उन्होंने इस क्षेत्र में 1928 में पदार्पण किया। 1965 में वह भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अध्यक्ष चुने गए और 1969 तक इसी पद पर बने रहे। इसके अलावा वह एक वर्ष उपाध्यक्ष तथा अध्यक्ष पद संभालने से पहले वह इसके आनरेरी कोषाध्यक्ष भी रहे। उनकी मृत्यु 1970 में हुई।

श्री ईरानी का क्रिकेट के प्रति समर्पण को ध्यान में रखते हुए तथा उनकी सेवाओं के सम्मान हेतु भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड ने उन्ही के सामने, 1960 में रणजी ट्रॉफी की रजत जयन्ती के शुभ अवसर पर राष्ट्रीय स्तर की एक नयी प्रतियोगिता का शुभारम्भ किया जिसका नाम ईरानी कप रखा गया।

ईरानी कप : रिकार्ड

वर्ष	स्थान	विजेता
1959-60	नयी दिल्ली	बम्बई
1960-61	मैच नही	
1961-62	मैच नहीं	
1962-63	बम्बई	बम्बई
1963-64	अनन्तपुर	बम्बई
1964-65	मैच अगले सत्र (1965-66)	

वर्ष	स्थान	विजेता
		के शुरू में करने के लिए स्थान्तरित।
1965-66	मद्रास	पहली पारी पूरी न कर पाने के कारण दोनों टीमें संयुक्त विजेता घोषित।
1966-67	कलकत्ता	शेष भारत
1967-68	बम्बई	बम्बई
1968-69	बम्बई	बम्बई
1969-70	पूना	शेष भारत
1970-71	कलकत्ता	बम्बई
1971-72	बम्बई	शेष भारत
1972-73	पूना	बम्बई
1973-74	बंगलौर	शेष भारत
1974-75	अहमदाबाद	कर्नाटक
1975-76	नागपुर	बम्बई
1976-77	नयी दिल्ली	बम्बई
1977-78	बम्बई	शेष भारत
1978-79	बंगलौर	शेष भारत
1979-80	जालंधर	दिल्ली और शेष भारत संयुक्त विजेता, क्योंकि वर्षा के कारण खेल न हो सका।
1980-81	दिल्ली	दिल्ली
1981-82	इंदौर	बम्बई

उ

उदयचन्द, पहलवान

सेना के मशहूर पहलवान उदयचन्द को पहली बार देखने से ऐसा लगता है कि यह आदमी या तो कोई एथलीट है या हाकी का खिलाड़ी। शरीर की बनावट

से वह पहलवान नहीं लगते, लेकिन जिस समय लंगोट कसकर अखाड़े में उतरते हैं तो अपने इस्पाती शरीर और कुश्ती के निराले दांव-पेचों से दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

नायब सूबेदार उदयचन्द का जन्म 1937 में ग्राम गोढी कलां (जिला हिसार) में एक जाट परिवार मे हुआ। स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद यह 1953 में सेना मे भरती हो गए। कुश्ती से इनका और इनके परिवार के अन्य सदस्यों का विशेष लगाव था। इनके बड़े भाई नायब सूबेदार हरिराम कई वर्षों तक सेना के लाइटवेट वर्ग में चैम्पियन और राष्ट्रीय चैम्पियन रहे। इनको अपने बड़े भाई से कुश्ती की प्रेरणा मिली। सेना के प्रसिद्ध पहलवान लीलाराम को इन्होंने अपना गुरु मान लिया। लीलाराम भारत के हैवीवेट चैम्पियन रह चुके हैं और उदयचन्द के कथनानुसार आज उन्हें कुश्ती में जो मान और सम्मान मिला है इसका श्रेय लीलाराम को दिया जा सकता है।

1955 में पहली बार सेना की प्रतियोगिताओं मे वह फेदरवेट वर्ग में रनर-अप रहे। 1956 और 1957 में इन्होंने अपने वर्ग में सेना की चैम्पियनशिप जीती और 1958 में कटक मे हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं मे वह राष्ट्रीय चैम्पियन बने। 1959 मे अमृतसर मे हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं मे वह वेल्टरवेट में लक्ष्मीकांत पाण्डे से हार गए और इन्हें दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। लक्ष्मीकांत पाण्डे को 1958 में कार्डिफ में हुई राष्ट्रकुल खेल-प्रतियोगिताओं में रजत पदक प्राप्त हुआ था। वह उस समय वेल्टरवेट के राष्ट्रीय चैम्पियन थे। उदयचन्द लक्ष्मीकांत पाण्डे से हार जाने पर भी निराश नही हुए बल्कि उन्होंने मन ही मन पाण्डे को हराने का संकल्प कर लिया। 1960 में दिल्ली में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में इन्होंने अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों को हरा दिया। यहां यह बता देना उचित होगा कि इन प्रतियोगिताओं में पाण्डे ने भाग नही लिया था। उसके बाद 1960 में ही पहले बम्बई मे और बाद में मई-जून के महीने में शिमला में भारतीय पहलवानों के लिए प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, ताकि रोम ओलम्पिक के लिए अच्छे से अच्छे पहलवान का चुनाव किया जा सके। वहां उन्होंने अपने वर्ग के सभी प्रतिद्वंद्वियों को (अपने पुराने प्रतिद्वन्द्वी लक्ष्मीकांत पाण्डे को भी) हरा दिया और इस प्रकार अपनी पुरानी हार का बदला ले लिया। यहां यह बता देना उचित होगा कि इससे पहले पाण्डे किसी भारतीय पहलवान से नही हारे थे। इस प्रकार उदयचन्द को रोम ओलम्पिक टीम में शामिल कर लिया गया। रोम ओलम्पिक खेलों में उदय-चन्द का प्रदर्शन बहुत ही शानदार रहा। पहली कुश्ती मे उन्होंने इंग्लैंड के एक नामी पहलवान को अंकों से हरा दिया। दूसरी कुश्ती एक रूसी पहलवान के साथ हुई जिनमें दोनों पहलवान बराबर रहे। तीसरी कुश्ती में वह टर्की के पहलवान से हार गए।

उदय प्रभु

यदि आप एशियाई खेलों के पुराने इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो आपको पता चलेगा कि 1951 (नई दिल्ली) में हुए पहले एशियाई खेलों से लेकर 1970 (बैंकाक) में हुए छठे एशियाई खेलों तक 400 मीटर फासले की दौड़ों में भारतीय एथलीटों का ही बोलबाला रहा है। अर्थात् इस दौरान भारतीय एथलीटों ने इस दौड़ मे तीन स्वर्ण पदक, तीन रजत पदक और दो कांस्य पदक प्राप्त किए, इसमें मिल्खा सिंह ने दो और अजमेर सिंह ने एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

तेहरान में हुए सातवें एशियाई खेलों (1974) में 4 × 400 मीटर रिले में भारतीय टीम ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया था। 1975 में सियोल में हुई एशियाई एथलेटिक प्रतियोगिता में वह भारतीय रिले टीम की चौम्पियन का एक सदस्य था। इसके पश्चात् पाकिस्तान की कायदे आजम जिन्ना अन्तर्राष्ट्रीय दौड़ कूद में भी शामिल हो चुका है। दोनों ही अवसरों पर उसने अपने प्रदर्शन से सभी को प्रभावित किया था। लेकिन कायदे आजम टूर्नामेंट में उसने 47.0 सैकेण्ड मे फर्राटा मारकर अपने नाम का लोहा मनवा लिया था। फिर उदय प्रभु ने चंडीगढ़ मे हुई 15वी खुली एथलेटिक प्रतियोगिता 1977 मे इस फासले 4 × 40 मी० को 46.6 सैकिंड में पूरा करके मिल्खासिंह और माखनसिंह की सूची मे अपना नाम जोड़ दिया।

देखा जाए तो 23 वर्षीय अल्प आयु वाला उदय उसी परम्परा का अंग लगता है। उदय के बारे में अगर यह कहा जाए कि वह रातों-रात प्रसिद्धि के शिखर पर चढ़ गया है तो यह गलत नही होगा।

उधम सिंह

उधम सिंह का जन्म 4 अगस्त, 1928 को जालंधर के निकट संसारपुर गांव मे हुआ था।

1948 से 1965 तक की राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिताओ मे उधम सिंह ने पंजाब का प्रतिनिधित्व किया और एशियाई प्रतियोगिताओ मे भारत का। 1948 से 1964 तक विदेशों का दौरा करने वाली भारतीय टीम के ये स्थायी सदस्य रहे। 1965 में पंजाब की टीम को राष्ट्रीय चैम्पियनशिप (बम्बई), आगा खां हाकी प्रतियोगिता (बम्बई), अखिल भारतीय उबेदुल्लाह गोल्ड कप हाकी टूर्नामेंट (भोपाल) आदि प्रतियोगिताएं जीतने का गौरव प्राप्त हुआ। 1952, 1956, 1960 और 1964 के ओलम्पिक खेलों मे उन्होने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस समय उनकी अवस्था लगभग 53 वर्ष की है और अब भी वह सीमा सुरक्षा दल (बी० एस० एफ०) की ओर से देश की बड़ी प्रतियोगिताओं मे भाग लेते है।

उबेर कप

उबेर कप प्रतियोगिता की शुरूआत 1956-57 में हुई। 1977 में पहली बार मुकाबलों का आयोजन ठीक टामस कप प्रतियोगिता के आधार पर ही किया गया। याद रहे कि बैडमिंटन की अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं (पुरुषों की टीम) में जो दर्जा टामस कप को प्राप्त है वही स्त्रियों की टीम प्रतियोगिताओं मे उबेर कप का है। पहले उबेर कप प्रतियोगिता में 7 मुकाबले होते थे और टामस कप प्रतियोगिता में 9 मुकाबले। लेकिन अब उबेर कप में भी 9 मुकाबलों के आधार पर हार-जीत का निर्णय किया जाता है।

यदि उबेर कप में भारतीय खिलाडियों के पिछले प्रदर्शन पर नज़र दौड़ाई जाए तो पता चलता है कि शुरू-शुरू में इसमें भारतीय खिलाड़ियों ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। प्रतियोगिता के पहले वर्ष भारत ने मलेशिया को हरा दिया था लेकिन बाद में अन्तर क्षेत्रीय मुकाबलों में भारत अमेरिका से हार गया था। उस समय अमेरिका को विश्व चैम्पियन माना जाता था। 1959-60 में भी भारत ने मलेशिया को हरा दिया लेकिन बाद में अमेरिका से हार गया। 1962-63 में भारतीय टीम ने पहले तो हांगकांग को हराया लेकिन दूसरे राउंड में भारत ने इंडोनेशिया को वाक-ओवर दे दिया। 1965-66 में भारत को मलेशिया से वाक-ओवर मिला, लेकिन बाद में एशियाई क्षेत्र में ही भारत थाईदेश से हार गया। 1968-69 में फिर यही पुनरावृत्ति हुई, यानी थाईदेश ने भारत को हरा दिया। 1971-72 में भारत ने थाईदेश को वाक-ओवर दिया और 1974-75 में भारत मलेशिया से 0-7 से हार गया, यानी भारत एक भी मुकाबला नही जीत सका। सक्षेप में यह कि एक जमाने में मलेशिया को हराना जितना आसान था आज उतना ही कठिन है।

थामस कप की तरह महिलाओं के लिये उबेर कप की विश्व बैडमिंटन टीम चैम्पियनशिप की 1956-57 से शुरूआत श्रीमती एच० एस० उबेर के नाम पर हुई. विजेता उपविजेता के नाम निम्न हैं :

वर्ष	स्थान	देश	विजेता	उपविजेता
1956-57	लंकाशायर	11	अमेरिका	डेनमार्क
1959-60	फिलिडेल्फिया	14	अमेरिका	डेनमार्क
1962-63	विलिंग्टन	11	अमेरिका	इंग्लैंड
1965-66	विलिंग्टन	17	जापान	अमेरिका
1968-69	टोक्यो	19	जापान	इंडोनेशिया
1971-72	टोक्यो	17	जापान	इंडोनेशिया
1974-75	जकार्ता	14	इंडोनेशिया	जापान

1977-78	आकलैंड	16	जापान	इंडोनेशिया
1980-81	टोक्यो	15	जापान	इंडोनेशिया

इन खेलों के आयोजन में भारतीय बैडमिंटन संघ का विशेष सहयोग प्राप्त होता है। इस संघ की स्थापना 22 सितम्बर, 1934 को कलकत्ता में हुई थी। श्री सूरत कुमार मित्रा को इसका पहला अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त हुआ।

ए

एकनाथ सोलकर

सन् 1958 के आसपास की बात है, बंबई हिंदू जीमखाना के मैदान पर एक दस वर्ष का लड़का स्कोर बोर्ड के साथ छेड़खानी कर रहा था, उसकी नजर एकदम मैदान में केंद्रित थी। ज्यों ही कोई रन बनता, ओवर खत्म होता, या बल्लेबाज आउट होता, वह झटपट स्कोर बोर्ड को सही कर देता। चूंकि इस बालक के पिता बंबई हिंदू जीमखाना के कर्मचारी थे इसलिए कोई उससे रोक-टोक नही करता था।

क्रिकेट देखते-देखते उस बालक के मन में भी खेलने की ललक पैदा हो गयी और इस ललक और लगन ने उसे टेस्ट मैचों में पहुंचा दिया।

उस बालक का नाम जानने के लिए आपने शायद आपने दिमागी घोड़े खोल दिये होंगे। उन्हें रोकिये, उसका नाम है एकनाथ सोलकर।

मांकड की संरक्षता

बचपन में सोलकर का खेल के प्रति समर्पण और सम्मान देकर महान आलराउंडर वीनू मांकड इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने सोलकर को बाकायदा प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। कितनी आश्चर्यजनक बात है कि वीनू मांकड ने सोलकर को अपनी ही तरह का स्पिनर और ठोस बल्लेबाज बनाया था किंतु जब सोलकर टेस्ट टीम में उतरा तो उसके हाथ में नयी गेंद थमा दी गयी। उससे यही कहा गया कि वह गेंद की चमक खत्म करने में सहायता करे ताकि भारतीय स्पिन तिकड़ी अपना करिश्मा दिखा सके।

सोलकर ने अपने क्रिकेट जीवन की शुरूआत 1966-67 मे बंबई की तरफ से रणजी मैच में खेलकर की थी। शीघ्र ही वह टीम की अनिवार्यता बन गया। 1969-70 में जब पटौदी के नेतृत्व में भारतीय क्रिकेट टीम को नया स्वरूप दिया था और पुराने खिलाड़ियों की जगह नये प्रयोग किये जा रहे थे, ऐसे में सोलकर को भी भारतीय टीम में मौका दे दिया गया। न्यूजीलैंड के विरुद्ध हैदराबाद टेस्ट में उसका पहला अनुभव बहुत कड़वा रहा। पहली पारी में वह शून्य पर आउट हो गया और दूसरी पारी में अविजित 13 रन बनाये। गेंदबाजी करते हुए कुल मिले तीन ओवरों मे कोई विकेट हासिल नहीं किया।

इसी वर्ष आस्ट्रेलिया के विरुद्ध कानपुर टेस्ट में उसे फिर मौका दिया गया। लेकिन इस वर्ष उसका प्रदर्शन सन्तोषजनक रहा। पहली पारी मे 44 और दूसरी पारी में 34 रन बनाकर उसने टीम में अपना स्थान पक्का कर लिया। इसी टेस्ट में उसने रेडपाथ को आउट करके पहला टेस्ट विकेट भी प्राप्त किया।

स्वर्णिम युग में योगदान

1970-71 के विजयी भारतीय दल का सोलकर भी एक महत्वपूर्ण सदस्य था। वेस्टइंडीज के विरुद्ध उस वर्ष त्रिनिडाड में जो ऐतिहासिक विजय प्राप्त हुई थी उसमे सोलकर ने एक ही पारी खेलते हुए शानदार 55 रन ठोंके थे। इंग्लैंड के विरुद्ध ओवल टेस्ट की विजय में भी सोलकर का 45 रन और 3 विकेट का महत्वपूर्ण योगदान शामिल था। इसी श्रृंखला में उसने ज्योफ बायकाट जैसे प्रसिद्ध बल्लेबाज को लगातार तीन बार आउट करके बायें हत्था गेंदबाज को खेलने की उसकी कमजोरी को उजागर किया था। सोलकर ने भारतीय टीम के साथ 1970-71 और 1975-76 मे वेस्ट इंडीज तथा 1971-74 में इंग्लैंड का दौरा किया और 1969-70 मे आस्ट्रेलिया और 1974-75 में वेस्ट इंडीज के विरुद्ध भारत में ही श्रृंखलाएं खेली। सोलकर ने इस दौरान खेले 27 टेस्ट मैचों में कुल 1068 रन जोड़े, जिनमे वेस्ट इंडीज के विरुद्ध 1974-75 में बंबई में बनाया गया एकमात्र शतक भी शामिल है। सोलकर ने 18 विकेट भी हासिल कीं। प्रथम श्रेणी क्रिकेट मे उसने 6,300 से अधिक रन बनाये और 250 से अधिक खिलाड़ियो को अपना शिकार बनाया।

सर्वश्रेष्ठ क्षेत्ररक्षक

किंतु सोलकर को जिस बात के लिये याद किया जायेगा, वह है उसका क्षेत्ररक्षण, जिसकी बदौलत उसने शानदार 53 कैच पकड़े। उसका यह रिकार्ड तो बाद में गावसकर ने तोड़ दिया लेकिन 19"2-"3 की श्रृंखला में इंग्लैंड के विरुद्ध लिए गये 12 कैच अब तक एक अप्रतिम रिकार्ड है।

1972 में सोलकर को अर्जुन पुरस्कार से विभूषित किया गया था।

एक मील की दौड़

आज से कोई 24 साल पहले तक यह माना जाता था कि एक मील के फासले को 4 मिनट से कम समय मे तय करना दुनिया के किसी इनसान के बस या बूते की बात नहीं, हां, यदि कोई सुपरमैन (अतिमानव) ही धरती पर उतर आए तो दूसरी बात है। मगर 6 मई, 1954 को इंग्लैंड के चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थी रोजर बैनिस्टर ने जब पहली बार एक मील के फासले को 3 मि० 59.4 से० में तय कर दिखाया तो 30 वर्षों से चली आ रही उक्त धारणा गलत सिद्ध हो गई। असम्भव को सम्भव कर दिखाने के कारण रोजर बैनिस्टर एक मील के इतिहास में अमर हो गए।

1954 से लेकर 1978 तक एक मील के फासले की दौड़ का (या कहिए कि चार मिनट के भ्रम का) जितना अवमूल्यन हुआ है उतना और शायद ही किसी दौड़ का हुआ हो। आए दिन एक मील की दौड़ में नये-नये कीर्तिमान स्थापित होने लगे। बैनिस्टर के बाद अब तक लगभग 77 दौड़ाकों ने इस फासले को 4 मिनट से कम समय मे तय करके दिखाया है।

एक मील के दौड़ के पहले कीर्तिमान इस प्रकार हैं :

1. जान वाकर (न्यूज़ीलैंड)	3 मिनट 49.4 सेकंड
2. फिल्बर्ट बाई (तन्जानिया)	3 मिनट 51 सेकंड
3. जिम रिऊन (अमेरिका)	3 मिनट 51.1 सेकंड
4. जिम रिऊन (अमेरिका)	3 मिनट 51.3 सेकंड
5. जिम रिऊन (अमेरिका)	3 मिनट 53.2 सेकंड
6. माइकेल जाजी (फ्रांस)	3 मिनट 53.6 सेकंड
7. जिम रिऊन (अमेरिका)	3 मिनट 53.7 सेकंड
8. जुरगेन मे (पूर्वी जर्मनी)	3 मिनट 53.8 सेकंड
9. पीटर स्नेल (न्यूज़ीलैंड)	3 मिनट 54·1 सेकंड
10. किपचोग केइनो (केनिया)	3 मिनट 54.2 सेकंड
11. हर्ब इलियट (आस्ट्रेलिया)	3 मिनट 54.5 सेकंड
12. जिम ग्रेले (अमेरिका)	3 मिनट 55.4 सेकंड

एथलेटिक

भागने-दौड़ने और उछलने-कूदने का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानवजाति का इतिहास। तेज से तेज भागने या अपना पीछा करने वाले प्रतिद्वंद्वी या शत्रु या जंगली जानवर को पीछे छोड़ने की आदत आदि मानव में भी थी और

आज के मानव मे भी है। जेट विमानों के युग में दौड़-धूप की बात तो सोची जा सकती है लेकिन तेज से तेज दौड़ने की बात कुछ बेतुकी भी लग सकती है। सवाल उठता है कि जब एक से एक तेज सवारी मौजूद है तो इनसान टांगों को क्यों ज्यादा कष्ट दे ? लेकिन आधुनिक अनास्था का यह सवाल अब तक एथलीटों को छू नहीं सका है और वे तेज से तेज दौड़ने के नये नये कीर्तिमान स्थापित करने मे और भी ज्यादा तेज़ी दिखाते रहे हैं। जिसका नतीजा यह है कि आज के एथलीटों के सामने ऊंचाइयां झुकती जा रही हैं और लम्बाइयां और छोटी होती जा रही हैं। मनुष्य एथलेटिक के क्षेत्र मे जो निरन्तर प्रगति कर रहा है उसकी सार्थकता स्पष्ट और स्वभाविक है।

एथलेटिक का महत्त्व और उसकी लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। ओलम्पिक खेलों मे एथलेटिक की प्रतियोगिताओं मे कई प्रकार की छोटे-बड़े फासले की दौड़ें होती हैं। छोटे फासले की दौड़ें, मध्य फासले की दौड़ें और लम्बे फासले की दौड़ें। सौ मीटर, दो सौ मीटर और चार सौ मीटर की प्रतियोगिताएं छोटी दौड़ें अथवा स्प्रिन्ट्स कहलाती हैं। स्प्रिन्ट्स में भाग लेने वाले एथलीट अपनी सारी संचित शक्ति का उपयोग उसके क्षणिक विस्फोट द्वारा शरीर को उच्चतम वेग पर दौड़ाने में करते हैं। दौड़ शुरू होने की सूचक बन्दूक दागने की आवाज़ सुनाई पड़ी नहीं कि धावकों की पंक्ति टूटती नजर आती है और पल-भर ही, यानी कुछ सेकंडों में ही हार-जीत का फैसला हो जाता है। इसके विपरीत होती हैं पांच हज़ार मीटर, दस हज़ार मीटर और 26 मील 385 गज की मैराथन दौड़। ये दौड़ें लम्बी दौड़ें कहलाती हैं।

छोटी दौड़ों का इतिहास ईसा के जन्म से 776 वर्ष पहले शुरू होता है। पिछले 50 वर्षों में छोटी दौड के इतिहास में अनेकों क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। वैज्ञानिक प्रयोगों ने पहले की धारणाओं और मान्यताओं को तोड़ दिया है। सन् 1936 मे बर्लिन ओलम्पिक में अमर नीग्रो एथलीट जैसी ओवन्स ने सौ मीटर की दौड़ को जब 10.3 सेकंड में पार किया तब लोगों ने दांतों तले अंगुली दबा ली थी। लेकिन 100 मीटर के फासले की दौड़ को 10.3 सेकंड में पार करने से लेकर इसी फासले को 9.9 सेकंड में पार करने में पूरी तीन शताब्दियां लगी।

लम्बी दौड़ में धावक के दमखम और उसकी शारीरिक शक्ति की असली परीक्षा हो जाती है। इसके अलग-अलग धावकों का दौड़ने का ढंग अलग-अलग होता है। कुछ धावक पहले तो थोड़ा धीमा भागने लगते हैं लेकिन आखिरी क्षणों में वह बहुत तेज भागते हैं। ओलम्पिक खेलो में एथलेटिक की विभिन्न प्रकार की कई प्रतियोगिताएं होती हैं।

आज का युग प्रतिस्पर्धात्मक युग है। दूरियां घट सकती हैं, ऊंचाइयां बढ़ सकती हैं बशर्ते धावक, धाविकाएं शारीरिक क्षमता, गति, सहनशीलता, चपलता और

लगभगीनामन बढ़ाने का प्रयास करते रहें। ओलंपिक खेलों में यदि भारतीय खेल-प्रेमियों को सबसे अधिक सफलता की आशा हाकी पर, राष्ट्रमंडल खेलों में कुश्ती पर तो इसी प्रकार एशियाई खेलों में सबसे अधिक आशा भारतीय एथलीटों से ही रखी जाती है। लेकिन पिछले वर्ष सियोल एशियाई खेलों में भारतीय एथलीटो का प्रदर्शन भी बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं रहा। पुरुष एथलीटों के इस घटिया प्रदर्शन में पी० टी० ऊषा का प्रदर्शन बेहतरीन रहा। उन्होंने 4 स्वर्ण और एक रजत पदक जीता। दूसरे अर्थों में अब भी एशियाई खेलों में एथलीटों से ही आशा रखी जा सकती है। यह दूसरी बात है कि सफलता पुरुष एथलीटों को मिले या महिला एथलीटो को। इसके अतिरिक्त एशियाई ट्रैक एंड फील्ड चैम्पियनशिप में भी भारतीय एथलीटों का प्रदर्शन काफी संतोषजनक रहता है। लेकिन बहुतों को यह आज तक समझ नहीं आया कि बलविंदर सिंह और बहादुर सिंह इस बार गोला फेंकने में (शाटपुट) में क्यों सफल नहीं रहे। प्रतियोगिता शुरू होने से पहले हमारे अधिकारी और प्रशिक्षक सफलता के बड़े-बड़े दावे प्रस्तुत करते हैं लेकिन समाप्त हो जाने पर अपना-अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने मे व्यस्त हो जाते हैं। लेकिन सीखने वाले तो हार से भी सबक सीख जाते हैं। पिछले वर्ष अपने समय के केन्या के मशहूर खिलाड़ी और अब प्रशिक्षक, किप जोग कीनो भारत आये थे। 1968 और 1972 ओलंपिक में मध्य और लंबी दूरी के स्वर्ण विजेता किपजोग कीनो भारत केन्या सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत दिल्ली आये थे। उनका कहना था कि शुरू में तो एथलीट को खुद ही परिश्रम करना होता है, उसमें रुचि लेनी होती है। और जब एक एथलीट कुछ स्तर पर आ जाता है तो उसके प्रशिक्षक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने एथलीट को कमजोरियों को वैज्ञानिक तौर पर परीक्षण करे और फिर उन त्रुटियों को सुधारे।

किपजोग कीनो ने यह भी बताया कि, 'मेरी सफलता का रहस्य मेरा अथक परिश्रम और एथलेटिक के प्रति पूर्ण समर्पण तो है ही, मुझे पराजयों से भी बहुत सबक मिला है।' उन्होंने भी इस बात का संकेत दिया था कि इन दिनों 'थ्रो' स्पर्धाओं में 'स्पोर्ट्स मेडिसिन' ने अवश्य क्रांति की है, पर वह अच्छाई के लिए कम बुराई की ओर ज्यादा ले ली जाती है।

आज एथलेटिक में नये वैज्ञानिक अनुसंधान अतिरिक्त शक्ति के रूप में खेलों और खिलाड़ियों की न केवल मदद ही कर रहे है बल्कि इतने महत्त्वपूर्ण अंग हो गए हैं कि इनके बिना आज खेलो की परिकल्पना अधूरी है।

जैसे सबसे पहले दौड़ को ही लें। कई धावकों की शुरूआत धीमी हो सकती है, पर वे बाद में तेज भागते हैं कई तेज शुरूआत के बाद धीमे पड़ जाते हैं।

ऊंची कूद में 1963 मैक्सिको ओलंपिक मे अमरीकी डिक फासबरी ने एक नई शैली ईजाद की जिसे फासबरी 'फलाप' से पुकारा जाता है। इसी प्रकार आज

कल 'थ्रो स्पर्धाओं' पर भी अनुसंधान हो रहे हैं। कुल मिलाकर आधुनिक विज्ञान और नई तकनीकों ने मनुष्य की क्षमताओं को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया है।

एफ० ए० कप

फुटबाल का खेल कब, कहां और कैसे शुरू हुआ इस बारे मे काफी मतभेद हो सकता है, पर इस बात में कोई मतभेद नहीं है कि एफ० ए० कप प्रतियोगिता फुटबाल की सबसे पुरानी प्रतियोगिता है। इस प्रतियोगिता का आयोजन आज से ठीक 107 वर्ष पहले किया गया था और तब से लेकर अब तक प्रतिवर्ष इस प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है।

यह ठीक है कि फुटबाल का खेल दुनिया मे बहुत ही लोकप्रिय खेल है, पर यह भी उतना ही ठीक है कि एफ० ए० कप (इसका पूरा नाम फुटबाल एसोसिएशन चैलेंज कप है) सबसे पुरानी फुटबाल प्रतियोगिता है और दुनिया के उन देशों को, जिनमें फुटबाल का खेल बहुत लोकप्रिय है, जितनी दिलचस्पी वर्ल्ड कप प्रतियोगिता से है, इंग्लैंड वालों को उतनी ही दिलचस्पी एफ० ए० कप से है।

एफ० ए० कप की शुरुआत 1871 में की गई और इसको शुरू करने का श्रेय सी० डब्ल्यू० अलकाक को है। अलकाक 1870 से 1895 तक फुटबाल एसोसिएशन के सेक्रेटरी भी रहे। 1871-72 में जब एफ० ए० कप प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, तब पहली बार इस कप पर वांडरर्स ने अपना अधिकार जमाया। लन्दन के केनिंग्टन ओवल में वांडरर्स और रायल इंजीनियर्स मे खेले गए मैच में वांडरर्स ने रायल इंजीनियर्स को 1-0 से हराया था।

एमिल ज़ातोपेक

एमिल ज़ातोपेक के नाम के साथ 'ह्यूमन लोकोमोटिव' का विशेषण लगाना बहुत ज़रूरी है, यानी उनकी ताकत, तूफान जैसी तेज़ी और दमखम को देखते हुए लोग उनकी तुलना रेलगाड़ी से किया करते थे। 1968 के मैक्सिको ओलम्पिक खेलों के अवसर पर दुनिया के जिन इने-गिने चोटी के खिलाड़ियों को सम्मानित अतिथि के रूप मे यहां आमन्त्रित किया गया था उनमें चेकोस्लोवाकिया के ज़ातोपेक (पति-पत्नी दोनों) भी थे। एक ही ओलम्पिक खेल में एथलेटिक में अलग-अलग फासले की दौड़ों मे एक साथ तीन स्वर्ण पदक प्राप्त करने का गौरव किसी-किसी को ही प्राप्त होता है। 1952 मे हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों मे ज़ातोपेक ने 10,000 मीटर 5,000 मीटर और मैराथन में स्वर्ण पदक प्राप्त किए थे। इस पर भी वह अपने आपको बड़े पुराने ढंग का दौड़ाक मानते रहे। जब-जब उनसे किसी ने उनकी इस सफलता का रहस्य जानना चाहा तब-तब उन्होने यही कहा

—'परिश्रम, परिश्रम, परिश्रम और परिश्रम। मैंने कभी अपने को वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित ही नहीं किया।'

एमिल ज़ातोपेक का जन्म उत्तरी मारावियां में कोपरिवनी नामक शहर में हुआ। उनके पिता को खेल-कूद में कोई दिलचस्पी नहीं थी। 19 साल की उम्र में एकाएक ज़ातोपेक में तेज भागने का शौक पैदा हुआ। उन्होंने बाबा शू कम्पनी में एक मामूली-सी नौकरी स्वीकार कर ली और इसके साथ-साथ नियमित रूप से उन्होंने दौड़ने का अभ्यास शुरू किया। उनका कहना है कि सफलता के जिस शिखर पर मैं पहुंचा हूं उसके लिए मुझे आठ वर्ष तक कठोर साधना करनी पड़ी। मैं एक-एक दिन में 20-20 मील दौड़ने का अभ्यास किया करता था। पहले-पहल उन्होंने एक-एक करके चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रीय रिकार्ड भंग करने शुरू किए। 1948 में वेम्बली में उन्होंने 10,000 मीटर की दौड़ में दुनिया के सबसे तेज दौड़ाक हेइओनो को पीछे छोड़ दिया और चार साल बाद, यानी 1952 में, हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों में तो उन्होंने एक साथ तीन स्वर्ण पदक प्राप्त कर एक नया ही कीर्तिमान स्थापित किया।

ज़ातोपेक के जीवन में 19 सितम्बर के दिन का विशेष महत्त्व है। इनका और उनकी पत्नी डाना का जन्म 19 सितम्बर 1922 को हुआ। 19 सितम्बर को ही इनका विवाह हुआ और 19 सितम्बर, 1952 को हेलसिंकी में ज़ातोपेक ने 5,000 मीटर में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। उनकी पत्नी डाना ने भी इसी दिन भाला फेंकने में स्वर्णपदक प्राप्त किया। उन्होंने अपने जीवन काल में दो ओलम्पिक खेलों में चार स्वर्ण पदक प्राप्त किए और अलग-अलग फासले की दौड़ों में 10 विश्व कीर्तिमान स्थापित किए।

एल्फ्रेडो डी स्टीफेनो

एल्फ्रेडो डी. स्टीफेनो को अर्जेंटीना के एक श्रेष्ठ एवं पूर्ण फुटबाल खिलाड़ी के रूप में जाना जाता है। 1944 में ये रिवर प्लेटो की ओर से खेले और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में अर्जेंटीना का प्रतिनिधित्व किया किंतु 1953 में स्पेन चले गये और 31 बार स्पेन की टीम का प्रतिनिधित्व किया। रीयल मेड्रिड टीम के लिए पांच सौ गोल किये। 1964 में रीयल मेड्रिड छोड़कर ये एस्पेनल चले गये इन्हें 1957 तथा 1959 का सर्वश्रेष्ठ यूरोपियन खिलाड़ी भी घोषित किया गया। 1970 ई० में ये अर्जेंटीना फुटबाल टीम के मैनेजर बने।

एलन बोर्डर

जब ग्रेग चैपल, डेनिस लिली और रोडने मार्श जैसे खिलाड़ियों ने लगभग एक साथ टैस्ट से सन्यास लिया था तो हर किसी ने कहा कि आस्ट्रेलियाई क्रिकेट

का इतिहास युग खत्म हो गया। असल में तो उनका संन्यास एक नए युग की शुरूआत था और इस नए युग की दास्तान 3-4 खिलाड़ियों के इर्द-गिर्द नहीं घूमती है बल्कि इसका हीरो सिर्फ एक खिलाड़ी है। खास तौर पर लगभग 4 सालों में आस्ट्रेलियाई क्रिकेट की कहानी को उनके प्रमुख बल्लेबाज और आज के कप्तान एलन बोर्डर के प्रदर्शन के इर्द-गिर्द लिखा जा सकता है। लगभग साधारण सी दिखने वाली आस्ट्रेलियाई टीम को हाल के सालों में जो भी सफलताएं मिली हैं उसमें सबसे बड़ा योगदान एलन बोर्डर का रहा है। एलन बोर्डर ने न सिर्फ टीम के लिए एक प्रमुख और भरोसे के बल्लेबाज की भूमिका निभाई बल्कि वह अपनी टीम के युवा खिलाड़ियों के लिए प्रेरणा बना रहा और उन्हें शानदार प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता रहा। इस बात का इससे बेहतर सबूत और क्या होगा कि बोर्डर की कप्तानी में हर उम्मीद के विपरीत आस्ट्रेलिया ने भारत में आकर विश्व कप जीता।

एलन बोर्डर आज विश्व के सबसे बेहतरीन बल्लेबाजों में से एक है। सच तो ये है कि उनके प्रदर्शन में जो स्थिरता है उससे वह पिछले कई साल से विश्व के सबसे बेहतरीन बल्लेबाजों में से एक गिना जा रहा है। वेस्टइंडीज और आस्ट्रेलिया के बीच क्रिसमस की पूर्व संध्या पर जब तीसरे टैस्ट मैच के लिए बोर्डर और रिचर्डस टास के लिए उतरें तो बोर्डर ने 100 टेस्ट मैच खेलने का रिकार्ड बनाया। आस्ट्रेलिया की ओर से ये रिकार्ड बनाने वाला वह पहला खिलाड़ी है। बोर्डर इस रिकार्ड का बड़ा सही हकदार भी है।

बोर्डर की बल्लेबाजी का रिकार्ड किसी भी युग के सबसे सफल बल्लेबाजों का खूब मुकाबला करता है। इस तथ्य को याद करते हुए इस बात को नहीं भूला जा सकता कि जब से वह आस्ट्रेलिया का कप्तान बना है उसने ज्यादातर अवसर पर दबाव में बल्लेबाजी की है। आस्ट्रेलिया के पास मार्श और बून की सलामी जोड़ी है पर जब-जब ये जोड़ी आस्ट्रेलिया को बड़ी शुरूआत नहीं दे पाई बोर्डर ने दबाव में बल्लेबाजी की है। उसके लिए सबसे पहली और सबसे प्रमुख जिम्मेदारी आस्ट्रेलिया के स्कोर को सम्मानजनक स्थिति में पहुंचाने की रही है। बोर्डर पिछले कई सालों से आस्ट्रेलियाई का एकमात्र विश्व स्तर का बल्लेबाज बना हुआ है। और आस्ट्रेलिया का प्रदर्शन उसकी अपनी सफलता-असफलता की कहानी है। इस जिम्मेदारी ने बोर्डर को अपना खेलने का अंदाज बदलने के लिए मजबूर किया। एक समय था जब बोर्डर आक्रामक होकर बल्लेबाजी किया करता था आज बात वो नहीं है। आज बोर्डर स्पिनर के सिर के ऊपर से गेंद उठाने का साहस नहीं जुटाता पर एक समय था जब बोर्डर को ऐसे स्ट्रोक खेलने में मजा आता था।

बोर्डर ने जब टैस्ट क्रिकेट में खेलना शुरू किया तो किसी को ऐसा नहीं लगा

था कि ये खिलाड़ी आने वाले सालों में आस्ट्रेलिया का एक बेहद जिम्मेदार कप्तान साबित होगा। क्रिकेट के मैदान में बोर्डर ने जो मेहनत की उसने उसे मस्त खिलाड़ी से एक मजबूत क्रिकेटर बनाया और इसीलिए नाजुक हालात में भी बोर्डर आस्ट्रेलिया का कप्तान बनने से हिचकिचाया नहीं। बोर्डर ने जब-जब बड़ी पारी खेली है—उसकी हिम्मत और उसका खेल कौशल उसमें पूरी तरह से नजर आया है। अगर मार्शल, गारनर, डेनियल, इमरान, कपिल, मनिंदर, कादिर हैडली और बाथम जैसे गेंदबाज किसी बल्लेबाज का रिकार्ड खराब नहीं कर सके हैं तो वह बल्लेबाज एलन बोर्डर है।

बोर्डर खब्बू बल्लेबाज है। स्लिप पर उसके क्षेत्ररक्षण का जवाब नहीं और जरूरत पड़ने पर वह बड़ी उपयोगी आर्थोडाक्स स्पिन गेंदबाजी भी कर लेता है। उसने कई बार रन बनने का सिलसिला रोकने के लिए स्पिन गेंदबाजी का कमाल दिखाया है। बोर्डर के खेल की एक और सबसे खास बात यह रही है कि टैस्टक्रिकेट हो या एक दिवसीय क्रिकेट—बोर्डर ने दोनों में ही सफलता पाई है। अगर आने वाले सालों में वह बल्लेबाजी में और भी नए-नए रिकार्ड बनाए तो किसी को ज्यादा हैरानी नहीं होनी चाहिए। बोर्डर की उम्र अभी लगभग 33 वर्ष है और वह जिस तरह से बल्लेबाजी कर रहा है—उससे गावसकर के कई रिकार्डों के लिए खतरा बना हुआ है मियांदाद के साथ बोर्डर पर ही गावसकर के रिकार्ड तोड़ने की उम्मीदें टिकी हुई हैं।

1978-79 में बोर्डर ने इंग्लैंड के विरुद्ध अपना पहला टैस्ट मैच खेला। सिडनी में दूसरे टैस्ट में टर्न लेते विकेट पर इंग्लैंड के स्पिनर गजब ढा रहे थे तो उसने अविजित 45 और अविजित 60 का स्कोर बनाए। 1979-80 की भारत यात्रा में 6 टैस्टों में 421 रन बनाकर ने अपने आप को मध्य क्रम के एक भरोसे का बल्लेबाज साबित किया। पैकर की क्रिकेट में शामिल हुए आस्ट्रेलिया खिलाड़ियों की वापसी का बोर्डर की स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ा और बोर्डर टीम का एक नियमित खिलाड़ी बना रहा। 1979-80 के सत्र में बोर्डर ने लगभग 28 सप्ताह में 15 टैस्ट खेले थे। इसी दौरान उसने पाकिस्तान के विरुद्ध लाहौर टैस्ट में दोनों पारियों में 150 तक पहुंचने का शानदार रिकार्ड बनाया।

1981 में इंग्लैंड में खेली गई एशेज शृंखला ने उसे विश्व स्तर का बल्लेबाज साबित किया। इंग्लिश क्रिकेट में काउंटी और लीग क्रिकेट में खेल कर उसने जो अनुभव हासिल किया था वह उसके काम आया और वह दोनों टीमों में से सबसे बेहतरीन खिलाड़ी साबित हुआ। 59.22 औसत में उसने 533 रन बनाए। ओल्ड ट्रेफर्ड टैस्ट की दूसरी पारी में तो उसने खास तौर पर एक ऐतिहासिक पारी खेली थी। एक उंगली टूटी होने के बावजूद उसने अविजित 123 रन का स्कोर बनाया। छठे और अगले टैस्ट में उसने फिर से टूटी उंगली के साथ ही बल्लेबाजी की और

अविजित 106 और 84 के स्कोर बनाए। वह इसके बावजूद आस्ट्रेलिया को एशेज न जिता सका लेकिन 1982-83 में जब आस्ट्रेलिया ने एशेज जीती जो उसमें बोर्डर की बल्लेबाजी खास कर आखिरी टैस्टों में, खूब काम आई।

बोर्डर की बल्लेबाजी की एक ओर खास बात यह रही है कि उसने नाजुक मौकों पर टीम को हार से बचाने की कोशिश में बहुत बेहतरीन बल्लेबाजी की। 1983-84 मे जब वैस्टइंडीज के तेज गेंदबाज खतरनाक गेंदबाजी से कहर बरपा रहे थे तो बोर्डर ने बड़ी हिम्मत से उनका मुकाबला किया। 5 टैस्टों में 74.73 औसत से 521 रन बनाए।

अपनी ये खूबी कप्तान बनने के बाद उसने और भी ज्यादा दिखाई। 1986 की इंग्लैंड में खेली एशेज शृंखला मे 66.33 औसत से 597 रन बनाए। 1985-86 के आस्ट्रेलियाई सत्र मे उसने भारत और न्यूजीलैंड के विरुद्ध 6 टैस्टों मे 477 रन बनाए।

आस्ट्रेलियाई क्रिकेट का हाल के सालों का दौर हमेशा एलन बोर्डर के युग के रूप में याद किया जाएगा।

(टैस्ट रिकार्ड : 94 टेस्टो में 22 शतकों की सहायता से 7343 रन बना चुके है। सर्वाधिक स्कोर 205 रन)

एशियाई खेल

भारतीय खेल-कूद के इतिहास में 4 मार्च, 1951 का दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन माना जाता है। इस दिन नई दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में पहली बार एशियाई खेलो का आयोजन किया गया था। भारत को एशियाई खेलों का जन्मदाता कहा जाता है। इसी अवसर पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने खिलाड़ियों को यह मन्त्र दिया था—'खेल को खेल की भावना से खेलो।'

पहले एशियाई खेलों में एशिया के 11 देशो के खिलाड़ी मैदान में उपस्थित हुए। भाग लेनेवाले देशों के नाम इस प्रकार थे—

अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया, ईरान, जापान, मलाया, फिलीपीन्स, थाईलैंड और भारत। नेपाल की ओर से केवल एक प्रेक्षक (प्रतिनिधि) ने भाग लिया था।

जैसे ही इन देशों के खिलाड़ी मैदान में परेड करते हुए आए, ग्यारह सो कबूतर और हजारों की संख्या में गुब्बारे आकाश में उड़ाए गए। सारा आकाश रंग-बिरंगे गुब्बारो से भर गया। इस इन्द्रधनुषी सौन्दर्य ने उस समारोह की शोभा को चार चाद लगा दिए गए। प्रतियोगिता के आठ दिन कितनी जल्दी-जल्दी बीते अब केवल इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

पहली एशियाई खेल-प्रतियोगिता में जापान को सबसे अधिक स्वर्ण पदक

प्राप्त हुए। इसके बाद भारत का स्थान रहा। एशियाई खेलों में मित्रता, सद्भाव और शान्ति स्थापना के उद्देश्य से एशियाई खेलों का आयोजन किया गया था। इससे खेल-कूद के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। लोकप्रियता की दृष्टि से अब ओलम्पिक खेलों और राष्ट्रकुल खेलों के बाद एशियाई खेलों का ही नम्बर आता है। ओलम्पिक और राष्ट्रकुल की तरह एशियाई खेलो का आयोजन हर चार साल बाद किया जाता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि विभिन्न खेलों में भाग लेने वाले खिलाडी अपने सभी भेद-भाव (रंग-भेद और जाति-भेद) भुलाकर स्वस्थ मुकाबले के लिए मैदान में इकट्ठे होते है। दुनिया के खिलाड़ियों, तुम धन्य हो, जो लड़ाई के मैदान को खेल के मैदान मे बदल देते हो।

प्रथम एशियाई खेल (1951)

स्थान : नई दिल्ली (भारत)

आयोजन तिथि : 4 मार्च से 11 मार्च, 1951 तक।

स्पर्धाएं : 57

भाग लेने वाले खिलाड़ी : 491

आयोजित किए गए खेल : (6), एथलेटिक्स, वेटलिफ्टिंग, तैराकी, साइकिलिंग, फुटबाल और बास्केटबाल।

भाग लेने वाले देश : (11), भारत, जापान, फिलीपीस, अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाईलैंड, नेपाल और ईरान।

पदक पाने वाले देश : जापान 24-20-15, भारत 15-16-20, ईरान 8-7-2, सिंगापुर 5-7-2, फिलीपीस 5-6-8, श्रीलंका 0-1-0, इंडोनेशिया 0-0-5 और बर्मा 0-0-3।

भारत के लिए पदक जीतने वाले खिलाड़ी—स्वर्ण पदक (15) एथलेटिक्स (10) : लेवी पिंटो (100 व 200 मीटर दौड़), रणजीत सिंह (800 मी० दौड़) निक्का सिंह (1500 मी० दौड़), छोटा सिंह (मैराथन), मक्खन सिंह (चक्का फेंक), मदनलाल (गोला फेंक), महावीर प्रसाद (10 किमी० चाल), बख्तावर सिंह (50 किमी० चाल) और भारतीय टीम (4×400 मी० रिले)।

तैराकी (4) : सचिन नाग (100 मी० फ्रीस्टाइल), के० पी० ठक्कर (स्प्रिंग बोर्ड व प्लेट फार्म डाइविंग) और भारतीय टीम (वाटर पोलो)।

फुटबाल : भारतीय टीम।

रजत पदक 16 :

एथलेटिक्स (12) : गैब्रियल (200 मी०), बख्शी (400 मी०), कुलवंत सिंह (800 मी०), प्रीतम सिंह (5000 मी०), तेजा सिंह (400 मी० बाधा दौड़), भारतीय टीम (4×100 मी० रिले), बलदेव सिंह (लंबी कूद), पारसा

सिंह (भाला फेंक), सोमनाथ (गोला फेंक), बी० दास (50 मी० चाल)।

महिला : रोशन मिस्त्री (100 मी०), भारतीय टीम (4×100 रिले)

तैराकी (2) : कांतिशाह (100 मी० बैक स्ट्रोक), आशुदत्त (स्प्रिंग बोर्ड)।

साइकिलिंग : भारतीय टीम (400 मी० टीम परसयूट)।

वेटलिफ्टिंग : ईश्वर राव (मिडिल हैवीवेट)।

कांस्य पदक (21) :

एथलेटिक्स (12) : गोविन्द सिंह (400 मी०), अजीत सिंह (3000 मी० स्टीपलचेज), गुरुबचन सिंह (10,000 मी० दौड़), किशन सिंह (तारगोला फेंक), खुर्शीद अहमद (डिकेथलान), केसर सिंह (10 किमी० चाल), सूरत सिंह (मैराथन)।

महिला : मेरी डिसूजा (200 मी०) सिमोस (ऊंची कूद), गाम्लेट (लंबी कूद), बारबरा वेब्सटर (गोला व भाला फेंक)।

तैराकी (5) : निगमवाला (200 मी० ब्रेस्ट स्ट्रोक) विमलचंद्र (400 मी० फ्रीस्टाइल), भारतीय टीम (4×100 मी० फ्रीस्टाइल रिले एवं 3×100 मी० मेडले रिले) और टी० टी० दंड (प्लेटफार्म)।

साइकिलिंग (3) : वायसेक (1000 मी० टाइम ट्रायल), आर० आर० नोवेल (1000 मी० स्प्रिंट)।

वेटलिफ्टिंग : डी० आर० गोपाल (हैवीवेट)।

द्वितीय एशियाई खेल (1954)

स्थान : मनीला (फिलीपीस)।

तिथि : 1 मई से 9 मई 1954 तक

स्पर्धाएं : 77

खिलाड़ी : 1021

खेल (8) : एथलेटिक्स, कुश्ती, मुक्केबाजी, तैराकी, निशानेबाजी, वेटलिफ्टिंग, फुटबाल और बास्केटबाल।

देश (18) : भारत, जापान, फिलीपीस, अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड, हांगकांग, इजरायल, द० कोरिया, मलेशिया, पाकिस्तान, उत्तर बोर्नियो, वियतनाम, कंपूचिया और ताइवान।

पदक जीतने वाले देश : जापान 38-36-25, फिलीपीस 14-11-13, द० कोरिया, 8-7-6 पाकिस्तान 5-6-2, भारत 5-4-8, ताइवान 2-4-7, इजरायल 2-2-3, बर्मा 2-0-1, सिंगापुर 1-4-4, श्रीलंका 0-1-1, अफगानिस्तान 0-1-0, इंडोनेशिया 0-0-3, हांगकांग 0-0-1।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी

स्वर्ण पदक (5)

एथलेटिक्स (5) : सरवन सिंह (110 मी० बाधा दौड़), अजीत सिंह (ऊंची कूद), प्रद्युमन सिंह (चक्का फेंक व गोला फेंक) महिला भारतीय टीम (4 × 100 मी० रिले)।

रजत पदक (4)

एथलेटिक्स (3) : जोगिंदर सिंह (400 मी०), सोहन सिंह (800 मी०), भारतीय टीम (4 × 100 मी० रिले), कुश्ती खालिद (लाइटवेट)।

कांस्य पदक (8)

एथलेटिक्स (6) : गैब्रियल (100 मी० दौड़), डालूराम (3000 स्टीपलचेज), ग्रिन (डिकेथलान), ईश्वर सिंह (गोला फेंक), डालू राम (500 मी० दौड़), महिला-सी ब्राउन (100 मी०)।

तैराकी : केपी ठक्कर (प्लेटफार्म डाइविंग)।

कुश्ती : सोहन सिंह (मिडिलवेट)।

तृतीय एशियाई खेल (1958)

स्थान : टोक्यो (जापान)

तिथि : 24 मई से 1 जून, 1958 तक।

स्पर्धाएं : 111

खिलाड़ी : 1422

खेल : (13) टेनिस, टेबल टेनिस, हाकी, वालीबाल, साइकिलिंग, कुश्ती, मुक्केबाजी, निशानेबाजी, एथलेटिक्स, वेटलिफ्टिंग, तैराकी, फुटबाल, बास्केटबाल

देश : (20) भारत, जापान, फिलीपीस, अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड, हांगकांग, इजरायल, द० कोरिया, मलेशिया, पाकिस्तान, वियतनाम, कंपूचिया, ताइवान, नेपाल, ईरान और बोनियो।

पदक जीतने वाले देश · जापान 68-41-27, फिलीपीस 8-19-22, द० कोरिया 8-7-12, ईरान 7-14-11, ताइवान 6-11-17, पाकिस्तान 6-11-9, भारत 5-4-4, वियतनाम 2-0-4, बर्मा 1-2-1, सिंगापुर 1-1-1, थाइलैंड 0-1-3, हांगकांग 0-1-1 इंडोनेशिया 0-0-6, मलेशिया 0-0-3, इजराइल 0-0-2 श्रीलंका 0-0-1।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी :

स्वर्ण पदक (5)

एथलेटिक्स (5) : मिल्खासिंह (200 व 400 मी०) मोहिंदर सिंह (त्रिकूद), बलकार सिंह (चक्का फेंक), प्रद्युमन सिंह (गोला फेंक)।

स्वर्ण पदक एशिया के सर्वश्रेष्ठ मुक्केबाज का।

फुटबाल : भारतीय टीम।

रजत पदक (13)

एथलेटिक्स (5) मक्खनसिंह (400 मी०), दलजीतसिंह (800 मी०) अमृतपाल (1500 मी०), ईरानी (गोला फेंक), प्रद्युमन सिंह (चक्का फेंक)।

कुश्ती (6) : उदयचन्द (ग्रीको रोमन, लाइटवेट), सज्जन सिंह (ग्रीको रोमन, मिडिलवेट), मारुति माने (ग्रीको रोमन, हैवीवेट), उदयचंद (लाइटवेट, फ्रीस्टाइल), मज्जनसिंह (फ्रीस्टाइल, मिडिलवेट), गणपत अंदालकर (फ्रीस्टाइल लाइट हैवीवेट।

हाकी : भारतीय टीम।

वालीबाल : भारतीय पुरुष टीम।

कांस्य पदक (10)

एथलेटिक्स (4) : अमृतपाल (800 मी०), त्रिलोकसिंह (5000 मी०), जोगिंदर सिंह (गोला फेंक)।

महिला : एलिजाबेथ डेवेन पोर्ट (भाला फेंक)।

मुक्केबाजी (2) डिसूजा (लाइट मिडिलवेट), सुरेंद्र सरकार (मिडिलवेट)।

कुश्ती (3) : लक्ष्मीनारायण पांडे (ग्रीको रोमन, वेल्टर वेट), नारायण धीम (ग्रीको रोमन, बेंटमवेट), मालवा (फ्रीस्टाइल, फ्लाइवेट)।

निशानेबाजी : हरिचरण (स्मालबोर राइफल, प्रोन पोजीशन)।

पांचवें एशियाई खेल (1966)

स्थान : बैंकाक (थाइलैंड)

तिथि : 9 से 20 दिसंबर, 1966 तक

स्पर्धाएं : 140

खिलाड़ी : 1945

खेल : (14) बैडमिंटन, लान टेनिस, टेबल टेनिस, हाकी, वालीबाल, साइकिलिंग, कुश्ती, मुक्केबाजी, निशानेबाजी, वेटलिफ्टिंग, एथलेटिक्स, तैराकी, फुटबाल, बास्केटबाल।

देश : (18) जापान, द० कोरिया, थाइलैंड, मलेशिया, भारत, ईरान, इंडोनेशिया, ताइवान, इजरायल, फिलीपीन्स, पाकिस्तान, बर्मा, सिंगापुर, दक्षिण वियतनाम, श्रीलंका, नेपाल, हांगकांग, अफगानिस्तान।

पदक जीतने वाले देश : जापान 78-53-33, दक्षिण कोरिया 12-18-21, थाइलैंड 12-14-11, मलेशिया 7-5-6, भारत 7-3-11, ईरान 6-8-15, इंडोनेशिया 5-5-13, ताइवान 5-4-10, इजरायल 3-5-3, फिलीपींस 2-15-25,

पाकिस्तान 2-4-2, वर्मा 1-0-4, सिंगापुर 0-5-7, दक्षिण वियतनाम 0-1-1, श्रीलंका 0-0-6, हांगकांग 0-1-1।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी

स्वर्ण पदक (7)

एथलेटिक्स (5) : अजमेर सिंह (400 मी०), बी० एस० बरुआ (800 मी०), भीमसिंह (ऊंची कूद), प्रवीण कुमार (चक्का फेंक), जोगिंदर सिंह (गोला फेंक)।

मुक्केबाज : हवासिंह (हेवीवेट)।

हाकी : भारतीय टीम

रजत पदक (3)

एथलेटिक्स : अजमेर सिंह (200 मी०)

कुश्ती : विश्वनाथ सिंह (लाइटवेट, फ्रीस्टाइल)।

मुक्केबाजी : नामदेव मोरे (बेंटमवेट)।

कांस्य पदक (11)

एथलेटिक्स (5) : प्रवीण कुमार (तार गोला)। बलकार सिंह (चक्का फेंक), लाभसिंह (त्रिकूद)।

महिला : मनजीत वालिया (80 मी० बाधा दौड़), क्रिस्टायनी (लंबी कूद)।

कुश्ती (5) रामाराव सावले (फ्लाइवेट), विशंभर सिंह (बेंटमवेट), उदय चंद (लाइटवेट), सज्जन सिंह (वेल्टरवेट), भीम सिंह (हैवीवेट)—सभी फ्री स्टाइल।

टेनिस : शिव प्रसाद मिश्रा व बी० धवन (पुरुष युगल)।

छठे एशियाई खेल (1970)

स्थान : बैंकाक (थाइलैंड)

तिथि : 9 से 20 दिसम्बर 1970 तक।

स्पर्धाएं : 135

खिलाड़ी : 1752

खेल (13): एथलेटिक्स, तैराकी, कुश्ती, वेटलिफ्टिंग, साइकिलिंग, निशानेबाजी, मुक्केबाजी, बैडमिंटन, फुटबाल, हाकी, बास्केटबाल, वालीबाल, पाल नौका।

देश (18) : जापान, दक्षिण कोरिया, थाइलैंड, ईरान, भारत, इजराइल, मलेशिया, इंडोनेशिया, बर्मा, श्रीलंका, फिलीपीस, ताइवान, पाकिस्तान, सिंगापुर, कंपूचिया, दक्षिण वियतनाम, हांगकांग, नेपाल।

पदक जीतने वाले देश : जापान 74-47-23, दक्षिण कोरिया 18-13-23,

थाइलैंड 9-17-13, ईरान 9-7-7, भारत 6-9-10, इसरायल 6-6-5, मलेशिया 5-1-7 इंडोनेशिया 2-3-10, वर्मा 3-2-7, श्रीलंका 2-2-0, फिलीपीस 1-12-12 ताइवान 1-5-12, पाकिस्तान 1-2-7, सिंगापुर 0-6-9, कंपूचिया 0-2-3, दक्षिण वियतनाम 0-0-2।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी

स्वर्ण पदक (6)

एथलेटिक्स (4) : मोहिंदर सिंह गिल (त्रिकूद), प्रवीण कुमार (चक्का फेंक), जोगिंदर सिंह (गोला फेंक)।

महिला : कमलजीत संधु (400 मी०)।

कुश्ती : चंदगीराम (फ्री स्टाइल, हेवीवेट)

मुक्केबाजी : हवा सिंह (हैवीवेट)

रजत पदक : (9)

एथलेटिक्स (5) : श्रीराम सिंह (800 मी०), एडवर्ड सिक्वेरा (5000 मी०) भारतीय टीम (4 × 400 मी० रिले), लाभसिंह (त्रिकूद), एमजी शेट्टी (डिकेथलान)।

कुश्ती : जीतसिंह (फ्री स्टाइल, लाइट हैवीवेट)

मुक्केबाजी : मुत्तुस्वामी वेणु (फेदरवेट)

वाटरपोलो : भारतीय टीम

हाकी : भारतीय टीम

कांस्य पदक (10)

एथलेटिक्स (5) : सुच्चा सिंह (400 मी०), गुरमेज सिंह (3000 मी० स्टीपलचेज), भीम सिंह (ऊंची कूद), लाभ सिंह (लंबी कूद), भारतीय टीम (4 × 400 मी० रिले)।

कुश्ती : (3) ओम प्रकाश (लाइट वेट), मुख्तयार सिंह (वेल्टर वेट), नेत्रपाल सिंह (मिडलवेट) सभी फ्री स्टाइल।

पाल नौका : ए कंट्रैक्टर (एंटर प्राइज क्लास)।

फुटबाल : भारतीय टीम।

सातवें एशियाई खेल (1974)

स्थान : तेहरान (ईरान)

तिथि : 1 से 16 सितंबर (1974) तक

स्पर्धाएं : 200

खिलाड़ी : 2869

खेल : (16) जिमनास्टिक, एथलेटिक्स, तैराकी, कुश्ती, वेटलिफ्टिंग,

साइकिलिंग, निशानेबाजी, मुक्केबाजी, बैडमिंटन, टेनिस, टेबल टेनिस, हाकी, फुटबाल, बास्केटबाल, वालीबाल और तलवारबाजी।

देश : (25) जापान, ईरान, चीन, दक्षिण कोरिया, उत्तर कोरिया, इजरायल, भारत, थाइलैंड, इंडोनेशिया, मंगोलिया, पाकिस्तान, श्रीलंका, सिंगापुर बर्मा, इराक, फिलीपीन्स, मलेशिया, कुवैत, अफगानिस्तान, हांगकांग, लेबनान, सीरिया, बहरीन, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात।

पदक जीतने वाले देश : जापान 75-50-51, ईरान 36-28-17, चीन 33-28-28, दक्षिण कोरिया 16-26-15, उत्तर कोरिया, 15-14-17, इजरायल 7-4-8, भारत 4-12-12, थाइलैंड 4-2-8, इंडोनेशिया 3-4-4, मंगोलिया 2-5-8, पाकिस्तान 2-0-9, श्रीलंका 2-0-0, सिंगापुर 1-3-7, बर्मा 1-2-3, ईरान 1-0-5, फिलीपीन्स 0-2-12, मलेशिया 0-1-4, कुवैत 0-1-0, अफगानिस्तान 0-0-1।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी

स्वर्ण पदक (4) :

एथलेटिक्स (4) : श्रीराम सिंह (800 मी०), शिवनाथ सिंह (5000 मी०) टी० सी० योनाहन (लंबी कूद), विजय सिंह चौहान (डिकेथलान)।

रजत पदक : (12)

एथलेटिक्स (7) : गुरमेज सिंह (3000 मी० स्टीपलचेज), शिवनाथ सिंह (10000 मी०) मोहिंदर सिंह गिल (त्रिकूद), भारतीय टीम (4 × 400 मी० रिले), प्रवीण कुमार (चक्का फेंक), बहादुर सिंह (गोला फेंक), निर्मल सिंह (तार गोला फेंक)।

मुक्केबाजी : (3) मेजर सिंह (लाइटवेट) मेहताबसिंह (लाइट हैवी वेट), टी० थूरी (हैवी वेट)।

निशानेबाजी : डा० कर्णसिंह (ट्रैप शूटिंग)

हाकी : भारतीय टीम

कांस्य पदक (12)

एथलेटिक्स (4) : लेहबर सिंह (400 मी० बाधा दौड़), सतीश पिल्लै (लंबी कूद), जगराज सिंह (गोला फेंक), सुरेश बाबू (डिकेथलान)।

कुश्ती : (4) : सुखचैनसिंह (हैवीवेट-ग्रीको रोमन व फ्री स्टाइल) सतबीर सिंह (फ्री स्टाइल, फ्लाइवेट), सतपाल सिंह (फ्री, मिडिलवेट)।

मुक्केबाजी : (2) चंद्रनारायण (फ्लाइवेट), मुत्तुस्वामी वेणु (लाइटवेट)।

निशानेबाजी : डा० कर्णी सिंह (पुरुष)

आठवें एशियाई खेल (1978)

स्थान : बैंकाक (थाइलैंड)

तिथि : 9 से 20 दिसंबर, 1978 तक

स्पर्धाएं : 200

खिलाड़ी : 3000

खेल : (19) तीरंदाजी, बाउलिंग, पाल नौका, कुश्ती, जिमनास्टिक, एथलेटिक्स, तैराकी, वेटलिफ्टिंग, साइक्लिंग, निशानेबाजी, मुक्केबाजी, बैडमिंटन टेनिस, टेबल टेनिस, हाकी, फुटबाल, बास्केटबाल, तलवारबाजी, वालीबाल।

देश : (25) जापान, चीन, दक्षिण कोरिया, उत्तर कोरिया, थाइलैंड, भारत, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, फिलीपींस, इराक, सिंगापुर, मलेशिया, मंगोलिया, लेबनान, सीरिया, बर्मा, हांगकांग, श्रीलंका, कुवैत, कतर, बहरीन, नेपाल, बांग्लादेश, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात।

पदक जीतने वाले देश : जापान 70-59-49, चीन 51-54-46, द० कोरिया 18-20-31, उ० कोरिया 15-13-15, भारत 11-11-6, थाइलैंड 11-12-19, इंडोनेशिया 8-7-18, पाकिस्तान 4-4-9, फिलीपींस 4-4-6, इराक 2-4-6, सिंगापुर 2-1-4, मलेशिया 2-1-3, मंगोलिया 1-3-5, लेबनान 1-1-0, सीरिया 1-0-0, बर्मा 0-3-3, हांगकांग 0-2-3, श्रीलंका 0-0-2, कुवैत 0-0-1।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी :

स्वर्ण पदक : (11)

एथलेटिक्स (8) : ज्ञानशेखरन (200 मी०), श्रीराम सिंह (800 मी०), हरीचंद (5000 व 1000 मी०), हाकम सिंह (20 किमी० चाल), सुरेश बाबू (लंबी कूद), बहादुर सिंह (गोला फेंक)।

महिला : गीता जुत्शी (800 मी०)।

कुश्ती : (2) राजेंद्र सिंह (फ्रीस्टाइल, वेल्टर वेट) करतार सिंह (फ्री स्टाइल, लाइट हैवीवेट)।

निशानेबाजी : रणधीर सिंह (ट्रैप शूटिंग)।

रजत पदक : (11)

एथलेटिक्स (7) : ज्ञान शेखरन (100 मी०), उदय प्रभु (400 मी०), गोपाल सैनी (3000 मी० स्टीपलचेज दौड़), भारतीय टीम (4×400 मी० रिले)।

महिला : गीता जुत्शी (1500 मी०), एंजेल मेरी जोजेफ (पेंटाथलान व लंबी कूद)।

कुश्ती : सतपाल (मिडल हैवीवेट-फ्री स्टाइल)।

मुक्केबाजी : बृज मोहन (हैवीवेट)।

पाल नौका : भारतीय टीम (एंटर प्राइज क्लास)।

कांस्य पदक : (6)

एथलेटिक्स : (3) मुरली कुट्टन (400 मी०), रतन सिंह (1500 मी०), सतवीर सिंह (110 मी० बाधा दौड़)।

मुक्केबाजी (2) : मइया (लाइट वेल्टर वेट), मुलक सिंह (लाइट मिडल वेट)।

टेनिस (2) : चिरदीप मुखर्जी (पुरुष एकल) चिरदीप मुखर्जी व श्याम मिनोत्रा (पुरुष युगल)।

नवें एशियाई खेल (1982)

स्थान : नई दिल्ली (भारत)

तिथि : 19 नवंबर से 4 दिसंबर तक 1982

स्पर्धाएं : 196

खिलाड़ी 3447

खेल (21) : हैंडबाल, घुड़दौड़, गोल्फ, नौकायन, पाल नौका, तीरंदाजी, जिमनास्टिक, एथलेटिक्स, तैराकी, वेटलिफ्टिंग, कुश्ती, साइकिलिंग, निशानेबाजी, मुक्केबाजी, बैडमिंटन, टेनिस, टेबल टेनिस, हाकी, बास्केटबाल, वालीबाल, फुटबाल।

देश (33) : अफगानिस्तान, इंडोनेशिया, इराक, ईरान, ओमान, कतर, कुवैत, चीन, दक्षिण यमन, उत्तर यमन, जापान, थाइलैंड, नेपाल, पाकिस्तान, फिलीपींस, बर्मा, बहरीन, बंगलादेश, भारत, मंगोलिया, मलेशिया, मालदीव, लाओस, लेबनान, वियतनाम, श्रीलंका, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, सिंगापुर, सीरिया, उत्तर कोरिया, दक्षिण कोरिया, हांगकांग।

पदक जीतने वाले देश : चीन 61-51-41, जापान 57-52-44, दक्षिण कोरिया 28-28-37, उत्तर कोरिया 17-19-20, भारत 13-19-25, इंडोनेशिया 4-4-7, ईरान 4-4-4, पाकिस्तान 2-3-5, मंगोलिया 3-3-1, फिलीपींस 2-3-9, इराक 2-3-4, थाइलैंड 1-5-4, कुवैत 1-3-3, सीरिया 1-1-1, मलेशिया 1-0-3, सिंगापुर 1-0-2, लेबनान 0-1-0, अफगानिस्तान 0-1-0, हांगकांग 0-0-1, वियतनाम 0-0-1, बहरीन 0-0-1, कतर 0-0-1 सऊदी अरब 0-0-1।

पदक जीतने वाले भारतीय खिलाड़ी

स्वर्ण पदक (13)

एथलेटिक्स (4) : चार्ल्स बोरोमियो (800 मी०) चांद राम (20 किमी०

चाग), बहादुर सिंह (गोला फेंक), महिला : एमडी वालम्मा (400 मी० बाधा दौड़)।

घुड़सवारी (3) : भारतीय टीम (टीम थ्री डे इवेंट), रघुवीर सिंह व्यक्तिगत (थ्री डे इवेंट), आर० एस० बरार (टेंट पेगिंग)।

गोल्फ (2) : लक्ष्मण सिंह (व्यक्तिगत), भारतीय टीम।

पाल नौका : भारतीय टीम (फायरबॉल क्लास)।

मुक्केबाजी : कौर सिंह (हैवीवेट)

कुश्ती : सतपाल सिंह (हैवीवेट-फ्रीस्टाइल)।

हाकी : भारतीय महिला टीम।

रजत पदक (19) :

एथलेटिक्स (9) : के० के० प्रेमचंद्रन (400 मी०), गोपाल सैनी (3000 मी० स्टीपलचेज), कुलदीप सिंह (चक्का फेंक)।

महिला : गीता जुत्शी (800 व 1500 मी०), पीटी ऊषा (100 व 200 मी०), भारतीय टीम (4 × 400 मी० रिले) मर्सी मैथ्यूज कुट्टन (लंबीकूद)।

निशानेबाजी (2): शरद चौहान (25 मी० स्टैंडर्ड पिस्टल), भारतीय टीम (ट्रैप-शूटिंग)।

मुक्केबाजी (2) : राजेंद्र कुमार (मिडलवेट), गिरवर सिंह (लाइट हैवीवेट)

कुश्ती : करतार सिंह (लाइट वेट-फ्री स्टाइल)।

पाल नौका : भारतीय टीम (एंटर प्राइज क्लास)।

घुड़सवारी : जी० एम० खान (थ्री डे इवेंट, व्यक्तिगत)।

गोल्फ : राजीव मेहता (व्यक्तिगत)।

टेनिस : भारतीय पुरुष टीम।

हाकी : भारतीय पुरुष टीम।

कांस्य पदक : (25)

एथलेटिक्स (8): बलविंदर सिंह (गोला फेंक), गुरतेज सिंह (भाला फेंक), बालासुब्रमण्यम (त्रिकूद), प्रवीन जौली (110 मी० बाधा दौड़), सुरेश यादव (1500 मी०), राजकुमार (5000 मी०), सीताराम (मैराथन)।

महिला : पद्मिनी थामस (400 मी०)।

बैडमिंटन : सैयद मोदी (पुरुष एकल), एल० डीसा व प्रदीप गंधे (पुरुष युगल), एल० डीसा व कंवल ठाकुर सिंह (मिश्रित युगल), पुरुष व महिला टीमें।

मुक्केबाजी (3) : जसलाल प्रधान (लाइटवेट), चेनदा मछैया (वेल्टरवेट) मलूक सिंह (लाइट मिडलवेट)।

कुश्ती : अशोक कुमार (फ्रीस्टाइल, बैंटम वेट), राजिंदर सिंह (फ्रीस्टाइल, सुपर हैवीवेट)।

भारोत्तोलन (2) : ज्ञान सिंह चीमा (हैवीवेट), तारा सिंह (मिडल वेट)।

निशानेबाजी : रंधीर सिंह (ट्रैप-शूटिंग)।

पाल नौका : सी० आर० प्रदीपक (ओके डिंगी क्लास)।

नौकायन : भारतीय टीम (काक्सड पेयर्स)।

वाटरपोलो : भारतीय टीम।

घुड़सवारी : प्रहलाद सिंह (थ्री डे इवेंट, व्यक्तिगत)।

दसवें एशियाई खेल (सियोल 1986)

सियोल में हुए दसवें एशियाई खेलों में भारत की पी० टी० ऊषा ने एक साथ 4 स्वर्ण पदक जीतकर भारतीय खेल प्रेमियों का सिर गर्व से ऊंचा कर दिया। एशिया की नयी महाशक्ति के रूप में कोरिया प्रकाश में आया।

भारत के लिए एक मात्र पुरुषों का स्वर्ण पदक करतार सिंह ने कुश्ती में प्राप्त किया।

सियोल 1986 की पदक तालिका

	स्वर्ण	रजत	कांस्य	कुल
चीन	94	82	46	222
दक्षिण कोरिया	93	55	76	224
जापान	58	76	77	211
ईरान	6	6	10	22
भारत	5	9	23	37
फिलीपीन	4	5	[illegible]	18
थाईदेश	3	10	13	26
पाकिस्तान	2	3	4	9
इंडोनेशिया	1	5	14	20
हांगकांग	1	1	3	5
कतर	1	0	3	4
लेबनान	1	0	1	2
बहरीन	1	0	1	2
मलेशिया	0	5	5	10
इराक	0	5	[illegible]	7

चाल), बहादुर सिंह (गोला फेंक), महिला : एमडी वालसम्मा (400 मी० बाधा दौड़)।

घुड़सवारी (3) : भारतीय टीम (टीम थ्री डे इवेंट), रघुवीर सिंह व्यक्तिगत (थ्री डे इवेंट), आर० एस० बरार (टेट पेगिंग)।

गोल्फ (2) : लक्ष्मण सिंह (व्यक्तिगत), भारतीय टीम।

पाल नौका : भारतीय टीम (फायरवॉल क्लास)।

मुक्केबाजी : कौर सिंह (हैवीवेट)

कुश्ती : सतपाल सिंह (हैवीवेट-फ्रीस्टाइल)।

हाकी : भारतीय महिला टीम।

रजत पदक (19) :

एथलेटिक्स (9) : के० के० प्रेमचंद्रन (400 मी०), गोपाल सैनी (3000 मी० स्टीपलचेज), कुलदीप सिंह (चक्का फेंक)।

महिला : गीता जुत्शी (800 व 1500 मी०), पीटी ऊषा (100 व 200 मी०), भारतीय टीम (4 × 400 मी० रिले) मर्सी मैथ्यूज कुट्टन (लंबीकूद)।

निशानेबाजी (2): शरद चौहान (25 मी० स्टैंडर्ड पिस्टल), भारतीय टीम (ट्रैप-शूटिंग)।

मुक्केबाजी (2) : राजेंद्र कुमार (मिडलवेट), गिरधर सिंह (लाइट हैवीवेट)

कुश्ती : करतार सिंह (लाइट वेट-फ्री स्टाइल)।

पाल नौका : भारतीय टीम (एंटर प्राइज क्लास)।

घुड़सवारी : जी० एम० खान (थ्री डे इवेंट, व्यक्तिगत)।

गोल्फ : राजीव मेहता (व्यक्तिगत)।

टेनिस : भारतीय पुरुष टीम।

हाकी : भारतीय पुरुष टीम।

कांस्य पदक : (25)

एथलेटिक्स (8): बलविंदर सिंह (गोला फेंक), गुरतेज सिंह (भाला फेंक), बालासुब्रमण्यम (त्रिकूद), प्रवीन जोली (110 मी० बाधा दौड़), सुरेश यादव (1500 मी०), राजकुमार (5000 मी०), सीताराम (मैराथन)।

महिला : पद्मिनी थामस (400 मी०)।

बैडमिंटन : सैयद मोदी (पुरुष एकल), एल० डीसा व प्रदीप गंधे (पुरुष युगल), एल० डीसा व कंवल ठाकुर सिंह (मिश्रित युगल), पुरुष व महिला टीमें।

मुक्केबाजी (3) : जसलाल प्रधान (लाइटवेट), चेनंदा मछैया (वेल्टरवेट) मलूक सिंह (लाइट मिडलवेट)।

कुश्ती : अशोक कुमार (फ्रीस्टाइल, बैंटम वेट), राजिंदर सिंह (फ्रीस्टाइल, सुपर हैवीवेट)।

भारोत्तोलन (2) : ज्ञान सिंह चीमा (हैवीवेट), तारा सिंह (मिडल वेट)।

निशानेबाजी : रंधीर सिंह (ट्रैप-शूटिंग)।

पाल नौका : सी० आर० प्रदीपक (ओके डिंगी क्लास)।

नौकायन : भारतीय टीम (काक्सड पेयर्स)।

वाटरपोलो : भारतीय टीम।

घुड़सवारी : प्रहलाद सिंह (थ्री डे इवेंट, व्यक्तिगत)।

दसवें एशियाई खेल (सियोल 1986)

सियोल में हुए दसवें एशियाई खेलों में भारत की पी० टी० ऊषा ने एक साथ 4 स्वर्ण पदक जीतकर भारतीय खेल प्रेमियों का सिर गर्व से ऊंचा कर दिया। एशिया की नयी महाशक्ति के रूप में कोरिया प्रकाश में आया।

भारत के लिए एक मात्र पुरुषों का स्वर्ण पदक करतार सिंह ने कुश्ती में प्राप्त किया।

सियोल 1986 की पदक तालिका

	स्वर्ण	रजत	कांस्य	कुल
चीन	94	82	46	222
दक्षिण कोरिया	93	55	76	224
जापान	58	76	77	211
ईरान	6	6	10	22
भारत	5	9	23	37
फिलीपीस	4	5	9	18
थाईदेश	3	10	13	26
पाकिस्तान	2	3	4	9
इंडोनेशिया	1	5	14	20
हांगकांग	1	1	3	5
कतर	1	0	3	4
लेबनान	1	0	1	2
बहरीन	1	0	1	2
मलेशिया	0	5	5	10
इराक	0	5	2	7

जार्डन	0	3	1	4
कुवैत	0	1	8	9
सिंगापुर	0	1	4	5
नेपाल	0	0	8	8
बंगलादेश	0	0	1	1
ओमान	0	0	1	1

ओरिले, विलियम जे०

(न्यू साउथवेल्स)—जन्म 20 दिसम्बर, 1905। 'टाइगर' के नाम से प्रसिद्ध। 1931 से 1946 के बीच खेले 27 टेस्टों में 144 विकेट लिए। एक ओवर की सभी गेदें अलग-अलग तरह की फेंकने में माहिर।

ओलम्पिक

ईसा पूर्व 776 में ग्रीस के एलिस प्रदेश के एक छोटे से नगर ओलंपिया में एक दौड़ प्रतियोगिता हुई। इस दौड़ में एलिस प्रदेश का कोरोवस युवक जीता था। इसे जैतून की पत्तियों से बने मुकुट से सम्मानित किया गया था।

इसीको पहला ओलम्पिक खेल माना जाता है। इन खेलों की शुरुआत के संबंध में कई कहानियां कही जाती हैं। उनमें एक यह भी है कि एलिस प्रदेश के राजा सिरनोमस की सुंदर बेटी हिप्पोडेमिया से विवाह करने के लिए अनेक युवक आए। लेकिन क्रूर राजा ने यह शर्त रखी कि राजकुमारी का विवाह उसी से किया जाएगा जो उसका अपहरण कर उसे अपने रथ में बिठा कर पीछा करते हुए मेरे रथ से बच कर निकल जाएगा। लेकिन यह भी शर्त थी कि अगर वह युवक पकड़ लिया जाएगा तो राजा स्वयं अपने हाथों से उसे मौत के घाट उतार देगा।

उस सुंदर राजकुमारी के लिए कई युवक अपनी जान गवा बैठे थे। अंत में पेल्पोस नामक एक युवक ने राजा के सारथि से दोस्ती कर ली और उसे धन का लालच दे कर अपनी ओर मिला लिया। उसने सारथि को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि दौड़ से पूर्व ही वह राजा के रथ की धुरी कमजोर कर देगा।

पेल्पोस राजकुमारी को अपने रथ में बिठा कर तेजी से चल दिया। राजा ने भी अपने रथ द्वारा उस का पीछा किया लेकिन कुछ समय बाद ही राजा के रथ का पहिया धुरी के टूटने से निकल गया और रथ के नीचे दब कर राजा की मृत्यु हो गई।

तब पेल्पोस ने उस राजकुमारी से धूमधाम से विवाह कर लिया और उस क्रूर राजा पर विजय पाने की खुशी में उसने इन खेलों का प्रचलन किया।

ओलम्पिक विश्व का सबसे भव्य और सबसे रंगीन खेल समारोह है। हर

चार साल बाद विभिन्न देशों के खिलाड़ी अपने खेल कौशल की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए इन खेलों में भाग लेते हैं।

ओलम्पिक मे सबसे अधिक महत्त्व एथलेटिक प्रतियोगिताओं का होता है, यद्यपि इन मे तैराकी, घुड़सवारी, नौका दौड़, हॉकी तथा फुटबाल आदि खेलों के मुकाबले भी होते हैं।

ओलम्पिक खेल बहुत पुराने खेल माने जाते हैं। यह संसार की सबसे बड़ी खेल प्रतियोगिता है।

14वीं शताब्दी पूर्व रोम के सम्राट थियोडोसियस ने इन खेलों को बंद करवा दिया था। बाद में इन खेलों को आरंभ करने का श्रेय मिला फ्रांस के पियरे द कूबरतां नामक पुरुष को। कूबरतां के मन में यह विचार आया कि विभिन्न देशों में परस्पर सद्भावना पैदा करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि खेलों के मैत्रीपूर्ण मुकाबलों के लिए उनको एकत्र किया जाय। कूबरतां के अथक प्रयास का ही फल था कि ग्रीस में ओलम्पिक खेलों मैदान का आयोजन संभव हुआ। इन खेलो को पुनः 6 अप्रैल 1896 को एथेंस के नव-निर्मित स्टेडियम मे ग्रीस के राजा जार्ज प्रथम ने आरंभ किया।

यही पहला ओलम्पिक माना जाता है। सन 1916 में छठे व 1940 मे 12वें तथा 1944 मे 13वें ओलपिक खेल विश्व युद्धों के कारण न हो सके।

ओलम्पिक खेल और भारत

आम तौर पर यह समझा जाता है कि भारत ने पहली बार 1920 में एंटवर्प ओलम्पिक खेलो में भाग लिया, लेकिन कुछ लोगों का यह भी कहना है कि 1900 मे पेरिस ओलम्पिक प्रतियोगिता में भारत के दौड़ाक को रजत पदक प्राप्त हुआ था।

ओलम्पिक खेलों में भारत को आज जो मान सम्मान प्राप्त है, उसका श्रेय केवल हाकी के खेल को ही दिया जा सकता है। 1928 मे एम्सटरडम मे हुए ओलम्पिक खेलो में भारत को पहली बार हाकी खेल में स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। तब से लेकर 1956 तक भारत हाकी के खेल मे स्वर्ण पदक प्राप्त करता रहा। 1960 मे रोम ओलम्पिक खेलो के फाइनल मे भारत पाकिस्तान से हार गया। इन्ही ओलम्पिक खेलों मे भारत के मिल्खा सिंह को 400 मीटर के फासले की दौड़ में चौथा स्थान प्राप्त हुआ था। 1964 में पहली बार एशिया ओलम्पिक खेलो का आयोजन हुआ। तोक्यो में हुए अठारहवें ओलम्पिक खेलों मे भारत ने हाकी के खेल में फिर विश्व विजेता का पद प्राप्त किया, मगर 1968 मे मैक्सिको ओलम्पिक खेलों में भारत को हाकी मे केवल कास्य पदक ही प्राप्त हुआ।

एक थे स्कूल मास्टर।

वह फ्रांस के रहने वाले थे। उनका नाम था—बरेन पियर द कार्वटिन।

कार्वटिन मामूली स्कूल मास्टर नहीं थे। वे इस बात से बहुत दुखी थे कि विश्व के देशों में राजनीति और व्यापार के क्षेत्रो मे शत्रुता और कटुता बढती जा रही है और वे आपस में मिल-जुलकर काम करने की जगह, एक दूसरे को नीचा दिखाने मे ज्यादा दिलचस्पी लेते है। वे इस बात से भी बहुत दुखी थे कि युवाजन शारीरिक श्रम की बजाय मशीनो पर अधिक निर्भर रहने लगा है।

बहुत सोच-विचार करके वे इस निश्चय पर पहुचे कि यदि यूनान में प्राचीन काल में होने वाले ओलम्पिक खेलो को दुबारा शुरू किया जाये तो विश्व के युवको मे खेलों के प्रति रुचि तो पैदा होगी ही, बल्कि उनमें 'खेलों मे जीतने की अपेक्षा उनमे भाग लेना बेहतर है' की भावना भी जागृत हो सकेगी।

कार्बटिन के मित्रों ने उन्हे समझाया, किस चक्कर में पड़े हो। प्राचीन ओलम्पिक खेलों को दुबारा शुरू करने का इरादा 1829 में फ्रांस की सरकार ने, 1875 में जर्मनी की सरकार ने और 1859 मे यूनान की सरकार ने किया था, पर असफलता ही उनके हाथ लगी। तुम अकेले क्या कर लोगे ?'

पर कार्वटिन पर मित्रों की इस सलाह का कोई प्रभाव नही पड़ा। उनकी दृढ़ता और संकल्प-शक्ति का अंत न था। ओलम्पिक खेलों को फिर से शुरू करने के अपने सपने को पूराने करने के लिए वे दुनिया भर में घूमे, बड़े-बड़े लोगों से मिले। और अंत मे उनका यह अनूठा सपना पूरा हुआ।

1896 में यूनान में ही प्रथम ओलम्पिक खेलों का आयोजन हुआ। 1928 में 'ओलम्पिक-खेलो के पिता' कार्वटिन को विश्वशांति के लिए किये गये प्रयासो के लिए नोबल पुरस्कार मिला।

ओलम्पिक खेलो के आदर्शों के बारे में उनका कहना था, "ओलम्पिक खेल दुनियाभर के खिलाड़ियों मे मैत्री और स्नेह [illegible] के अलावा उन्हें बेहतर प्रदर्शनों के लिए [illegible]।

ओलम्पिक मशाल

ओलम्पिक मशाल बहुत ही पवित्र चीज मानी जाती है। यह मशाल एथेंस के प्राचीन खेल के मैदान मे सूर्य की किरणों की सहायता से जलायी जाती है और वहां उस स्थान पर ले जायी जाती है, जहां ओलम्पिक खेल शुरू होते है। इस मशाल को वहां तक पहुंचने में कई महीने लग जाते हैं।

भाईचारे और मैत्री के प्रतीक ओलिंपिक, जिसे 6 अप्रैल 1896 को एथेंस के ओलिंपिया नगर में पुन: आयोजित कर पियरे द कार्बटिन ने जिस तरह अपने विश्व-शांति और बंधुत्व के सपनों को साकार करने का प्रयास किया था, वह अनेक राजनीतिक, आर्थिक तथा युद्ध की विभीषिकाओं के बावजूद आज भी विश्व के लिए खेलों का महाकुंभ बना हुआ है।

ओलम्पिक खेलों से भारत का विधिवत नाता स्वतन्त्रता के बाद 1948 लंदन ओलम्पिक से जुड़ा। किन्तु भारतीय खिलाड़ी ब्रिटिश यूनियन जैक के नीचे 1920 एंटवर्प ओलम्पिक मे ही भाग लेने लगे थे। एंग्लो-इंडियन युवक जी० प्रिचार्ड पहला भारतीय था, जिसने 1900 के पेरिस ओलम्पिक में भाग लिया था और 200 मीटर की दौड़ में रजत पदक जीतने में सफल रहा था। 110 मी० बाधा दौड़ में उसे पांचवां स्थान मिला था।

जो भी हो, किंतु इतना निश्चित है कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय खिलाड़ियों को ओलम्पिक में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित नही किया। यह तो सर दोराब जी जमशेद जी टाटा की खेलों के प्रति गहरी दिलचस्पी थी, कि उनके अथक परिश्रम से 1920 एंटवर्प के सातवें ओलिंपिक खेल समारोह मे भारत को पहली बार अधिकृत रूप से भाग लेने का अवसर मिला। इस खर्चे को स्वर्गीय जमशेद जी टाटा ने ही वहन किया।

1920 में भारत के चार खिलाड़ियों ने भाग लिया था, जिसमें दो एथलीट तथा दो पहलवान थे। दोनों एथलीटों पी० सी० बनर्जी (400 मीटर हीट्स में चौथा स्थान), पी० एफ० चौगुले ने (10 हजार मी० तथा मैराथन में 10वां तथा 19वां स्थान) प्राप्त किया। दोनों पहलवान अप्पा नावेल और गणपत शिंदे कोई सफलता न हासिल कर सके।

1924 में पेरिस ओलम्पिक मे जाने वाली भारतीय टीम का खर्चा भी जमशेद जी टाटा ने उठाया। इस बार भारत की ओर से आठ एथलीटों—टी० के० पिट, जे० एस० हाना, डब्ल्यू० आर० हिडले, एम० वी० वेंकट रमन स्वामी, पाल सिंह, सी० के० लक्ष्मण, एम० आर० हिंगे ने दौड़ तथा दलीपसिंह ने लंबी कूद में भाग लिया, किन्तु किसी भी प्रतियोगी को इस ओलम्पिक में कोई भी सफलता नही मिल पायी।

1928 एमस्टरडम में भारतीय हाकी टीम ने पिन्नीगर तथा जयपाल सिंह के

नेतृत्व में भाग लिया। इस ओलम्पिक में आठ एथलीट 100मी० व 200 मी० दौड़ में आर० वर्न, 200 मी० व 400 मी० दौड़ में जे० एस० हुाना, 800 मी० दौड़ मे जे० मर्फी, 1500 मी० दौड़ मे गुरबचनसिंह, 10 हजार मी० दौड़ में डी० वी० चह्वाण, 110 व 400 बाधा दौड़ में अब्दुल हमीद तथा लंबी कूद में दलीपसिंह ने भाग लिया। हाकी में भारत नीदरलेंड को पराजित कर पहला स्वर्ण पदक पाने में सफल हुआ किन्तु एथलीटो ने काफी निराश किया। लंबी कूद मे दलीप सिंह अवश्य आठवां स्थान प्राप्त करने में सफल हुए। शेष सभी प्रतियोगी प्रथम चक्र में ही प्रतियोगिता मे बाहर हो गये। यही स्थिति कुश्ती में भी रही।

1932 लास एंजल्स में भारतीय हाकी टीम ने दुबारा लालशाह बुखारी के नेतृत्व मे ओलम्पिक स्वर्ण पदक जीता। अन्य स्पर्धाओं मे लगभग सभी प्रतियोगियों ने निराश किया। मारवीन सटन ने 100 मी० दौड़ तथा आर० एन० वर्नियस ने 200 मी० दौड़ मे भाग लिया, किंतु प्रथम चक्र में ही वे हार गये। *तिकड़ी कूद में एम० सी० धवन को 14वां स्थान मिला। तैराकी मे भी एक प्रतियोगी* एन० सी० मल्लिने ने भाग लिया किंतु उसे भी कोई सफलता नही मिली।

1936 बर्लिन ओलम्पिक भी भारतीय हाकी के लिए सफलता का सूचक रहा। मेजर ध्यानचंद के नेतृत्व में भारतीय टीम ने पांचों मैच जीतकर भारतीय हाकी को स्वर्ण शिखर पर पहुंचा दिया। इस ओलम्पिक में भारतीय हाकी टीम ने कुल 38 गोल किए और एक गोल खाया, जो अब तक का रिकार्ड है। चार एथलीटो ने भाग लिया किंतु प्रथम चक्र मे वे आगे न बढ सके सी० एस० ए० स्वामी मैराथन में दौड़े किंतु उसे पूरा करने में 3 घं० 10: 44 से० लिया जो ओलम्पिक रिकार्ड से काफी नीचे था। भारोत्तोलन में भारत ने पहली बार भाग लिया किंतु सफलता नहीं मिली। यही स्थिति तैराकी की भी रही।

1948 लंदन ओलम्पिक में पहली बार स्वतंत्र भारत की 41 सदस्यीय टीम ने हाकी, एथलेटिक, कुश्ती, मुक्केबाजी तथा भारोत्तोलन में भाग लिया। किशनलाल के नेतृत्व में भारतीय हाकी टीम पुनः स्वर्ण पदक अर्जित करने में सफल हुई। किंतु अंतरराष्ट्रीय अनुभव के अभाव में कुश्ती में भारतीय पहलवानों से निराशा ही मिली। सिर्फ के० डी० जाधव ने कुछ साहस दिखाकर नौवां स्थान प्राप्त किया। हेनरी रिवेलो ने तिकडी कूद मे भाग लिया पर सफल न हुए। छोटासिंह मैराथन में तो दौड़े पर उसे बीच मे ही छोड दिया। 50 किलोमीटर पैदल चाल में साधूसिंह योग्यता स्तर तक भी नही पहुंच पाये। प्रतियोगिता मे गये सात मुक्केबाजों ने भी निराश किया। भारोत्तोलन मे डी० पी० मणि ने भाग लिया किंतु अनुभव की कमी से उन्हें भी सफलता नही मिली।

सन 1952 हेलिंसिकी (फिनलैंड)

1952 हेलिंसिकी ओलम्पिक में पहली बार 6 पुरुष एथलीटों के साथ दो महिला एथलीटों मेरी डिसूजा तथा नीलिमा ने भाग लिया। लेवी पिंटो 100 मी० दौड़ में सेमीफाइनल तक पहुंच सके। सोहन सिंह 800 मी० दौड़ में प्रथम हीट मे दूसरे तथा सेमीफाइनल में छठे स्थान पर रहे। गुलजारा सिंह ने 3000 मी० स्टीपलचेज, सूरत सिंह ने मैराथन, मेंहगासिंह ने ऊंची कूद में भाग लिया, पर वे पहले ही चक्र में बाहर हो गये।

भारत के जाधव ने कुश्ती के बेंटमवेट वर्ग में कांस्य पदक प्राप्त किया। इसी नगर मे रहने वाले महान खिलाड़ी पावो नूरमी द्वारा ओलम्पिक ज्योति प्रज्वलित की गई। 'हेंलेंस अवार्ड' विजेता के० डी० सिंह के नेतृत्व मे भारत ने लगातार पांचवीं बार हॉकी का स्वर्ण पदक प्राप्त किया। चेकोस्लोवाकिया के एमिल जातोपेक ने 10 हजार मीटर एवं मेराथन दौड़ तथा 5 हजार मीटर दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। फुटबॉल में हंगरी ने यूगोस्लाविया को 3-0 से हराया।

सन् 1956 मेलबोर्न (ऑस्ट्रेलिया)

सोवियत संघ के सारवलिन ने जिमनॉस्टिक के पोमेल अर्थात साइड हॉर्स मे स्वर्ण पदक प्राप्त किया। बलवीरसिंह के नेतृत्व में भारत ने लगातार छठी बार हॉकी का स्वर्ण प्राप्त किया। अमेरिका की मैक कार्मिक ने स्प्रिंग बोर्ड एवं प्लेटफॉर्म गोताखोरी मे लगातार दूसरी बार स्वर्ण पदक प्राप्त कर पहली महिला एथलीट बनने का गौरव प्राप्त किया। रूस की लेतीनीना ने जिमनॉस्टिक्स मे तीन स्वर्ण पदक जीतकर अद्भुत सफलता प्राप्त की। हंगरी की केलेटी ने भी तीन स्वर्ण पदक जीते। अमेरिका के चार्ल्स ड्यूमोज ने सात फुट ऊंचा कूदकर नया रिकार्ड बनाया। रोजर बैनिस्टर ने एक मील की दूरी चार मिनट से भी कम समय में पूरी की। रूस के ब्लादीमीर ने 10 हजार एवं 5 हजार मीटर की दौड़ में स्वर्ण प्राप्त किया। साठ फुट से अधिक दूरी तक गोला फेंककर अमेरिका के पेरी ओब्रायन ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

सन् 1960 रोम (इटली)

रोम सम्राट थियोडोसियस के आदेशानुसार ओलम्पिक ज्योति बुझा देने के 1566 वर्ष बाद 15 अगस्त सन् 1960 को पुनः प्रज्ज्वलित की गई। यूगोस्लाविया प्रथम बार फुटबॉल विजेता बना। बत्तीस वर्ष तक एकाधिकार बनाए रखने के बाद क्लाडियस के नेतृत्व में भारत को हॉकी का स्वर्ण पदक खोना पड़ा। पहली बार अमेरिकी एथलीटों की सर्वोपरिता समाप्त हुई और रूस ने उन्हें काफी पीछे छोड़

दिया। अमेरिका के बोस्टन ने 56 फुट पौने आठ इंच कूदकर जेसी ओवंस का 24 वर्ष पुराना कीर्तिमान तोड़ दिया।

सन 1964 तोकियो (जापान)

अट्ठारहवें ओलम्पिक खेल पहली बार एशिया में आयोजित किए गए। सोवियत संघ के ही इवानोन ने नौकायन में लगातार तीसरी बार स्वर्णपदक जीतने का श्रेय प्राप्त किया। जूडो खेल को यहीं मान्यता प्राप्त हुई। इथियोपिया के विलक्षण धावक अबेबे बिकिला ने मैराथन दौड़ में लगातार दूसरी बार स्वर्ण पदक जीतकर अद्वितीय सफलता प्राप्त की। इस खेल की सुंदरता के लिए जापानियों ने अरबों रुपए खर्च किए। न्यूजीलैंड के अल ओर्टर ने लगातार तीसरी बार चक्का फेंकने में सफलता प्राप्त की। चरणजीतसिंह के नेतृत्व में भारत ने हॉकी में पाकिस्तान को पराजित कर रोम की पराजय का बदला ले लिया। हंगरी चेकोस्लोवाकिया को 2-1 से हराकर फुटबॉल विजेता बना। ऑस्ट्रेलिया की डॉन फ्रेजर ने फ्री स्टाइल में लगातार तीसरी सफलता प्राप्त की।

सन् 1968 मैक्सिको नगर (मैक्सिको)

समुद्र तल से 7 हजार 347 फुट की ऊंचाई पर बसे मैक्सिको नगर में उन्नीसवें ओलम्पिक खेलों का आयोजन बड़ा विवादास्पद रहा। ओलम्पिक में 112 देशों के 6 हजार 96 प्रतियोगियों ने भाग लिया। फुटबॉल में हंगरी ने बुल्गारिया को 4-1 से परास्त किया। हॉकी का स्वर्ण पाक को, रजत ऑस्ट्रेलिया को तथा कांस्य भारत को प्राप्त हुआ। अमेरिका के बॉब बीमन ने 29 फुट 3/4 इंच कूद लगाकर अद्वितीय सफलता प्राप्त की। जापान ने कुश्ती प्रतियोगिता में 8 में से 4 स्वर्ण पदक प्राप्त किए।

सन् 1972 म्युनिख (पश्चिमी जर्मनी)

बीसवें ओलम्पिक खेलों का शुभारंभ 26 अगस्त सन् 1972 को हुआ। 123 देशों के लगभग 11 हजार खिलाडियों ने भाग लिया। फुटबॉल में लुंबास्की के नेतृत्व में पोलैंड ने हंगरी को हराकर ओलम्पिक फुटबॉल में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। हॉकी में पश्चिमी जर्मनी से पराजित होने पर पाकिस्तानी खिलाडी दुर्व्यवहार करने लगे, जिससे उनकी कड़ी आलोचना हुई। कैलिफोर्निया के तैराक मार्क स्पिट्ज ने सात स्वर्ण पदक जीतकर अद्वितीय सफलता प्राप्त की। बास्केट-बॉल में सोवियत संघ ने अमेरिका को 51-50 से हराकर उसकी सतत् सफलता का लंबा दौर समाप्त किया। 4 सितंबर को अरब छापामारों ने इसराइली टीम को बंधक बनाकर 5 सदस्यों को गोली मार दी।

सन् 1976 मांट्रियल (कनाडा)

इक्कीसवें ओलिम्पिक खेल मांट्रियल में 17 जुलाई से 1 अगस्त 1976 तक आयोजित किए गए। महारानी एलिजाबेथ द्वारा उद्घाटन किया गया। सोवियत संघ ने सर्वाधिक 44 स्वर्ण पदक प्राप्त किए। हॉकी पहली बार कृत्रिम घास के मैदान पर खेली गई। हॉकी का स्वर्ण न्यूजीलैंड को प्राप्त हुआ। बॉस्केटबॉल प्रतियोगिता अमेरिका ने जीती। पूर्वी जर्मनी पोलैंड को 3-1 से हराकर फुटबॉल विजेता बना। क्यूबा के ही धावक अल्बर्टो जांतोरेना ने लगातार दूसरी बार 400 मीटर एवं 700 मीटर दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। वॉलीबॉल में पोलैंड ने सोवियत संघ को परास्त किया, जबकि महिला वर्ग में जापान ने सोवियत संघ को परास्त किया। सौ मीटर की दौड़ में त्रिनिनाद की हैजले क्राफोर्ड ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया था।

सन् 1980 मॉस्को (सोवियत संघ)

बाइसवें ओलिम्पिक खेल सोवियत संघ की राजधानी मॉस्को में 19 जुलाई से 3 अगस्त तक आयोजित किए गए। 80 राष्ट्रों के 5 हजार 923 प्रतियोगियों ने भाग लिया। सोवियत संघ ने सर्वाधिक 80 स्वर्ण पदक प्राप्त किए, जबकि भारत को एकमात्र स्वर्ण पदक हॉकी से प्राप्त हुआ। 16 वर्षों के लंबे अंतराल के बाद भारत ने भास्करन के नेतृत्व में हॉकी में स्पेन को 4-3 से परास्त किया। महिला हॉकी में जिम्बाब्वे ने चेकोस्लोयाकिया को परास्त किया। चेकोस्लोवाकिया पूर्वी जर्मनी को 1-0 से हराकर फुटबॉल विजेता बना। वॉलीबॉल के फाइनल में सोवियत संघ ने बुल्गारिया को 3-1 से परास्त किया। बास्केटबॉल का स्वर्ण यूगोस्लाविया को प्राप्त हुआ। उसने फाइनल में इटली को परास्त किया। सोवियत संघ के अलेग्जेंडर दिथ्यातिन ने जिमनास्टिक्स में आठ पदक प्राप्त किए। तैराकी में पूर्वी जर्मनी ने 13 में से 11 में स्वर्ण पदक प्राप्त किए। क्यूबा के मुक्केबाज स्टीवेंसन ने हैवीवेट में लगातार तीसरी बार स्वर्ण पदक प्राप्त किया। अमेरिका ने इस ओलिम्पिक का बहिष्कार किया।

लास एजिलिस, 1984 बायकाट का सिलसिला बना रहा

बायकाट का सिलसिला लास एजिलिस में भी जारी रहा। इस बार खेलों से अलग रहने की बारी सोवियत ब्लाक के देशों की थी। इस तरह लगातार दो ओलंपिक की चोटी के देशों के बायकाट से यह साबित नहीं हो सका कि खेलों की सबसे बड़ी शक्ति कौन-सी है।

हंगरी	11	6	6	23
बुल्गारिया	10	12	13	35
रूमानिया	7	11	6	24
फ्रांस	6	4	6	16
इटली	6	4	4	14
चीन	5	11	12	28
ब्रिटेन	5	10	9	24
केन्या	5	2	2	9
जापान	4	3	7	14
आस्ट्रेलिया	3	6	5	14
यूगोस्लाविया	3	4	5	12
चेकोस्लोवाकिया	3	3	2	8
न्यूजीलैंड	3	2	8	13
कनाडा	3	2	5	10
पोलैंड	2	5	9	16
नार्वे	2	3	0	5
नीदरलैंड	2	2	5	9
डेनमार्क	2	1	1	4
ब्राजील	1	1	3	5
फिनलैंड	1	1	2	4
स्पेन	1	1	2	4
तुर्की	1	1	0	2
मोरक्को	1	0	2	3
आस्ट्रिया	1	0	0	1
पुर्तगाल	1	0	0	1
सूरीनाम	1	0	0	1
स्वीडन	0	4	7	11
स्विटजरलैंड	0	2	2	4
जमैका	0	2	0	2
अर्जेंटीना	0	1	1	2
चिली	0	1	0	1
कोस्टारीका	0	1	0	1
इंडोनेशिया	0	1	0	1

ईरान	0	1	0	1
नीदरलंड एंटीलेस	0	1	0	1
पेरू	0	1	0	1
सेनेगल	0	1	0	1
वर्जिन आइलैंड	0	1	0	1
बेल्जियम	0	2	0	2
मेक्सिको	0	0	2	2
कोलंबिया	0	0	1	1
जिबोती	0	0	1	1
ग्रीस	0	0	1	1
मंगोलिया	0	0	1	1
पाकिस्तान	0	0	1	1
फिलीपीन	0	0	1	1
थाईलैंड	0	0	1	1
कुल पदक	241	234	264	739

सियोल में आयोजित बहुचर्चित 24वें ओलम्पिक खेल सफलतापूर्वक समाप्त हो गए। अन्य ओलम्पिक खेलों के मुकाबले में यह अब तक के सबसे विशाल खेल रहे। इसमें 160 देशों के लगभग 13हजार से अधिक खिलाड़ियों ने भाग लिया। 9 देश ऐसे भी थे जिन्होंने इन खेलों मे प्रथम बार पदार्पण किया।

इस ओलम्पिक में भी, अन्य ओलम्पिक खेलों की ही भांति, पुराने रिकार्ड टूटे, नए स्थापित हुए। जो रिकार्ड अब बने हैं वह भविष्य मे टूटेंगे। यह सब सिद्ध करता है कि खिलाड़ियों ने कठोर अभ्यास किया और दृढ़ इच्छा शक्ति प्रदर्शित की।

यूं तो कुल 237 स्वर्ण पदक दिए गए, किन्तु कुछ खिलाड़ियों ने ऐसा प्रदर्शन किया, जो लाख भुलाए जाने पर भी न भूला जा सकेगा। इसमें जर्मनी की 22 वर्षीय महिला तैराक क्रिस्टीन ओटो का प्रदर्शन है। इस तैराक ने 6 प्रतिस्पर्धाओं में रिकार्ड तोड़कर स्वर्ण पदक जीते। 6 स्वर्ण पदक प्राप्त करना अपने-आपको खेल की दुनिया में अमर बना देना है। इससे पूर्व किसी महिला खिलाड़ी ने पाच से अधिक स्वर्ण पदक प्राप्त नही किए। दो-तीन पदक जीतने वाले खिलाड़ी तो भरे पड़े हैं। जिमनास्टिक मे रूमानिया की खिलाड़ी सिलीवास ने 3 स्वर्ण पदक प्राप्त किए। रूस की एक महिला सुगुनोवा ने भी जिमनास्टिक मे 3 स्वर्ण पदक प्राप्त किए।

स्थिति अत्यन्त निराशाजनक रही। भारत ने ग्यारह खेलों में भाग लिया, परंतु एक पदक भी प्राप्त नहीं कर सका।

अगामी ओलम्पिक खेल 25वें होंगे। यह स्पेन के सबसे बड़े शहर बारसीलोन में 1992 में आयोजित किए जाएंगे।

ओल्डफील्ड विलियम एल्बर्ट

(न्यू साउथवेल्स)—जन्म 9 सितम्बर, 1894। मृत्यु 10 अगस्त, 1976। आस्ट्रेलिया के सर्वोत्तम विकेटकीपरों में। कुल 130 खिलाड़ी आउट किए। इनसे अधिक खिलाड़ी केवल इवान्स, ग्राउट, येट, नाट तथा मार्श ने। 1925 के मेलबोर्न-टेस्ट की प्रथम पारी में इंग्लैंड के पांच खिलाड़ी आउट किए। (विश्व रिकार्ड)। 1928 के ब्रिस्बेन-टेस्ट की प्रथम पारी में इंग्लैंड के 521 स्कोर में ओल्डफील्ड ने एक भी बाई का रन नहीं दिया। इंग्लैंड की यात्रा की प्रथम चार टेस्ट-पारियों में 1932 रन बने, इनमें बाई के सिर्फ 3 रन थे।

क

1975-76 में उन्होंने रणजी ट्राफी मैचों में हिस्सा लिया और उसके बाद 1978 में पाकिस्तान का दौरा करने वाली भारतीय टीम में उन्हें शामिल कर लिया गया। कपिलदेव ने अब तक 95 टेस्ट मैच ही खेले हैं। वेस्टइंडीज के विरुद्ध दिल्ली में खेले गए पांचवें टेस्ट में (यह कपिलदेव का आठवां टेस्ट था) कपिलदेव ने जीवन का पहला शतक बनाया। 94 रन बनाने के बाद उन्होंने चौका मारा और उसके बाद छक्का मारकर उन्होंने अपने जीवन का शतक पूरा किया। भारतीय खिलाड़ियों में सबसे छोटी उम्र में शतक बनाने का गौरव कपिलदेव को ही प्राप्त है। कपिलदेव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जितनी तेज गति से गेंद फेंकते हैं उतनी ही तेज गति से रन भी बनाते हैं। अब तक का उनका सर्वश्रेष्ठ स्कोर 126 रन (और आउट नहीं) है।

भारत के हरफनमौला कपिलदेव भारत के एकमात्र ऐसे खिलाड़ी हैं जो टेस्ट जीवन में दोहरा गौरव (3,996 रन और 360 विकेट लेने का) प्राप्त कर चुके हैं।

आज भी उसकी बल्लेबाजी में किसी भी गेंदबाज की धज्जियां उड़ाने का दम है। लेकिन गेंदबाजी में उसकी असफलता मैच-दर-मैच बढ़ती जा रही है।

कबड्डी—कबड्डी का खेल दो टोलियों (टीमों) के बीच खेला जाता है। दोनों टीमों में बराबर-बराबर खिलाड़ी होते हैं। इस खेल में एक टोली में ठीक कितने खिलाड़ी होने चाहिए इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है। एक टीम में चार से लेकर 16 खिलाड़ी तक हो सकते हैं। भारत में कुछ क्षेत्रों में यह खेल गोलाकार रूप में और कुछ क्षेत्रों में आयताकार रूप में खेला जाता है। खेल शुरू होने से पहले कप्तान टॉस करता है और टॉस जीतने वाली टीम को स्थान चुनने का अधिकार होता है। इसके बाद दोनों टीमें बारी-बारी से अपना एक खिलाड़ी अपनी प्रतिद्वन्द्वी टोली में भेजती हैं जो पाले (सीमा-रेखा) से सांस भरने के बाद 'कबड्डी-कबड्डी' कहता हुआ दूसरी टोली में जाता है। और यदि वह 'कबड्डी-कबड्डी' कहते हुए विरोधी टीम के किसी एक खिलाड़ी को हाथ लगा देता है तो दूसरे खिलाड़ी एक ओर हट जाते हैं और केवल वही खिलाड़ी उसको पकड़ने, रोकने या उसकी सांस तोड़ने की कोशिश करता है। यदि 'कबड्डी-कबड्डी' कहने वाले खिलाड़ी ने विरोधी खिलाड़ी से अपने आपको छुड़ा लिया और बिना अपनी सांस तोड़ पाले को पार कर लिया तो उसे एक अंक मिल जाता है और यदि इसी धर-पकड़ में उसकी सांस टूट जाती है तो दूसरी टीम को एक अंक मिल जाता है।

कुश्ती की तरह कबड्डी का भी भारतीय खेलों से सदियों पुराना नाता है। ताकत और स्फूर्ति के खेल कबड्डी की भी उत्पत्ति प्राचीन काल से ही मानी जाती है, जब मनुष्य गुटों में पशु प्रकृति के लुटेरों से अपना बचाव करने अथवा

स्थिति अत्यन्त निराशाजनक रही। भारत ने ग्यारह खेलों में भाग लिया, परंतु एक पदक भी प्राप्त नहीं कर सका।

आगामी ओलम्पिक खेल 25वें होंगे। यह स्पेन के सबसे बड़े शहर बारसीलोन में 1992 में आयोजित किए जाएंगे।

ओल्डफील्ड विलियम एल्बर्ट

(न्यू साउथवेल्स)—जन्म 9 सितम्बर, 1894। मृत्यु 10 अगस्त, 1976। आस्ट्रेलिया के सर्वोत्तम विकेटकीपरों में। कुल 130 खिलाड़ी आउट किए। इससे अधिक खिलाड़ी केवल इवान्स, ग्राउट, वेट, नाट तथा मार्श ने। 1925 के मेलबोर्न-टेस्ट की प्रथम पारी में इंग्लैंड के पांच खिलाड़ी आउट किए। (विश्व रिकार्ड)। 1928 के ब्रिस्बेन-टेस्ट की प्रथम पारी में इग्लैंड के 521 स्कोर में ओल्डफील्ड ने एक भी बाई का रन नहीं दिया। इंग्लैंड की यात्रा की प्रथम बार टेस्ट-पारियों में 1932 रन बने, इनमें बाई के सिर्फ 3 रन थे।

क

कपिलदेव

आज कपिलदेव की गिनती विश्व के चार सर्वश्रेष्ठ आलराउंडरों में की जाती है। भारतीय क्रिकेट को वर्षों से जिस चीज की तलाश थी वह वर्षों बाद उसे मिली। भारतीय क्रिकेट के बारे में अक्सर यह कहा जाता था कि उसके पास बस तेज गेंदबाजों की कमी है। हरियाणा के कपिलदेव ने इस कमी को यदि पूरी तरह से नहीं तो आंशिक रूप से तो पूरा कर ही दिया है। कपिलदेव आज लोकप्रियता के शिखर पर पहुंच गए हैं। उनका जन्म 6 जनवरी, 1959 को चंडीगढ़ में हुआ। वह शुरू-शुरू में एथलीट थे और अन्तर-स्कूल मुकाबलों में 200 मीटर और 400 मीटर दौड़ में हिस्सा लिया करते थे। लेकिन बाद में उन्होंने क्रिकेट पर ही सारा ध्यान केंद्रित कर दिया। छह फुट से अधिक लम्बे कपिलदेव अपने तीन भाइयों में सबसे छोटे हैं। उनका परिवार भारत-विभाजन के बाद सिरसा में आकर बस गया था (उस समय सिरसा पंजाब का ही अंग था) 1971 में वह हरियाणा स्कूल की ओर से पंजाब के विरुद्ध खेले। बाद में उन्हें उत्तर क्षेत्र स्कूल की टीम में चुन लिया गया।

1975-76 में उन्होंने रणजी ट्राफी मैचों में हिस्सा लिया और उसके बाद 1978 में पाकिस्तान का दौरा करने वाली भारतीय टीम मे उन्हे शामिल कर लिया गया। कपिलदेव ने अब तक 95 टेस्ट मैच ही खेले हैं। वेस्टइंडीज के विरुद्ध दिल्ली में खेले गए पांचवें टेस्ट में (यह कपिलदेव का आठवां टेस्ट था) कपिलदेव ने जीवन का पहला शतक बनाया। 94 रन बनाने के बाद उन्होंने चौका मारा और उसके बाद छक्का मारकर उन्होंने अपने जीवन का शतक पूरा किया। भारतीय खिलाड़ियों मे सबसे छोटी उम्र में शतक बनाने का गौरव कपिलदेव को ही प्राप्त है। कपिलदेव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जितनी तेज गति मे गेंद फेंकते हैं उतनी ही तेज गति से रन भी बनाते हैं। अब तक का उनका सर्वश्रेष्ठ स्कोर 126 रन (और आउट नही) है।

भारत के हरफनमौला कपिलदेव भारत के एकमात्र ऐसे खिलाड़ी हैं जो टेस्ट जीवन में दोहरा गौरव (3,996 रन और 360 विकेट लेने का) प्राप्त कर चुके है।

आज भी उसकी बल्लेबाजी मे किसी भी गेंदबाज की धज्जियां उड़ाने का दम है। लेकिन गेंदबाजी में उसकी असफलता मैच-दर-मैच बढ़ती जा रही है।

कबड्डी—कबड्डी का खेल दो टोलियों (टीमों) के बीच खेला जाता है। दोनों टीमों में बराबर-बराबर खिलाडी होते हैं। इस खेल में एक टोली में ठीक कितने खिलाड़ी होने चाहिए इसकी कोई निश्चित सीमा नही है। एक टीम मे चार से लेकर 16 खिलाड़ी तक हो सकते हैं। भारत मे कुछ क्षेत्रों में यह खेल गोलाकार रूप में और कुछ क्षेत्रों में आयताकार रूप मे खेला जाता है। खेल शुरू होने से पहले कप्तान टॉस करता है और टॉस जीतने वाली टीम को स्थान चुनने का अधिकार होता है। इसके बाद दोनों टीमे बारी-बारी से अपना एक खिलाड़ी अपनी प्रतिद्वन्द्वी टोली में भेजती हैं जो पाले (सीमा-रेखा) से सांस भरने के बाद 'कबड्डी-कबड्डी' कहता हुआ दूसरी टोली में जाता है। और यदि यह 'कबड्डी-कबड्डी' कहते हुए विरोधी टीम के किसी एक खिलाडी को हाथ लगा देता है तो दूसरे खिलाड़ी एक ओर हट जाते हैं और केवल वही खिलाड़ी उसको पकड़ने, रोकने या उसकी सांस तोडने की कोशिश करता है। यदि 'कबड्डी-कबड्डी' कहने वाले खिलाडी ने विरोधी खिलाड़ी से अपने आपको छुड़ा लिया और बिना अपनी सांस तोड़ पाले को पार कर लिया तो उसे एक अंक मिल जाता है और यदि इसी धर-पकड मे उसकी सांस टूट जाती है तो दूसरी टीम को एक अंक मिल जाता है।

कुश्ती की तरह कबड्डी का भी भारतीय खेलों से सदियों पुराना नाता है। ताकत और स्फूर्ति के खेल कबड्डी की भी उत्पत्ति प्राचीन काल से ही मानी जाती है, जब मनुष्य गुटों में पशु प्रकृति के लुटेरों से अपना बचाव करने अथवा

भोजन की तलाश में अकेला या समूहों में जानवरों का शिकार किया करता था। इससे उनमें आक्रमण और रक्षण कला का विस्तार हुआ। ताम्रपत्र से यह पता चलता है कि भगवान कृष्ण भी अपने सहयोगियों के साथ कबड्डी जैसा एक खेल खेला करते थे।

कबड्डी का उद्भाव महाभारत काल से भी मिलता है। उस समय यह खेल एक श्वास के नाम से खेला जाता था। तुकाराम ने अपने साहित्य में इस खेल को 'अभंग' नाम दिया है। इस खेल को विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग नामो से जाना जाता रहा है। बंगाल और बिहार मे हु-डु-डु, तमिलनाडु व कर्नाटक में चडु-गुडु तथा उत्तर प्रदेश में इसे खो-खो के नाम से पुकारा जाता है।

भारत और पाकिस्तान मे तो कबड्डी सर्वत्र लोकप्रिय है। श्रीलका मे इसे गुडु, बांग्ला देश मे हा-डु-डु, थाईलैंड मे थी कब, इंडोनेशिया मे थी चुब, नेपाल मे डो-डो और मलेशिया में चिडु गुडु के नाम से जाना जाता है।

कबड्डी का मैदान 12.50 मीटर लम्बा व 10 मीटर चौड़ा होता है। महिलाओं और 50 किलोग्राम से कम वजन वाले पुरुषों के लिए इसका आकार 11 मीटर × 8 मीटर होता है। खेल के मैदान की लम्बाई में दोनों तरफ एक-एक मीटर चौडी लोबी होती है। मध्य रेखा (मार्च लाइन) के समानांतर दोनो पालों में 3.25 मीटर की दूरी पर 'बोक लाइन' होती है। 50 किलोग्राम से कम पुरुष और महिलाओ के लिए यह 2.50 मीटर होती है।

कमलजीत संधू

1970 में बैंकाक में हुए छठे एशियाई खेलों मे पहली बार एक भारतीय महिला एथलीट ने 400 मीटर की फासले की दौड में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। कमलजीत संधु ने भारतीय एथलेटिक के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया। 400 मीटर की दौड़ का मुकाबला था। दुनिया की सबसे तेज दौड़ने वाली महिला 26 वर्षीया ची चेंग को हराकर आगे निकलने की बात कोई सोच भी नही सकता था। ची चेंग पूरे आत्मविश्वास के साथ मैदान में आई। लम्बे फासले की दौडों में, जैसा कि अक्सर होता है, 200 मीटर के बाद ची चेंग ने जोर मारा और सबको पीछे छोड गई। लेकिन जब केवल मंजिल से 50 मीटर दूर रह गई तो घुटनों मे चोट के कारण गिर गई। उसके बाद भारतीय खिलाडी कमलजीत संधु सबसे आगे निकल गई। उस समय कमलजीत संधु पंजाब विश्वविद्यालय में एम० ए० की छात्रा थी। उनका जन्म 12 अगस्त, 1948 को हुआ। उनके पिता फौज में कर्नल हैं और उन्ही के प्रोत्साहन से कमलजीत संधु को यह प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसके बाद 1971 में पं० जर्मनी की सरकार ने भारत के कुछ एथलीटों को वहा प्रशिक्षण के लिए बुलाया। इनमे से कमलजीत संधु भी

एक थी। वहां पर भी इनका प्रदर्शन बहुत शानदार रहा। एथलेटिक के क्षेत्र में उनकी सेवाओं पर भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' उपाधि से अलंकृत किया है।

करतार सिंह

करतार सिंह अगर सिओल एशियाई खेलों में भाग न लेते, तो शायद एक भी भारतीय पुरुष खिलाड़ी स्वर्ण पदक लेकर न लौटता। फ्री स्टाइल कुश्ती में 100 किलोग्राम वर्ग में बैंकाक एशियाड के स्वर्ण पदक एवं दिल्ली एशियाड के रजत पदक विजेता, पंजाब पुलिस के उप अधीक्षक करतार सिंह ने पाकिस्तान के शाहिद बट को हरा कर कुश्ती का पहला और भारत के लिए तीसरा स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

विरासत में मिली है कुश्ती

अमृतसर जिले के गांव सुरसिंह में करनैल सिंह के घर 7 अक्तूबर, 1953 को जन्मे 24 वर्षीय करतार सिंह का वजन 94 किलोग्राम है और कद पांच फुट 9 इंच। उन्हें 1982-83 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। करतार सिंह का कहना है कि पहलवानी उन्हें विरासत में मिली है। उनके पिता करनैल सिंह छिंजों (पंजाब मे लगनेवाले मेलों) में कुश्ती लडा करते थे। उन्हीं से कुश्ती लड़ना सीखा। करतार सिंह के चार भाई हैं, सभी कुश्ती लड़ते हैं। दो बड़े भाई अब कुश्ती छोड़कर सुरसिंह गाव मे कृषि कार्य करने लगे हैं। छोटे भाई सरवन सिंह पंजाब पुलिस में सब-इंस्पेक्टर हैं और 90 किलोग्राम वजन में राष्ट्रीय स्पर्धा जीत चुके हैं। तीसरे भाई गुरचरण सिंह ढिल्लों तरनतारन में पंजाब खेल विभाग के कुश्ती प्रशिक्षक हैं।

पहलवानी का चाव तो शुरू मे ही था, क्योंकि पिता के साथ छिंजों में जाया करते थे। पहले अपने बड़े भाई अमर सिंह से कुश्ती के दाव-पेंच सीखते थे। 1973 में विश्वविख्यात पहलवान दारा सिंह को अमृतसर के चाटीविंड गेट के सामने घइयोंवाल अखाड़े में पगड़ी बांध गुरु मान लिया। 1974 से गुरु हनुमान के अखाड़े बिरला व्यायामशाला, दिल्ली में कुश्ती का अभ्यास शुरू किया।

सिओल एशियाड में करतार सिंह ने अपनी सभी कुश्तियां जीतीं। पहले दौर में करतार ने जापान के तामोंड होडर को 3 मिनट 5 सेकिंड में और दूसरे दौर मे इराक के करीम इब्राहित को केवल 2 मिनट 25 सेकिंड मे हराया। सेमीफाइनल मे करतार ने ईरान के कोलीन अजीज को अंको के आधार पर 3-1 से हराया और फिर फाइनल मे पाकिस्तानी पहलवान शाहिद भट्ट को भी इसी अन्तर से हराकर करतार ने स्वर्ण पदक पर कब्जा कर लिया। यह भी एक सुखद संयोग है

भोजन की तलाश में अकेला या समूहों में जानवरों का शिकार किया करता था। इससे उनमें आक्रमण और रक्षण कला का विस्तार हुआ। ताम्रपत्र से यह पता चलता है कि भगवान कृष्ण भी अपने सहयोगियों के साथ कबड्डी जैसा एक खेल खेला करते थे।

कबड्डी का उद्‌भाव महाभारत काल से भी मिलता है। उस समय यह खेल एक श्वास के नाम से खेला जाता था। तुकाराम ने अपने साहित्य में इस खेल को 'अभंग' नाम दिया है। इस खेल को विभिन्न प्रदेशों मे अलग-अलग नामों से जाना जाता रहा है। बंगाल और बिहार मे हु-डु-डु, तमिलनाडु व कर्नाटक में चडु-गुडु तथा उत्तर प्रदेश मे इसे ती-ती के नाम से पुकारा जाता है।

भारत और पाकिस्तान मे तो कबड्डी सर्वत्र लोकप्रिय है। श्रीलंका मे इसे गुडु, बांग्ला देश मे हा-डु-डु, थाईलैंड मे थी कब, इंडोनेशिया में थी चुब, नेपाल में डो-डो और मलेशिया में चिडु गुडु के नाम से जाना जाता है।

कबड्डी का मैदान 12.50 मीटर लम्बा व 10 मीटर चौड़ा होता है। महिलाओं और 50 किलोग्राम से कम वजन वाले पुरुषों के लिए इसका आकार 1[illegible] मीटर × 8 मीटर होता है। खेल के मैदान की लम्बाई में दोनों तरफ एक-[illegible] मीटर चौड़ी लोबी होती है। मध्य रेखा (मार्च लाइन) के समानान्तर दोनो [illegible] में 3.25 मीटर की दूरी पर 'बोक लाइन' होती है। 50 किलोग्राम से कम और महिलाओं के लिए यह 2.50 मीटर होती है।

कमलजीत संध

1970 में बैंकाक में हुए छठे एशियाई खेलों में पहली बार ए[illegible] महिला एथलीट ने 400 मीटर की फासले की दौड़ मे स्वर्ण पदक [illegible] कमलजीत संधु ने भारतीय एथलेटिक के इतिहास मे एक स्वर्णिम [illegible] दिया। 400 मीटर की दौड़ का मुकाबला था। दुनिया की सबसे ते[illegible] महिला 26 वर्षीया ची चेंग को हराकर आगे निकलने की बात [illegible] नही सकता था। ची चेंग पूरे आत्मविश्वास के साथ मैदान में अ[illegible] की दौड़ों मे, जैसा कि अक्सर होता है, 200 मीटर के बाद ची [illegible] और सबको पीछे छोड गईं। लेकिन जब केवल मंजिल से 5[illegible] तो घुटनों में चोट के कारण गिर गईं। उसके बाद [illegible] संधु सबसे आगे निकल गईं। उस समय कमलजीत संधु [illegible] एम० ए० की छात्रा थी। उनका जन्म 12 अगस्त, 194[illegible] फौज मे कर्नल हैं और उन्ही के प्रोत्साहन से कमलजीत [illegible] लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसके बाद 1971 मे पं० [illegible] के कुछ एथलीटों को वहां प्रशिक्षण के लिए बुलाया।

के लिए आज तक भी विश्व रिकार्ड माना जाता है। भाग्य ने जिमेंको का साथ दिया, मुझे रजत पदक मिला और नियमानुसार उप-विश्व चैंपियन का खिताब भी। मेरा स्कोर था—300 में से 295 अंक—अमरीका के केन जोंस के विश्व रिकार्ड से दो कम।"

डाक्टर कर्णीसिंह का पहला ओलम्पिक रोम में था। वहां 200 में से 183 निशाने सही लगाकर उन्होंने आठवां स्थान प्राप्त किया। चार वर्ष बाद 1964 में टोकियो ओलम्पिक मे 186/200 पर उनका प्रदर्शन बहुत कमजोर रहा—विश्व में 26वां स्थान। वैसे अधिकतर ऐसा हुआ है कि विश्व चैंपियन भी प्रथम से चालीसवें स्थान तक उठते-गिरते रहते हैं।

1986 में मैक्सिको ओलम्पिक में डाक्टर कर्णीसिंह को दसवां स्थान मिला। उन्हें स्वर्ण पदक विजेता ब्रिटेन के ब्रेथ वेट से केवल चार पाइंट कम मिले।

अपने सर्वश्रेष्ठ रेकार्ड की बात करते हुए डाक्टर कर्णीसिंह ने बताया, "भारत में मेरा राष्ट्रीय कीर्तिमान है 300 में से 299 अंक। जहां तक ओलम्पिक्स का संबंध है, मैक्सिको में मैंने 200 मे से 194 अंक लिए थे—रजत पदक से केवल दो अंक कम। रणधीर सिंह को वहां 14वें स्थान के लिए 'टाई' मिली थी, और उन्होंने 17वां स्थान प्राप्त किया था। रणधीर का 1968 ओलम्पिक में स्कोर था 200 में से 192।

करसन घावरी

जन्म : 28 फरवरी, 1951। बाएं हाथ का कमाल। मध्यम तेज गदबाजी, आक्रामक बल्लेबाजी, सक्षम क्षेत्ररक्षण और आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी स्पिन गेंदबाजी भी। चुस्त युवा आल राउन्डर करसन घावरी श्रेष्ठ प्रदर्शन के बाद भी भारतीय टीम में अपने निश्चित स्थान के लिए संघर्षरत रहे। वह जे० के० केमिकल्स में कार्यरत हैं।

1978-79 में वेस्टइंडीज की टीम ने भारत का दौरा किया था। छह टेस्ट मैचों की इस श्रृंखला में घावरी सबसे सफल गेंदबाज सिद्ध हुए। उनका एक पारी का सबसे अधिक स्कोर 86 रन है। यह रिकार्ड उन्होंने 1979 में बम्बई में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेले गए छठें और अन्तिम टेस्ट में बनाया था। इसके अतिरिक्त 33.54 रनों की औसत से 109 विकेट भी ले चुके हैं।

कराते

कराते की कला जिस तेजी के साथ चारों तरफ फैल रही है उससे इसकी असीम शक्ति का अंदाज सहज ही लगाया जा सकता है। कराते का कठिन अभ्यास मनुष्य को एक ऐसी शारीरिक शक्ति प्रदान करता है जिससे वह बिना किसी

कि करतार सिंह को यह स्वर्ण पदक उनके 34वें जन्म दिन (7 अक्तूबर) से मात्र चार दिन पहले (3 अक्तूबर को मिला।

करतार सिंह को एशियाड में स्वर्ण पदक जीतने पर पंजाब पुलिस में 'डिप्टी सुपरिटेंडेंट' बना दिया गया है। भारत सरकार की खेल नीति के अनुसार करतार को अब एक लाख रुपया मिलेगा। पंजाब के इस शेर ने अंतर्राष्ट्रीय अखाड़ों में भारत के लिए जो सफलताएं प्राप्त की हैं उनके लिए कोई भी पुरस्कार छोटा है।

करतार सिंह इस समय 36 वर्ष के हो चुके हैं और यह निश्चित है कि वह अब अधिक दिनों तक भारत के लिए अखाड़ों में नहीं उतर सकेंगे। आज करतार सिंह पर सभी भारतवासियों को गर्व है।

डा० कर्णीसिंह

सन् 1962—काहिरा में 38वीं विश्व निशानेबाजी प्रतियोगिता—क्ले पिजिन, ट्रैप—में स्वर्ण पदक के लिए 'टाई' करने के बाद भारत ने रजत पदक जीता।

सन् 1971—सियोल मे दूसरी एशियाई निशानेबाजी चैंपियनशिप—क्ले पिजिन, ट्रैप-शूटिंग मे भारत चैंपियन।

दोनों ही अपने आप में बहुत बड़ी और शानदार सफलताएं थी, किंतु हमारे देश के खेल प्रेमियों ने इस सफलता के प्रति कोई विशेष उत्साह नही दिखाया। कारण यही हो सकता है कि जन-साधारण में इस खेल के प्रति कोई दिलचस्पी नही है। पर यह सच है कि इन सफलताओं ने अंतर्राष्ट्रीय निशानेबाजी में हमारे देश का एक स्थान बनाया है। इसका श्रेय केवल एक व्यक्ति की निष्ठा, लगन और परिश्रम को है, और वे हैं डाक्टर कर्णीसिंह (भूतपूर्व बीकानेर नरेश)।

कर्णीसिंह जी के प्रथम 'शौक', पेंटिंग, फोटोग्राफी, अध्ययन, बागवानी आदि हैं; पर शूटिंग तो उन्हें विरासत में मिली है। अन्य खेलों में गोल्फ और टेनिस से भी विशेष लगाव है।

48 वर्षीय डाक्टर कर्णीसिंह ने सबसे पहले 1952 मे छत्तीस वर्ष पूर्व दिल्ली मे आयोजित राष्ट्रीय निशानेबाजी प्रतियोगिता में भाग लिया था और तब से निरन्तर इस प्रतियोगिता में हिस्सा लेते रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सफलताओ की चर्चा करते हुए भूतपूर्व बीकानेर नरेश ने बताया, "मेरा भाग्यशाली वर्ष था 1962। काहिरा में विश्व शूटिंग में क्ले पिजिन मे स्वर्ण पदक के लिए 'टाई' किया, सोवियत संघ के जिमेंको से तीन दिन तक मैं बराबर आगे था, पर बंदूक ने धोखा दिया, तो मैंने एक पाइंट खो दिया और जिमेंको मेरे बराबर हो गया। फिर नौ निशानों का 'शूट' हुआ, जो कि टाई ब्रेक

के लिए आज तक भी विश्व रिकार्ड माना जाता है। भाग्य ने जिमेंको का साथ दिया, मुझे रजत पदक मिला और नियमानुसार उप-विश्व चैंपियन का खिताब भी। मेरा स्कोर था—300 में से 295 अंक—अमरीका के केन जोंस के विश्व रिकार्ड से दो कम।"

डाक्टर कर्णीसिंह का पहला ओलम्पिक रोम में था। वहां 200 में से 183 निशाने सही लगाकर उन्होंने आठवां स्थान प्राप्त किया। चार वर्ष बाद 1964 में टोकियो ओलम्पिक में 186/200 पर उनका प्रदर्शन बहुत कमजोर रहा—विश्व में 26वां स्थान। वैसे अधिकतर ऐसा हुआ है कि विश्व चैंपियन भी प्रथम से चालीसवें स्थान तक उठते-गिरते रहते हैं।

1986 में मैक्सिको ओलम्पिक में डाक्टर कर्णीसिंह को दसवां स्थान मिला। उन्हें स्वर्ण पदक विजेता ब्रिटेन के ब्रेथ वेट से केवल चार पाइंट कम मिले।

अपने सर्वश्रेष्ठ रेकार्ड की बात करते हुए डाक्टर कर्णीसिंह ने बताया, "भारत में मेरा राष्ट्रीय कीर्तिमान है 300 में से 299 अंक। जहां तक ओलम्पिक्स का संबंध है, मैक्सिको में मैंने 200 में से 194 अंक लिए थे—रजत पदक से केवल दो अंक कम। रणधीर सिंह को वहां 14वें स्थान के लिए 'टाई' मिली थी, और उन्होंने 17वां स्थान प्राप्त किया था। रणधीर का 1968 ओलम्पिक में स्कोर था 200 में से 192।

करसन घावरी

जन्म : 28 फरवरी, 1951। बाएं हाथ का कमाल। मध्यम तेज गेंदबाजी, आक्रामक बल्लेबाजी, सक्षम क्षेत्ररक्षण और आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी स्पिन गेंदबाजी भी। चुस्त युवा आल राउन्डर करसन घावरी श्रेष्ठ प्रदर्शन के बाद भी भारतीय टीम में अपने निश्चित स्थान के लिए संघर्षरत रहे। वह जे० के० केमिकल्स में कार्यरत हैं।

1978-79 में वेस्टइंडीज की टीम ने भारत का दौरा किया था। छह टेस्ट मैचों की इस श्रृंखला में घावरी सबसे सफल गेंदबाज सिद्ध हुए। उनका एक पारी का सबसे अधिक स्कोर 86 रन है। यह रिकार्ड उन्होंने 1979 में बम्बई में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेले गए छठे और अन्तिम टेस्ट में बनाया था। इसके अतिरिक्त 33.54 रनों की औसत से 109 विकेट भी ले चुके हैं।

कराते

कराते की कला जिस तेजी के साथ चारों तरफ फैल रही है उससे इसकी असीम शक्ति का अंदाज सहज ही लगाया जा सकता है। कराते का कठिन अभ्यास मनुष्य को एक ऐसी शारीरिक शक्ति प्रदान करता है जिससे वह बिना किसी

अस्त्र के, सिर्फ हाथों और पैरों का प्रयोग कर अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय हासिल कर सकता है। कराते के वार, इतने खतरनाक हो सकते हैं कि वे दुश्मन के प्राण तक ले लें। कराते के सशक्त वार से शरीर के किसी भी हिस्से की हड्डी तोड़ देना तो मामूली-सी बात है। केवल इतना ही नहीं, कराते का ज्ञाता, कई शत्रुओं का एक साथ मुकाबला कर सकता है और सभी को परास्त करने की क्षमता रखता है।

जहां कराते की लोकप्रियता आज संसार भर में बढ़ी है, वहीं आज ऐसा वर्ग भी है जो इस विद्या के खिलाफ है। उसका तर्क है कि यह विद्या बड़ी ही खतरनाक है। इसका ज्ञाता किसी को भी आसानी से नुकसान-पहुंचा सकता है। लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि यह कला किसी पर अकारण आक्रमण करने के लिए नहीं है। यह तो आत्मरक्षा का एक प्रबल साधन है। इसका ज्ञाता इसका प्रयोग उसी स्थिति में करता है जब वह घोर संकट में घिर जाए और उसके पास कराते के प्रयोग के अलावा अन्य कोई चारा ही न रह जाए। यह बात कराते के दर्शन से भी साफ झलकती है। कराते सिखाते समय छात्रों को अच्छी तरह समझाया जाता है—'कभी पहला वार मत करो और इस कला का प्रयोग सिर्फ आत्मरक्षा के लिए करो।' इस बात की सत्यता का प्रमाण हमें इसके स्वरूप से भी मिलता है। क्योंकि कराते के सभी पैंतरे रक्षात्मक मुद्राओं से आरम्भ होते हैं और आवश्यकता पड़ने पर बिजली की-सी फुर्ती से वार कर व्यक्ति फिर रक्षात्मक मुद्रा में आ जाता है।

जहां तक इसके इस दर्शन और सिद्धान्त की बात है तो विशेषज्ञों का यह दावा है कि करातेकार कराते सीखते समय इस दर्शन को अंतर्मन में पूरी तरह उतार लेता है। सभी करातेकार इसका पालन पूरी तरह करते हैं। हां, इसका अपवाद हो सकता है, पर बहुत कम।

कराते के पीछे सैकड़ों वर्षों की परम्परा है। आधुनिकीकरण में यह धीरे-धीरे आया है। कहा जाता है कि निहत्थे युद्ध करने की कला चीन में विकसित हुई थी। वहीं से यह जापान पहुंची और जापान से सारे विश्व में।

यह बात 500 ई० के आसपास की है। उस समय चीन में निहत्थे लड़ने की जो कला थी वह इतनी विकसित नहीं थी। इसके विकास में सबसे बड़ा योगदान बोधीधर्म नाम के भारतीय बौद्ध भिक्षु का है।

520 ई० में चीन के लियांग वंश से राजा वूती ने बोधीधर्म नाम के एक भारतीय बौद्ध भिक्षु को अपने यहां निमन्त्रित किया। बोधीधर्म योग विद्या में प्रवीण था और श्वास नियन्त्रण पर उसका पूर्ण अधिकार था। उसने चीन में अपनी विद्या का प्रदर्शन करके वहां के लोगों को चकित कर दिया। साथ ही वहां की निहत्थे लड़ने की विद्या में योग और श्वास नियंत्रण का सम्मिश्रण करके निहत्थे

युद्ध करने की नई पद्धति को जन्म दिया। उस समय वहां के अधिकांश बौद्ध भिक्षु अशक्त, कमजोर और त्रस्त-पस्त थे। उनमें चुस्ती और स्फूर्ति का नामोनिशान न था। बोधीधर्म ने सबसे पहले अपनी विद्या का प्रचार इन लोगों के स्वास्थ्य सुधार के लिए किया।

1609 ई० के आसपास जापान के ओकिनावा के र्युक्यू टापुओं पर शिमाजू वंश के राजाओं का शासन था। शासकों को हमेशा यह आशंका रहती थी कि वहां के निवासी उनके खिलाफ विद्रोह न खड़ा कर दें इसलिए उन्होंने वहां के लोगों से हथियार रखने का अधिकार छीन लिया।

जब ओकिनावा के र्युक्यू टापुओं के निवासियों से हथियार रखने का अधिकार छिन गया तो उन्होंने निहत्थे युद्ध करने की कला की खोज करनी शुरू कर दी। इस खोज के दौरान, उन्हें मालूम पड़ा कि चीन में इस तरह की विद्या का प्रयोग होता है। उस समय चीन मे इस कला को 'चुआन फा' कहते थे। र्युक्यू टापुओं के कुछ लोग इस कला को सीखने चीन पहुंचे'''और इस तरह यह कला जापान के र्युक्यू टापुओं में सबसे पहले पहुंची।

लेकिन धीरे-धीरे यह कला सुप्त अवस्था की ओर बढ़ गई। जो थोड़ी-बहुत थी भी तो वह पुरानी परम्पराओं पर ही आधारित थी। उसमें कोई नई तकनीक का समावेश नही हुआ।

तीन सौ साल के बाद उन्नीस सौ के आरम्भ में फिर एक बार इस कला की ओर जापानियों का ध्यान गया। इसमें आधुनिकीकरण की आवश्यकता महसूस की गई।

इसके आधुनिकीकरण में सबसे अधिक योगदान जापान के फूनाकोशी गीचीन का रहा। उन्हें आधुनिक कराते का जन्मदाता भी कहा जाता है।

आज ससार मे कराते की लगभग पांच प्रमुख पद्धतियां हैं—गूजूकाई, शोतोकान, शीतो, वादो तथा गूजू रू।

शीतो पद्धति का जन्मदाता है केनवा माबुनी। यह पद्धति मुख्यतः पश्चिम जापान में प्रचलित है।

कांसटेटाइन

वेस्ट इंडीज में महान खिलाड़ियों का कभी अभाव नही रहा। इन महान खिलाड़ियों की सूची मे सबसे पहला नाम आता है लिरी निकोलस कांसटेटाइन का। कांसटेटाइन पहले मैच में ही वेस्ट इंडीज से जुड़ गए थे और क्रिकेट में प्रेम अन्तिम सास तक जारी रहा।

लिरी कांसटेटाइन को लोग प्यार से कोनी भी कहते थे। उनके पिता लेबरल कांसटेटाइन बागवानी मजदूरों के मुखिया तथा दादा एक गुलाम थे लेकिन कितने

अस्त्र के, सिर्फ हाथों और पैरों का प्रयोग कर अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय हासिल कर सकता है। कराते के वार, इतने खतरनाक हो सकते हैं कि वे दुश्मन के प्राण तक ले लें। कराते के सशक्त वार से शरीर के किसी भी हिस्से की हड्डी तोड़ देना तो मामूली-सी बात है। केवल इतना ही नहीं, कराते का ज्ञाता, कई शत्रुओं का एक साथ मुकाबला कर सकता है और सभी को परास्त करने की क्षमता रखता है।

जहां कराते की लोकप्रियता आज संसार भर में बढ़ी है, वहीं आज ऐसा वर्ग भी है जो इस विद्या के खिलाफ है। उसका तर्क है कि यह विद्या बड़ी ही खतरनाक है। इसका ज्ञाता किसी को भी आसानी से नुकसान पहुंचा सकता है। लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि यह कला किसी पर अकारण आक्रमण करने के लिए नहीं है। यह तो आत्मरक्षा का एक प्रबल साधन है। इसका ज्ञाता इसका प्रयोग उसी स्थिति में करता है जब वह घोर संकट में घिर जाए और उसके पास कराते के प्रयोग के अलावा अन्य कोई चारा ही न रह जाए। यह बात कराते के दर्शन से भी साफ झलकती है। कराते सिखाते समय छात्रों को अच्छी तरह समझाया जाता है—'कभी पहला वार मत करो और इस कला का प्रयोग सिर्फ आत्मरक्षा के लिए करो।' इस बात की सत्यता का प्रमाण हमें इसके स्वरूप से भी मिलता है। क्योंकि कराते के सभी पैंतरे रक्षात्मक मुद्राओं से आरम्भ होते हैं और आवश्यकता पड़ने पर बिजली की-सी फुर्ती से वार कर व्यक्ति फिर रक्षात्मक मुद्रा में आ जाता है।

जहां तक इसके इस दर्शन और सिद्धान्त की बात है तो विज्ञों का यह दावा है कि करातेकार कराते सीखते समय इस दर्शन को अतर्मन में पूरी तरह उतार लेता है। सभी करातेकार इसका पालन पूरी तरह करते हैं। हां, इसका अपवाद हो सकता है, पर बहुत कम।

कराते के पीछे सैकड़ों वर्षों की परम्परा है। आधुनिकीकरण में यह धीरे-धीरे आया है। कहा जाता है कि निहत्थे युद्ध करने की कला चीन में विकसित हुई थी। वहीं से यह जापान पहुंची और जापान से सारे विश्व में।

यह बात 500 ई० के आसपास की है। उस समय चीन में निहत्थे लड़ने की जो कला थी वह इतनी विकसित नहीं थी। इसके विकास में सबसे बड़ा योगदान बोधीधर्म नाम के भारतीय बौद्ध भिक्षु का है।

520 ई० में चीन के लियांग वंश के राजा वूती ने बोधीधर्म नाम के एक भारतीय बौद्ध भिक्षु को अपने यहां निमन्त्रित किया। बोधीधर्म योग विद्या में प्रवीण था और श्वास नियन्त्रण पर उसका पूर्ण अधिकार था। उसने चीन में अपनी विद्या का प्रदर्शन करके वहां के लोगों को चकित कर दिया। साथ ही वहां की निहत्थे लड़ने की विद्या में योग और श्वास नियंत्रण का सम्मिश्रण करके निहत्थे

युद्ध करने की नई पद्धति को जन्म दिया। उस समय वहां के अधिकांश बौद्ध भिक्षु अशक्त, कमजोर और लस्त-पस्त थे। उनमें चुस्ती और स्फूर्ति का नामोनिशान न था। बोधीधर्म ने सबसे पहले अपनी विद्या का प्रचार इन लोगों के स्वास्थ्य सुधार के लिए किया।

1609 ई० के आसपास जापान के ओकिनावा के रयुक्यू टापुओं पर शिमाजू वंश के राजाओं का शासन था। शासकों को हमेशा यह आशंका रहती थी कि वहां के निवासी उनके खिलाफ विद्रोह न खड़ा कर दें इसलिए उन्होंने वहां के लोगों से हथियार रखने का अधिकार छीन लिया।

जब ओकिनावा के रयुक्यू टापुओं के निवासियों से हथियार रखने का अधिकार छिन गया तो उन्होंने निहत्थे युद्ध करने की कला की खोज करनी शुरू कर दी। इस खोज के दौरान, उन्हें मालूम पड़ा कि चीन में इस तरह की विद्या का प्रयोग होता है। उस समय चीन में इस कला को 'चुआन फा' कहते थे। रयुयुयू टापुओं के कुछ लोग इस कला को सीखने चीन पहुंचे···और इस तरह यह कला जापान के रयुयुयू टापुओं में सबसे पहले पहुंची।

लेकिन धीरे-धीरे यह कला सुप्त अवस्था की ओर बढ़ गई। जो थोड़ी-बहुत थी भी तो वह पुरानी परम्पराओं पर ही आधारित थी। उसमें कोई नई तकनीक का समावेश नहीं हुआ।

तीन सौ साल के बाद उन्नीस सौ के आरम्भ में फिर एक बार इस कला की ओर जापानियों का ध्यान गया। इसमें आधुनिकीकरण की आवश्यकता महसूस की गई।

इसके आधुनिकीकरण में सबसे अधिक योगदान जापान के फूनाकोशी गीचीन का रहा। उन्हें आधुनिक कराते का जन्मदाता भी कहा जाता है।

आज संसार में कराते की लगभग पांच प्रमुख पद्धतियां हैं—गूजूकाई, शोतोकान, शीतो, वादो तथा गूजू रू।

शीतो पद्धति का जन्मदाता है केनवा माबुनी। यह पद्धति मुख्यतः पश्चिम जापान में प्रचलित है।

कांसटेटाइन

वेस्ट इंडीज में महान खिलाड़ियों का कभी अभाव नहीं रहा। इन महान खिलाड़ियों की सूची में सबसे पहला नाम आता है लिरी निकोलस कांसटेटाइन का। कांसटेटाइन पहले मैच में ही वेस्ट इंडीज से जुड़ गए थे और क्रिकेट से प्रेम अन्तिम सांस तक जारी रहा।

लिरी कांसटेटाइन को लोग प्यार से कोनी भी कहते थे। उनके पिता लेबरल कांसटेटाइन बागवानी मजदूरों के मुखिया तथा दादा एक गुलाम थे लेकिन कितने

आश्चर्य की बात है, कि लिरी को उसके खेल पर 'सर' की ही नहीं 'लार्ड' की उपाधि भी मिली। उनके पिता स्वयं एक अच्छे खिलाड़ी थे और इंग्लैंड की भूमि पर अनौपचारिक श्रृंखला में पहला शतक उन्होंने ही बनाया था।

1928 में वेस्ट इंडीज टीम ने पहली बार इंग्लैंड का दौरा किया था। लार्ड्स में वेस्ट इंडीज की टीम बुरी तरह पीटी थी। कांसटेटाइन टैस्ट में चार विकेट ले सके थे लेकिन टेस्ट तो दूर उन्हें मिडिलसैक्स की काउंटी टीम के विरुद्ध भी मैच बचाना मुश्किल था। दुर्भाग्य से वेस्ट इंडीज टीम के आधार स्तम्भ के रूप में प्रसिद्ध कांसटेटाइन भी घायल थे और डाक्टरों ने उसे आराम की सलाह दी थी। ऐसे में उदासी ने उन्हें घेर लिया। तभी आस्ट्रेलिया के महान खिलाड़ी चार्ली मैकटर्नी से उनकी मुलाकात हुई। चार्ली ने सलाह दी 'कोनी तुम्हें अब अधिक सतर्क हो जाना चाहिए। सफलता पानी है तो गेंदबाजों का जमकर मुकाबला करो। और आक्रमण पर विश्वास करो।'

कांसटेटाइन ने उस समय कितनी सूझबूझ से काम किया, इसका पता उन्हीं के लिखे एक लेख से मिलता है।

''मिडिल सैक्स के विशाल स्कोर के समक्ष हमारे पांच खिलाड़ी मात्र 79 रन पर आउट हो चुके थे। मैंने चार्ली के सलाह के ही अनुसार उस ऐतिहासिक टर्फ पर खेलना शुरू किया। अपने दुखते हुए घाव की परवाह न करते हुए मैंने बस गेंदों को पीटना शुरू कर दिया और मात्र 20 मिनट में ही अपना अर्धशतक पूरा कर लिया। मैं कुल 86 रन बनाकर आउट हुआ और इसके लिए मुझे एक घण्टे से भी कम समय लगा। हमारा स्कोर 230 रन हो गया था जो हार से बचाने के लिए काफी था।

जब मिडिलसैक्स के हाथों में बल्ला थमाया गया तब भी मैंने चार्ली के सिद्धांत आक्रमण को ही अपनाया और अपने जीवन की सबसे खतरनाक गेंदबाजी की। मैंने सिर्फ ग्यारह रन देकर छह विकेट हासिल किए थे।

दूसरी पारी में गहन सतर्कता के बावजूद हम 100 रन पर पांच विकेट खो चुके थे। जब मैं बल्लेबाजी के लिए जाने लगा तो चार्ली फिर वहीं आया उसने मेरा कंधा थपथपाया और कहा, 'मेरी बात याद रखना।'

दूसरी पारी में मैंने एक घंटे में ही शतक पूरा कर लिया। जब मैं पेवेलियन में पहुंचा तो हमारे खिलाड़ी दूसरी बार मेरा स्वागत कर रहे थे। हम तीन विकेट से यह मैच जीत गए थे।

कांसटेटाइन वेस्ट इंडीज की ओर से केवल 18 टेस्ट मैच खेले जिनमें उन्होंने 19.24 की औसत से 635 रन बनाए और 30.10 की औसत से 58 विकेट लिए लेकिन प्रथम श्रेणी क्रिकेट में उन्होंने उस जमाने में 4451 रन बनाए और 424 विकेट लिए जब अधिक क्रिकेट नहीं खेली गई। वह 'कवर' में क्षेत्ररक्षण के

लिए अब तक के सर्वश्रेष्ठ क्षेत्ररक्षक माने जाते हैं। उन्होंने टेस्ट मैचों में 28 और प्रथम श्रेणी मैचों में 133 कैच लपके।

1945 में क्रिकेट छोड़ने के बाद कांसटेटाइन ने कुछ अर्सा युवा क्रिकेटरों को अपने आक्रमण के गुण सिखाए। उसके बाद उन्होंने पुस्तकें लिखी और बाद में रेडियो में चले गए।

तत्पश्चात् वह राजनीति में आ गए और त्रिनिडाड में पहले वह संसद सदस्य और बाद में मंत्री बने। इसके बाद उन्होंने इंग्लैंड में त्रिनिडाड का उच्चायुक्त भी बनाया गया। उन्हें त्रिनिडाड ने 'त्रिनिटी क्रास' से भी सम्मानित किया जो वहां का सर्वोच्च अलंकरण है।

कार्ल लुईस

अब तक हुए ओलम्पिक खेलों में कुछ ही गिने-चुने खिलाड़ियों को चार या चार से अधिक स्वर्ण पदक प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। इन महारथियों की सूची में जिसका नाम अभी हाल ही में जुड़ा है वे हैं—अमेरिका के कार्ल लुईस। लुईस ने लास एंजल्स खेलों में चार स्वर्ण पदक जीतकर खेल जगत में सनसनी-सी फैला दी। इससे पहले ओलम्पिक खेलों में अमेरिका के एल्विन क्रेजलीन, फिनलैंड के पावो-नूरमी, अमेरिका के जेसी ओवस, हालैंड की फैनी ब्लैंकर्स, अमेरिका के मार्क स्पिट्ज व डॉन शालैंडर, बोरिस शाकलिन और चेकोस्लोवाकिया की वियरा काज्लावास्का यह गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

कार्ल लुईस ने सदा से ही अपना आदर्श जे० सी० ओवंस को माना है और अब बेशुमार सफलता के बाद भी उन्हें ही गुरु मानते हैं। ओवस का जन्म निर्धन परिवार में 1913 में हुआ और मृत्यु 1980 में हुई। 1936 के बर्लिन ओलम्पिक में उन्होंने धूम मचा दी थी परन्तु अश्वेत होने के कारण जर्मनी के तत्कालीन तानाशाह शासक हिटलर ने उन्हें वह सम्मान नहीं दिया जो देना चाहिए था। ओवंस ने हिटलर का यह भ्रम कि अश्वेत नीग्रो में योग्यता कम होती है दूर कर उनकी तानाशाही को धक्का दिया। ओवंस की पत्नी रूथ के अनुसार ओवंस दौड़ को ही जीवन मानते थे। जेसी ओवंस का पूरा नाम जेम्स क्लीवलैंड ओवंस है। लोग उन्हें जेसी के नाम से पुकारते थे क्योंकि शुरू-शुरू में जब स्कूल में उनसे नाम पूछा गया तो उन्होंने अपना नाम छोटा करके जे० सी० ओवंस बतलाया। अध्यापक जेसी समझकर उसी नाम से पुकारने लगे।

जेसी ओवस और कार्ल लुईस ने खेलों में एक समान ही स्वर्ण पदक प्राप्त किए। 100 मी० दौड़ में ओवंस ने 10.3 सेकिंड का समय लेकर स्वर्ण लिया और लुईस का समय रहा 9.99 से०। लम्बी कूद में ओवंस ने (26 फुट $5\frac{1}{4}$) 7.76 मी० दूरी तय कर नया ओलिंपिक रिकार्ड बनाया जिसे 24 वर्षों तक

(2960 तक) कोई छू न पाया और लुईस ने कूद मारी 8.54 मी० परन्तु वह ओलिपिक रिकार्ड न तोड़ सका। 1968 में मैक्सिको ओलम्पिक में बॉब बीमन ने 8.90 मी० की दूरी तय की थी। 200 मी० दौड में ओवंस ने 20.7 से० का समय लेकर नया ओलम्पिक रिकार्ड कायम किया लुईस ने भी 19.80 से० में दूरी पार कर 1968 के मैक्सिको ओलम्पिक के टॉमी स्मिथ के रिकार्ड में 1.03 से० से सुधार कर नया ओलम्पिक रिकार्ड स्थापित किया। फिनिश लाइन पर लुईस का पीछा करते हुए दूसरे और तीसरे स्थान पर पहुंचने वाले एथलीट किर्क बेपटिस्ट और थामस जेफरसन रहे। तीनों अमेरिकी एथलीटों ने अमेरिकी झंडे के साथ कोलोसियम स्टेडियम में चक्कर लगाया। 1956 के बाद यह पहला अवसर था जब स्वर्ण, रजत और कास्य तीनो ही अमेरिका के हाथ लगे।

प्रतियोगिता	कार्ल लुईस	जे० सी० ओवंस
100 मी० दौड	9.99 सेकिंड	10.3 सेकिंड
200 मी० दौड	19.80 से० ओलम्पिक रिकार्ड	20.7 से० तत्कालीन ओलम्पिक रिकार्ड
लम्बी कूद	8.54 मीटर	7.76 मीटर तत्कालीन ओलम्पिक रिकार्ड
4 × 100 मी० रिले	37.83 से० विश्व रिकार्ड	39.80 से० तत्कालीन विश्व रिकार्ड

4 × 100 मी० रिले में ओवंस को चौथा स्वर्ण मिला था। उन्होंने समय लिया था 39.80 से० और विश्व रिकार्ड कायम करते हुए लास एंजल्स में 4 × 100 मी० रिले में अमेरिकी टीम को नया विश्व रिकार्ड बनाने में सहयोग देकर कार्ल लुईस ने अपना चौथा स्वर्ण प्राप्त किया। कोलोसियम स्टेडियम में मौजूद 90 हजार दर्शकों के चहेते हीरो लुईस ने अपनी टीम के साथ विश्व रिकार्ड कायम किया। उन्होंने समय लिया 37.83 से० पिछले अगस्त में हेलसिंकी चेंपियनशिप में अपने ही देश की चौकड़ी द्वारा बनाए गए विश्व कीर्तिमान को 0.03 से० से सुधारा। सेम ग्रेडी ने अमेरिकी टीम के लिए शानदार शुरुआत की। ग्रेडी ने बेटन को रान ग्राउन को सौंपा जिन्होंने सबसे पहले अगले धावक केलविन स्मिथ को दे दिया। 100 मी० दौड के विश्व रिकार्ड धारी स्मिथ ने अगले धावक कार्ल लुईस

को सौंपा। लुईस ने जब फिनिश लाइन पार की तो दूसरे नम्बर पर आ रही जमैका की टीम 10 मी० पीछे थी। टेप को छू लेने के बाद लुईस भरपूर खुशी से हवा में उछल गए और छोटे अमेरिकी झंडे को लेकर ट्रैक का चक्कर लगाया।

इस तरह कार्ल लुईस ने जे० सी० ओवंस की तरह ओलिंपिक खेलों मे चार स्वर्ण पदक प्राप्त कर ओलिंपिक खेलों के इतिहास में अपना नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिखवा लिया।

1936 के बर्लिन ओलम्पिक में ओवंस की और 1984 के लास एंजिलस में फ्रेडरिक कार्लटन लुईस की उपलब्धियों को तुलनात्मक दृष्टि से पृ० 96 के चार्ट में देखा जा सकता है।

कार्नोलियस, चार्ल्स

चार्ल्स का जन्म 27 अक्तूबर, 1945 को माइलापुर (मद्रास) में हुआ था। बाद में वह अपने परिवार के साथ पठानकोट आ गए। यहीं उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। पहले वह गवर्नमेंट स्कूल, पठानकोट में पढ़े और उसके बाद उन्होंने डी० ए० वी० कालेज, जालंधर में इण्टरमीडियट तक शिक्षा प्राप्त की। स्कूल की टीम में वह 'सेण्टर फारवर्ड' के स्थान पर खेलते थे और कालेज की टीम में 'राइट हाफ' के स्थान पर। उनका कहना है कि लोग पीछे से आगे की ओर बढ़ते हैं लेकिन मैं आगे से पीछे की ओर हटा और गोली बन गया। मुझे गोली बनाने का श्रेय सरदार ऊधमसिंह को है, क्योंकि उन्होंने मुझे एक बार कहा था कि पंजाब की टीम मे कोई अच्छी गोली नही है और दक्षिण भारत के खिलाड़ी गोली का दायित्व ज्यादा अच्छी तरह से निभा सकते हैं। राष्ट्रीय प्रतियोगिता में चार्ल्स पंजाब का प्रतिनिधित्व करते थे। 1969 में उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय हाकी मेले में भाग लिया और उसके बाद बैंकाक में हुए एशियाई खेलों (1970), बारसेलोना में हुई पहली विश्व कप प्रतियोगिता (1971), म्यूनिख ओलम्पिक (1972) और दूसरी विश्व कप प्रतियोगिता, एम्स्टर्डम (1973) में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

अगस्त 1974 में (जब तेहरान में भाग लेने वाली भारतीय हाकी टीम को पटियाला स्थित नेताजी सुभाष राष्ट्रीय खेलकूद संस्थान में प्रशिक्षण दिया जा रहा था) अभ्यास करते हुए बाएं घुटने पर मामूली-सी चोट लगी थी, जो बढ़ते-बढ़ते इतनी बिगड़ गई कि कुछ डाक्टरों ने घुटना कटवाने तक का सुझाव दिया। उसके बाद वह इलाज के लिए लंदन भी गए, लेकिन उनका घुटना ठीक नही हुआ। इस प्रकार उनका खिलाड़ी जीवन समय से पहले ही समाप्त हो गया। लेकिन चूंकि हाकी उनकी रग-रग में समाई हुई थी इसलिए हाकी के खेल से वह नाता तोड़ नही पाए और बाद में सीमा सुरक्षा दल की टीम के प्रशिक्षक बन गए।

किरन मोरे

जिस समय फारूख इंजीनियर भारत के लिए टेस्ट क्रिकेट में विकेटकीपर की भूमिका निभाता था तो उस समय कई लोगों का ये ख्याल था कि भारत को कभी इससे बेहतर विकेटकीपर नहीं मिल सकता। उस समय तो कई विशेषज्ञों का ये ख्याल था कि फारूख इंजीनियर से बेहतर तो क्या फारूख इंजीनियर की बराबरी का विकेटकीपर भी ढूढ़ पाना मुश्किल है। इसके बाद भारत को सैयद किरमानी जैसा विकेटकीपर मिला और भारत के क्रिकेट प्रेमी फारूख इंजीनियर को भूल गए। *किरमानी के युग मे वही सब बातें कही गईं जो इंजीनियर के युग में कही* गई थी। ऐसा सोचना भी अजीब लगता था कि किरमानी के बिना भारतीय विकेट कीपिंग की स्थिति क्या होगी?

किरन मोरे का जन्म 4 सितम्बर 1962 को हुआ था। उनका पूरा नाम किरन शंकर मोरे है। स्कूली क्रिकेट, कालेज क्रिकेट में उसने अपनी योग्यता दिखाई और बडौदा की रणजी ट्राफी टीम में आने के लिए उसे इन्तजार नहीं करना पडा। 1980-81 मे वह बडौदा के लिए रणजी ट्राफी टीम मे खेला और उसी वर्ष उसे श्रीलंका यात्रा पर गई भारत की युवा टीम मे चुन लिया गया। किरन मोरे को ये सम्मान 22 वर्ष से कम आयु के खिलाड़ियों की सी० के० नायडू ट्राफी मे बडौदा के कप्तान के रूप मे अच्छा खेल दिखाने के बाद में मिला था। 1982-83 का सत्र किरन मोरे के लिए सबसे भाग्यशाली सत्र था और इस सत्र ने ही उसे भारत का उदीयमान विकेटकीपर बनाया। जब बडौदा की टीम बम्बई से रणजी ट्राफी मैच मे खेली तो किरन मोरे ने एक ही पारी मे 6 कैच लपक कर चयन-कर्ताओं का ध्यान अपनी ओर खीच लिया।

1885-86 की आस्ट्रेलिया यात्रा में जब किरमानी बीमार हुआ तो किरन मोरे ने भारतीय टीम को उसकी कमी कतई महसूस नहीं होने दी। बाद में इंग्लैंड मे भी सभी तीनों टेस्ट मैचों में उसने शानदार विकेटकीपिंग की और भारत की सफलताओं में उसकी विकेटकीपिंग का योगदान रहा। इस शृंखला में कुल 16 कैच लपक कर किरन मोरे ने इंग्लैंड के विरुद्ध भारत की ओर से नया रिकार्ड बनाया है। आशा है कि अपनी सफलता का ये सिलसिला किरन मोरे आने वाले दिनो मे भी बरकरार रखेगा और उसकी विकेटकीपिंग हमेशा चर्चा का विषय बनी रहेगी।

टेस्ट रिकार्ड 17 टेस्टों में 39 / रन

किरमानी

किरमानी का जन्म मद्रास मे 29 दिसम्बर 1951 में हुआ था, न कि 1949 मे जैसा कि कुछ खेल-पत्रिकाओ ने कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था।

किरमानी ने अपने टेस्ट जीवन की शुरुआत न्यूजीलैंड के विरुद्ध आकलैंड टेस्ट मे 1976 में की थी हालांकि टेस्ट क्रिकेट में आने से पूर्व काफी वर्षों से वह टेस्ट क्रिकेट के द्वार खटका रहा था। किन्तु फारूख इंजीनियर की मौजूदगी मे किरमानी को आगे लाने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। वास्तविकता यह थी कि क्रिकेट कन्ट्रोल बोर्ड इंजीनियर के सामने किसी को लाने का 'रिस्क' नहीं उठाना चाहता था। क्योंकि एक तो इंजीनियर पूरी तरह 'फिट' था और दूसरे वह टीम के वरिष्ठतम खिलाड़ियों में से एक था। इसलिए किरमानी को अपना जौहर दिखाने के लिए एक लम्बा इन्तज़ार करना पड़ा।

किरमानी ने टेस्ट क्रिकेट मे ज्यों ही प्रवेश किया, उसने दूसरे टेस्ट (क्राईस्ट चर्च) में एक विश्व रिकार्ड की बराबरी कर दिखाई। वह रिकार्ड था एक पारी में छह प्रतिपक्षी बल्लेबाजों को अपना शिकार बनाना।

किरमानी भारत का पहला ऐसा विकेट कीपर है जो अब तक कुल मिलाकर 100 से अधिक शिकार पकड़ चुका है। आस्ट्रेलिया दौरे से पूर्व किरमानी ने कुल 100 शिकार पकड़े थे लेकिन इस दौरे में 7 कैच और तीन स्टम्प उखाड़कर अपनी गणना न्यूज़ीलैंड दौरे से पूर्व 110 तक पहुंचा चुका था। भारत के विकेट कीपरों मे इससे पूर्व सबसे अधिक कैच और स्टम्प फारूख इन्जीनियर ने उखाडे थे। उसने 157 कैच लिए और 36 बार सफल स्टम्पिग की। किरमानी अब तक 85 टेस्ट मैचो मे 27.45 की औसत से 2717 रन बना चुके हैं।

किशन लाल

2 फरवरी, 1917 को जन्मे किशन लाल के लिए कहा जाता है कि उन जैसा राइट आउट के स्थान पर खेलने वाला कोई दूसरा खिलाड़ी आज तक भारत में नहीं हुआ है। बहुत छोटी आयु से ही हाकी खेलना शुरू करने वाले किशन लाल की मैदान में तेज दौड़, बेहतरीन ड्रिब्लिंग, दूसरे खिलाड़ियों को सही स्थान पर पास देने की क्षमता और 'डी' में किसी भी कोण से अचूक गोल करने की कला उन्हें आदर्श खिलाड़ी बनाती है। 48 के लंदन खेलों में भारतीय हाकी टीम के कप्तान किशन लाल ने सन् 42 से 57 तक लगातार राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिता में भी भाग लिया जो उनकी असाधारण शारीरिक क्षमता का प्रमाण है।

सन् 66 में पद्मश्री से सम्मानित किशन लाल ने कई देशों का भी दौरा किया।

क्रिकेट

भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे पहले कब और कहां क्रिकेट खेला गया, यह बताना तो कठिन है। लेकिन इस बात के प्रमाण अवश्य मिलते हैं कि 1721 में

व्यापारिक जहाज की एक कंपनी ने खंभात में एक मैच खेला था। यदि यह तारीख सही है तो कहना पड़ेगा कि भारत में क्रिकेट हैंम्बेलडन युग, जिसे इंग्लैंड में वास्तविक शुरुआत का समय माना जाता है, से पहले खेला गया था।

भारत-इंग्लैंड की टेस्ट कहानी और क्रिकेट संबंधों की शुरुआत लार्ड्स के मैदान में 1932 से शुरु होती है। तब अधिकृत टेस्ट खेलने के लिए भारतीय टीम पोरबन्दर के महाराजा नटवर सिंह के नेतृत्व में पहली बार ब्रिटेन दौरे पर गई। उस समय भारतीय खिलाड़ियों के प्रदर्शन को देख कर ब्रितानी क्रिकेट प्रेमी दांतों तले उंगली दबा बैठे। भारत के तेज गेंदबाज मोहम्मद निसार ने गेंद संभाली और अपने दूसरे ओवर में ही इंग्लैंड के चोटी के दो बल्लेबाजों पी० होम्स और एच० सटक्लिफ को क्लीन बोल्ड कर दिया। यह देख कर लार्ड्स की दर्शक दीर्घा में सन्नाटा छा गया था। वे दोनों प्रारम्भिक बल्लेबाज क्रमश: 6 और 3 रन ही बना पाये थे। भारत यह टेस्ट 158 रनों से हार गया था।

1933 में इंग्लैंड की टीम भारत के दौरे पर आयी तब भारतीय खिलाड़ियों का मनोबल काफी ऊंचा था। पहला टेस्ट बम्बई में खेला गया। उस मैच की सबसे बड़ी यादगार दूसरी पारी में लाला अमरनाथ का पहला भारतीय टेस्ट शतक था। उन्होंने 21 चौकों की मदद से 180 रन बनाये थे। दूसरी तरफ सी. के. नायडू ने 67 रनों की बेहतरीन पारी खेली थी। इसके बाद कलकत्ता का मैच अनिर्णीत रहा और मद्रासटेस्ट में उसे बुरी तरह 202 रनों से मात खानी पड़ी।

1936 में भारत और इंगलैंड के बीच तीन टेस्ट मैचों की श्रृंखला के पहले टेस्ट में मोहम्मद निसार और अमर सिंह ने अपनी सटीक गेंदबाजी का प्रदर्शन किया।

सन् 1952 में भारतीय टीम इंग्लैंड गयी। चार टेस्ट मैचों की इस श्रृंखला में इंग्लैंड ने भले ही तीन टेस्ट जीत कर (चौथा टेस्ट अनिर्णीत) श्रृंखला जीती किन्तु लार्ड्स में खेले गये दूसरे टेस्ट में भारत की आठ विकटों से पराजय के बावजूद 'मांकड टेस्ट' के नाम से ही जाना जायेगा। मांकड ने गेंद और बल्ले का शानदार मुजाहरा करते हुए 196 रन देकर 5 खिलाड़ी आउट किये तथा 72 और 184 रनों की शानदार पारी खेली थी।

1959 की टेस्ट शृंखला में भारत बुरी तरह 5-0 से पराजित हुआ। दूसरे शब्दों में मेजबान टीम को पहली बार अपनी जमीन पर 5-0 से विजय मिली। इंग्लैंड की विजय के कर्णधार—निश्चित रूप से तेज गेंदबाज ट्रूमैन और स्टेथम कहे जा सकते हैं, किन्तु भारतीय मध्यम तेज गेंदबाज रमाकांत देसाई और सुरेन्द्रनाथ ने भी सफलता पायी।

ओल्ड ट्रैफर्ड में खेले गये चौथे टेस्ट में अब्बास अली बेग का पदार्पण हुआ।

उसने अपने पहले ही टेस्ट में दूसरी पारी में 112 रन बनाकर सभी खेल प्रेमियों को चकित कर दिया। पाली उमरीगर ने भी 118 रनों की भव्य दूसरी पारी खेली लेकिन भारत को इस के बावजूद 171 रन से हार का मुंह देखना पड़ा।

टेस्ट क्रिकेट के इतिहास में सबसे पहले

1. पहला टेस्ट मैच : 15 मार्च 1877 (आस्ट्रेलिया-इंग्लैंड) से मेलबोर्न में।

2. पहला रन : चार्ल्स बैनरमैन (आस्ट्रेलिया)।

3. 99 पर आउट होने वाला पहला खिलाड़ी : क्लेम हिल (आस्ट्रेलिया) (1901-2)।

4. पहला टेस्ट शतक : बैनरमैन (165 रन) (आस्ट्रेलिया) (1877)।

5. पहला दोहरा टेस्ट शतक : मुर्डोच (211) (आस्ट्रेलिया) (1880)।

6. पहला तिहरा टेस्ट शतक : ए० सैंडहम (325) इंग्लैंड (1929-30।

7. पहला विकेट : हिल (इंग्लैंड)।

8. पहला विकेट किसका गिरा : (टामसन आस्ट्रेलिया)।

9. पहली जीत : 45 रन से (आस्ट्रेलिया)

10. पहला ओवर : अल्फ्रेड शा (इंग्लैंड)।

11. पहला खिलाड़ी : शुरू से अन्त तक मुर्डोच (153 रन) (1880) आस्ट्रेलिया विरुद्ध (इंग्लैंड)।

12. एक वर्ष में 1000 रन बनाने वाला पहला खिलाड़ी : क्लैम हिल (आस्ट्रेलिया) (1060 रन)।

13. प्रतिद्वन्द्वी कप्तानों द्वारा पहली बार एक ही टेस्ट में शतक : 1913-14 में जे. डगलस (109) एवं एच. टेलर (119) द्वारा (दक्षिण अफ्रीका विरुद्ध इंग्लैंड)।

टस्ट क्रिकेट में पिता-पुत्र

पिता	पुत्र
भारत (5)	सुरिंदर अमरनाथ व
लाला अमरनाथ	मोहिंदर अमरनाथ
वीनू मांकड	अशोक मांकड
इफ्तिखार अली खान	मंसूर अली खान
पटौदी	पटौदी
दत्तू गायकवाड़	अंशुमान गायकवाड़

पंकज राय	प्रणव राय
इंग्लैंड (7)	
लेन हटन	रिचर्ड हटन
जो. हार्डस्टाप (सी.)	जोसेफ हार्ड स्टाफ (जू.)
एफ. टी. मान	एफ. जी. मान
जे. एस पार्क्स	जे. एम. पार्क्स
सी. एल. टाउंसलैंड	डी. सी. एच. टाउंस-लैंड
एफ डब्ल्यू. टेट	मौरिस विलमय टेट
दक्षिण अफ्रीका (4)	
एफ. हीयर्न	जी. ए. एल. हीयर्न
जे. डी. लिंड्से	डैनिस लिंड्से
आर्थर डेविड नर्स	आर्थर डडले नर्स
एल. आर. टकेट	एल. टकेट
पाकिस्तान (3)	
सैयद वजीर अली	खालिद वजीर
जहांगीर खान	माजीद खान
नजर मोहम्मद	मुदस्सर नजर
न्यूजीलैंड (2)	
वाल्टर हैडली	डायल हैडली व रिचर्ड हैडली
एच. जी. विवियन	जी. ई. विवियन
वैस्ट इंडीज (2)	
ओ. सी. 'टामी' स्काट	अल्फेड स्काट
जार्ज हैडली	रान हैडली
आस्ट्रेलिया (1)	
एडवर्ड ग्रेगरी	सिड ग्रेगरी

नोट : इफ्तिखार अली व एफ. हीयर्न ने टैस्ट मैचों में इंग्लैंड का भी प्रतिनिधित्व किया। वजीर अली व जहांगीर खान ने भारत के लिए टेस्ट मैच खेला जबकि उनके पुत्रों ने टेस्ट मैचों में पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व किया।

भारत के श्रेष्ठ दस विकेट कीपर

	टेस्ट	कैच	स्टंप	कुल
सैयद किरमानी	85	157	36	193
फारुख इन्जीनियर	46	66	16	82
नरेन्द्र शंकर तमाने	21	35	16	51
प्रोबीर सेन	14	20	11	31
बुद्धि कुंदरन	18	23	7	30
पी. जी. जोशी	12	18	9	27
भरत रेड्डी	4	9	2	11
इंद्रजीतसिंह	4	6	3	9
माधव मंत्री	4	8	1	9
कृष्णामूर्ति	5	7	1	9

टिप्पणी : भारत के अब तक के 170 टेस्ट खिलाड़ियों में से मात्र 19 ने विकेट कीपिंग की।

क्रिकेट और भारतीय कप्तान

भारतीय क्रिकेट के लिए 25 जून 1932 का दिन हमेशा यादगार बना रहेगा, क्योंकि इस दिन भारत ने अपना पहला टेस्ट मैच क्रिकेट के तीर्थ लार्ड्स मैदान पर खेला था। इसी दिन से एक और सिलसिला शुरू हुआ भारतीय कप्तानों का।

वेस्ट इंडीज के विरुद्ध खेली गयी शृंखला में दिलीप वेंगसरकर को भारत का कप्तान बनाया गया। नयी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में खेले गए पहले टेस्ट में (25 नवम्बर, 87) यों तो उन्होंने शतक बनाया लेकिन टेस्ट 5 विकेट से हार गए।

इस प्रकार वह भारत के 12वें ऐसे खिलाड़ी बने जो कप्तान के रूप में अपना पहला टेस्ट हार गए। उनसे पहले जिन 11 कप्तानों के साथ ऐसा हुआ उनके नाम हैं :—

1. सी० के० नायडू—1932 में लार्ड्स में इंगलैंड से 158 रनों से हार।

2. महाराज विजयानगरम—1936 में लार्ड्स में इंगलैण्ड से 9 विकेट से हार।

3. आई०ए० के० पटौदी—1946 में लार्ड्स में इंगलैण्ड से 10 विकेट से हार।

4. लाला अमरनाथ—1947-48 में ब्रिसबेन में ऑस्ट्रेलिया से एक पारी और 226 रनों से हार।

5. दत्तू गायकवाड़—1959 में टेंट ब्रिज में इंगलैण्ड से पारी और 59 रनों से हार।

6. पंकज राय—1959 में लार्ड्स में इंगलैण्ड से 8 विकेट से हार।

7. जी०एस० रामचन्द्र—1959-60 में दिल्ली में आस्ट्रेलिया से पारी और 126 रनों से हार।

8. मंसूर अली खान पटौदी—1961-62 में ब्रिज टाउन में वेस्टइंडीज से पारी और 30 रनों से हार।

9. चन्दू बोर्डे—1967-68 में एडिलेड में आस्ट्रेलिया से 146 रनों की हार।

10. एस० वेंकटराघवन—1974-75 में दिल्ली में वेस्टइंडीज से पारी और 17 रनों से हार।

11. कपिलदेव—1982-83 में किंग्स्टन में वेस्टइंडीज से 4 विकेट से हार।

12. दिलीप वेंगसरकर—1987-88 में दिल्ली में वेस्टइंडीज से 5 विकेट से हार।

दिल्ली में भारत और वेस्टइंडीज के बीच विगत शृंखला के पहले टेस्ट तक भारत 250 टेस्ट खेल चुका था। भारत ने किसकी कप्तानी में कितने टेस्ट खेले उसका ब्योरा इस प्रकार है—

भारतीय कप्तान	कुल टेस्ट	जीते	हारे	बराबर
1. सी०के० नायडू	4	—	3	1
2. महाराज कुमार विजयानगरम	3	—	2	1
3. इफ्तिखार अली खां (सीनियर पटौदी)	3	—	1	2
4. लाला अमरनाथ	15	2	6	7
5. विजय हजारे	14	1	5	8
6. वीनू माकड	6	—	1	5
7. गुलाम अहमद	3	—	2	1
8. पाली उमरीगर	8	[illegible]	2	4
9. हेमू अधिकारी	1	—	—	1
10. दत्तू गायकवाड	4	—	4	—
11. पकज राय	1	—	—	1
12. जी० रामचन्द्र	5	1	2	2
13. नारी कंट्रैक्टर	12	2	2	8
14. मंसूरी अली खान पटौदी	40	9	19	12

15. चन्दू बोर्डे	1	—	1	—
16. अजीत वाडेकर	16	4	4	8
17. एम० वेंकटराघवन	5	—	2	3
18 सुनील गावस्कर	47	9	8	30
19. बिशन सिंह बेदी	22	6	11	5
20. जी० विश्वनाथ	2	—	1	1
21. कपिल देव	34	4	7	23
22. दिलीप वेंगसरकर	3	1	1	2
23. रविशास्त्री	1	1	—	—
कुल	250	41	85	124

दोनों कप्तानों द्वारा बनाए गए शतक : 20वां अवसर

भारतीय कप्तान दिलीप वेंगसरकर और वेस्टइंडीज के कप्तान विवियन रिचर्ड्स को एक ही टेस्ट में दोनों कप्तानों द्वारा शतक बनाने का अवसर प्राप्त है। दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में 29 नवम्बर को जब विवियन रिचर्ड्स ने शतक बनाया तो यह टेस्ट इतिहास का 20वां अवसर बना।

1. डरबन, 1913-14—एच० टेलर (दक्षिण अफ्रीका) 109 और डगलस इंग्लैण्ड) 119

2. लार्ड्स, 1930—पी० चैपमैन (इंग्लैण्ड) 121 और वुडफुल (आस्ट्रेलिया) 155

3. लार्ड्स, 1938—डब्ल्यू० हैमंड (इंग्लैंड) 240 और डान ब्रैडमैन (आस्ट्रेलिया) 102

4. डरबन, 1938-39—ए० मेलविले (दक्षिण अफ्रीका) 103 और हैमंड (इंगलैंड) 140

5. लार्ड्स, 1953 एल० हटन (इंग्लैंड) 145, एल० हैसेट (आस्ट्रेलिया) 104

6. मानचेस्टर 1955 पीटर(इंग्लैंड)117 और मैकग्लू (द० अफ्रीका) [illegible]

7. जोहान्सबर्ग 1961-62 मैकग्लू (द० अ०) 120 और [illegible] (न्यूजीलैंड) 142

8. मानचेस्टर 1964—टी० डेक्सटर (इंग्लैंड) 176 और [illegible] (आस्ट्रेलिया) 311

9. किंग्स्टन 1967-68 गैरी सोबर्स (वे० इं) 113० [illegible]

10. सिडनी—1968-69 लारी (आस्ट्रेलिया) [illegible] (वे०इं) 113

क्रिकेट का आंखों देखा हाल सुनते हुए एक साधारण क्रिकेट प्रेमी अक्सर अंग्रेजी शब्दों के जाल में उलझ जाता है। मूलतः इंग्लैंड का खेल होने के कारण क्रिकेट के सभी तकनीकी शब्द अंग्रेजीनुमा ही हैं। जिन का अर्थ लगाते हुए आप अनर्थ तक कर बैठते हैं।

आइए, हम आप को उन तकनीकी शब्दों में से कुछ का सीधा-सादा अर्थ समझाएं—

स्विंग—ऐसी गेंद जो जमीन पर टिप्पा खाने से पूर्व अपनी दिशा बदल लेती है। इस गेंद का प्रयोग तेज और मध्यम गति के गेंदबाजों द्वारा किया जाता है। नई और चमकदार गेंद अधिक स्विंग होती है। कोई गेंद कितनी अधिक स्विंग होगी, यह उसकी प्रकृति और मौसम पर भी निर्भर करता है। जैसे, आस्ट्रेलिया में प्रयोग की जाने वाली "कुकाबुरा" गेंद अधिक स्विंग लेती है। इसी प्रकार जब मौसम में भारीपन हो तो गेंद ज्यादा और अधिक समय तक स्विंग हो सकती है।

इन-स्विंग—ऐसी गेंद जो जमीन पर टिप्पा खाने से पूर्व हवा में ही बल्लेबाज की ओर रुख कर ले यानी एक दायें हत्था बल्लेबाज के लिए गेंद आफ स्टंप की दिशा से अंदर की ओर आए।

आउट-स्विंग—ऐसी गेंद जो टिप्पा खाने के बाद बल्लेबाज से दूर की दिशा में जाए अर्थात् एक दायें हत्था बल्लेबाज के आफ स्टंप को छोड़ती हुई स्लिप की तरह मुड़े।

बीमर—ऐसी गेंद जो जमीन पर टिप्पा खाए बिना बल्लेबाज के सिर के पास से होती हुई विकेट कीपर के हाथों में पहुंचे। इस प्रकार की गेंद बहुत खतरनाक होती हैं और बल्लेबाज को गंभीर रूप से घायल भी कर सकती हैं।

फुल टास—ऐसी गेंद जो बिना टिप्पा खाए सीधी बल्लेबाज के बल्ले तक पहुंचती है।

गुगली—ऐसी गेंद जो किसी दायें हत्था गेंदबाज द्वारा लेग ब्रेक एक्शन से फेंकी जाए लेकिन वह बल्लेबाज के लिए आफ ब्रेक बन जाए। इस प्रकार की गेंद कलाई को पूरी तरह मोड़कर फेंकी जाती है। इसे 'बोसी' और 'राग' अन नामों से भी जाना जाता है।

चाइनामैन—ऐसी गेंद जो किसी बाएं हत्था गेंदबाज द्वारा लेग ब्रेक एक्शन से फेंकी जाए लेकिन वह बल्लेबाज के लिए आफ ब्रेक बन जाए अर्थात् एक खब्बू लेग स्पिनर की गुगली। ऐसी मान्यता है कि इस गेंद की खोज चीन के क्रिकेट खिलाड़ी एलिस एचोंग ने की, इसी से इसका नामकरण 'चाइनामैन' पड़ा।

हैट-ट्रिक—लगातार तीन गेंदों पर तीन विकेट प्राप्त करना हैट-ट्रिक कह-

लाना है। कहा जाता है कि 1850 के आसपास जो गेंदबाज ऐसा गौरव प्राप्त करता था उसे एक हैट इनाम स्वरूप दिया जाता था।

यार्कर—ऐसी गेंद जो आश्चर्यजनक ढंग से बल्लेबाज के पैरों के पास टिप्पा खाए। इसे तेज गेंदबाजों की तुरुप चाल माना जाता है।

हाफ वाली—ऐसी गेंद जो बल्लेबाज के कुछ ही आगे टिप्पा खाए और जिस पर बल्लेबाज आसानी से ड्राइव कर सके।

स्टोन वालर —ऐसा बल्लेबाज जो अत्यधिक धीमा खेले और रन बनाने में कोई दिलचस्पी न दिखाए।

किस्स पेयर—ऐसा बल्लेबाज जो मैच की प्रत्येक पारी में पहली ही गेंद पर आउट हो जाए।

स्टिफी डॉग—ऐसी पिच जिस पर बल्लेबाज को बहुत संभल-संभल कर खेलना पड़ता हो।

गार्ड—वह स्थान जहां पर खड़ा होकर बल्लेबाज खेलना पसंद करता है। मुख्यतः बल्लेबाज लेग स्टंप गार्ड, लेग और मिडिल स्टंप गार्ड या मिडिल स्टंप गार्ड लेते है अर्थात् इन्हीं स्थानों में से एक पर बल्लेबाज निशान लगाकर वहां खड़ा होता है। गार्ड का निशान गेंदबाजी दिशा पर खड़े अंपायर द्वारा निर्धारित किया जाता है।

कीर्ति आजाद

दिल्ली विश्वविद्यालय की क्रिकेट को अमूल्य देन कीर्ति आजाद है। कीर्ति आजाद उत्तर-क्षेत्र विश्वविद्यालय का सफल कप्तान रह चुका है। उसने 1978-79 के विजी ट्राफी टूर्नामेंट में कप्तानी की व राष्ट्रीय स्तर क्रिकेट में अपने शानदार पांच शतकों का योगदान दिया।

तीस वर्षीय कीर्ति, दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंटस्टीफन कॉलेज में इतिहास का विद्यार्थी रह चुका है। कीर्ति का जन्म बिहार में पूर्णिया में 2 जनवरी, 1959 को हुआ। उसके पिता श्री भागवत् झा आजाद केन्द्र में मंत्री व बिहार के मुख्यमंत्री रहे हैं। वह अपने तीनों भाइयों मे सबसे छोटा है। श्री भागवत् झा स्वयं भी भागलपुर विश्वविद्यालय मे वालीबॉल की टीम के कप्तान रह चुके हैं।

कीर्ति अपनी कलाई का बहुत उपयोग करते हैं। वह आखिरी समय तक गेंद को परख कर अपनी शक्ति लगाकर ही प्रहार करते हैं। स्थिति को देखकर रन बटोरने की क्षमता उनमें बहुत है।

कीर्ति आज़ाद ने न केवल बल्लेबाजी में, बल्कि गेंदबाजी में निपुणता हासिल की। वह आलराउण्डर हैं। वह अपनी आफ ब्रेक गेंदबाजी का प्रयोग भारतीय

पिचों पर अधिक उत्तम समझते हैं क्योंकि यह एक अच्छे बाएं हाथ के स्पिनर हैं।

कुश्ती

कुश्ती के खेल का इतिहास बहुत पुराना है। इसलिए यह बता सकना काफी मुश्किल है कि कुश्ती का खेल कब और कैसे शुरू हुआ। इस खेल की शुरुआत सबसे पहले भारत में हुई और उसके बाद कुश्ती-कला का प्रसार ईरान, रोम और दुनिया के दूसरे भागों में हुआ। प्राचीन भारत में कुश्ती को मल्लविद्या कहा जाता था। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार यूनान में ईसा से पूर्व सन् 708 में ओलम्पिक खेलों में कुश्ती प्रतियोगिता का लेखा मौजूद है। पर यूनान के पास यदि एक हरकुलीस है तो भारत के पास ऐसे कई हरकुलीस हैं।

कहते हैं कि 1938 में बयापजी (बगदाद) नामक स्थान पर खुदाई के दौरान कुछ पत्थर निकले, जिनपर 5,000 वर्ष पूर्व के कुश्ती सम्बन्धी आलेख व आंकड़े खुदे हुए थे। उन शिलालेखों के अनुसार कुश्ती की शुरुआत भारत में हुई। इसके बाद यह कला ईरान गई, ईरान से रोम और फिर विश्व के दूसरे भागों में कुश्ती-कला का प्रसार हुआ।

कहा जाता है कि शुरू-शुरू में इस खेल का स्वरूप बिल्कुल अवैज्ञानिक और करीब-करीब जंगली था। तब तक इस खेल के नियम और उप-नियम भी तैयार नहीं किए गए थे। पहलवान 'जय बजरंगबली' या 'वाहे गुरु की फतह' का उच्चारण कर आपस में भिड़ पड़ते थे। जो जिसको चित कर देता बस उसे ही विजेता घोषित कर दिया जाता। उस जमाने में न तो वजन के आधार पर पहलवानों का वर्गीकरण किया जाता था और न समय की ही कोई सीमा होती थी। कुश्ती के कोई निश्चित नियम भी नहीं थे। इसीलिए 1896 में जब एथेन्स में ओलम्पिक खेलों का आयोजन किया गया तो कुछ ऐसे नियम बनाए गए जो सब जगह समान रूप से लागू किए जा सकें।

भारत के प्राचीन ग्रन्थों—रामायण और महाभारत—में भी कुश्ती-कला का उल्लेख हुआ है। यहां तक कि हनुमान, बाली, सुग्रीव, भीम और बलराम जैसे योद्धाओं का चित्रण भी महान पहलवानों के रूप में ही किया गया है। कहा जाता है कि भारतीय कुश्ती के दाव-पेचों की शुरुआत महाभारत काल से ही शुरू हो गई थी। महाभारत में भीम और जरासंध पहलवानों की मुठभेड़ का अच्छा-खासा वर्णन है। रावण के दरबार में अनेकों मल्ल योद्धा थे। पौराणिक कथाओं में जामवन्त, हनुमान, जरासन्ध और भीम जैसे नायकों की कुश्ती तकनीकों का विस्तार से वर्णन किया गया है। मुगल बादशाहों को भी कुश्ती के खेल से विशेष दिलचस्पी थी, सरदार, जमींदार और राजे-महाराजे अपने यहां बड़े-बड़े पहलवानों

को संरक्षण देते और बड़ी-बड़ी कुश्तियों का आयोजन करवाते। उत्सव, मेले या त्योहार के अवसर पर भी बड़े-बड़े दंगलों का आयोजन किया जाता था।

1900 के दौरान भारत में गामा, इमामबख्श, करीमबख्श, रहीम सुल्तानीवाला, गेंदासिंह तथा कीकरसिंह आदि कई नामी पहलवान हुए जिन्हें 'रुस्तम-ए-हिन्द' और 'रुस्तम-ए-जहान' का पद प्राप्त हुआ। सन् 1892 में करीमबख्श ने इंग्लैंड के टाम कैनन को और 1900 में गुलाम ने पेरिस में तुर्की के कादर अली को हराया था। 1910 में गामा, इमामबख्श और अहमदबख्श तथा गामू इंग्लैंड गए थे। इंग्लैंड में आयोजित कुश्ती प्रतियोगिता में इन पहलवानों को ले जाने का श्रेय शरत कुमार मित्र को है, जिन्होंने सभी पहलवानों का खर्च स्वयं वहन किया था। लेकिन कुश्ती के क्षेत्र में जितनी ख्याति और गौरव गामा को प्राप्त हुआ उतना दुनिया के किसी अन्य पहलवान को प्राप्त नहीं हुआ।

कुश्ती ओलम्पिक और भारत

ओलम्पिक में अगर भारत को थोड़ा बहुत मिला है तो वह सिर्फ हॉकी में। अन्यथा बाकी खेलों में तो टीमें केवल खानापूर्ति के ही लिए जाया करती हैं। हॉकी के अलावा कुछ संभावनाएं प्रकट की जाती हैं, तो वह ले-देकर कुश्ती पर। हां, अब तक भारत को ओलम्पिक में जो एकमात्र व्यक्तिगत पदक का सुख मिला है वह कुश्ती की ही बदौलत। यह पदक कांस्य था और इसे प्राप्त करने का गौरव पाया था पहलवान के० डी० जाधव ने। यह क्षण आया था 1952 के हेलसिंकी ओलम्पिक में।

कुश्ती को सन् 1896 में एथेंस के पहले ही ओलम्पिक में शामिल कर लिया गया था। अगर 1900 के पेरिस ओलम्पिक में कुश्ती की शैलियों ग्रीको रोमन और फ्री स्टाइल पर विवाद न छिड़ता तो भारत इस ओलम्पिक से ही कुश्ती प्रतियोगिता में अपना नाम जुड़वा लेता। उस समय स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू जिनकी अंतर्राष्ट्रीय कुश्ती जगत में काफी ख्याति थी, 'रुस्तम-ए-हिन्द' गुलाम पहलवान को लेकर पेरिस पहुंच गए। किन्तु ओलम्पिक के जनक पियरे कुबर्तिन के अपने ही देश में प्रतिरोध होने और तकनीकी समिति के प्रतिनिधियों के मध्य कुश्ती की दो शैलियों पर असामंजस्य की स्थिति पैदा हो गई।

इसके बाद कुश्ती की शैली को लेकर काफी वाद-विवाद उभरे। इस गहरे विवाद के कारण से भारत इंतजार सूची में लटका रहा। चूंकि काफी पहले से अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति ने घोषणा कर दी थी कि एंटवर्प (1930) के ओलिम्पिक में फ्रीस्टाइल और ग्रीकोरोमन शैली अलग अलग होंगी—भारत ने सर्वप्रथम दो पहलवानों के दल को भाग लेने भेजा। ओलम्पिक कुश्ती में भारत के प्रवेश पर कोल्हापुर के गनपत शिंदे व पूना के अप्पाजी नवाले ने शानदार

प्रदर्शन किया। ये दोनों प्रिक्वार्टर फाइनल राउंड तक प्रविष्ट होने में सफल रहे।

1936 के ओलम्पिक में भारत ने तीन पहलवानों का दल भेजा। इसमें पंजाब के करम रसूल, उत्तर प्रदेश के रशीद अनवर और बड़ौदा के थोरात शामिल थे—इन्हें अमेरिकी प्रशिक्षक के० डब्ल्यू० मंबी ने प्रशिक्षण दिया। इन तीनों ने अच्छा प्रदर्शन किया। यह बात दूसरी थी कि इन्हें अपने वजन को संतुलित करने के लिए बाकायदा उपवास रखने पड़े।

आज़ाद भारत ने पहली बार 1948 के लन्दन ओलिम्पिक में हिस्सा लिया। के०पी० राय के नेतृत्व में जिस कुश्ती दल ने भाग लिया उसमें—के०डी० जाधव, बंतासिंह, निर्मल बोस, ए० आर० भार्गव और एस० बी० सूर्यवंशी शामिल थे।

1952 का हेलसिंकी ओलम्पिक। इसमें भारत ने अपना पहला व्यक्तिगत पदक अर्जित किया था। इस ओलिम्पिक कुश्ती दल में 4 पहलवान शामिल थे—के०डी० जाधव, मंगवे श्रीरंग जाधव, निर्मल बोस, निरंजनदास। विख्यात अंतर्राष्ट्रीय रेफरी के०पी० राय को दल में सम्मिलित किया गया था लेकिन तकनीकी गलती और स्वास्थ्य ठीक न होने की वजह से वे दल के साथ न जा सके। एक अन्य पहलवान निर्मल बोस हेलसिंकी पहुंच जाने के बावजूद प्रविष्टि की लेटलतीफी की वजह से प्रतियोगिता में भाग लेने के अवसर से वंचित रह गए। के० डी० जाधव ने भारत को व्यक्तिगत पदक का पहली बार दावेदार बनाया। अगर जाधव ने भोजन में लापरवाही बरतकर वजन बढ़ाने की गलती न की होती तो कोई दो राय नहीं कि स्वर्ण पदक न ले आते। अभी तक किसी भी स्पर्धा के अंतिम चक्र तक पहुंचने वाले जाधव एकमात्र भारतीय हैं। सोवियत संघ के रशीद मैदवेकोव और जापान के शोहाची इशी के विरुद्ध हुई लड़त एक ज़ोरदार याद रहेगी एक अन्य भारतीय पहलवान मगवे श्रीरंग जाधव अभागे रहे अन्यथा वे भी पदक हासिल कर सकते थे। वे हेन्सन से सिर्फ एक अंक से हार गए थे। इस प्रकार उन्हें चौथा स्थान नसीब हुआ।

1956 के मेलबोर्न ओलिम्पिक में भारत की ओर से सात पहलवान शरीक हुए। ये थे तारकेश्वर पांडे, रामस्वरूप, बदन दवारे, लक्ष्मीकांत पांडे, सीताराम, बख्शीश सिंह और देवीसिंह। जिस प्रकार के पूर्वानुमान थे वे सब टांय-टांय फिस्स हो गए। कारण, नियमों में काफी फेर बदल कर दिए गए, जिससे भारतीय पहलवान भ्रमित हो गए।

1960 के रोम ओलिम्पिक खेलों के लिए भारत ने पांच सदस्यों का कुश्ती दल भेजा। इसमें माधोसिंह, श्यामसुंदर, ज्ञानप्रकाश, उदयचंद और सज्जन शामिल थे। श्यामसुंदर, ज्ञानप्रकाश और उदयचंद तो बिना किसी संघर्ष के ही लड़ंत हार बैठे। किंतु माधोसिंह ने पूरे दम से तुर्की के गुंगारे का सामना किया, अगर माधोसिंह ने बार-बार उलट दांव न लगाया होता तो वे पदक विजेताओं की सूची

में होते। बाद में गुंगारे ने स्वर्ण पदक हथियाया। एक अन्य पहलवान सज्जन ने सातवां स्थान प्राप्त किया।

तोकियो में 1968 मे हुए ओलम्पिक मे पहली बार आठ पहलवान शरीक किए गए। ये आठ पहलवान थे—वंदा पाटिल, उदयचन्द, मालवा, विशम्भर, माधोसिंह, जीवसिंह, गनपत आदलकर और मारुति माने। फ्री स्टाइल शैली की कुश्ती में विशंभर ने छठा, मालवा मारुति माने और माधोसिंह ने नवा स्थान प्राप्त किया। अगर ड्रॉ प्रतिकूल न होते तो वे अपेक्षाओं मे खरे उतर सकते थे। कई भारतीय पहलवान घायल और थके हुए थे, लेकिन इसके बावजूद हमारे पांच पहलवानों—मालवा, गनपत आंदलकर, विशंभर, वंदा पाटिल और मारुति माने ने ग्रीको (रोमन शैली) की कुश्ती में भाग लिया। हालांकि इन्हें विशेष अभ्यास नहीं था, फिर भी मालवा व विशंभर की विजय अप्रत्याशित थी। इन दोनों ने अपने-अपने वर्गों में पहले 10 पहलवानो मे स्थान बनाया।

1968 के मैक्सिको ओलिम्पिक मे चार सदस्यों का भारतीय दल गया। सुदेश और विशंभर ने अपने-अपने वजनों में छठा स्थान अर्जित किया, जबकि उदयचद पांचवें स्थान पर रहे। 1972 के म्युनिख ओलिम्पिक में 10 पहलवान शरीक हुए। कम वजन के वर्गों में हनुमान अखाड़े के दो पहलवान सुदेश और प्रेमनाथ ने चौथा स्थान लिया। अगर सुदेश ने अंतिम चक्र में ज्यादा आत्मविश्वास प्रदर्शित न किया होता तो वे पदक भी जीत सकते थे। 1976 के मांट्रियल ओलिम्पिक में भारती कुश्ती दल, संघ मे व्याप्त राजनीति की वजह से भाग न ले सका। यही ओछी राजनीति इस समय भी कुश्ती का दामन पकड़े हुए है।

राष्ट्रीय कुश्ती चैम्पियनशिप 1948 से 1988 तक

1948 लखनऊ	1966 पटियाया	1960 दिल्ली	1975 पूना
1948 लखनऊ	1966 पटियाला	1961 गुंटूर	1978 करनाल
1950 बम्बई	1967 क्यूलान	1962 जबलपुर	1979 शिमला
1952 मद्रास	1968 अजमेर	1963 जालन्धर	1980 मंगलौर
1953 हैदराबाद	1969 शिमला	1964 1981	1981 अजमेर
1954 दिल्ली	1970 कटक	1965 कोल्हापुर	1982 गाजियाबाद
1955 जबलपुर	1971 गंटूर	1983 जालन्धर	1986 दिल्ली (छावला)
1956 पटियाला	1972 वाराणसी		
1958 कटक	1973 बम्बई	1987 भोपाल	1988 दिल्ली (छावला)
1959 अमृतसर	1974 रोहतक		

1980 के मॉस्को ओलिम्पिक में भारतीय पहलवानों की सफलताएं उल्लेख-

नीय थी। लाइटवेट में जगमिंदर ने चौथा स्थान प्राप्त किया जबकि लाइट फ्लाय-वेट मे महावीर ने पांचवां, राजिन्दरसिंह छठें स्थान पर रहे। किन्तु सतपाल, करतार एवं अशोक कुमार जिनसे विशेष अपेक्षाएं थीं खरे नहीं उतर सके।

के० डी० सिंह 'बाबू'

श्री दिग्विजयसिंह 'बाबू' ने 1952 में हेलसिंकी में हुए ओलम्पिक खेलों में भारतीय हाकी टीम का नेतृत्व किया था। 'बाबू' का जन्म 1923 मे बाराबंकी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। बाराबंकी से स्कूली परीक्षा पास करने के बाद 1938 में उन्होंने लखनऊ के कान्यकुब्ज कॉलेज (अब जयनारायण कॉलेज) में दाखिला पाया। अपने खेल-कौशल की बदौलत वे शीघ्र कॉलेज टीम के चर्चित खिलाड़ी बन गए।

'ड्रिबलिंग' में उनकी महारत थी। हो भी क्या नहीं—वे घंटों एक गोल से दूसरे गोल तक ईंट को बिछाकर उनके बीच फर्राटे से गेंद नचाकर गोल का अभ्यास करते थे। देखते ही देखते बाबू 1939-40 में संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) टीम के स्तंभ बन गए।

1940-44 के विश्वयुद्ध ने बाबू की अंतर्राष्ट्रीय हॉकी में शिरकत की तमन्ना पूर्ण नही होने दी। पर दुर्भाग्य के बादलों को छंटना ही पड़ा। विश्वयुद्ध तो खत्म हुआ ही, देश आजाद भी हो गया। कुंवर दिग्विजयसिंह 'बाबू' भी भारतीय टीम में शामिल किए गए। पहले ही दौरे मे दादा ध्यानचंद के नेतृत्व मे ईस्ट अमेरिका में खेलने का उन्हे मौका मिला। उस दौरे में दोनों खिलाड़ी छाए रहे—इनसाइड राइट कुंवर दिग्विजयसिंह बाबू और आउट साइड राइट किशनलाल। खेल-जगत में वह 'बाबू' नाम से अधिक लोकप्रिय हुए। वह देश के सर्वश्रेष्ठ 'इनसाइड राइट' माने जाते हैं। 1948 में लन्दन ओलम्पिक में उन्हें टीम का उप-कप्तान नियुक्त किया गया था। 1939-40 से लेकर 1959 तक उन्होंने राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिताओं में उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व किया। 1952 में हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों में उन्होंने भारतीय टीम का कुशल नेतृत्व किया और जैसे ही वह विजय प्राप्त करके लौटे तो उन्हें 'हेल्म्स ट्राफी' से पुरस्कृत किया गया। 'हेल्म्स ट्राफी' विभिन्न द्वीपों के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों को दी जाती है और वह ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करने वाले पहले भारतीय हैं। 1958 में उन्हें पद्मश्री से भी अलंकृत किया गया। 1972 में म्यूनिख ओलम्पिक खेलों मे भाग लेने वाली भारतीय हाकी टीम का उन्हें प्रशिक्षक नियुक्त किया गया था। मृत्यु 1979 में।

केन बेरिंग्टन

क्रिकेट खेलने का उत्साह और उसके लिये मर-मिटने की तमन्ना दो अलग-अलग जज्बे हैं। एक लगन है तो दूसरा समर्पण। इंग्लैंड के केन बैरिंग्टन दूसरी तरह के खिलाड़ी थे। वह क्रिकेट के लिए जिये और जब उनकी मृत्यु हुई तब भी वह क्रिकेट के प्रति पूरी तरह समर्पित थे।

शनिवार, 15 मार्च, 1981 का दिन इंग्लैंड क्रिकेट के लिए दुखद दिन था। एक दिन पूर्व ब्रिज टाउन बारबाडोज में वेस्ट इंडीज और इंग्लैंड के बीच तीसरा टेस्ट मैच शुरू हुआ। वेस्ट इंडीज की टीम पहले बल्लेबाजी करते हुए पहले दिन 7 विकेट पर 238 रन बना सकी थी। लेकिन दूसरे दिन इंडीज की टीम केवल 265 रन पर ही बिखर गयी। श्रृंखला का पहला टेस्ट इंग्लैंड हार गया था और दूसरा टेस्ट द० अफ्रीका में जन्मे गेंदबाज जैकमैन पर विवाद के कारण रद्द हो गया था। इंडीज को इतने अल्प स्कोर पर आउट कर लेने के बाद इंग्लैंड के हौसले बुलंदी पर थे और यह समझा जा रहा था कि इंग्लैंड अवश्य ही अच्छी बल्लेबाजी करेगा किंतु वह केवल 122 रन पर उखड़ गया। केन बैरिंग्टन टीम के असिस्टेंट मैनेजर थे। टीम के बुरे प्रदर्शन से वह बहुत दुखी थे। शाम को बुझे हुए मन से उन्होंने होटल 'हॉली डे इन' में डिनर लिया और अचानक उन्हें छाती में दर्द उठा। इससे पहले कि डाक्टर को बुलाया जाता उनके प्राण पखेरु उड़ गए। उस समय इंग्लैंड टीम के कप्तान इयान बाथम ने बाद में स्वीकार किया कि बैरिंग्टन टीम का बुरा प्रदर्शन सह न पाये।

ऐसा नहीं है कि बैरिंग्टन केवल विजय को ही पसंद करते हों या वह हार को नहीं सह सकते थे। सच्चाई यह थी कि जितनी बुरी तरह इंग्लैंड टीम हार रही थी, उससे वह क्षुब्ध थे। 1967 में उन्हें पहली बार दिल का दौरा पड़ा था। उस समय वह आस्ट्रेलिया में डबल विकेट प्रतियोगिता खेल रहे थे। सभी डाक्टरों ने उनसे कहा था कि अब वह क्रिकेट नहीं खेल पायेंगे बैरिंग्टन डाक्टरों के निर्देश को मान गये लेकिन पहले चयनकर्ता और बाद में मैनेजर के रूप मे क्रिकेट से जुड़े रहे। केवल मौत ही उन्हें क्रिकेट से जुदा कर पायी।

यों तो बैरिंग्टन ने 1951 में ही टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश पा लिया था लेकिन उनका यादगार प्रदर्शन 1961-62 के सीजन में रहा जब टेड डेक्सटर के नेतृत्व में इंग्लैंड टीम भारत और पाकिस्तान दौरे पर आयी। इस दौरे का पहला टेस्ट मैच पाकिस्तान में था। इंग्लैंड टीम पहली बार पाकिस्तान के अधिकृत दौरे पर आयी थी। पाकिस्तान ने जावेद बर्की (138 रन) के शतक की बदौलत 387 (9 विकेट पर घोषित) बनाकर अपनी स्थिति सुरक्षित कर ली थी। इधर इंग्लैंड ने केवल 21 रन पर रिचर्ड्सन और पुलर के प्रारंभिक विकेट खो दिये थे। तब बैरिंग्टन स्मिथ के साथ मैदान में उतरे और दोनों ने टीम का स्कोर 213 तक

पहुंचाया। तब स्मिथ 99 रन बनाकर आउट हुए। बाद में बैरिंग्टन भी 139 रन पर रन आउट हुए। बहरहाल, इंग्लैंड 380 रन बनाकर करारा जवाब देने में सफल हो गया। दूसरी पारी में पाकिस्तान की टीम केवल 200 पर ही बिखर गयी, इग्लैंड को 5 विकेट से जीत हासिल हो गयी इस जीत का सेहरा बंधा बैरिंग्टन के सिर पर।

इस टेस्ट के बाद इंग्लैंड टीम भारत आ गई। पहला टेस्ट बंबई में था और पहले ही टेस्ट में बैरिंग्टन ने शतकीय पारी खेली। पहली पारी में वह 151 रन बनाकर अंत तक आउट नहीं हुए। इग्लैंड ने केवल 8 विकेट पर 500 रन बनाये थे। दूसरी पारी में भी बैरिंग्टन ने 52 रन बनाये। आखिर यह टेस्ट अनिर्णीत खत्म हुआ।

दूसरा टेस्ट कानपुर में हुआ। बैरिंग्टन एक बार फिर शतक बनाने में सफल रहे। इस बार उन्होंने दूसरी पारी में 172 रन बनाये और रन आउट हो गए थे। यह टेस्ट भी अनिर्णीत समाप्त हुआ था। बैरिंग्टन ने लगातार चौथा शतक दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान पर ही जड़ा। इस बार भी वह आउट नहीं हुए। शेष दो टेस्ट मैच क्रमशः कलकत्ता और मद्रास में हुए किंतु बैरिंग्टन की सफलता की कहानी वहां नहीं दोहरायी जा सकी। फिर भी इस दौरे के सभी मैचों में वह 1329 रन बनाने में सफल हुए थे।

बैरिंग्टन ने कुल 20 शतक जमाये लेकिन उक्त शृंखला में तो जैसे उनका जादू चला था। बैरिंग्टन बड़े ही अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे। इसका कारण यह था कि वह एक सैनिक के पुत्र थे। फलस्वरूप शक्ति और तकनीक में उनका कोई सानी नहीं था। तभी तो अपने मित्रों में वह 'कर्नल साहब' के नाम से मशहूर थे। उन्होंने अपना टेस्ट कैरियर सरे की ओर से लैग स्पिनर के रूप में आरंभ किया लेकिन जब बल्लेबाजी पर ध्यान देना शुरू किया तो संपूर्ण बल्लेबाज बने। बैरिंग्टन मूलतः आक्रामक बल्लेबाज थे लेकिन कभी गलत शाट खेलकर आउट नहीं हुए थे।

क्रिकेट के प्रति उनके समर्पण का अंदाजा इस बात भर से लगाया जा सकता कि उन्होंने व्यापार अपनाया तो वहभी खेल सामग्री बेचने का। क्रिकेट के प्रति समर्पित ऐसा व्यक्तित्व शायद फिर कभी देखने को मिले।

टेस्ट रिकार्ड : 82 टेस्ट, 131 पारी, 6806 रन (औसत 58.67), 20 शतक, 58 कैच, 29 विकेट औसत 44 82)।

गर्ड मूलर

गर्ड मूलर पश्चिम जर्मनी के प्रसिद्ध फारवर्ड खिलाड़ियों में से एक थे। अपने सुदर तथा श्रेष्ठ क्रीड़ा-कौशल से ये प्राय अपनी टीम को विजयी बनाते रहे। 1970 के विश्व कप में पश्चिमी जर्मनी की टीम का नेतृत्व भी इन्होंने किया और इस प्रतियोगिता में 10 गोल करके एक नवीन कीर्तिमान स्थापित किया। 1970 में ही इन्हें यूरोप का सर्वश्रेष्ठ फुटबाल खिलाड़ी घोषित किया गया।

गामा

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसे भारत और पाकिस्तान के लोग अपना कहते हुए गर्व महसूस करते है। वे 'रुस्तम-ए-जहां' थे, यह विवादास्पद हो सकता है क्योंकि उन दिनों आजकल जैसी विश्व प्रतियोगिताओं का आयोजन नही होता था लेकिन एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि उन दिनो में गामा ने भारत को विश्व खेलों के नक्शे पर ला चढ़ाया था।

पहलवानो की दुनिया के सबसे बड़े कहे जाने वाले फनकार का जन्म 1878 मे रियासत दतिया मे हुआ था। इनका असली नाम, आप जानते है, गुलाम हुसैन था। इनके पिता अजीज बक्श महाराजा दतिया के शाही पहलवान थे। यही कारण है कि गामा का बचपन दतिया राजकुमार के साथ बड़े ही अच्छे माहौल मे गुजरा था।

अंग्रेजी हुकूमत के दिनों मे देशी रजवाड़ों की तूती बोला करती थी और भारत के रजवाड़ों में पहलवानों को बड़े लाड़-प्यार से पाला जाता था। गामा दतिया में जन्मे अवश्य लेकिन इनका यौवन पटियाला महाराज के यहा निखरा। घटना 1910 की है जबकि गामा 32 वर्ष के थे। ध्यान रहे आजकल 30 वर्ष पार कर ही खिलाड़ी संन्यास ले लेते हैं। बंगाल के लखपति सेठ शरद कुमार गामा और इनके साथियों को इंग्लैंड ले गए। इस समय में लंदन में दुनिया के पहलवानों का मेला जुड़ने वाला था। भारत की ओर से गामा के साथ इमाम बख्श और अहमद बख्श भी गए। साढ़े पांच फुट लंबे गामा का वजन 200 पौंड था।

गामा उस समय अपना संतुलन खो बैठे जब लंदन दंगल के आयोजकों ने गामा को नाटे कद का एक साधारण पहलवान समझकर उन्हें अपनी सूची में ही शामिल नहीं किया। असलियत में भारी भरकम शरीर वाले सैकड़ों पहलवान लंदन मे एकत्र हुए थे। गामा से नहीं रहा गया। गामा ने अपने मैनेजर बिन

जामीन को कहा कि "इंग्लैंड के अखबारों में मेरा चैलेंज दे दो कि मेरे मुकाबले दुनिया का जो भी पहलवान अखाड़े पर पांच मिनट से अधिक कुश्ती लड़ लेगा उसे मैं पांच पौंड नगद इनाम दूंगा।" गामा का यह चुनौती दंगल लंदन के एक थियेटर में चंद दिनों चला जहां गामा ने प्रत्येक प्रतिद्वंद्वी को धराशायी कर नाम कमाया। इसका असर यह हुआ कि लंदन दंगल आयोजकों को गामा के प्रवेश-पत्र को स्वीकार करना पड़ा।

उन दिनों कुश्ती लड़ने के कोई नियम न थे। न समय नियत था और न दांव-पेच पर कोई रोक थी। अगर कोई पहलवान दूसरे को चित कर दे तब भी कुश्ती उस समय तक जारी रहती थी जब तक कि दो मे से एक अपनी हार स्वीकार न कर ले। रुस्तम-ए-जमा को इनाम में दिये जाने वाला पटका, जो कमर में बांधने वाली पट्टी की शक्ल में था, एक ऐसी ऊंची जगह पर लटका दिया गया था जहां कि हर एक की निगाह पड़ जाना स्वाभाविक था।

गामा ने पहली बार इस पटके को देखा तो यकायक उनके मुंह से यह शब्द निकले '''न मालूम कौन खुशकिस्मत पहलवान इसे पहनेगा।"

दंगल उन दिनों कुछ इस तरह हुआ करते थे कि हर आठवें दिन दो पहल-वानों की कुश्ती करायी जाती और विजेता अगले आठ दिन बाद फिर कुश्ती लड़ता। इस प्रकार गामा लगभग दो महीने मे आठ पहलवानों को शिकस्त दे चुके थे और इनका (फाइनल) अंतिम मुकाबला स्टेनले जेबिस्को से पड़ा। जेबिस्को इन दिनों यूरोप का खूंखार चैंपियन पहलवान था।

10 दिसंबर, 1910 को लंदन का शेफर्डबिस स्टेडियम दर्शकों से खचाखच भरा था। इटली, फ्रांस, स्काटलैंड और जापानी पहलवानों की टोलियां उमड़ पड़ी थीं। गामा-जेबिस्को से हाथ मिलाकर कुश्ती छोड़ी गई। पांच मिनट तक दोनों एक दूसरे की ताकत को तौलते रहे। इस बीच गामा ने दो बार हमले किये जिन्हें जेबिस्को बचा गया। गामा के तीसरे आक्रमण पर जेबिस्को औंधे मुंह गिर पड़ा। गामा ने सवारी गांठ ली। लगभग 25 मिनट तक गामा उसकी पीठ पर सवार रहा। अचानक जेबिस्को चमककर उठा और उसने गामा पर हमला बोल दिया। गामा जमीन पर आ रहा और केवल तीन मिनट तक जेबिस्को गामा के ऊपर सवारी गांठे रहा।

ध्यान रहे जेबिस्को का वजन तीन स्टोन 12 पौंड अधिक था। अतः गामा का जेबिस्को की पकड़ से निकल जाने का स्पष्ट मतलब था कि गामा बड़े फुर्तीले ही नहीं बल्कि दावपेंच से वाकिफ थे। पूरी कुश्ती में गामा ने 55 मिनट तक सवारी गांठी जबकि जेबिस्को बार-बार गिरता और जमीन पकड़कर सांस लेता। अपनी दुर्गति देखकर जेबिस्को ने रेफरी से अनुरोध कर कहा कि "आज मैं बहुत थक गया हूं—मुकाबला अगले दिन जारी रखें।" रेफरी ने इंसानियत के नाते

अनुरोध स्वीकार कर कुश्ती रोक दी। यह विश्व विख्यात कुश्ती पौने तीन घंटे चली थी। अगली बार 17 दिसंबर को जेबिस्को कुश्ती लड़ने नहीं आया और गामा को रुस्तम-ए-जमा की पट्टी बांध दी गई।

जेबिस्को फिर पिटा

इसके बाद एक बार फिर जेबिस्को अपनी पराजय का बदला लेने पटियाला आया। गामा जेबिस्को की यह भिड़ंत 28 जनवरी 1928 को पटियाला में हुई। इस बार गामा ने केवल ढाई मिनट में जेबिस्को को निचोड़ डाला। गामा की विजय से खुश होकर महाराज पटियाला ने इसे आधा मन का चांदी का गुर्ज और 20 हजार रुपये नकद इनाम दिए। जेबिस्को ने गामा को उस समय 'बबर शेर' कहा था।

देश के विभाजन के बाद गामा पटियाला छोड़कर लाहौर चले गए। इनके अंतिम दिन बड़ी मुसीबत में बीते। इन्हें दमे की बीमारी लग गयी और अंतिम दिनों में इन्हें अपने वह सभी गुर्ज और चांदी के कप आदि बेचने पड़े। रावी नदी के किनारे इस अजेय पुरुष को एक छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर रहना पड़ा। गामा की बीमारी की खबर सुनकर पटियाला और बिरला बंधुओं ने आर्थिक मदद देने की पेशकश की, लेकिन 23 मई 1960 को भारत का यह सपूत सदा के लिए रुखसत हो गया। इनका जनाजा लाहौर के मशहूर कब्रिस्तान मीर मक्की में सुपुर्द खाक किया गया। जहां आज भी भारतीय भ्रमणकारी अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाना नहीं भूलते।

गामा मर कर भी अमर है। भारतीय कुश्ती कला की विजय पताका को विश्व में फहराने का श्रेय केवल गामा को ही प्राप्त है।

गावसकर, सुनील

6 मार्च 1971 को वेस्टइंडीज के खिलाफ अपना टेस्ट कैरियर शुरू करने वाले सुनील मनोहर गावसकर (जन्म : 10 जुलाई, 1949 बम्बई) ने 16 साल बाद 7 मार्च, 1987 को अपना दस हजारवां रन भी पूरा कर लिया, गावसकर ने अपनी इस लम्बी क्रिकेट यात्रा के दौरान एक-से-एक खूबसूरत मील के पत्थर स्थापित किये हैं, लेकिन जितना अलौकिक और अद्वितीय 7 मार्च 1987 को बना कीर्तिमान था, उतना कोई अन्य नहीं, खुद गावसकर के लिए भी और उनके लाखों लाख प्रशंसकों के लिए भी यह दिन एक ऐतिहासिक दिन की तरह है।

आइए, गावसकर की इस दिव्य क्रिकेट यात्रा का हम-आप भी लुत्फ उठाएँ, जिसमें 34 शतकों और 55 अर्द्धशतकों की सुन्दर बयार के अलावा हर देश के खिलाफ अपनी और उनकी जमीन पर बनाये गए अन्य तगड़े स्कोर भी हैं और

जामीन को कहा कि "इंग्लैंड के अखबारों में मेरा चैलेंज दे दो कि मेरे मुकाबले दुनिया का जो भी पहलवान अखाड़े पर पांच मिनट से अधिक कुश्ती लड लेगा उसे मैं पांच पौंड नगद इनाम दूंगा।" गामा का यह चुनौती दंगल लंदन के एक थियेटर में चंद दिनों चला जहां गामा ने प्रत्येक प्रतिद्वंद्वी को धराशायी कर नाम कमाया। इसका असर यह हुआ कि लंदन दंगल आयोजकों को गामा के प्रवेश-पत्र को स्वीकार करना पड़ा।

उन दिनों कुश्ती लडने के कोई नियम न थे। न समय नियत था और न दांव-पेच पर कोई रोक थी। अगर कोई पहलवान दूसरे को चित कर दे तब भी कुश्ती उस समय तक जारी रहती थी जब तक कि दो में से एक अपनी हार स्वीकार न कर ले। रुस्तम-ए-जमा को इनाम में दिये जाने वाला पटका, जो कमर में बांधने वाली पट्टी की शक्ल में था, एक ऐसी ऊंची जगह पर लटका दिया गया था जहां कि हर एक की निगाह पड़ जाना स्वाभाविक था।

गामा ने पहली बार इस पटके को देखा तो यकायक उनके मुंह से यह शब्द निकले '''न मालूम कौन खुशकिस्मत पहलवान इसे पहनेगा।"

दंगल उन दिनों कुछ इस तरह हुआ करते थे कि हर आठवें दिन दो पहल-वानों की कुश्ती करायी जाती और विजेता अगले आठ दिन बाद फिर कुश्ती लड़ता। इस प्रकार गामा लगभग दो महीने में आठ पहलवानों को शिकस्त दे चुके थे और इनका (फाइनल) अंतिम मुकाबला स्टेनले जेबिस्को से पड़ा। जेबिस्को इन दिनों यूरोप का खूंखार चैंपियन पहलवान था।

10 दिसंबर, 1910 को लंदन का शैफर्डबिस स्टेडियम दर्शकों से खचाखच भरा था। इटली, फ्रांस, स्काटलैंड और जापानी पहलवानों की टोलियां उमड़ पड़ी थी। गामा-जेबिस्को से हाथ मिलाकर कुश्ती छोडी गई। पांच मिनट तक दोनों एक दूसरे की ताकत को तौलते रहे। इस बीच गामा ने दो बार हमले किये जिन्हें जेबिस्को बचा गया। गामा के तीसरे आक्रमण पर जेबिस्को औंधे मुंह गिर पड़ा। गामा ने सवारी गांठ ली। लगभग 25 मिनट तक गामा उसकी पीठ पर सवार रहा। अचानक जेबिस्को चमककर उठा और उसने गामा पर हमला बोल दिया। गामा जमीन पर आ रहा और केवल तीन मिनट तक जेबिस्को गामा के ऊपर सवारी गांठे रहा।

ध्यान रहे जेबिस्को का वजन तीन स्टोन 12 पौंड अधिक था। अतः गामा का जेबिस्को की पकड़ से निकल जाने का स्पष्ट मतलब था कि गामा बड़े फुर्तीले ही नहीं बल्कि दांव-पेंच से वाकिफ थे। पूरी कुश्ती में गामा ने 55 मिनट तक सवारी गाठी जबकि जेबिस्को बार-बार गिरता और जमीन पकड़कर सांस लेता। अपनी दुर्गति देखकर जेबिस्को ने रैफरी से अनुरोध कर कहा कि "आज मैं बहुत थक गया हूं—मुकाबला अगले दिन जारी रखें।" रैफरी ने इंसानियत के नाते

अनुरोध स्वीकार कर कुश्ती रोक दी। यह विश्व विख्यात कुश्ती पौने तीन घंटे चली थी। अगली बार 17 दिसंबर को जेबिस्को कुश्ती लड़ने नहीं आया और गामा को रुस्तम-ए-जमा की पट्टी बांध दी गई।

जेबिस्को फिर पिटा

इसके बाद एक बार फिर जेबिस्को अपनी पराजय का बदला लेने पटियाला आया। गामा जेबिस्को की यह भिड़ंत 28 जनवरी 1928 को पटियाला में हुई। इस बार गामा ने केवल ढाई मिनट में जेबिस्को को निचोड डाला। गामा की विजय से खुश होकर महाराज पटियाला ने इसे आधा मन का चांदी का गुर्ज और 20 हजार रुपये नकद इनाम दिए। जेबिस्को ने गामा को उस समय 'बबर शेर' कहा था।

देश के विभाजन के बाद गामा पटियाला छोड़कर लाहौर चले गए। इनके अंतिम दिन बड़ी मुसीबत मे बीते। इन्हे दमे की बीमारी लग गयी और अंतिम दिनों मे इन्हें अपने वह सभी गुर्ज और चांदी के कप आदि बेचने पड़े। रावी नदी के किनारे इस अजेय पुरुष को एक छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर रहना पड़ा। गामा की बीमारी की खबर सुनकर पटियाला और बिरला बंधुओं ने आर्थिक मदद देने की पेशकश की, लेकिन 23 मई 1960 को भारत का यह सपूत सदा के लिए रुखसत हो गया। इनका जनाजा लाहौर के मशहूर कब्रिस्तान पीर मक्की में सुपुर्द खाक किया गया। जहां आज भी भारतीय भ्रमणकारी अपनी श्रद्धा के फूल चढाना नही भूलते।

गामा मर कर भी अमर है। भारतीय कुश्ती कला की विजय पताका को विश्व में फहराने का श्रेय केवल गामा को ही प्राप्त है।

गावसकर, सुनील

6 मार्च 1971 को वेस्टइंडीज के खिलाफ अपना टेस्ट कैरियर शुरू करने वाले सुनील मनोहर गावसकर (जन्म : 10 जुलाई, 1949 बम्बई) ने 16 साल बाद 7 मार्च, 1987 को अपना दस हजारवा रन भी पूरा कर लिया, गावसकर ने अपनी इस लम्बी क्रिकेट यात्रा के दौरान एक-से-एक खूबसूरत मील के पत्थर स्थापित किये हैं, लेकिन जितना अलौकिक और अद्वितीय 7 मार्च 1987 को बना कीर्तिमान था, उतना कोई अन्य नही, खुद गावसकर के लिए भी और उनके लाखों लाख प्रशंसको के लिए भी यह दिन एक ऐतिहासिक दिन की तरह है।

आइए, गावसकर की इस दिव्य क्रिकेट यात्रा का हम-आप भी लुत्फ उठाएँ, जिसमें 34 शतकों और 55 अर्द्धशतकों की सुन्दर बयार के अलावा हर देश के खिलाफ अपनी और उनकी जमीन पर बनाये गए अन्य तगड़े स्कोर भी हैं और

उन 58 शतकीय साझेदारियों का भी खुलासा है, जो या तो चेतन चौहान के साथ मिलकर बनीं या फिर किसी अन्य भारतीय बल्लेबाज के सहयोग से।

गावसकर के 10,000 रनों का ब्यौरा

रन	टैस्ट	पारी-विरुद्ध		स्थान	तिथि	वर्ष
1000	11	21	इंग्लैंड	कानपुर	11 जनवरी	1973
2000	23	44	वैस्टइण्डीज	पोर्ट ऑफस्पेन	11 अप्रैल	1976
3000	34	68	आस्ट्रेलिया	पर्थ	18 दिसम्बर	1977
4000	43	81	वैस्टइण्डीज	कलकत्ता	29 दिसम्बर	1978
5000	52	95	आस्ट्रेलिया	बंगलौर	20 सितम्बर	1979
6000	65	117	आस्ट्रेलिया	एडीलेड	24 जनवरी	1981
7000	80	140	पाकिस्तान	लाहौर	14 दिसम्बर	1982
8000	95	166	वैस्टइण्डीज	दिल्ली	29 अक्तूबर	1983
9000	110	198	आस्ट्रेलिया	एडिलेड	16 दिसम्बर	1985
10,000	124	212	पाकिस्तान	अहमदाबाद	7 मार्च	1987

गावसकर के विश्व रिकार्ड

1. गावस्कर ने 125 टैस्ट मे 10122 रन बनाए जो एक बल्लेबाज के सर्वाधिक रन हैं।
2. गावस्कर ने सबसे अधिक शतक (34 शतक) बनाए हैं।
3. एक टैस्ट की दोनों पारियों में शतक बनाने का करिश्मा तीन बार दिखा चुके हैं।
4. एक कैलेन्डर वर्ष मे 1000 रन बनाने का करिश्मा चार बार दिखा चुके हैं।
5. अपनी पहली टैस्ट श्रृंखला में किसी बल्लेबाजी के सर्वाधिक 774 रन।
6. वैस्टइंडीज के विरुद्ध सर्वाधिक रन।
7. टैस्ट क्रिकेट मे 58 शतकीय साझेदारियां।
8. वैस्टइंडीज के विरुद्ध सर्वाधिक तीन दोहरे शतक बनाने का आश्चर्यजनक कारनामा।
9. टैस्ट मैच में पहली गेंद पर आउट होने का दुर्भाग्य दो बार गावस्कर के नाम है।
10. दो टैस्ट केन्द्रों पर लगातार चार टैस्टो मे शतक।
11. एक सलामी बल्लेबाजी द्वारा एक टैस्ट श्रृंखला मे सर्वाधिक रन।
12. 6 देशों के विरुद्ध टैस्ट क्रिकेट मे कप्तानी भी गावस्कर कर चुके हैं।

13. टेस्ट क्रिकेट में 50 से अधिक रन 79 बार करने का बेमिसाल करिश्मा।
14. एक टेस्ट की दोनों पारियों मे सर्वाधिक रन 5 बार बना चुके हैं।
15. टेस्ट क्रिकेट में दिनों के हिसाब से सबसे तेज 1000 रन गावस्कर ने बनाए हैं।
16. अधिकतम टेस्ट 125 खेलने का विश्व रिकार्ड।
17. अधिकतम पारियाँ 214 खेलने का विश्व रिकार्ड।
18 अधिकतम अर्धशतक 45 बनाने का विश्व रिकार्ड।
19. सबसे अधिक केन्द्रों (मैदानों) 19 मैदानों पर 34 शतक।

सुनील गावस्कर के टेस्ट शतक

संख्या	स्कोर	तिथि	मिनट	चौक्के/ छक्के	विरुद्ध	स्थान
1.	116	21 371	270	11	वैस्टइण्डीज	जार्ज टाउन
2.	117*	6.4.71	340	10/1	वैस्टइण्डीज	ब्रिजटाउन
3.	124	13.4.71	390	11	वैस्टइण्डीज	पोर्ट ऑन स्पेन
4.	220	18.4.71	510	24	वैस्टइण्डीज	पोर्ट ऑफ स्पेन
5.	101	8.6.74	290	8	इग्लैंड	ओल्ड ट्रैफर्ड
6.	116	25.1.76	356	15/1	न्यूजीलैंड	ऑकलैंड
7.	156	28.3.76	485	13	वैस्टइण्डीज	पोर्ट ऑफ स्पेन
8.	102	6.4.76	245	13	वैस्टइण्डीज	पोर्ट ऑफ स्पेन
9.	119	10.11.76	265	20	न्यूजीलैंड	बम्बई
10.	108	11.2.77	341	13	इग्लैंड	बम्बई
11.	113	6.12.77	320	12	आस्ट्रेलिया	ब्रिस्बेन
12.	127	20.12.77	270	20	आस्ट्रेलिया	पर्थ
13.	118	2.1.78	345	12	आस्ट्रेलिया	मेलबोर्न
14.	111	15.11.78	357	15	पाकिस्तान	कराँची
15.	137	19.11.78	315	20	पाकिस्तान	कराँची
16.	205	2.12.78	397	29/2	वैस्टइण्डीज	बम्बई
17.	107	29.12.78	313	18	वैस्टइण्डीज	कलकत्ता
18.	182*	2.1.79	399	19	वैस्टइण्डीज	कलकत्ता
19.	120	24.1.79	344	18	वैस्टइण्डीज	दिल्ली
20.	221	4.9.79	490	21	इंग्लैंड	ओवल
21.	115	13.10.79	329	17/1	आस्ट्रेलिया	दिल्ली

22.	123	3.11.79	300	17	आस्ट्रेलिया	बम्बई
23	116	17.1.80	593	15/1	पाकिस्तान	मद्रास
24.	172	13.12.81	700	21	इंग्लैंड	बंगलोर
25.	155	18.9.82	399	24/1	श्रीलंका	मद्रास
26.	127*	8.1.83	437	19	पाकिस्तान	फैसलाबाद
27.	47*	5.4.83	330	17/1	वैस्टइण्डीज	जार्ज टाउन
28.	103*	19.9.83	239	10	पाकिस्तान	बंगलोर
29.	121	29.10.83	224	15/2	वैस्टइण्डीज	दिल्ली
30.	236*	29.12.84	664	23/	वैस्टइण्डीज	मद्रास
31.	166*	17.12.85	551	16	आस्ट्रेलिया	एडिलेड
32.	172	3.1.86	513	19	आस्ट्रेलिया	सिडनी
33.	103	17.10.86	302	11	आस्ट्रेलिया	बम्बई
34.	176	22.12.86	506	22	श्रीलंका	कानपुर

*आउट नहीं

अब गावस्कर का नाम रेकॉर्ड-बुकों में नहीं समेटा जा सकता है। इसके लिए अलग से एक किताब बनानी होगी, जिसमें सिर्फ यही नहीं लिखा होगा कि लिटिल मास्टर ने कितने रेकॉर्ड बनाये, बल्कि यह भी होगा कि उसने अपने ही कितने रिकॉर्ड तोड़े हैं। गावस्कर ने अपने जीवन का सबसे पहला बेहद महत्वपूर्ण रेकॉर्ड 28 दिसम्बर 1983 को मद्रास में तोड़ा था, जब उन्होंने वेस्टइंडीज के खिलाफ खेलते हुए अपने टेस्ट जीवन का 30वां सैकड़ा लगाया था। तब तक डॉन ब्रैडमैन का 29 सैकड़ों का रेकॉर्ड बल्लेबाजों के लिए एवरेस्ट की चोटी की तरह था। लेकिन गावस्कर ने 1987 में क्रिकेट के एक और एवरेस्ट पर विजय प्राप्त की-टेस्ट मैचों मे 10,000 रन बनाकर।

पांच फुट साढ़े तीन इंच लंबे गावसकर क्रिकेट इतिहास के सर्वश्रेष्ठ सलामी बल्लेबाज हैं। सनातन धर्म के प्रचारकों की भांति पुराने लोग तत्काल ही हॉब्स, सटक्लिफ या लेन हटन का नाम लेंगे। लेकिन ये लोग यह भूल जाते हैं कि गावसकर महान् इसलिए नहीं है कि उसने टेस्ट क्रिकेट की दुनिया में सर्वाधिक शतक, या सर्वाधिक शतकीय पारियों के रेकॉर्डों पर अपना नाम लिख दिया है। गावस्कर ने अगर यह सब न भी किया होता, तब भी वह पा[illegible] खिलाफ बंगलूर टेस्ट मे खेली गयी 323 मिनटों [illegible] एक पारी [illegible]
कालीन सर्वश्रेष्ठ सलामी बल्लेबाजों में [illegible]
है कि उसे 125 टेस्टों मैचों की 214 [illegible]
खूंखार गेंदबाजी के खिलाफ बनाने पड़े

मदनलाल या रोजर बिन्नी सरीखे तेज गेंदबाजों को खेलने का स्वर्ण अवसर कभी नहीं मिला है। इसलिए वह अपने लिए और अपने रेकॉर्डों के लिए बहुत कम खेल पाया है। क्योंकि जिस समय वह क्रिकेट की दुनिया में आया था, तब भारत की तरफ से दूसरे-तीसरे ओवर के बाद ही स्पिनर गेंदबाजी करने लगते थे। शुरू के टेस्ट मैचों में तो गावसकर को मदनलाल और बिन्नी सरीखे गेंदबाज नेट-प्रैक्टिस के लिए भी उपलब्ध नहीं थे।

यह गावसकर की एकाग्रता, निष्ठा, तकनीक और संयम है, जिनसे वह इस कोटि का बल्लेबाज बन सका। अपनी बल्लेबाजी का उत्कृष्ट नमूना पेश करते हुए उसने भारत की बिखरती पारी को अनेक बार एक सूत्र में पिरोया है। गावसकर के अद्भुत अनुशासन और नियंत्रण ने भारतीय क्रिकेट की बल्लेबाजी को नये आयाम दिये हैं। मैदान पर जब भी वह किसी गेंद को गलत तरीके से खेल जाता है, तो हमेशा अगली गेंद खेलने से पहले उसे रुककर सोचते हुए देखा जा सकता है। मैदान पर वह अभूतपूर्व आत्मनियंत्रण की मिसाल होता है। सम्भवत, नये खिलाड़ियों के लिए गावसकर का क्रिकेट पर स्टांस एक पाठ है। दुनियाभर के तेज गेंदबाजों ने उसे बाउंस से भभकाने का प्रयास लगभग छोड़-सा दिया है। गावस्कर की नजर अगर बाज सरीखी है, तो विकेटों के बीच वह आज भी संभवत: सबसे तेज दौड़ने वालों में से एक है। खेलते समय वह अंतिम क्षण तक गेंद के मूवमेंट पर नजर रखकर फील्डिंग के गैपों का खयाल रखता है।

गीता जुत्शी

जब भी कहीं एथलेटिक्स की चर्चा होती है तब सहसा जुत्शी का नाम याद हो आता है। महिला एथलेटिक्स मे जितना मान-सम्मान गीता को मिला, उतना किसी दूसरी महिला दौड़ाक को नहीं। कमलजीत संधु के बाद गीता जुत्शी ही एकमात्र दौड़ाक है जिसकी बदौलत भारत ने एशियाई एथलेटिक्स में सम्मानजनक स्थान हासिल किया।

अनेक सफलताएं

गीता जुत्शी ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक महत्त्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त की हैं। 1975-76 से राष्ट्रीय एथलेटिक मंच पर उतरने के बाद गीता को पहली उल्लेखनीय सफलता बैंकाक एशियाई खेलों मे मिली।

1978 के बैंकाक एशियाई खेलो मे गीता ने 800 मीटर दौड़ मे 2 मिनट 07.7 सेकंड से स्वर्ण पदक जीता। इस प्रकार एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक जीतने वाली वह दूसरी भारतीय महिला एथलीट बनी।

इससे पूर्व 1970 के बैंकाक एशियाई खेलों में पंजाब की कमलजीत संधु ने

400 मीटर दौड़ मे 57.3 सेकंड से स्वर्ण पदक जीता था, यह सफलता उसे 1,500 मीटर दौड़ (4 मिनट 28 सेकंड) में मिली।

1980 के मास्को ओलंपिक में गीता का प्रदर्शन कोई खास उल्लेखनीय नहीं रहा। 800 मीटर दौड़ मे उसे छठा स्थान मिला। समय रहा—2 मिनट 6 6 सेकंड।

स्वर्ण पदक सोवियत रूस की नोदज्दा ओलिजादिको ने जीता। नोदज्दा का समय रहा—1 मिनट 53.42 सेकंड। लेकिन इस असफलता के लिए गीता जैसी मेहनती खिलाड़ी ही एकमात्र जिम्मेदार नहीं थी। दोष गीता का नहीं था।

दोष था तो हमारी राष्ट्रीय खेल नीति का, हमारे दकियानूसी ढर्रे का।

भारत जैसे देश में जहां आज भी मध्यम वर्गीय परिवार मे मातापिता अपनी लड़कियों को कम कपड़े पहनकर खेलों मे भाग लेने की इजाजत नहीं देते, 20 दिसंबर, 1957 को कश्मीर में मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार में जन्मी, पलीबढ़ी गीता का अंतर्राष्ट्रीय खेल मंच पर उतरना ही काफी महत्व रखता है।

पिता का मार्गदर्शन

इस कार्य के लिए उसे अपने पिता से काफी सहायता मिली। उन्होंने गीता को चूल्हे-चौके से निकालकर खेलकूद में आगे बढ़ने का हौसला दिया। उसे मंजिल को पाने के लिए उत्साहित किया। हर कदम पर उस की सहायता की और उसका मार्गदर्शन किया। यह कहना गलत नहीं होगा कि पिता के सहयोग व अपनी लगन से गीता ने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे अपनी पहचान बनाई।

मास्को मे गीता ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया। यह इजराइल की ऐरिफ के एशियाई खेल कीर्तिमान (2:06.5) से 0.1 सेकंड कम था। इससे पूर्व 6 जून, 1980 तक अजमेर मे राष्ट्रीय एथलेटिक्स प्रतियोगिता मे उसने 3:11.5 सेकंड का समय लिया था।

एशियाड के परीक्षण खेलो में नेहरू स्टेडियम की लाल रंग की सिंथेटिक ट्रैक पर उसने 2:10 9 सेकड मे 800 मीटर दौड़कर प्रतियोगिता में नया कीर्तिमान स्थापित किया।

गुरु हनुमान

इनका जन्म झुंझनू जिला (राजस्थान) में 1901 में हुआ था। जब ये दो वर्ष के थे, तभी इनके सिर पर से माता-पिता की छाया हट गई। इन्हें यह भी नहीं मालूम कि उनके माता-पिता का क्या नाम था। और वे किस गांव में रहते थे।

वे स्वर्गीय संसदसदस्य श्री पन्नालाल कौशिक के साथ दिल्ली आए और वहीं

के बनकर रह गए। उन्होंने 5वीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। अनाथ गुरु हनुमान को बचपन में जो कष्ट एवं दुःख भोगने पड़े, उससे उनके दिल में यह धारणा बैठ गई कि जीवन में कमज़ोर रहना सबसे बड़ा अपराध है। सम्मानित जीवन बिताने के लिए मनुष्य का बलवान होना बहुत आवश्यक है। इसी बात से उन्हें कुश्ती लड़ने और बलवान बनने की प्रेरणा मिली।

इसी बीच वे बिड़ला मिल व्यायामशाला के दो पहलवानों, भगवान सिंह और रिसाल सिंह के संपर्क में आए। इससे इनके कुश्ती-शौक को और बल मिला। उन्होंने कुश्ती के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

वे 1930 से ही बिड़ला मिल व्यायामशाला में पहलवान एवं प्रशिक्षक के रूप में हैं। उन्होंने 1940 तक कुश्ती लड़ी और इस बीच में वे एक अच्छे पहलवान के रूप में प्रसिद्ध हो गए। वे पहलवान सिरितुल्ला खां के पुत्र शफी मुहम्मद को तथा इस्माइल खां को कुश्ती में पराजित कर चुके हैं। शफी मुहम्मद के साथ उनकी कुश्ती के दरम्यान जगप्रसिद्ध पहलवान गामा रेफ़री थे।

पूरे देश से जितने पहलवान विदेश जाते हैं, उनमें आधे पहलवान गुरु हनुमान के मल्लयुद्ध गुरुकुल के होते हैं। इस गुरुकुल के अखाड़े में वहां के नियमित पहलवानों के अतिरिक्त करीब 1 हज़ार पहलवान रोज़ बाहर से आकर कुश्ती कला सीखते हैं। हाल ही में उन्हें द्रोणाचार्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

गुल मुहम्मद

गुल मुहम्मद का जन्म 15 अक्तूबर, 1921 में हुआ। लाहौर में जन्मे गुल का प्रथम श्रेणी की क्रिकेट में पदार्पण 1938-39 में रणजी ट्रॉफी से हुआ। वह उत्तर भारत, बड़ौदा और हैदराबाद की तरफ से खेले। पाकिस्तान में वह पंजाब और लाहौर की तरफ से खेलते थे।

गुल मुहम्मद बाएं हाथ के बल्लेबाज तथा मध्यम गति के तेज गेंदबाज थे। उन्होंने भारत की ओर से आठ और पाकिस्तान की ओर से एक टेस्ट मैच खेला। 1946 में इंग्लैंड के दौरे पर जाने वाली भारतीय टीम के सदस्य थे।

पाकिस्तान की ओर से गुल मुहम्मद ने 1956-57 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध एक टेस्ट खेला, जिसमें उन्होंने 39 रन बनाए।

गुलाम पहलवान

20वीं सदी के प्रथम चरण में भारत में कुश्ती कला अपनी चरम सीमा पर थी। रुस्तमे-जमा गामा से पहले जिस भारतीय पहलवान ने यूरोप के दंगलों में हिस्सा लेकर पहलवानी के क्षेत्र में इस देश का नाम रोशन किया, उसका नाम था गुलाम पहलवान। इन्हें महाबली गुलाम भी कहा जाता है। यथा नाम तथा गुण,

यह पहलवान बहुत ही सरल स्वभाव के थे। बात-बात में अक्सर हाथ जोड़कर कहा करते थे —"मैं तो गुलाम हूं।"

उस ज़माने में भारत में एक और ख्यातनामा पहलवान था। इसका नाम था कीकर सिंह। काफी दिनों तक तो इसका फैसला ही नहीं हो सका कि कीकर सिंह और गुलाम पहलवान में कौन उन्नीस है और कौन इक्कीस। इन दोनों महाबलियों की चार बार कुश्ती हुई। जिनमें से तीन बराबर रहीं। कभी गुलाम का पलड़ा भारी हो जाता तो कभी कीकर सिंह का।

पुराने पहलवानों को शरीर-साधना का बहुत शौक होता था। आज का पहलवान शायद ही उतनी साधना करता हो। शायद इसीलिए जब यह सुनने को मिलता है कि गुलाम रोज़ सवेरे तीन बजे उठते थे। उसके बाद चार हज़ार बैठक लगाते, फिर एक ही सांस में सारा अखाड़ा गोड़ डालते। फिर तीस-चालीस पहलवानों के साथ जोर करते। दिन में ढाई हज़ार डंड लगाते और शाम को चार-पांच मील की दौड़ लगाते—तो दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है।

ग्रैंड स्लैम

ग्रैंड स्लैम पर चर्चा करने के पूर्व यहां उसकी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना शायद गैरमौजू नहीं होगा। ग्रैंड स्लैम मूलतः ब्रिज से संबंध रखता है। टेनिस में सर्वप्रथम इसे लागू करने का श्रेय न्यूयॉर्क टाइम्स के खेल समीक्षक, एलिसन डैंजिग को प्राप्त है। 1933 में, सुप्रसिद्ध ब्रिटिश टेनिस खिलाड़ी फ्रेड पेरी टेनिस विश्व की तीन बड़ी स्पर्धाएं—आस्ट्रेलियाई, फ्रैंच तथा विबलडन—जीत चुके थे। उस वर्ष वे अमरीकी टेनिस खिताब हासिल करने के उद्देश्य से अमरीका गए थे। इस अवसर पर एलिसन डैंजिग ने न्यूयॉर्क टाइम्स में लिखा था कि अगर फ्रेड पेरी अमरीकी खिताब जीत लेते हैं, तो वे 'ग्रैंड स्लैम' जीतने में सफल हो जाएंगे। पेरी असफल रहे, मगर टेनिस में ग्रैंड स्लैम शब्द स्थापित हो गया और इसे प्राप्त करने के लिए टेनिस जगत के शीर्ष खिलाड़ियों के बीच होड़ प्रारंभ हो गई।

ग्रैंड स्लैम की स्थापना के पांच वर्ष बाद 1938 में डोनल्ड बज (अमरीका) ग्रैंड स्लैम का गौरव प्राप्त करने वाले प्रथम खिलाड़ी बने। बज ने उस वर्ष आस्ट्रेलियाई, फ्रैंच तथा विबलडन खिताब जीतने के बाद अमरीकी स्पर्धा में अपने ही देश के सी० जेन मॉको को 6-3, 6-8, 6-2, 6-1 से हरा कर उपलब्धि हासिल की थी। उस समय ऑस्ट्रेलियाई स्पर्धा वर्ष के आरंभ में यानी जनवरी में ही होती थी। बाद में महिलाओं में अमरीका की ही सर्वकालीन महान खिलाड़ी मॉरीन कोनोली (1943), ऑस्ट्रेलियाई 'रॉकेट' रॉड लेवर (दो बार—1962, 1969) तथा ऑस्ट्रेलिया की मार्गरेट कोर्ट (1970) ने ग्रैंड स्लैम खिताब प्राप्त किया। युगल में ऑस्ट्रेलियाई जोड़ी—फ्रैंक सेजमेन तथा केन मेकग्रेगर (1941)

तथा मिश्रित युगल में मार्गरेट कोर्ट तथा केन फ्लेचर (1963) ऐसी जोड़ियां थीं, जिन्हें ग्रेंड स्लैम का सम्मान मिला।

गोष्ठा बिहारी पाल

लगातार 23 वर्षों (1913 से 1936) तक फुटबाल खेलने वाले और अपने जमाने में 'चीन की दीवार' नाम से संबोधित किए जाने वाले गोष्ठा पाल का जन्म 20 अगस्त, 1896 को गांव भोजेश्वर, तहसील मदारीपुर, फरीदपुर (जो अब बंगलादेश में है) में हुआ। जब वह केवल डेढ़ महीने के ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया और वह अपने नाना के पास भाग्यकुल, जिला ढाका में चले गए। स्कूली जीवन मे वह फुटबाल खेलते रहे और 1913 में, जब उनकी अवस्था 17 वर्ष की थी, वह कलकत्ता आ गए।

कलकत्ता में आकर गोष्ठा पाल कुमारतुली क्षेत्र मे रहने लगे और पहली बार मोहन बागान की ओर से डलहोजी टीम के विरुद्ध खेले। उस समय वह राइट हॉफ के स्थान पर खेले थे। बाद में लेफ्ट बैक के स्थान पर खेलने लगे। 1917 से 1933 तक पाल अपने पूरे फार्म में थे। यह ठीक है उस दौरान मोहन बागान की टीम ने ज्यादा ट्राफियां आदि नहीं जीतीं, लेकिन पाल उन दिनों की चर्चा करते हुए अक्सर यह कहा करते थे कि हमारा मुख्य उद्देश्य ट्राफियां जीतना नहीं बल्कि अंग्रेज़ो को हराना होता था।

छह वर्षों तक (1921 से 1926 तक) उन्होंने मोहन बागान की टीम का नेतृत्व किया। उनके सहयोगी उमापति कुमार टीम के उप-कप्तान हुआ करते थे। 1922 में पाल के ही नेतृत्व में मोहन बागान की टीम ने बम्बई में पहली बार रोवर्स कप प्रतियोगिता में भाग लिया था और फाइनल तक पहुंच गई थी। फाइनल में पहुंचकर मोहन बागान की टीम डुरहम लाइट इनफेंट्री से 1-4 से हार गई थी। दिल्ली में डूरण्ड प्रतियोगिता में पहली बार भाग लेने वाली किसी गैर-सैनिक टीम (मोहन बागान) का भी उन्होंने नेतृत्व किया था। पहली बार 1933 मे श्रीलंका का दौरा करने वाली आई० एफ० ए० की टीम का भी उन्होंने नेतृत्व किया। वहां पर उनकी टीम ने पांच में से चार मैच जीते और पांचवां मैच बराबर रहा।

1962 मे भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया। पद्मश्री प्राप्त करने वाले वह देश के पहले फुटबाल खिलाड़ी थे।

फुटबाल के अतिरिक्त वह कुछ अन्य खेलों (जैसे क्रिकेट, हाकी और लान टेनिस) में भी भाग लेते रहे।

गोल्फ

इस खेल का प्रारम्भ स्काटलैंड से हुआ माना जाता है, यद्यपि कुछ इतिहासज्ञ यह भी मानते है कि इसका जन्म ईसापूर्व में ही हो चुका था। उनका कहना है कि उस समय चरवाहो में यह खेल बहुत लोकप्रिय था। वे गोल्फ क्लबो जैसे उपकरणो से कंकडों को मारते थे। हो सकता है कि यह बात कुछ सच भी हो, परन्तु इतना तो निश्चित है कि उनका प्रयास मात्र उन ककडों को अधिक मे अधिक दूर पहुंचाना रहता होगा और आधुनिक गोल्फ के खेल से उसकी अधिक समानता नहीं होगी।

स्काटलैंड मे सन् 1440 के लगभग यह खेल प्रचलित था। वहां के प्रसिद्ध 'रायल ब्लैक हीथ क्लब' की स्थापना 1608 मे हुई। एडिनबर्ग गोल्फिंग सोसाइटी की स्थापना सन् 1735 के लगभग हुई। प्रसिद्ध क्लब एंड्रेंट गोल्फ क्लब की स्थापना भी वहां 1754 से पूर्व ही हो चुकी। इसी क्लब ने वहां पर एक टूर्नामेंट का आयोजन भी किया।

स्काटलैंड मे पहला बडा टूर्नामेट 1860 मे प्रेस्टविक गोल्फ कोर्स पर हुआ। समयांतर में इसी ने ब्रिटिश ओपेन गोल्फ टूर्नामेंट का रूप धारण किया।

गौस मुहम्मद

टेनिस के इस फनकार का जन्म उत्तर प्रदेश के मशहूर शहर लखनऊ के मलिहाबाद जिले में 2 नवम्बर 1915 को हुआ था।

गौस मुहम्मद खान एक नाम नहीं, भारतीय टेनिस का एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। चालीस वर्ष पूर्व एक दशक तक उनके तेज आकर्षक और सुन्दर टेनिस की कला से भारतीय टेनिस जगत आच्छादित रहा। अगर यह कहा जाए कि भारतीय टेनिस में गौस मुहम्मद खान टेनिस की एक जीवंत परिभाषा बन गए थे तो अतिशयोक्ति न होगी।

1939 में टेनिस के तीर्थ (विंबलडन) में क्वार्टर-फाइनल में पहुंचे प्रथम भारतीय प्रतिनिधि के रूप में जिस खेल कौशल की आधारशिला गौस मुहम्मद ने रखी थी आज उसकी अन्तिम कड़ी अकेले विजय अमृतराज न होते, न यह दृश्य होता। 1971 में पद्मश्री से सम्मानित हुए और 1974 में उस्मानिया विश्वविद्यालय के चीफ स्पोर्ट्स आर्गनाइजर के पद से अवकाश ग्रहण किया।

चन्दगीराम, मास्टर

भारत के जिस मशहूर पहलवान को लगातार दो बार 'भारत केसरी' बनने का गौरव प्राप्त हुआ, वह हैं हरियाणा के मास्टर चन्दगीराम।

गोर वर्ण, छरहरा शरीर, कद छह फुट दो इंच, और वजन कुल 190 पौंड (यानी लगभग दो मन, पन्द्रह सेर), लेकिन कुश्ती-कला में इतना सिद्धहस्त कि बड़े-बड़े नामी और वजनी पहलवान सामने आते ही अपना आत्मविश्वास खो बैठें। यही है मास्टर चन्दगीराम की तस्वीर!

मास्टर चन्दगीराम का जन्म 15 मार्च, सन् 1938 में ग्राम सिसाय, जिला हिसार के एक मध्यवर्गीय जाट परिवार में हुआ। आप अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान है। ढाई वर्ष की अल्पायु में ही इनकी माता श्रवण देवी का स्वर्गवास हो गया। खैर, इनके पिता चौधरी माडूराम एक परिश्रमी, ईमानदार और धार्मिक प्रवृत्ति के किसान थे और उन्होंने अपने इकलौते बेटे को जहां स्नेहभाव से भर दिया और माता की कमी को महसूस नहीं होने दिया, वहीं उन्होंने इनपर कड़ी निगरानी भी रखी। 1954 में चन्दगीराम जी ने मैट्रिक की परीक्षा पास कर जालंधर आर्ट्स क्राफ्टस का डिप्लोमा प्राप्त किया। 1957 में उनकी नियुक्ति गवर्नमेंट हाई स्कूल, मुंढाला में ड्राइंग मास्टर के रूप में हो गई।

1961 में चन्दगीराम को एक होनहार और प्रतिभाशाली पहलवान समझकर जाट रेजिमेंट बरेली ने उन्हें अपनी रेजिमेंट के प्रमुख पहलवान के पद पर नियुक्त किया। 1957 से 1961 तक ड्राइंग मास्टर रहने के बाद सन् 1962 में वह जाट रेजिमेंट के बुलावे पर सेना में चले गए। पहले चन्दगीराम लाइट हैवी वेट वर्ग में आते थे।

पदक एवं उपलब्धियां —

1969 के विश्व विजयी ईरान के पहलवान अनवरी अबुलफजी को हराकर गामा की तरह विश्व विजयी बने।

हिन्द केसरी तीन बार बने (1962 देहली में 1968 रोहतक में व 1972 इन्दौर में)

म्युनिख ओलम्पिक में भारत का प्रतिनिधित्व 1972 में किया।

महाभारत-केसरी बने (1972 जयपुर में)

एशिया चैम्पियन बने (1970 बैंकाक, थाईलैंड में)

पद्मश्री पुरस्कार राष्ट्रपति द्वारा 1970 में।

भारत भीम दो बार बने (1969 व 1970 में दोनों बार लखनऊ में)

भारत केसरी दो बार बने (1968 व 1969 दोनों बार देहली में)

रुस्तम-ए-हिन्द बने (1969 जम्मू में)

अर्जुन पुरस्कार राष्ट्रपति द्वारा (1969 में)

राष्ट्रीय चैंम्पियन दो बार बने (1961 में व अजमेर में व 1963 जालंधर में)

तीन फिल्मों में हीरो का रोल किया (वीर घटोत्कच, टारजन 303 व महा-शिवरात्रि में)

चन्द्रशेखर, भगवत

भारतीय क्रिकेट के इतिहास का जब भी जिक्र होगा, स्पिन गेंदबाजी की चर्चा जरूर होगी और जब स्पिन गेंदबाजी की चर्चा आएगी तब भला भगवत चन्द्रशेखर को कौन भुला सकता है। चन्द्रशेखर ने भारतीय स्पिन गेंदबाजी के एक इतिहास की रचना की और इतिहास भी ऐसा जिसकी तुलना न की गई और न की जा सकती है।

भगवत चंद्रशेखर एक गेंदबाज के रूप में ही नहीं बल्कि इस इंसान के रूप में भी अजूबा थे। पोलियो से ग्रस्त होने के बावजूद उन्होंने टेस्ट क्रिकेट में जो तहलका मचाया उससे सिद्ध होता है कि यदि मन में उमंग और दृढ़ता हो तो शरीर की अपंगता भी वरदान बन जाती है।

18 मई, 1945 को जन्मे भगवत चन्द्रशेखर को पांच वर्ष की आयु में ही पोलियो हो गया था। क्रिकेटर बनने की लालसा पर यह कुठाराघात था। कुछ ही दिन बाद पेड़ पर चढ़ते हुए चंद्रा नीचे आ गिरे और पोलियोग्रस्त हाथ अजीब शक्ल में मुड़ गया लेकिन चंद्रा की हिम्मत तो अब भी कायम थी और फिर एक दिन एकाएक चंद्रशेखर ने उस मुड़ी हुई कलाई में गेंद फंसाकर फेंकी और यहीं से टेस्ट क्रिकेट के एक नये अध्याय की भूमिका बन गई।

चंद्रशेखर पहली बार 17 वर्ष की आयु में प्रकाश में आए ये जब उन्हें मैसूर की ओर से रणजी ट्राफी में खेलने के लिए चुना गया था। 21 जनवरी, 1964 को टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश करने के बाद अब तक का उनका टेस्ट रिकार्ड : 58 टेस्ट, 167 रन (4.07 औसत) 242 विकेट (29.74 औसत) 25 कैच। सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन 79 रन देकर 8 विकेट। चार बार दोनों पारियों में शून्य पर आउट होने का विश्व रिकार्ड, वर्तमान में सिंडीकेट बैंक बंगलौर में कार्यरत।

चंदू बोर्डे

चन्द्रकांत गुलाराव बोर्डे (चंदू बोर्डे) का जन्म 21 जुलाई, 1934 को हुआ।

पहली बार विश्व कप (हाकी) पर अधिकार जमाने वाली भारतीय टीम

हाकी के जादूगर ध्यानचन्द



कुंवर दिग्विजय सिंह 'बाबू'





इंग्लिश चैनल पार करने वाली पहली
भारतीय महिला—आरती साहा

भारतीय फुटबाल के गौरव पी० के० बनर्जी



भारत केसरी सतपाल (पहलवान)



लान टेनिस की प्रतिष्ठा का प्रतीक डेविस कप

अन्तरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय ध्वज फहराने वाले बंधु, आनन्द अमृतराज और विजय अमृतराज





स्टेफी ग्रैफ



बोरिस बेकर



ईवान लैंडल



स्टीफन एडबर्ग



जान मेकनरो



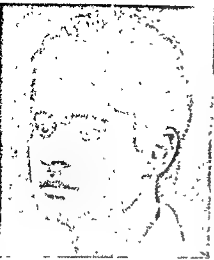
मार्टीना नावराटिलोवा


इयान बाथम


इमरान खान

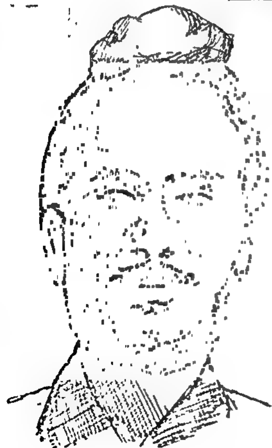

डेविड गोवर


एलन बोर्डर



जीशान अली

शीनी अब्राहम



पुपराम सिंह



रोजर बिन्नी



कपिल देव





कीर्ति आजाद



मोहसिन खान



बिशनसिंह बेदी



सुनील गावस्कर

दिलीप ट्राफी



रणजी ट्राफी



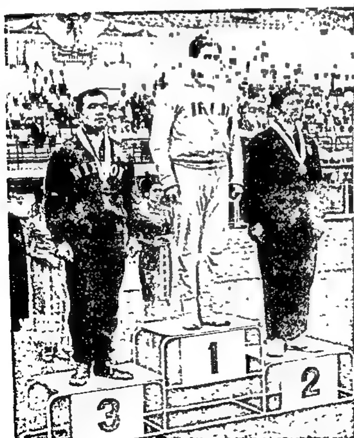
शतरंज के भारतीय उस्ताद—शिप्से



मुहम्मद अली और नार्टन



पहलवान-शिरोमणि
चदगीराम



बैंकाक मे, पाचवी एशियाई खेलो मे विजयी, विश्वनाथसिह



विव रिचर्ड्स



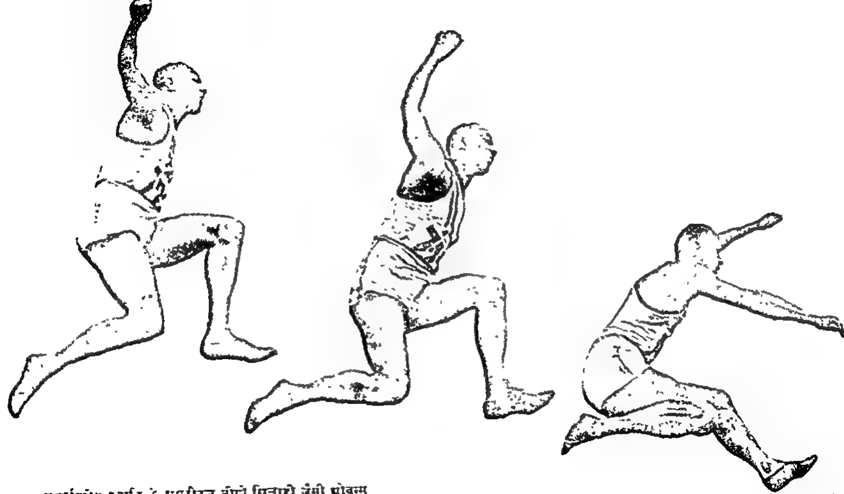
गैरी सोबर्स



वेंगसरकर



टोनी ल्युइस



अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अमरीकन नीग्रो खिलाड़ी जेसी ओवन्स

भारतीय क्रिकेट के नक्षत्र पर जिन सितारों की छाप हमेशा अमिट रहेगी उनमें एक सितारे का नाम है चंदू बोर्डे, जिसने 1958 से लेकर 1969 तक भारतीय क्रिकेट को लगातार प्रकाशमान किया और जिसे एक सफल हरफनमौला के रूप में हमेशा याद किया जाता रहेगा। यू तो चंदू बोर्डे को 1954-55 में ही पाकिस्तान जाने वाली भारतीय क्रिकेट टीम में शामिल कर लिया गया था लेकिन अपरिपक्वता के कारण टेस्ट खेलने का अवसर चार वर्ष बाद मिला।

1953-54 में सिल्वर जुबली ओवरसीज क्रिकेट टीम भारत भ्रमण पर आयी थी। स्कूली छात्र चंदू बोर्डे को भी एक गेंदबाज की हैसियत से टीम में शामिल कर लिया गया। उस समय तक बोर्डे लेग स्पिन और गुगली गेंदबाजी किया करते थे। लेकिन कितनी हैरानी की बात है कि बाद में बोर्डे की पहचान केवल एक बल्लेबाज के रूप में ही रह गयी थी।

सिल्वर जुबली ओवरसीज टीम के खिलाफ सफल प्रदर्शन के बाद बोर्डे को महाराष्ट्र की रणजी क्रिकेट टीम में शामिल कर लिया गया और फिर अगली मंजिल थी टेस्ट टीम। 1954-55 में वीनू मांकड पाकिस्तान जाने वाली भारतीय टीम के कप्तान थे और बोर्डे टीम के सबसे छोटे खिलाड़ियों में से एक। 1955-56 में न्यूजीलैंड की टीम भारत आयी लेकिन बोर्डे टेस्ट टीम में स्थान पाने में फिर असफल रहे इनका कारण थे सुभाष गुप्ते जो एक सिद्धहस्त स्पिनर थे और उनके रहते बोर्डे जैसे अनुभवहीन खिलाड़ी को मौका मिलना सभव नही था। लेकिन रणजी ट्रॉफी में बोर्डे ने अपना उत्कृष्ट प्रदर्शन जारी रखा। इसी बीच वह महाराष्ट्र छोड़कर बड़ौदा आ गये और 1957-58 में बड़ौदा को रणजी चैंपियन बनाने में बोर्डे की भूमिका सबसे प्रमुख थी।

आखिर दस्तक देते-देते टेस्ट क्रिकेट का द्वार 1958-59 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ 28 नवम्बर, 1958 बंबई टेस्ट मे खुल सका। इतनी प्रतीक्षा के बाद मिले अवसर का बोर्डे पर काफी मनोवैज्ञानिक प्रभाव था। फलस्वरूप पहले दो टेस्टों मे वह बेहद असफल रहे और टेस्ट टीम से फिर बाहर हो गये। चौथे टेस्ट (मद्रास) में बोर्डे को फिर अवसर मिला। बस, इस बार उसने अपनी प्रतिभा का सिक्का जमा लिया। उन्होंने अर्द्धशतक बनाया और तीन विकेट चटकाए। अगले दिल्ली टेस्ट में तो उन्होंने वेस्ट इंडीज के जाने-माने तेज गेंदबाजों हाल और गिलक्रिस्ट के छक्के ही छुड़ा दिए तथा पहली पारी में 109 और दूसरी पारी में 96 रन बनाए। कुल श्रृंखला में उनका औसत रहा 40.14 और कुल योग 281।

1959 में वह दत्तु फड़कर के नेतृत्व मे इंग्लैंड गए इस दौरे के कुल 25 मैचों में उन्होंने 1000 से अधिक रन बनाए और 72 विकेट हासिल किए लेकिन टेस्ट मैचों मे 140 रन ही जोड़ सके।

तदुरांत आस्ट्रेलियाई टीम के विरुद्ध भी उनका प्रदर्शन औसत स्तर से अधिक नहीं रहा लेकिन अगली पाकिस्तान शृंखला में उनका खेल अपने यौवन पर था। उन्होंने पांच टेस्ट मैचों की 8 पारियों में 82.5 की औसत से 330 रन बनाकर सभी को अचंभित कर दिया। गेंदबाज के रूप में उन्हें केवल पांच विकेट ही मिल सकी।

इसके बाद इंग्लैंड की टीम भारत आई। तब तक सलीम दुर्रानी भी टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश कर चुके थे। इन दोनों में एक अजीब-सी प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। कभी एक आगे और कभी दूसरा। वेस्ट इंडीज के विरुद्ध अगली शृंखला में दुर्रानी उनसे आगे निकले लेकिन माइक स्मिथ की इंग्लैंड टीम के विरुद्ध दोनों का प्रदर्शन लगभग समान रहा। वेस्ट इंडीज के विरुद्ध बोर्डे ने 10 पारियों में 233 रन जोड़े, उन्होंने 9 विकेट भी लिए।

इसके बाद दुर्भाग्यवश बोर्डे के कंधे पर चोट लग गई और उन्हें गेंद छोड़कर केवल बल्ला ही संभालना पड़ा। 1694 में आस्ट्रेलियाई टीम के खिलाफ उन्होंने 50.33 की औसत से 253 रन जोड़े। इस शृखला के बबई टेस्ट में भारत दो विकेट से जीता था। यह जीत भारत को बोर्डे की साहसिक और धैर्यपूर्ण बल्ले-बाजी से ही मिली थी।

1965 में न्यूजीलैंड के खिलाफ बोर्डे ने सर्वाधिक 371 (औसत 61.83) रन बनाए और इसके लगभग दो वर्ष बाद जब सोबर्स के नेतृत्व में वेस्ट इंडीज की टीम भारत आई तो भी उन्होंने 57.66 की औसत से 346 रन बनाकर दोनों देशों की ओर से सर्वाधिक रन बनाने का गौरव पाया।

1967 में भारतीय टीम इंग्लैंड गई। कप्तान थे जूनियर पटौदी। बोर्डे इस दौरे में आश्चर्यजनक ढंग से बेहद असफल रहे और 3 टेस्टों में 60 रन ही बना सके।

बोर्डे का एक अरमान था कि वह भारत का कप्तान बने। 1967 की सर्दियों में जब भारतीय टीम आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड गई तो पटौदी अचानक बीमार पड़ गये और पहले टेस्ट में नेतृत्व बोर्डे को मिला। भारत यह टेस्ट 145 से हार गया। इसके बाद कप्तान बनने की उनकी इच्छा मन में ही दबी रह गई।

1969 में बिल लारी आस्ट्रेलियाई टीम लेकर भारत आए तो बोर्डे को पहले टेस्ट में खिलाया गया लेकिन वह चल न सके। फलस्वरूप उन्हें टीम से बाहर कर दिया और फिर कभी वापस नहीं बुलाया गया। हालांकि क्रिकेट प्रेमियों का तब भी यही विचार था कि बोर्डे अभी कुछ करने में सक्षम हैं। अंततः निराश होकर बोर्डे ने प्रथम श्रेणी क्रिकेट से अलग होने का फैसला कर लिया।

टेस्ट रिकार्ड —बल्लेबाजी, 55 टेस्ट 97 पारियां- 3061 रन। 177 (आ० न०) उच्चतम 35.59 औसत 5 शतक, 18 अर्द्धशतक, गेंदबाजी: 5695 गेंद,

2417 रन, 52 विकेट, 46.48 औसत 5-88 सर्वश्रेष्ठ।

यादगार क्षण : 1964-65 में भारत की बम्बई टेस्ट में 2 विकेट से जीत।

अलंकरण : अर्जुन पुरस्कार व पद्मश्री।

चक्का फेंकना (डिस्कस थ्रो)

चक्का फेंकने के खेल का इतिहास कितना पुराना है—इस पर मतभेद हो सकता है, मगर इस पर कोई मतभेद नहीं है कि यह खेल काफी पुराना है और बहुत पहले मिस्र और कुछ अन्य देशों में ऐसा था कि इससे कुछ मिलता-जुलता एक खेल खेला जाता था। अन्य प्राचीन खेलों की तरह तब तक इस खेल के भी कोई विशेष नियम या उपनियम नहीं बनाए गए थे। परन्तु आज इस खेल के नियम और उप-नियम निश्चित हैं। जब इस खेल के नियम और उप-नियम तय कर दिए गए तब भी कुछ भागों में यह खेल अलग-अलग आकार-प्रकार की प्लेटों (चक्कों) के आधार पर खेला जाता था। यद्यपि इस प्लेट या चक्के का वजन तय कर दिया गया था। चक्के का वजन 2 किलोग्राम (4 पौंड और 6½ औंस) निश्चित कर दिए जाने के बाद भी कुछ सालों तक कुछ देश वजन के नियम का तो पालन करते रहे पर आकार-प्रकार के नियम का उल्लंघन करते रहे। उदाहरणार्थ अमेरिका और मध्य यूरोप में 7 फुट घेरे के चक्के का प्रयोग किया जाता रहा और स्कैंडेनेविया और कुछ अन्य भागों में 8 फुट 10⅓ इंच घेरे के चक्के का प्रयोग होता रहा। 1912 में इस चक्के के घेरे के इस विवाद का भी फैसला कर दिया गया और उसका डायमीटर 2.50 मी० (यानी 8 फुट 2 इंच) तय किया गया। यह चक्का एक विशेष लकड़ी का बना होता है और इसके किनारे पर पीतल चढ़ा रहता है।

इस प्रतियोगिता में सबसे पहले जिस खिलाड़ी ने थोड़ा-बहुत कमाल दिखाया उसका नाम था मार्टिन शेरीडान। कहने को तो यह अमेरिका का खिलाड़ी था, पर जन्म से आइरिश था। शेरीडान ने 1902 से लेकर 1909 तक इस खेल में आठ बार विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। यानी 129 फुट 4 इंच से जो चक्का फेंकना शुरू किया तो 144 फुट तक फेंक कर ही दम लिया। 1904 में उन्हें ओलम्पिक चैम्पियन होने का भी गौरव प्राप्त हुआ। अमेरिका के ही क्लारेंसी हाउसर 1924 और 1928 में इस खेल में ओलम्पिक चैम्पियन रहे। लेकिन सबसे ज्यादा प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा अमेरिका के अल ओएरटर को प्राप्त हुई, जो 1956, 1960 और 1968 में ओलम्पिक विजेता तो रहे ही, साथ ही उन्हें पहली बार 200 फुट से अधिक चक्का फेंकने का गौरव प्राप्त हुआ।

चरणजीत सिंह

1964 में तोक्यो में हुए ओलम्पिक खेलों में जिस भारतीय हाकी टीम

ने पुनः विश्व विजेता का पद प्राप्त किया उसका नेतृत्व चरणजीत सिंह ने किया था। उनका जन्म 22 नवम्बर, 1930 को गाय मारी, जिला कांगड़ा में हुआ। उन्होंने गुरदासपुर में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। शुरू-शुरू में उन्हें फुटबाल खेलने का बहुत शौक था, लेकिन उनके छोटे कद और दुबले शरीर के कारण उनके प्रशिक्षकों ने उन्हें हाकी खेलने का सुझाव दिया। उन्होंने इस सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसके बाद उन्हें लायलपुर जाना पड़ा। यहां वह खालसा स्कूल में दाखिल हो गए। उन दिनों खालसा स्कूल की टीम बहुत अच्छी मानी जाती थी। चरणजीत सिंह जितना खेल में अच्छे थे उतने ही पढ़ाई-लिखाई में भी। 1950 में रनजीत पंजाब पुलिस में भरती हो गए। 1960 में रोम ओलम्पिक खेलों में चरणजीत ने भारत का प्रतिनिधित्व तो किया, लेकिन यह वर्ष भारतीय हाकी का सबसे दर्दनाक वर्ष माना जाता है। उन्होंने पाकिस्तान, मलयेशिया, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, हांगकांग और अन्य कई देशों का दौरा भी किया। उन्हें अर्जुन पुरस्कार और पद्मश्री से भी अलंकृत किया गया। उसके बाद उन्होने कृषि विश्वविद्यालय हिसार में उप-निदेशक (खेलकूद) का दायित्व संभाल किया।

चार्ल्स बैनरमैन

टेस्ट क्रिकेट में शतक बनाया किसी भी बल्लेबाज का सबसे बड़ा सपना होता है किन्तु कल्पना कीजिए उस बल्लेबाज की जिसने टेस्ट क्रिकेट के इतिहास में पहला शतक जड़ा। उसके पीछे न कोई प्रेरणा थी और न ही परम्परा। उस बल्लेबाज का नाम था चार्ल्स बैनरमैन। 1877 में आस्ट्रेलिया व इंग्लैंड के बीच खेले गये सर्वप्रथम टेस्ट में उन्होंने शतक जड़ा था। उसी शतक का यह कमाल था कि आस्ट्रेलिया ने टेस्ट मैच जीता तथा टेस्ट क्रिकेट में शतक बनाने की परम्परा ने जन्म लिया।

शुरुआत—चार्ल्स बैनरमैन (जन्म: 23 जुलाई, 1851) ने अपने प्रथम श्रेणी क्रिकेट की शुरुआत उस समय कर दी थी जब टेस्ट क्रिकेट का प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था। वह 1871 में पहली बार न्यू साउथ वेल्स की ओर से उतरे थे। 1877 में जेम्स लिलीव्हाइट के नेतृत्व में इंग्लैंड के पेशेवर खिलाड़ियों की एक टीम आस्ट्रेलिया भ्रमण पर आयी थी। उस टीम का मुकाबला करने के लिए मेलबोर्न और सिडनी की एक संयुक्त टीम का गठन किया गया और कप्तानी सौंपी गई डेविड विलियम ग्रेगरी को। इस टीम में चार्ल्स बैनरमैन को निर्विवाद रूप से शामिल किया गया। वह उस समय आस्ट्रेलिया के बेहतरीन प्रारम्भिक बल्लेबाज थे।

बृहस्पतिवार, 15 मार्च को दोपहर एक बजे चार्ल्स बैनरमैन ऐसे पहले बल्ले-

बाज बने जिन्होंने टेस्ट क्रिकेट की पहली गेंद खेली। यह गेंद फेंकी थी इंग्लैंड के अल्फर्ड शा ने। उस दिन के खेल की समाप्ति तक आस्ट्रेलिया ने 6 विकेट पर 166 रन बनाये थे और बैनरमैन 125 रन बनाकर खेल रहे थे। अब तक उन्होंने अपनी उन्मुक्त बल्लेबाजी से इंग्लैंड के प्रत्येक गेंदबाज की जमकर धुनाई की थी। इंग्लैंड के गेंदबाज आर्मिटेज तो इस उन्मुक्त बल्लेबाजी से इतना अधिक चिढ़ गए कि उसने बैनरमैन के सिर का निशाना बांधकर गेंद बरसाना शुरू कर दिया। उन दिनों बल्लेबाज की सुरक्षा के साधन मौजूद नहीं थे। फिर भी बैनरमैन अपनी एकाग्रता तथा अच्छे खेल कौशल से बच गए।

अन्त तक आउट नहीं : बैनरमैन की इस बेबाक बल्लेबाजी का नजारा अगले दिन भी जारी रहा और यह क्रम तब टूटा जब इंग्लैंड के तेज गेंदबाज उलियट के नए ओवर की पहली गेंद उनकी अंगुली पर आ लगी और उन्हें मजबूरन मैदान छोड़कर जाना पड़ा। इस प्रकार टेस्ट क्रिकेट मे घायल होकर रिटायर होने वाले भी वह पहले बल्लेबाज थे। दूसरी पारी मे वह केवल चार रन ही बना सके परन्तु आस्ट्रेलिया ने इस रोमांचक टेस्ट मे 45 रन की जीत दर्ज कर ली थी। यहां यह उल्लेखनीय है कि तब तक इस मैच को 'टेस्ट' की परिभाषा नहीं दी गई थी और कुछ वर्ष बाद यह शब्द प्रचलन में आया।

अन्य टेस्टों मे प्रदर्शन : चार्ल्स बैनरमैन ने कुल मिलाकर तीन टेस्ट मैच खेले। 1877 की श्रृंखला का दूसरा टेस्ट भी मेलबोर्न मे ही खेला गया। बैनरमैन ने पहली पारी मे 10 और दूसरी पारी में 30 रन बनाए। तत्पश्चात उन्हें 1878-79 की श्रृंखला के लिए भी चुन लिया गया। इस श्रृंखला में एकमात्र टेस्ट मेलबोर्न में ही खेला जाना था। यह टेस्ट आस्ट्रेलिया ने दस विकेट से जीता था। यद्यपि इस टेस्ट की दोनो पारियो मे बैनरमैन ने क्रमश: 15 व 15 (आ. न.) रन बनाये थे लेकिन इसी टेस्ट से टेस्ट क्रिकेट में एक नया रिकार्ड बना था। इस टेस्ट मे चार्ल्स के छोटे भाई एलेक्जेंडर ने भी भाग लिया था। दो भाइयो का एक साथ ही टेस्ट में खेलने का यह पहला अवसर था।

1878 के इंग्लैंड, न्यूजीलैंड और कनाडा के दौरे मे भी बैनरमैन ने काफी तहलका मचाया। उस पूरे दौरे में गेंदबाज बुरी तरह हावी रहे थे और चार्ल्स बैनरमैन अकेले ऐसे बल्लेबाज थे जिन्होंने कुल मिलाकर 2630 रन बटोरे थे जिसका औसत 23.90 था। लीसेस्टर शायर के खिलाफ उनका 133 रन का ताबड़तोड़ शतक भी इसमें शामिल है। इंग्लैंड में उन्होंने 34.06 की औसत से 770 रन बनाए थे।

चोट व अस्वस्थता : चार्ल्स बैनरमैन को जहां पहले ही टेस्ट मे चोट लगी वहां उनका बाद का कैरियर भी अस्वस्थता के कारण चौपट हो गया। 1880 में उनका इंग्लैंड दौरा एकदम निश्चित माना जा रहा था लेकिन बीमार होने के

कारण वह इंग्लैंड न जा सके और उसके बाद भी टैस्ट क्रिकेट न खेल सके।

क्रिकेट से हटने के बाद भी चार्ल्स बैनरमैन क्रिकेट से दूर नही जा सके। उन्होंने आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में कई क्रिकेटरों को बाकायदा प्रशिक्षण दिया और बाद में वह टेस्ट अंपायर भी बने। 1886-87, 1887-88, 1894-95, 1897-98 और 1901-02 की शृंखलाओं के कुल 12 टेस्टों में वह अंपायर रहे।

शैली : बल्लेबाज के रूप में चार्ल्स बैनरमैन की बड़ी ही धाकड़ शैली रही। उनके खेल का एक खास अन्दाज यह था कि वह हमेशा इसी कोशिश में रहते थे कि उनका कोई भी शाट विकेट से पीछे नही जाए। इसीलिए ड्राइव उनका सबसे प्रिय तथा जानदार शाट था परन्तु इस कोशिश में उनमें एक कमजोरी भी आ गई और वह ये कि कट और लैटकट जैसे शाट खेलते हुए उनसे कई बार चूक हो जाया करती थी और अधिकांशतः वह इसी शाट पर आउट भी हुए।

इंग्लैंड में वुलविच नामक स्थान पर जन्मे बैनरमैन की मृत्यु 20 अगस्त, 1930 को सिडनी में सरे हिल्स मे हुई। यद्यपि टैस्ट क्रिकेट मे बैनरमैन के नाम रिकार्डों का खजाना नही है लेकिन टेस्ट क्रिकेट मे शतकों की लम्बी यात्रा का पहला कदम चार्ल्स बैनरमैन ने ही उठाया था। किसी ने सच ही कहा है कि हर लम्बी यात्रा की शुरुआत पहले कदम से ही होती है।

टेस्ट रिकार्ड : 3 टेस्ट, 6 पारी, 239 रन, उच्चतम, 59.75 औसत, एक शतक।

चुन्नी गोस्वामी

काफी लम्बे अरसे तक भारतीय फुटबाल के इतिहास में अपने नाम और अपने खेल की छाप छोड़ने वाले सुबिमल गोस्वामी, जिन्हें लोग प्यार से 'चुन्नी गोस्वामी' कहते हैं, का जन्म 15 जनवरी, 1938 को कलकत्ता में हुआ। अपने दूसरे साथियों की देखादेखी उन्होंने बचपन में ही फुटबाल खेलना शुरू कर दिया। मोहन बागान के अधिकारी उनके खेल से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें 1954 में, जब वह केवल 16 वर्ष के ही थे, टीम में शामिल कर लिया और मोहन बागान की ओर से अपना पहला लीग मैच खेलते हुए, उन्होंने गोल करने का श्रेय प्राप्त किया। उसके बाद उन्होंने मोहन मोहन बागान की टीम का नेतृत्व किया और उनके नेतृत्व में मोहन बागान की टीम ने देश की सभी प्रमुख प्रतियोगिताओं में विजयश्री हासिल की।

1955 से ही उन्होंने राष्ट्रीय फुटबाल प्रतियोगिताओं में बंगाल का नेतृत्व करना शुरू किया और 1960 में बंगाल की टीम का नेतृत्व करने के साथ-साथ टीम के ओलम्पिक में भारत के प्रतिनिधित्व का गुरुतर भार भी संभाला।

1956 में मेलबोर्न ओलम्पिक खेलों में चुन्नी को भारतीय टीम में शामिल

नहीं किया गया, लेकिन उसके बाद 1958 में तोक्यो में हुए एशियाई खेलों में उन्हें टीम में शामिल कर लिया गया। तोक्यो के बाद काबुल में हुई एक प्रतियोगिता में उन्होंने आल इन्डिया कंबाइंड युनिवर्सिटी टीम का नेतृत्व किया। 1962 से उन्होने भारतीय टीम का नेतृत्व किया और 80 बड़े अन्तरराष्ट्रीय मैचों में 500 से अधिक गोल किए।

1962 में जकार्ता में हुए एशियाई खेलों में जिस भारतीय टीम ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया उसके वह कप्तान थे। उन्ही के नेतृत्व में तेल-अजीब में हुई एशियाई कप और क्वालालंपुर में हुए मर्डेका कप प्रतियोगिताओं में भारत को रनर-अप रहने का गौरव प्राप्त हुआ। 1962 और 1964 में उन्हें एशिया का सर्वश्रेष्ठ फारवर्ड घोषित किया गया।

'चुन्नी' जितने अच्छे फुटबाल के खिलाड़ी थे, उतने ही अच्छे क्रिकेट के खिलाड़ी (हरफनमौला) भी थे। रणजी ट्राफी प्रतियोगिताओं में वह बंगाल की ओर से खेलते थे। 1966 में वेस्टइंडीज के विरुद्ध खेलने वाली ईस्ट और सेंट्रल जोन एकादश टीम में भी उन्हें शामिल किया गया।

1964 में उन्हें अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत किया गया।

वह अपने जीवन का सबसे गौरवपूर्ण क्षण किसे मानते हैं? इसके जवाब में वह हमेशा यही उत्तर देते हैं कि 1962 में जकार्ता में हुए एशियाई खेलों में जब भारत-विरोधी वातावरण होने के बावजूद भारतीय टीम ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया और मुझे विजय मंच पर खड़े होने का गौरव प्राप्त हुआ तो मैं एक अवर्णनीय गौरव से अभिभूत हो उठा और उसे ही मैं अपने जीवन का सबसे गौरवपूर्ण क्षण मानता हूं।

अपने जीवन के सबसे अच्छे गोल का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि जकार्ता में ही सेमी-फाइनल में वीएतनाम के विरुद्ध खेलते हुए मैंने 25 गज की दूरी से जो गोल किया, वह मेरे खेल-जीवन का सबसे अच्छा गोल है।

उनका कहना है कि 1956 से 1963 के बीच का समय भारतीय फुटबाल का स्वर्णिम अध्याय माना जाना चाहिए। क्योंकि इस दौरान हमें रहीम जैसे प्रशिक्षक के प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर मिला और भारतीय टीम में थंगराज, अरुण, जरनैल, पी० के० और बलराम जैसे चोटी के खिलाड़ी रहे।

चेतन चौहान

21 जुलाई, 1947 को जन्मा दाएं हाथ का ठोस ओपनिंग बल्लेबाज और उपयोगी आफ-ब्रेक गेंदबाज चेतन चौहान काफी समय उपेक्षित रहने के बाद टीम का नियमित सदस्य बन पाया। बरेली में जन्मा चौहान रणजी ट्राफी में

पहले महाराष्ट्र की ओर से खेलता था, बाद में दिल्ली का स्तम्भ बना रहा। रणजी ट्राफी में चेतन का बहुत अच्छा प्रदर्शन रहा। 1978 में उसने भारतीय टीम के साथ पाकिस्तान का दौरा किया। 1978-79 में वेस्टइंडीज के विरुद्ध खेलते हुए बम्बई टेस्ट में उसने 84 रन बनाए।

32 वर्षीय चौहान ने प्रारम्भिक बल्लेबाज के रूप में काफी नाम कमाया। 40 टेस्टो में खेलते हुए उसने 2084 रन बनाए। उसका औसत 31.41 रन बैठता है। उसका एक पारी का सर्वश्रेष्ठ स्कोर 97 रन है। शार्ट लेग स्थान का वह अच्छा क्षेत्ररक्षक है और अब तक 39 कैच ले चुका है। प्रथम श्रेणी क्रिकेट से रिटायर होने के बाद आजकल वह चयन समिति का सदस्य है।

चेतन शर्मा

चेतन शर्मा ने जब टेस्ट क्रिकेट में खेलना शुरू किया था तो किसी ने भी ये नही सोचा था कि ये गेंदबाज इतना अधिक सफल रहेगा। अपनी गेंदबाजी में कपिल देव की देख-रेख में चेतन शर्मा ने बहुत सुधार किया है और अपने छोटे कद और पतले शरीर की कमी को उसने गेंद फेंकने के समय जमीन के समानान्तर उछल कर पूरा किया है।

चेतन शर्मा का जन्म 3 जनवरी 1966 को लुधियाना में हुआ था और एक क्रिकेट खिलाडी के रूप में उसने अपने आपको हमेशा नई गेंद के साथ देखा। चेतन शर्मा की शुरू से ही ये धारणा रही है कि नई गेंद के गेंदबाज का मतलब है कि बेहद तेज गेंद फेंकना। अपने कद और शरीर के मुताबिक उसने ज्यादा मेहनत की और अपनी गेंदों की लाइन और दिशा की कीमत पर गेंदो को तेज फेंका। आपको ये जानकर हैरानी होगी कि कम उम्र में ही कई बार चेतन शर्मा ने खतरनाक गेंदें फेंककर बल्लेबाजो को डराने की कोशिश की। उसके प्रशिक्षक श्री आजाद और कपिल देव ने उसकी गेंदबाजी मे यही सुधार किया और आज चेतन शर्मा का नया रूप हमारे सामने हैं। यहां ये भी नही भूलना होगा कि चेतन शर्मा भारत के भूतपूर्व खिलाड़ी यशपाल शर्मा का रिश्तेदार है और यशपाल शर्मा ने समय-समय पर अपना कीमती सुझाव उसे दिया है।

श्री देश प्रेम आजाद का प्रशिक्षण केन्द्र चण्डीगढ मे 16 सैक्टर मे है और चेतन शर्मा ने जब प्रशिक्षण पाना शुरू किया था तो उसकी उम्र सिर्फ 8 वर्ष थी। अपने अभ्यास मे उसने कई अवसरों पर सुबह 3 घण्टे और शाम को 4 घण्टे तक गेंदबाजी की। ऐसा उसे सिर्फ बल्लेबाजों को अभ्यास कराने के लिए करना पडा। इस अधिक अभ्यास ने ही उसके शरीर को मजबूत बनाया।

चेतन शर्मा ने अपनी उम्र के 18 वर्ष भी नही पूरे किए थे जब उसे भारत के लिए टेस्ट मैच खेलने के लिए बुलावा मिल गया। इससे पहले वह कपिल देव के

साथ हरियाणा और उत्तर क्षेत्र की कई सफलताओं में भागीदार बन चुका था। 1982-83 के रणजी ट्राफी सत्र में उसने 27 विकेट लिए थे। उत्तर क्षेत्र ने जब कपिल देव की गैर मौजूदगी के बावजूद देवधर ट्राफी जीती तो उसमें भी चेतन शर्मा ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। पश्चिम क्षेत्र के विरुद्ध मैच में उसने 7 विकेट लिए।

1982 में 19 वर्ष से कम आयु के खिलाड़ियों की एक भारतीय टीम के साथ चेतन शर्मा ने वेस्टइंडीज की यात्रा की। ये यात्रा स्कूल गेम्स फैडरेशन ऑफ इंडिया द्वारा प्रायोजित की गई थी और चेतन शर्मा इस यात्रा के सबसे सफल खिलाड़ियों में से एक था।

हाल की न्यूजीलैंड भारत टेस्ट शृंखला (1988) में चेतन शर्मा का योगदान न के बराबर रहा—फिर भी उनकी खेल के प्रति संभावनाओं पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता।

टेस्ट रिकार्ड : 19 टेस्टों में 310 रन और सफल गेंदबाज के रूप में 53 विकेट।

ज

जयपाल सिंह

भारतीय हाकी का गौरवपूर्ण इतिहास 1928 से शुरू होता है। इस बार भारतीय हाकी ने पहली बार ओलम्पिक खेलों में भाग लिया और स्वर्ण पदक प्राप्त किया। जयपाल सिंह भारतीय टीम के कप्तान थे। उनका जन्म 1903 में रांची जिला में हुआ। उन्होंने स्कूली जीवन से ही हाकी खेलना शुरू कर दिया था। उसके बाद जब वह आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय गए तब वहां भी हाकी का अभ्यास करते रहे। आक्सफोर्ड से लौटने के बाद जयपाल सिंह कलकत्ता की हाकी टीम मोहन बागान में शामिल हो गए और 1930 से 1934 तक वह मोहन बागान की टीम के कप्तान रहे। उसके बाद उन्हें अखिल भारतीय खेलकूद परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया। वह काफी समय तक संसद सदस्य भी रहे। 20 मार्च, 1970 को उनकी मृत्यु हो गई। उनकी अकस्मात मृत्यु से बहुत-से खेल-प्रेमियों को जबरदस्त धक्का लगा।

जयसिम्हा, एम० एल०

देश के हरफनमौला और सदाबहार क्रिकेट खिलाड़ी, 50 वर्षीय एम० एल० जय सिम्हा जिन्होंने क्रिकेट से संन्यास लेने के बाद 'आंखों देखा हाल सुनाने' और क्रिकेट समीक्षक के रूप मे भी अब काफी ख्याति प्राप्त कर ली है। भारतीय क्रिकेट मे 22 साल तक अपनी धाक जमाने वाले जयसिम्हा ने 16 वर्ष की उम्र में ही हैदराबाद की ओर से रणजी प्रतियोगिता मे खेलना शुरू कर दिया था। क्रिकेट जगत में 'जय' के नाम से प्रसिद्ध इस खिलाड़ी का जन्म 3 मार्च, 1939 को हुआ और उन्होने 1955 में पहली बार रणजी प्रतियोगिता में आन्ध्र प्रदेश के विरुद्ध खेलते हुए 90 रन बनाकर अपनी धाक जमा ली। रणजी ट्राफी प्रतियोगिता में अब तक कुल मिलाकर 5,500 रन (17 शतक सहित) बनाए। इस प्रकार अधिकतम शतक बनाने वालों की सूची में उनका तीसरा स्थान (यानी, मुश्ताक अली के बराबर) रहा। पहला स्थान हजारे (22 शतक) और दूसरा पकज राय (21 शतक) का है।

किसी भी क्रिकेट खिलाड़ी का परिचय आंकड़ो के बिना अधूरा रहता है, लेकिन जहां तक जय का सवाल है उनके परिचय मे आकडो के अतिरिक्त भी एक बात यह जोड़ी जाती है कि वह देश के एकमात्र ऐसे खिलाड़ी हैं जिन्हें मैच के पांचों दिन थोडी-बहुत बल्लेबाजी करने का गौरव प्राप्त हुआ। यह गौरव उन्हें 1959-60 में कलकत्ता में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेलते हुए प्राप्त हुआ था। लेकिन जब भी उनसे इस बारे में बातचीत की जाती है तो वह इसे अपनी बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं बल्कि एक सयोगमात्र मानते हैं।

सक्षेप में जयसिम्हा के आकड़े इस प्रकार हैं।

टेस्ट मैच : 39 टेस्ट, 71 पारिया, चार बार अविजित, कुल 2,056 रन, सर्वश्रेष्ठ रन सख्या 129, औसत : 30.68 रन।

रणजी ट्राफी : 80 मैच, 110 पारिया, अविजित (10 बार) सर्वश्रेष्ठ रन सख्या 259 (बगाल के विरुद्ध) कुल रन सख्या 5,5J0, औसत 50.40 रन।

जय का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन 1964 में रहा। इस वर्ष बगाल के विरुद्ध रणजी ट्राफी मैच मे उन्होंने ‸59 रन बनाए। इसी वर्ष रणजी ट्राफी के एक सीज़न मे 500 से ज्यादा रन बनाने का गौरव भी प्राप्त किया। इसी वर्ष भारत का दौरा कर रही इग्लैंड की टीम के विरुद्ध उन्होने 2 शतक भी लगाए।

टेस्ट मैचो मे जय का पदार्पण क्रिकेट के मक्का 'लार्ड्स' से शुरू हुआ। 1959 में 20 वर्ष की आयु में ही टेस्ट खेलने वाले खिलाड़ियो में जय सिम्हा उस समय सबसे कम उम्र मे टेस्ट खेलने वाले भारतीय खिलाडी थे।

1967-68 में आस्ट्रेलिया का दौरा करने वाली भारतीय टीम में जब अच्छे

प्रदर्शन के बावजूद जय को स्थान न मिल सका तो भारतीय क्रिकेट-प्रेमियों और क्रिकेट-समीक्षकों ने चयनकर्त्ताओं की काफी टीका-टिप्पणी की। आस्ट्रेलिया पहुंचने पर जब भारतीय टीम की स्थिति काफी डांवाडोल होने लगी और भारतीय टीम पहले दोनों टेस्टों (एडिलेड और मेलबोर्न) में बुरी तरह हार गई तो जय सिम्हा की माग और भी बढ़ गई। जय सिम्हा को विशेष विमान द्वारा आस्ट्रेलिया भेजा गया। ब्रिस्बेन में तीसरा टेस्ट आरम्भ होते-होते जय आस्ट्रेलिया पहुंचे और भारतीय टीम में शामिल हो गए। यद्यपि सफर की थकान भी दूर नहीं हुई, फिर भी उन्होंने 74 तथा 101 रन बनाकर भारतीय टीम को न केवल हारने से बचाया बल्कि एक बार तो जीत की कगार पर भी ला खड़ा किया। यह दूसरी बात है कि भारतीय टीम जीत नहीं पाई।

मुश्ताक अली तथा इंजीनियर की भांति जय भी 'आक्रमण ही बचाव का सर्वश्रेष्ठ उपाय है' के सिद्धांत पर विश्वास करते थे। उनके क्रीज पर आने का साफ अर्थ यह था कि सब क्षेत्ररक्षक फैल जाएं, अब जानदार ड्राइव हुक, पुल और कट की बारी है। सीधा ड्राइव उनका सर्वश्रेष्ठ शाट माना जाता था।

टेस्ट मैचों में उन्होंने 3 शतक लगाए। एक शतक आस्ट्रेलिया के विरुद्ध तथा दो शतक 1964 में इंग्लैंड के विरुद्ध (कलकत्ता तथा नई दिल्ली।)

जरनैल सिंह

जरनैल सिंह का जन्म 1936 में ज़िला लायलपुर (जो अब पाकिस्तान के अधीन है) में हुआ। अभी वह 13 ही वर्ष के थे कि देश का विभाजन हो गया और उन्हें अपने परिवार के सदस्यों के साथ होशियारपुर जिले में आना पड़ा। यहां उन्होंने फुटबाल के खेल में अपने स्कूल का प्रतिनिधित्व किया। हाई स्कूल के बाद कालेज जीवन में उन्होंने 1954 से 57 तक पंजाब विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया। सन् 1957 में जब उन्हें पहली बार पंजाब राज्य की टीम में शामिल किया गया तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। इसी वर्ष उन्होंने डी० सी० एम० फुटबाल प्रतियोगिता में भी भाग लिया। तभी उनके खेल-प्रदर्शन से प्रभावित होकर कलकत्ता के मशहूर क्लब 'मोहन बागान' ने उन्हें आमन्त्रित किया। और इस प्रकार 1958 में अपनी बी० ए० की पढ़ाई पूरी कर वह 1959 में कलकत्ता के प्रसिद्ध मोहन बागान क्लब में शामिल हो गए। और उनके बाद से वह भारतीय टीम के एक आवश्यक अंग बन गए।

1961 में उन्होंने मोहन बागान दल के साथ पूर्वी अफ्रीका का दौरा किया। 1961 से 67 तक मर्डेका फुटबाल प्रतियोगिता में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस प्रतियोगिता में सन् 63 और 65 में भारत को तीसरा और 64 में दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। 1964 में भारत ने इज़राइल द्वारा आयोजित एशिया

कप टूर्नामेंट में भाग लिया जिसमें इजराइल को प्रथम और भारत को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ।

जसु पटेल

ऐसा बहुत कम देखने मे आता है कि प्रतिभा और सफलता एक साथ ही प्राप्त हो जाएं। अक्सर प्रतिभा होते हुए भी सफलता के लिए तरसना पड़ता है। जसु पटेल (जन्म : 26 नवम्बर, 1924) भी शानदार प्रदर्शन के बावजूद उतनी सफलता नही पा सके जितनी के वह हकदार थे। उन्होंने टेस्ट क्रिकेट मे 26 फरवरी, 1954 को प्रवेश किया।

जसु पटेल को आज भी हम एक कीर्तिमान मे जुड़ा पाते हैं। 1959-60 की भारत-आस्ट्रेलिया श्रृंखला का दूसरा टेस्ट ग्रीन पार्क कानपुर मे था। श्रृंखला का पहला टेस्ट (दिल्ली) भारत एक पारी और 127 रन से बुरी तरह हारा था। इससे पूर्व भी भारत कभी भी आस्ट्रेलिया को हराने में सफल नही हो सका था।

भारत के कप्तान जी० एस० रामचन्द ने टॉस जीता और पहले बल्लेबाजी करने का फैसला किया। भारतीय बल्लेबाज तेज गेंदबाज डेविडसन और कप्तान रिची बेनो की गेंदों के समक्ष टिक न सके और पूरी टीम मात्र 152 रन पर ही बिखर गई।

इसके जवाब मे आस्ट्रेलिया ने पहली विकेट के लिए 71 और दूसरी विकेट के लिए 57 रन जोड़ लिए तो लगा कि भारत को एक और शर्मनाक पराजय का सामना करना पड़ेगा। ऐसे में रामचन्द ने गेंद जसु पटेल के हाथ में थमा दी और फिर पटेल ने जो सितम और कहर ढाया, वह अभूतपूर्व था। 128 रन पर दूसरा विकेट खोने वाली आस्ट्रेलियाई टीम 219 पर ही सिमट गई थी। फिर भी उन्हे 67 की अग्रता प्राप्त हो चुकी थी।

पटेल ने अकेले दम 9 खिलाड़ियों को आउट किया था। केवल मील ही ऐसा बल्लेबाज था जो बोर्डे का शिकार बना था अन्यथा शेष सभी बल्लेबाज पटेल को अपने विकेट की आहुति दे गए थे। इनमे से पांच खिलाड़ियों को तो पटेल ने बर्ल्ड ब्रोल्ड किया था।

दूसरी पारी में कांट्रक्टर, बोर्डे, केनी और नादकर्णी की साहसिक बल्लेबाजी से भारत ने 291 रन बना दिए। इस प्रकार आस्ट्रेलिया को 225 बनाकर मैच जीतने की चुनौती मिली। यह काम मुश्किल नही था लेकिन जसु पटेल ने 55 रन देकर पाच विकेट लेकर इसे नामुमकिन बना दिया और इस प्रकार भारत की सरजमीं पर आस्ट्रेलिया पहला टेस्ट मैच हार गया।

पटेल ने पहली पारी में 69 रन देकर 9 विकेट उखाड़े थे। उनसे बेहतर रिकार्ड विश्व मे सिर्फ तीन गेंदबाजों का है। यह तीनों ही गेंदबाज इंग्लैंड के हैं।

लेकर (53-10), बार्नस (37-9) और सोहमन (28-9)। इतनी शानदार सफलता के बावजूद यह कितना अविश्वसनीय लगता है कि जसु पटेल केवल सात टेस्ट मैच ही खेल सके।

जसु पटेल का टेस्ट जीवन उनकी जिंदगी की तरह ही अनिश्चित रहा। बचपन में एक दिन खेलते हुए वह गिर गए थे फलस्वरूप दायां हाथ अजीब ढंग से मुड़ गया। काफी इलाज कराया गया लेकिन हाथ ठीक न हुआ किन्तु जसु पटेल ने उसी मुड़े हाथ से आफ स्पिन गेंदबाजी शुरू कर दी। उनका गेंदबाजी का एक्शन इस दुर्घटना से अजीब-सा हो गया, लेकिन इससे उनकी गेंदबाजी खतरनाक बन गई क्योंकि विपक्षी बल्लेबाज कुछ भी अंदाजा लगा पाने में सफल नहीं हो सकते थे।

जसु पटेल को अपना पहला टेस्ट मैच 1954-55 की शृंखला में पाकिस्तान के विरुद्ध खेलने को मिला। उस समय उनकी आयु 30 वर्ष की थी। पहली पारी में उन्होंने 33 ओवरों में केवल 49 रन देकर 3 विकेट झटक लिए। उनके शिकार बने थे इम्तियाज अहमद, वजीर मुहम्मद और फजल महमूद।

इस सफलता के बावजूद जब अगले वर्ष न्यूजीलैंड की टीम भारत भ्रमण पर आई तो पटेल को केवल एक ही टेस्ट में अवसर दिया गया। मद्रास में खेले गए इस मैच में उन्होंने पहली पारी में 45 ओवरों में 64 रन देकर तीन और दूसरी पारी में 18 ओवरों में 28 रन देकर एक विकेट हासिल की। अगले वर्ष आस्ट्रेलिया के विरुद्ध तीन टेस्टों की शृंखला में पटेल को दो टेस्टों में खिलाया गया। मद्रास टेस्ट में भारत की ओर से 134.3 ओवर फेंके गए जिनमें जसु को 14 ओवरों में ही गेंद पकड़ायी गई। उन्होंने एक विकेट हासिल की।

इसके बाद आई वह अविस्मरणीय शृंखला। 1959-60 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ पहले टेस्ट में जसु को टीम में लिया ही नहीं गया जबकि दूसरे टेस्ट में कानपुर के ग्रीन पार्क ने चमत्कारिक और विस्फोटक गेंदबाजी से 14 विकेट हासिल की। अगले टेस्ट में वह घायल होने के कारण नहीं खेल पाए और चौथे व पांचवें टेस्ट में क्रमशः 2 व 3 विकेट ले सके। इसके बाद उन्होंने टेस्ट क्रिकेट को अलविदा कह दिया।

पटेल ने रणजी ट्रॉफी में 20.19 की औसत से कुल 140 विकेट भी लीं। इसके अतिरिक्त *अन्य प्रथम श्रेणी में उन्होंने अच्छी-खासी सफलता हासिल की।* 1954-55 में पाकिस्तान के दौरे में उन्होंने 10.68 की औसत से 35 विकेट लेकर भी तहलका मचाया था।

उनका टेस्ट रिकार्ड : बल्लेबाजी 7 टेस्ट, 10 पारियां, 25 रन,
गेंदबाजी : 29 विकेट (21.96 औसत से)
सर्वश्रेष्ठ 69—9

आज भारतीय टीम में कोई भी आफ स्पिनर नहीं है। ऐसे में पद्मश्री जसु पटेल की गेंदबाजी और उनका साहस, दमखम और संघर्ष बरबस ही याद आ जाते है। जसु पटेल ने भारतीय क्रिकेट के एक ऐसे अध्याय की रचना की है जिसके कारण उनका नाम हमेशा ही रिकार्ड पुस्तिकाओं में दर्ज रहेगा।

जहीर अब्बास

पाकिस्तान का जहीर अब्बास एक जबर्दस्त आक्रामक और आकर्षक बल्लेबाज है।

चश्माधारी सैयद जहीर अब्बास का जन्म 24 जुलाई, 1947 को स्यालकोट (पाकिस्तान) में हुआ। आकर्षक स्ट्रोकों वाला जहीर अब्बास देखने में निहायत सुन्दर बल्लेबाज है और कभी-कभार आफ-ब्रेक गेंदें भी फेंक लेता है। 1976 के सत्र में उसने 11 शतक बनाए और काउटी प्रतियोगिता की बल्लेबाजी की औसत में वह सबसे ऊपर रहा, जो हर दृष्टि से सराहनीय है। इस सत्र में उसने प्रति पारी 75 11 रन की औसत से कुल 2,554 रन बनाए। प्रथम श्रेणी के मैचों मे वह अब तक 50 से अधिक शतक बना चुका है। पाकिस्तान की ओर से अब तक वह 33 टेस्ट मैचों में खेला है और 6 शतकों की सहायता से 2,400 रन बना चुका है। उनका उच्चतम स्कोर 247 रनों का है।

जाज़ी, माइकेल

तोक्यो में 1964 में हुए ओलम्पिक खेलों में फ्रांस के माइकेल जाज़ी हार के बाद इतने निराश हो गए थे कि वह दौड़-धूप की दुनिया से अपना रिश्ता ही तोड़ देना चाहते थे। लेकिन जब वह वापस अपने देश पेरिस पहुंचे तब वहां के उत्साही खेल-प्रेमियों ने उनका इस ढग से स्वागत किया जैसे कोई चैम्पियन अपने देश लौट आया हो। जाज़ी ने फिर अपना इरादा बदल दिया और उसी दिन से उन्होंने अपनी तैयारी और प्रशिक्षण शुरू कर दिया। केवल आठ महीने की कठोर साधना के बाद जून 1965 में उन्होंने चार विश्व और दस यूरोपीय कीर्तिमान स्थापित किए।

तोक्यो ओलम्पिक में जाज़ी को 5,000 मीटर फासले की दौड़ में चौथा स्थान प्राप्त हुआ था। श्वावदकुल ने इस दूरी को 15 मिनट 48.8 सैकिंड मे पार कर प्रथम स्थान प्राप्त किया, लेकिन केवल आठ महीने बाद ही जाज़ी ने इस फासले को 13 मिनट 27 6 सैकिंड में पार कर नया विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। उनकी इस अभूतपूर्व सफलता पर उनके सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी आस्ट्रेलिया के रान क्लार्क ने भी उन्हें बधाई दी। उन्होंने एक मील की दौड़ को 3 मिनट 53 6 सैकिंड में पूरा कर नया विश्व रिकार्ड स्थापित किया था।

1960 के रोम ओलम्पिक में भी उन्हें 1,550 मीटर के फासले में स्वर्ण पदक प्राप्त करने की बड़ी उम्मीद थी लेकिन वहां उन्होंने इस फासले को 3 मिनट 38.4 सैकिंड में पूरा कर दूसरा स्थान प्राप्त किया था। आस्ट्रेलिया के हर्ब इलियट ने इस दूरी को 3 मिनट 35.6 सैकिंड मे पार किया था।

जातोपेक, एमिल

चेकोस्लोवाकिया के सैनिक अधिकारी एमिल जातोपेक ने 1952 के हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों में एक साथ तीन स्वर्ण पदक जीतकर खेलकूद की दुनिया में एक हलचल-सी मचा दी। जातोपेक ने 5,000 मीटर 10,000 मीटर और मैराथन दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त किए। इससे पहले 1948 में लंदन में हुए ओलम्पिक खेलों में उन्होंने 10,000 मीटर में स्वर्ण पदक प्राप्त किया था।

यहां यह बता देना उचित होगा कि जब-जब जातोपेक की चर्चा की जाएगी तब-तब उनकी पत्नी डाना का भी उल्लेख अवश्य किया जाएगा। यह एक विचित्र संयोग की ही बात है कि उनका और उनकी पत्नी डाना का जन्मदिन एक ही था। पति-पत्नी दोनों का जन्म 19 सितम्बर, 1922 को हुआ। दोनों का विवाह भी 19 सितम्बर को ही हुआ और 19 सितम्बर, 1952 के दिन हेलसिंकी मे दोनों ने ही एक-एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया। इस दिन जातोपेक ने 5,000 मीटर की दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त किया और डाना ने महिलाओं की भाला फेंक प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। दोनों के जीवन में 19 सितम्बर के दिन का विशेष महत्त्व है।

जिम्नास्टिक

ओलम्पिक खेलों में सर्वाधिक आकर्षक प्रतियोगिता जिम्नास्टिक्स को ही कहा जा सकता है, जिसमें कला और कौशल का, प्रतिभा और तकनीक का अद्भुत सगम देखने को मिलता है। इसमे सरकस का-सा भी लुत्फ रहता है और एक खेल का भी। स्केटिंग और ड्राइविंग का प्रदर्शनात्मक कौशल भी इसमें है। भले ही प्राचीन यूनान में इसे खेल कम और स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास का माध्यम अधिक माना जाता रहा हो, अब जिम्नास्टिक्स एक घोर स्पर्द्धात्मक खेल के रूप में विकसित हो चुका है।

1896 मे एथेन्स में हुए पहले आधुनिक ओलम्पिक खेलों मे जिम्नास्टिक्स में जर्मनी को सबसे अधिक सफलता मिली थी और इसके साथ ही यूरोपीय प्रभुत्व का सिलसिला शुरू हो गया। रिकार्ड के तौर पर कहा जा सकता है कि केवल 1904 मे सेंट लुई में हुए ओलम्पिक खेलों में मेजबान अमेरिका को टीम खिताब मिला, वरन यूरोपीय देश ही इसमें विजयी रहे—विशेषकर इटली। 1936 मे

बर्लिन खेलों में मेजबान जर्मनी को पुरुष और महिला दोनों वर्गों के खिताब मिले। 1952 में हेलसिंकी ओलम्पिक में ओलम्पिक खेलों में सोवियत संघ ने कदम रखते ही जिम्नास्टिक्स में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। लेकिन यूरोपीय प्रभुत्व कब तक अक्षुण्ण रहता! रोम-ओलम्पिक में चुनौती आई, प्रबल चुनौती, अमेरिका या आस्ट्रेलिया से नहीं, एशिया से जापान के रूप में। जापान पिछले चार ओलम्पिक खेलों में पुरुष-टीम-स्पर्द्धा का विजेता है।

यदि पुरुष-वर्ग में जापान शक्ति बना हुआ है, तो महिला-वर्ग में 1952 से सोवियत संघ का आधिपत्य है।

जिमथोर्प

अमेरिका के जिमथोर्प ने 1912 में स्टाकहोम ओलम्पिक में अपने अद्भुत प्रदर्शन से स्वीडन के सम्राट गुस्ताव पंचम सहित एक लाख दर्शकों को स्तब्ध कर दिया था।

1888 ओक्लाहोमा में जन्मे अमेरिकी-रेड इंडियन मिश्रित रक्त के इस विलक्षण एथलीट ने पेन्टेथलन और डिकेथलन में स्वर्ण पदक जीते थे, लेकिन कई महीने बाद जनवरी 1913 में किसी अति आदर्शवादी के कहने पर थोर्प से ये पदक इसलिए वापस ले लिए गए कि उसने कभी पेशेवर के रूप में बेसबाल खेली थी। बाद में थोर्प ने बेसबाल और अमेरिकी शैली की फुटबाल में भी बड़ा नाम कमाया। विडम्बना यह है कि इस महान एथलीट और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के सर्व-श्रेष्ठ फुटबाल (अमेरिकी) खिलाड़ी कहलाने वाले थोर्प का 1953 में निर्धनता की स्थिति में देहान्त हुआ।

जिम रिऊन

जुलाई 1966 में जब 19 वर्षीय जिम रिऊन ने एक मील फासले की दौड़ में फ्रांस के माइकेल जाज़ी का एकाधिपत्य समाप्त कर दिया और उससे 2.3 सैकिंड कम समय में यह फासला तय कर दिखाया तो खेल संसार में एक हलचल-सी मच गई। लोग हैरान होकर यह कहने लगे कि यदि 10 साल की उम्र में रिऊन का यह हाल है तो भरी जवानी में वह न जाने क्या कमाल कर डाले! एक मील के भूतपूर्व चैम्पियन पीटर स्नैल (न्यूज़ीलैंड) ने कहा कि मैं तो हमेशा यह मानता रहा हूं कि भाग-दौड़ के क्षेत्र में 20 वर्ष की उम्र में ही कुछ कमाल दिखाया जा सकता है, मगर इस दौड़ाक ने तो मेरी धारणा को ही गलत साबित कर दिया है। जिम रिऊन का कद 6 फुट 2 इंच और वजन 155 पौंड है। वैसे तो 15 वर्ष की उम्र से ही रिऊन ने भाग-दौड़ की बड़ी प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। 1964 में जब रिऊन ने तोक्यो ओलम्पिक में भाग लिया तो

उनकी उम्र केवल 17 वर्ष की थी। ओलम्पिक में क्योंकि एक मील की प्रतियोगिता नहीं होती, इसलिए उन्होंने 1500 मीटर की दौड़ में हिस्सा लिया। यहां उनका प्रदर्शन ज्यादा उत्साहवर्द्धक नहीं रहा। लेकिन तोक्यो से लौटने के बाद दो वर्षों में ही उन्होंने अपनी मुराद पूरी कर ली।

जिम लेकर

किसी गेंदबाज द्वारा टेस्ट टीम मे स्थान पाना और टेस्ट में चार-पांच विकेट निकाल लेना ही अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है किन्तु यदि कोई गेंदबाज एक ही टेस्ट मे कुल 20 में से 19 विकेट हासिल कर ले तो उसे आप क्या कहेंगे—करिश्मा, कारनामा, अनहोनी या कुछ भी। यह प्रदर्शन किया था 1956 के ओल्ड ट्रेफर्ड टेस्ट में जिम लेकर ने, जिनका जन्म 9 फरवरी, 1922 को फ्रिंजिघल (मार्कशायर) में हुआ। बेशक लेकर आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उन्होंने जो कीर्तिमान बनाया उससे वे हमेशा अमर बने रहेंगे।

शुरुआत—जिम लेकर ने 1946 में सरे की ओर से काउंटी क्रिकेट खेल कर प्रथम श्रेणी क्रिकेट में प्रवेश किया। पहले ही वर्ष उन्होंने अपनी आफ स्पिन गेंदबाजी से धाक जमा ली। 1947-48 में जब वेस्ट इंडीज भ्रमण पर जाने के लिए इंग्लैंड टीम का ट्रायल हुआ तो लेकर को भी उस के लिए बुलाया गया। लेकर ने ब्रेडफोर्ड में हुए इस ट्रायल मे सिर्फ 2 रन देकर 8 विकेट हासिल किए। इसी प्रदर्शन के आधार पर दौरे के लिए उनका चयन कर लिया गया। ब्रिजटाउन, बारबाडोज मे खेले गए पहले टेस्ट में ही लेकर ने कुल नौ विकेट लेकर तहलका मचा दिया। दूसरे दिन सुबह उन्होंने केवल 25 रन दे कर इंडीज के 5 बल्लेबाजों को आउट किया था।

चार टेस्टो की उस श्रृंखला में लेकर ने 18 विकेट चटकायी लेकिन 1948 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ उनकी गेंदबाजी की बुरी तरह धुनाई हुई और वह टेस्ट टीम में कभी अंदर और कभी बाहर होते रहे। इसके बाद दक्षिण अफ्रीका के दौरे पर उन्हे मौका नहीं मिला और न्यूजीलैंड के खिलाफ सिर्फ एक टेस्ट में खिलाया गया। 1950 मे वेस्ट इंडीज और 1950-51 मे आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड के विरुद्ध भी कभी लगातार नहीं खेल सके। 1951 मे दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ ओवल मे एक बार फिर लेकर के नाम का डंका बजा उन्होंने दोनों पारियों मे 121 रन दे कर दस विकेट उखाड़े।

चमत्कारिक गेंदबाजी—लेकर के बारे में एक बात कही जाती है कि वह गीली पिच पर अधिक प्रभावी और खतरनाक गेंदबाजी किया करते थे। 1956 मे ओल्ड ट्रैफर्ड टेस्ट मे भी पिच भीगी हुई थी। इंग्लैंड की पहली पारी में जब 459 रन बने तभी पिच पर गड्ढे पड़ चुके थे। आस्ट्रेलिया ने अपना पहला विकेट

48 रन पर खोया। आउट होने वाला खिलाड़ी था बर्क और उसे सम्ब्र स्पिनर टोनी लाक ने आउट किया था। उस समय लेकर बिना विकेट लिए नौ ओवर में 21 रन दे चुके थे। कप्तान पीटर ने दोनों गेंदबाजों का छोर बदल दिया। बस, यहीं से नये इतिहास की रचना हुई। अगले 7.4 ओवरों में लेकर ने सिर्फ 16 रन और देकर शेष सभी नौ आस्ट्रेलियाई बल्लेबाजों को पेवेलियन लौटा दिया। अन्तिम सात विकेट तो उन्होंने सिर्फ 22 गेंदों में आठ रन देकर ली थी।

पूरी आस्ट्रेलियाई टीम सिर्फ 84 रन पर सिमट गयी थी और उसे फालो-आन करना पड़ा था। दूसरी पारी में तीसरे दिन का खेल खतम होने तक आस्ट्रेलिया ने एक विकेट पर 53 रन बनाए थे। मैकडोनाल्ड पाव पर चोट के कारण उस दिन रिटायर हो गया और अगले दिन उसने क्रेग के साथ मिलकर लंच तक स्कोर 2 विकेट पर 112 रन तक पहुंचा दिया। ऐसे में लेकर ने स्ट्रेटफोर्ड छोर से फिर गेंदबाजी करते हुए पहली पारी का करिश्मा दोहरा दिया और देखते ही देखते आस्ट्रेलियाई टीम 205 रन पर आउट हो गयी। इस पारी में तो सभी दस विकेट लेकर ने ही लिए थे। लेकर के साथी स्पिनर लाक ने 55 ओवर फेंके लेकिन उन्हें एक भी विकेट नहीं मिला। आस्ट्रेलियाई टीम के कप्तान जानसन ने आरोप लगाया कि पिच को जानबूझकर इस तरह का बनाया गया कि वह स्पिनरों की मददगार हो परन्तु लाक को एक भी विकेट न मिल पाना इस आरोप को गलत और लेकर की प्रतिभा को प्रदर्शित करता है।

प्रथम श्रेणी रिकार्ड—हैरानी की बात यह है कि टेस्ट मैच में 19 विकेट लेने से कुछ ही दिन पूर्व लेकर ने किसी आस्ट्रेलियाई टीम के खिलाफ सरे काउंटी की की ओर से खेलते हुए एक पारी के सभी 10 विकेट चटका दिए थे। उन्होंने 11 बार एक सीजन में 100 या इससे अधिक विकेट हासिल किए। 1950 के सीजन में तो उन्होंने 166 विकेट (15.32) चटकाए। 1952 से 1958 तक वह सरे की उस टीम के सदस्य रहे जिसने काउंटी चैंपियनशिप पर दोबारा कब्जा जमाया। बाद में वह एसेक्स काउंटी में चले गए।

अवकाश के बाद—1958-59 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ मेलबोर्न टेस्ट खेलने के बाद टेस्ट क्रिकेट से अलग हो गए लेकिन वह क्रिकेट से लगातार जुड़े रहे। उन्होंने जीवन में छह पुस्तकें भी लिखी जिनमें अंतिम पुस्तक 'फाम क्रीज टू कमेंट्री बाक्स' तो उनकी मृत्यु से कुछ दिन पहले ही छपी थी। बी०बी० सी० टेलीविजन से उनकी क्रिकेट कमेंट्री बहुत लोकप्रिय हुई।

लेकर के कीर्तिमान की बराबरी करना असंभव तो नहीं है लेकिन इतना मुश्किल भी अवश्य है कि उनके नजदीक पहुच पाना लगभग असंभव ही है। उनकी मृत्यु 23 अप्रैल, 86 को हुई।

टेस्ट रिकार्ड—46 टेस्ट, 63 पारी, 676 रन, 63 उच्च। (औसत

14.08), दो अर्धशतक, 193 विकेट (औसत 21.24), सर्वश्रेष्ठ 10-53, पारी में 5 विकेट 9 बार, मैच में दस विकेट 3 बार।

अलंकरण—विजडन, 1952

जूले रीमे कप

विश्व फुटबाल की प्रतिष्ठा 'जूले रीमे कप', जिसे 1970 में ब्राजील ने हमेशा के लिए अपने पास रख लिया था, उसे चोरों ने गलाकर नष्ट कर दिया है। इस तरह एक महत्वपूर्ण तथा मूल्यवान ट्रॉफी का जिस तरह दुखद अंत हुआ, उसकी पीड़ा समस्त खेल प्रेमियों को होना स्वाभाविक है।

19 दिसम्बर 83 की वह मनहूस रात, छह सदस्यीय चोरों का एक गिरोह ब्राजील फुटबाल महासंघ के मुख्यालय में घुसा और वहां पर तैनात चौकीदार तथा अन्य व्यक्तियों को डरा-धमकाकर तीन किलो (नौ पौंड) विशुद्ध सोने की एक फुट ऊंची 'जूले रीमे कप' तथा दो अन्य ट्रॉफियां उठाकर ले जाने में सफल हो गया। इस चोरी को देखकर लोगों ने अनुमान लगाया कि इसकी भी प्रक्रिया वही है जिस तरह 'द मैन हू स्टोल द वर्ल्ड कप' नामक फिल्म का नायक फुटबाल खेलने में अपने को असमर्थ पाकर फुटबाल का विश्व कप ही चुरा लेता है।

लेकिन इस कप की चोरी की कहानी किसी निराशा का परिणाम नहीं, वरन उसमें लगे लगभग 25 हजार पौंड के सोने की प्राप्ति के लिए हुई थी। विश्व कप का इस तरह से चोरी चला जाना ब्राजील फुटबाल संघ के लिए चिन्ता का विषय तो था ही, ब्राजील पुलिस के लिए भी यह एक चुनौती थी। परिणामतः काफी अथक परिश्रम के बाद ब्राजील पुलिस इस गिरोह के तीन चोरों को गिरफ्तार करने में सफल हो गयी, पर 'जूले रीमे' कप को सही सलामत प्राप्त करने में वह असफल रही। तब तक चोर उसे एक गलाकर नष्ट कर चुके थे।

जूले रीमे का जन्म

'जूले रीमे कप' फ्रांस के एक प्रमुख वकील जूले रीमे के दिमाग की उपज थी। 1920 में वह अंतर्राष्ट्रीय फुटबाल महासंघ का अध्यक्ष बना तो उसके मन में फुटबाल की विश्व प्रतियोगिता के आयोजन का विचार आया। 1930 में जब उसका यह इरादा फलीभूत हुआ तो उसने विश्व प्रतियोगिता में दी जाने वाली ट्रॉफी का नाम 'जूले रीमे' कप रखा। तब से प्रति चार वर्ष पर होनेवाली इस विश्व प्रतियोगिता जीतने वाली टीम को यह कप दिया जाता था। किन्तु कोई टीम जब इस कप को तीन बार जीत ले तो उसे यह कप हमेशा के लिए दे दिया जाने की भी योजना थी।

ब्राजील फुटबाल टीम ने 1958, 62 तथा 1970 में इसे जीतकर हमेशा के

लिए इस पर अपना अधिकार कर लिया था। इससे पूर्व उरुग्वे ने 1930 तथा 50 में, इटली ने 34 तथा 38 में, पश्चिम जर्मनी ने 54 में तथा इंग्लैंड की टीम ने 66 में जीता था। इंग्लैंड की टीम जब इस कप को जीतकर अपने यहां ले गई थी तो उस समय भी यह कप चोरी हो गया था। पर इंग्लैंड पुलिस की सक्रियता से सही-सलामत मिल गया था। इस बार इसके नष्ट हो जाने से ब्राजील फुटबाल संघ को जो धक्का लगा है, वह तो दुखद है ही, संपूर्ण विश्व के फुटबाल प्रेमी भी उसके नष्ट कर दिए जाने से काफी दुःखी और क्षुब्ध हैं।

जेसी ओवंस

दौड़कूद की दुनिया में एक नाम सर्वाधिक लोकप्रिय रहा और उसे एथलीटों का बादशाह कहा गया। इतने बड़े संसार में जहां हर देश में एथलीट हुए हों, उनमे सर्वश्रेष्ठ बन पाना एक ऐसी उपलब्धि है जिस पर जितना गर्व किया जाये, कम है, यदि कोई खिलाड़ी बिना साधनों के ही केवल अपनी साधना के बल पर ही इतना सफल हुआ हो तो यह गौरव और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। जी हां, ठीक समझे आप, हम एथलीटों के बादशाह अमेरिका के जेसी ओवंस की ही बात कर रहे हैं।

बर्लिन ओलम्पिक खेलों में जेसी ओवंस ने इतनी बुलंदी प्राप्त कर ली थी जिसकी बराबरी न तो कोई पहले कर पाया था और न ही उसके बाद ही कोई ऐसा एथलीट पैदा हुआ। ओवंस ने 100 मीटर में स्वर्ण पदक जीतकर विश्व का सबसे बड़ा तेज धावक होने का श्रेय हासिल किया था। उसने 100 मीटर में प्रथम मुकाबलों सहित फाइनल तक चार बार भाग लिया था और उसका समय था। 10.3 सेकिंड, 10.2, सेकिंड, 10.4 सेकिंड और 10.3 सेकिंड, 10.2 सेकिंड का उसका रिकार्ड स्वीकार नही किया गया था क्योकि उस समय हवा उसी पक्ष में 2 मीटर प्रति सेकिंड से तेज चल रही थी। 200 मीटर में जेसी का समय निकला 21.1, 21.1, 21.3 और 20.7 सेकिंड। 100 मीटर और 200 मीटर मे यह नये ओलम्पिक रिकार्ड थे। लंबी कूद को हमेशा से ही ओलम्पिक की संघर्षमय प्रतिस्पर्धा माना जाता है।

जेसी ओवंस का जन्म अत्यन्त ही निर्धन परिवार में 12 सितंबर, 1913 को अमेरिका के डानविले शहर में हुआ था। उसके दादा एक गुलाम थे। वह सात भाई-बहन थे लेकिन उनमे से तीन की बचपन में ही मृत्यु हो गयी थी। जब वह नौ वर्ष के हुए तो अपने परिवार के साथ क्लीवलैंड जा बसे। यहीं उनके मन मे भागने और एथलीट बनने की इच्छा जागृत हुई। वास्तव मे जेसी का जीवन इतना अधिक अभावग्रस्त था कि और किसी खेल की ओर ध्यान देने की उनकी क्षमता ही नहीं थी। बस, उन्होंने दौड़ना शुरू कर दिया और दौड़ते ही रहे। हाई

स्कूल में उनकी ओर चार्ली रिले नामक एक दार्शनिक का ध्यान गया और उन्होंने उन्हें एथलीट बनने के कुछ गुण बताये। जब वह केवल 15 वर्ष के ही थे तो 100 मीटर मे विश्व रिकार्ड के निकट पहुंच चुके थे किंतु एथलीट बनना उनके लिए एक विलासिता की बात थी क्योंकि उस समय भी वह अपनी और अपने परिवार की जीविका बूट पालिश करके ही चलाया करते थे। जब वह इसी प्रकार अभावों से गुजरते हुए विश्वविद्यालय मे पहुंचे तो तब तक एथलीट के रूप में लोग उन्हें पहचानने लगे थे। विश्वविद्यालय में ही उन्हें स्कॉलरशिप भी मिलनी प्रारंभ हो गयी और लोग उन्हें 'गोली जैसे तेज' एथलीट की संज्ञा देने लगे थे।

1935 में जेमी ओवस ने अन अर्बर, मिचिलगन में एक एथलीट मीट में तीन विश्व रिकार्ड स्थापित किये। यहीं से उनका नाम ओलम्पिक के लिए अमेरिकी टीम में निश्चित हो गया और उन्होंने अपने चयन को सत्य सिद्ध भी कर दिखाया। जेसी ओवंस को 1979 में अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च पदक (मैडल आफ फ्रीडम) से सम्मानित किया गया। 30 मार्च 1980 को उनकी मृत्यु हो गयी।

जैक डेम्पसी

आप और हम मुहम्मद अली को जानते हैं, लेकिन इससे पूर्व एक विश्व हैवी-वेट चैंपियन था जैक डेम्पसी। कहते हैं कि इस जैसा मुक्केबाज न हुआ है न होगा। यह इतना खूंखार था कि अमेरिकी महिलाएं अपने 'बच्चों को आया मनास्सा!' 'आया किलर!' 'आया जंगली भैंसा' कहकर डराया करती थी।

जैक डेम्पसी का जन्म अमेरिका मे कालोराडो के निकट मनास्सा गांव के एक साधारण परिवार में हुआ था। उनके पिता एक स्कूल में अध्यापक थे। इसके बचपन का नाम विलियम हरीसा डेम्पसी था। बाद में इसी बालक ने जैक नाम के कोच से मुक्केबाजी सीखी और इसी वजह से जैक डेम्पसी के नाम से रिंग में उतरा।

4 जुलाई 1919 मे ओहिओ के निकट तोलेडो में जैक डेम्पसी ने अपने से भारी-भरकम जे० विलार्ड का तीसरे चक्र मे कचूमर निकाल कर विश्व हैवीवेट चैंपियनशिप् का खिताब जीता था। इसके बाद डेम्पसी ने मुक्केबाजी की दुनिया में कहर ढाने शुरू किये।

छह फुट एक इंच लंबे, 180 पौंड वजनी जैक डेम्पसी रिंग के अंदर जितना खूंखार था बाहर उतना ही नम्र और शालीन। 6 सितंबर 1920 मिचिगन के बेंटन हारबर में जैक ने बिली मिस्के के दंभ को चकनाचूर किया और 14 दिसंबर 1920 को मेडीसन स्क्वायर गार्डन, न्यूयार्क में डेम्पसे ने 12वें चक्र में उस समय के यमदूत बिल ब्रनान को बुरी तरह धुन डाला। 2 जुलाई 1921 को डेम्पसी व

कार्पेटीयर के ऐतिहासिक संघर्ष को शताब्दी का मुकाबला कहा गया। न्यू जर्सी सिटी में तीस एकड़ जमीन पर विशेषरूप एक ऊंचा रिंग बनाया गया। इस मुकाबले को देखने के लिए 80 हजार दर्शक उमड़ पड़े और मुक्केबाजी में पहली बार 1,789,238 डालर की टिकटें बिकीं।

दो वर्ष सुस्ताने के बाद डेम्पसी ने 4 जुलाई 1923 को शेल्बी मोंटाना में टौम गिबन को बच्चों की तरह से निचोड़ डाला। 14 सितंबर 1923 को जैक ने न्यूयार्क के पोलो मैदान में अपने जीवन की सबसे कठिन प्रतियोगिता में अर्जेंटीना के लुइस एंजल को दूसरे चक्र में ही नाक-आउट कर दिया। पंपास के इस जंगली चीते को जैक ने पहले चक्र में सात बार धराशायी किया। दूसरे चक्र में दो बार और तीसरे दौरे में डेम्पसी के एक प्रबलकारी मुक्के ने काम तमाम कर दिया। तीन मिनट 57 सेकिण्ड के इस दौर की मुक्केबाजी में चमत्कारिक बताया गया है।

आखिर एक दिन वह भी आया जब जैक डेम्पसे को विश्व खिताब गंवाना पड़ा। वह दिन था 23 दिसंबर 1976। जैक का मुकाबला न्यूयार्क के जेने टुन्ने। टुन्ने शारीरिक दृष्टि से बलवान नजर आता था। जैक के मुक्कों में अब वह तेजी नहीं थी। टुन्ने ने दांवो को काटते हुए भीषण प्रहार जारी रखे, जिन्हें जैक न सह सका। इस मुकाबले को देखने के लिये 1, 20, 757 दर्शकों ने 1,80,5733 डालर के टिकट खरीदे थे।

डेम्पसी ने सातवें चक्र में टुन्ने को लगभग धराशायी कर दिया था। रेफरी ने 9 तक की गिनती भी गिन ली थी कि इसी समय डेम्पसी ने 'न्यूटरल' कारनर में जाने में विलंब कर दिया। उधर रेफरी ने गिनती रोक दी। इसी बीच टुन्ने उठा और डेंपसे को नाक आउट कर गया।

इसी के बाद डेम्पसी ने संन्यास लेने की घोषणा कर दी। अपनी पराजय से डेम्पसी कुछ खिन्न हो उठे थे। उन्होंने कहा कि "अगर वह जीत जाते तब मुकाबले जारी रखते। लेकिन एक दिन तो उन्हें कोई नाक-आउट करता ही।"

यह था जैक डेंपसी जो 31 मई को 87 वर्ष की अवस्था में इस दुनिया से चल बसा। विश्व चैंपियन पिछले दो वर्ष से अस्वस्थ था। यह अक्सर अपनी पत्नी डियाना के साथ बेंत के सहारे अपने फ्लेट में टहलते दिखाई दे जाते थे। कहते है, उस जमाने में डेंपसी ने मुक्केबाजी से लगभग दस करोड़ रुपये (एक करोड़ डालर) कमाये थे।

भूतपूर्व विश्व चैंपियन फ्लायड पैटरसन ने कहा कि "जैक डेंपसी जैसा मुक्केबाज दुनिया को नसीब नहीं हुआ।" राष्ट्रपति रीगन ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि "डेंपसी अमेरिकी लोगों का हृदय सम्राट है, वह अमर है।"

टायसन, माइक

विश्व हैवीवेट चैंपियन माइक टायसन अपनी जिंदगी में सिर्फ एक चीज से घृणा करता है और वह है हार। उसके दिलो दिमाग में बस एक ही चीज छायी रहती है, वह है जीत।

जबरदस्त शरीर का फौलादी आदमी कहे जानेवाले टायसन की सबसे बडी ताकत उनका 'पंच' है। यह 'पंच' इस कदर मारक है कि देखनेवालों ने उसे 'हाइड्रोजन बम' तक की संज्ञा दे दी है। इस 'हैवी किड' को रिंग में मुकाबला करते देखना अपने—आप में एक अनुभव है। उसे लड़ते देख किसी आदमी की नही, बल्कि किसी खूखार जंगली जानवर की याद आती है।

विश्व मुक्केबाजी में टायसन का छा जाना, किसी हिन्दी फिल्म का कोई नजारा नजर आता है। बचपन में वह कोई बहुत मजबूत नही था। ब्रुकलिन (न्यूयॉर्क) मे वह जन्मा, पला और बढ़ा। उस ब्रुकलिन में जहां से दुनियाभर के सबसे खतरनाक अपराधी पैदा होते हैं। सात साल की ही उम्र में वह अपने सीनियर दादाओं को मदद करने लगा था। उसे रोकने-टोकनेवाला कोई था ही नही। बच्चे माइक ने अपने माता-पिता को देखा ही नहीं था। वे कैंसर से बहुत पहले ही मर चुके थे। शायद इसीलिए उसे बहुत समय नही लगा और वह एक 'गैंग' मे शामिल हो गया।

टायसन का कहना है कि वह गुंडई में अपनी मनमर्जी से शामिल नही हुआ था। वह उसकी निहायत मजबूरी थी। क्योंकि अगर किसी को भी ब्रुकलिन में जिंदा रहना है, तो उसे लगभग हर चीज के लिए लड़ना ही पड़ेगा। गली के गुंडे उसके हाथ से कुछ भी छीन ले जाते थे और टायसन रुआंसा सा वापस घर लौट आता था। उसकी मां की एक खास सहेली थी, जिसे टायसन आंट लिज कह कर पुकारता था। वह उस पर व्यंग्य करते हुए उसे 'सिसी' कहा करती थी। एक बार उन्होंने माइक से कहा कि अगर वह आदमी बनना चाहता है तो उसे गुंडों के खिलाफ खड़ा होना होगा। 'लड़ो और उन्हें भगा दो, अगर वे तुम्हें मार भी देते हैं, तो मरो, लेकिन बहादुरी से।'

इसके बाद टायसन की दुनिया बदल गयी और उसने गुंडों को मारना और ललकारना ही नही, उन्हें लूटना भी शुरू कर दिया। टायसन ने कहा भी, 'मुझे तो लड़ना ही था। अगर आप नही लड़ना चाहते हैं, तो भी। क्योंकि इसके बिना यहां जीना लगभग दूभर था।' धीरे-धीरे वह जबरदस्त गुंडों में गिना जाने लगा। जब कोई तुम्हें मारे, तो तुम्हें पलट कर मारना सीखना होगा। जब वे तुम्हारी चीजें से भागें तब तुम्हें उन्हें वापस छीनना भी सीखना पड़ेगा। जल्दी ही मैं अपनी

ताकत मे वाफिक हो गया और इतनी जोर से प्रहार करने लगा, जितना कोई भी बड़ा आदमी कर सकता है।' ऐसे ही एक प्रहार से, जो ग्यारह साल की उम्र में किया गया था, जब एक आदमी उसका प्यारा कबूतर चुरा कर ले जा रहा था, उस प्रहार के बाद उस आदमी को लेने के देने पड़ गए थे। टायसन अब तक 35 मुकाबलों मे अजेय रहा है जो एक विश्व रिकार्ड है। विश्व बाक्सिंग का वह बेताज बादशाह है।

टेबल टेनिस

चीन का सबसे लोकप्रिय खेल टेबल टेनिस है। इस खेल को लाखों खेलते हैं। चीन में इस खेल की शुरूआत 1920 में हुई। यूरोप और जापान की अपेक्षा उस समय चीन मे इस खेल का स्तर काफी हलका था। चीन में गणतंत्र के साथ खेलों मे भी नई क्रांति आई। 1959 में नई लहर चीन मे फैली और खेलों की ओर इतना अधिक ध्यान दिया गया कि चीनी खिलाडियो ने अंतर्राष्ट्रीय मुकाबलो में बहुत शीघ्र ही आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर खेल जगत मे सनसनी फैला दी।

टेबल टेनिस को पिंग-पोंग का नाम भी मिला। चीन की पिंग-पोंग कूटनीति ने विश्व में अभूतपूर्व सफलता पाई। कई देशों से आपसी गहरे मतभेद होने के बावजूद चीनी पिंग-पोंग कूटनीति ने इन खाइयों को लांघकर आपसी राजनीतिक संबध बेहतर बनाये। विशेषकर अमेरिका से चीन पिंग-पोंग दौरे काफी सफल सिद्ध हुए।

चीन खिलाडियों की तकनीक इस खेल में इतनी सर्वोत्तम सिद्ध हुई कि यूरोप और जापानी एकाधिकार तो लगभग सफाचट हो गया।

हाल ही मे चीन ने नोवीसाद, युगोस्लाविया मे 14-26 अप्रैल मे हुई 36वी टेबल टेनिस चैंपियनशिप मे चीन ने सभी सातों खिताब अपनी झोली में डालकर सबको चकाचौंध कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। चैंपियनशिप के 55 वर्ष के इतिहास में यह पहला मौका रहा जब एक देश ने इतनी अभूतपूर्व सफलता पाई हो। जापान जो किसी समय इस खेल मे महाशक्ति रहा है एक बार छह खिताब जीत सका था।

36वी विश्व टेबल टेनिस चैंपियनशिप मे चीन की इस लोमहर्षक विजय पर टिप्पणी करते हुए हंगरी टीम के प्रशिक्षक बरजिक जोल्टान ने कहा कि यदि टीम स्पर्धा में दो चीनी टीमों को खेलने की अनुमति दी जाती तो फाइनल मुकाबला भी इन्ही दोनों के बीच होता। हंगरी की टीम चैंपियनशिप में पिछली विजेता थी।

बैंकाक में हुए आठवें एशियाई खलों में चीन ने अपनी श्रेष्ठता की गहरी छाप लगाई। सभी खिताब चीन ने अपने कब्जे में कर अपने सर्वोपरि खेल की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। एकल मुकाबले तो चीनी खिलाड़ियों के बीच खेले गए जिसमें यह विजेता और उपविजेता बने।

चीनी खिलाड़ियों के बेहतर खेल का रहस्य उनकी शक्तिशाली लूपिंग तकनीक, तेज चाप और तीखा आक्रमण है। इस खेल की लोकप्रियता चीन में इतनी बढ़ चुकी है कि प्रति वर्ष कई उदीयमान खिलाड़ी उभरते हैं जिनका कमाल देखने लायक होता है। इनके आधुनिक खेल में 'पेन होल्ड' ग्रिप का अपना कमाल है।

चीन ने विश्व टेबल टेनिस चैंपियनशिप में पहली बार 1952 में रोमानिया में हुई 20वीं प्रतियोगिता में भाग लिया। इनकी पुरुषों की टीम को दसवां अथवा महिला टीम को क्लास-बी में तीसरा स्थान प्राप्त हुआ। परन्तु चीन ने भविष्य के लिए एक बड़ी चुनौती यहां दी।

छह वर्ष पश्चात 25वीं विश्व टेबल टेनिस चैंपियनशिप में रोंग गौतुआन ने कई नामी खिलाड़ियों को पानी पिलाकर पुरुष एकल खिताब जीतकर चीन को पहला विश्व खिताब दिलाने का गौरव प्राप्त किया। 26वीं विश्व चैंपियनशिप में चीन को अप्रत्याशित सफलता मिली। चीनी खिलाड़ियों ने न केवल पुरुष तथा महिला खिताब जीते अपितु पुरुष चैंपियनशिप भी अपने अधिकार में कर ली। इसके पश्चात तो चीन को अभूतपूर्व सफलताएं मिली जो अपनी मिसाल हैं।

आंकड़े गवाह हैं

विश्व टेबल टेनिस चैंपियनशिप में चीन का लेखा-जोखा इस प्रकार है : (टीम प्रतियोगिता) : 26वीं (1961), 27वीं (1963) और 28वीं (1965) प्रतियोगिता में चीन विजेता (पुरुष वर्ग) बना, 29 (1967) तथा 30वीं (1969) विश्व चैंपियनशिप में चीन ने भाग लिया। 31वीं (1971) चैंपियनशिप में चीन पुरुष वर्ग में फिर प्रथम स्थान पर रहा। 33वीं (1975) तथा 34वीं (1977) चैंपियनशिप में चीन ने पुरुष तथा महिला टीम चैंपियनशिप जीती। 35वीं (1979) चैंपियनशिप में चीन ने लगातार तीसरी बार महिला टीम खिताब जीता। इस बार हंगरी ने पुरुष टीम प्रतियोगिता में शीर्ष स्थान पाया। 36वीं (1981) विश्व टेबल टेनिस में चीन ने पुरुष और महिला चैंपियनशिप जीती।

विश्व टेबल टेनिस के व्यक्तिगत मुकाबलों में सफलता पाने वाले चीन के खिलाड़ी इस प्रकार रहे।

रोंग गोतान ने 1959 में पुरुष खिताब जीता। 1961 में जुआंग जेदोंग पुरुष एकल और जोनगुई ने महिला खिताब जीता। 1963 में जुआंग ने दूसरी बार अपने खिताब की रक्षा की। पुरुष युगल खिताब भी चीनी खिलाड़ियों ने जीता। 1965 में जुआंग ने लगातार तीसरी बार पुरुष एकल खिताब जीतकर नया कीर्तिमान स्थापित किया। पुरुष और महिला युगल खिताब चीनी खिलाड़ियों ने जीते।

1971 में लिन हुई किंग महिला चैंपियन बनी। महिला युगल तथा मिश्रित युगल खिताब भी चीन ने जीते। 1973 में जी एर्नटिंग पुरुष एकल तथा यूलन

महिला एकल चैंपियन बनी। मिश्रित युगल में भी चीनी खिलाड़ी शीर्ष पर रहे। 1977 मे पुरुष युगल तथा महिला युगल खिताब चीन ने हासिल किये। 1979 में हुई 35वीं विश्व चैंपियनशिप में जी, जिन-ए महिला एकल चैंपियन बनी। महिला युगल तथा मिश्रित युगल खिताब भी चीनी खिलाड़ियों ने प्राप्त किए। 1981 में हुई 36वीं विश्व चैंपियनशिप में तो चीन ने सभी पांचों व्यक्तिगत खिताब जीतकर अपनी श्रेष्ठता की गहरी छाप लगा दी।

गुओ यू हुआ पुरुष और टोंग लिंग महिला एकल चैंपियन बनी। पुरुष युगल, महिला युगल तथा मिश्रित युगल खिताब जीतकर चीन ने सबका सफाया कर दिया।

नवें एशियाड में चीन ने अपना दबदबा बनाए रखा। इनकी शक्तिशाली टीम में विश्व चैंपियन गुओ यू हुआ व महिला चैंपियन टोंग लिंग शामिल हैं। जी सैंके, वांग हुई युआन व काये जुनहुआ विश्व के महान खिलाड़ी हैं।

महिलाओं में टोंग के अतिरिक्त काओ यानहुआ और कि बाओसियांग ने भी अपने उत्कृष्ट खेल द्वारा विश्व में तहलका मचा रखा है।

ड

डॉन ब्रैडमैन

27 अगस्त 1908 का दिन इतिहास के पन्नों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि इसी दिन ऐसे दो व्यक्तियों ने जन्म लिया जिनका नाम और ख्याति दूर-दूर तक फैली। सिडनी से 200 मील दूर दक्षिण पश्चिम में कूटामुंडा नामक स्थान क्रिकेट के महानतम खिलाड़ी डॉन ब्रैडमैन के जन्म का गवाह बना। उसी दिन अमेरिका के दक्षिण पश्चिमी टेक्सास में लिंडन बेंस जॉनसन का भी जन्म हुआ जो बाद में सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचकर अमेरिका के राष्ट्रपति बने।

ब्रैडमैन की पैदाइश भले ही आस्ट्रेलिया में हुई हो लेकिन उनके पूर्वज इंग्लैंड के रहने वाले थे। पिता के अलावा डॉन के दो मामा भी क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी थे। डॉन के बड़े भाई विक्टर की भी क्रिकेट में काफी रुचि थी।

इस प्रकार एक 'क्रिकेटमय' वातावरण में डॉन की परवरिश हुई लेकिन उन्हें किसी तरह की विशिष्ट सुविधा नही मिली। आठ वर्ष की उम्र में उन्होंने क्रिकेट खेलना शुरू किया और वह भी अपनी मां के साथ। उनकी मां गेंद फेंकती और वह बल्लेबाजी करते। टिन की विकेट हुआ करती और रबर की गेंद।

डॉन ने अपना मैच 1919-20 में खेला। अपने मैच में डॉन आश्चर्यजनक

महिला एकल चैंपियन बनी। मिश्रित युगल में भी चीनी खिलाड़ी शीर्ष पर रहे। *1977 मे पुरुष युगल तथा महिला युगल खिताब चीन ने हासिल किये। 1979* में हुई 35वीं विश्व चैंपियनशिप में जी, जिन-ए महिला एकल चैंपियन बनी। महिला युगल तथा मिश्रित युगल खिताब भी चीनी खिलाड़ियों ने प्राप्त किए। 1981 में हुई 36वीं विश्व चैंपियनशिप में तो चीन ने सभी पांचों व्यक्तिगत खिताब जीतकर अपनी श्रेष्ठता की गहरी छाप लगा दी।

गुओ यू हुआ पुरुष और टोंग लिंग महिला एकल चैंपियन बनी। पुरुष युगल, महिला युगल तथा मिश्रित युगल खिताब जीतकर चीन ने सबका सफाया कर दिया।

नवें एशियाड में चीन ने अपना दबदबा बनाए रखा। इनकी शक्तिशाली टीम में विश्व चैंपियन गुओ यू हुआ व महिला चैंपियन टोंग लिंग शामिल हैं। जी सेंके, वाग हुई युआन व कायें जुनहुआ विश्व के महान खिलाड़ी हैं।

महिलाओं में टोंग के अतिरिक्त काओ यानहुआ और कि बाक्सियांग ने भी अपने उत्कृष्ट खेल द्वारा विश्व में तहलका मचा रखा है।

ड

डॉन ब्रेडमैन

27 अगस्त 1908 का दिन इतिहास के पन्नों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि इसी दिन ऐसे दो व्यक्तियों ने जन्म लिया जिनका नाम और ख्याति दूर-दूर तक फैली। सिडनी से 200 मील दूर दक्षिण पश्चिम में कूटामुंडा नामक स्थान क्रिकेट के महानतम खिलाड़ी डॉन ब्रैडमैन के जन्म का गवाह बना। उसी दिन अमेरिका के दक्षिण पश्चिमी टेक्सास में लिंडन बेंस जॉनसन का भी जन्म हुआ जो बाद में सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचकर अमेरिका के राष्ट्रपति बने।

ब्रैडमैन की पैदाइश भले ही आस्ट्रेलिया में हुई हो लेकिन उनके पूर्वज इंग्लैंड के रहने वाले थे। पिता के अलावा डॉन के दो मामा भी क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी थे। डॉन के बड़े भाई विक्टर की भी क्रिकेट में काफी रुचि थी।

इस प्रकार एक 'क्रिकेटमय' वातावरण में डॉन की परवरिश हुई लेकिन उन्हें किसी तरह की विशिष्ट सुविधा नहीं मिली। आठ वर्ष की उम्र में उन्होंने क्रिकेट खेलना शुरू किया और वह भी अपनी मां के साथ। उनकी मां गेंद फेंकती और यह बल्लेबाजी करते। टिन की विकेट हुआ करती और रबर की गेंद।

डॉन ने अपना मैच 1919-20 में खेला। अपने मैच में डॉन आश्चर्यजनक

रूप से सफल रहे थे। उन्होंने 55 रन बनाए और आउट नहीं हुए। 1920-21 की गर्मियों में डॉन ने अपना पहला शतक जमाया और उसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

नाट आउट ब्रैडमैन

वयस्कों की टीम में डॉन को बारह-तेरह वर्ष की उम्र में प्रवेश मिल गया। दसवें नंबर पर खेलने आए डॉन ने अविजित 37 रन बनाए। दूसरी पारी में भी वह अविजित रहे। बाद में उन्होंने पांच पारियां खेलीं और अविजित रहे। लोग उन्हें 'नाट आउट ब्रैडमैन' कहने लगे।

विभिन्न मैचों में लगातार सफलता के बाद 1928 के फरवरी मास में न्यूजीलैंड का दौरा करने वाली आस्ट्रेलियाई टीम में उनका चयन तो नहीं हुआ लेकिन उनका नाम सुरक्षित खिलाड़ियों की सूची में था जो अपने आप में एक सम्मान था।

डॉन को आस्ट्रेलिया दौरा करने वाली इंग्लैंड टीम के विरुद्ध न्यू साउथ वेल्स की ओर से चुना गया था। इंग्लैंड ने सात विकेट पर 734 रन का विशाल स्कोर खड़ा किया। किंतु डॉन की शानदार बल्लेबाजी की बदौलत उनकी टीम ने मैच बचा लिया। उस मैच में डॉन ने लारवुड जैसे गेंदबाज का सामना किया था।

1928 के नवंबर महीने में डॉन ने अपना पहला टेस्ट खेला जिसका अनुभव बहुत ही दुखद रहा। आस्ट्रेलिया 675 रनों से पराजित हुआ। डॉन की शुरुआत तो अच्छी रही लेकिन जल्दी-जल्दी रन बनाने के प्रयास में उन्होंने अपना विकेट गंवा दिया। दूसरे टेस्ट में उन्हें टीम से बाहर कर दिया गया हालांकि उन्हें बारहवां खिलाड़ी रखा गया। डॉन के जीवन में यह पहला और अन्तिम अवसर था कि उन्हें बारहवां खिलाड़ी बनाया गया था। इस टेस्ट में भी इंग्लैंड से आस्ट्रेलिया हारा।

हर देश के विरुद्ध ब्रैडमैन के आंकड़े

देश	टेस्ट	पारी	आ. नहीं	रन	अधिकतम	औसत	शतक
इंग्लैंड	37	63	7	5028	334	89.79	19
द० अफ्रीका	5	5	1	806	299*	201.50	4
वेस्ट इंडीज	5	6	0	447	233	74.50	2
भारत	5	6	2	715	201	178.75	4
कुल	52	80	10	6,996	334	99.94	20

मेलबोर्न में हुआ तीसरा टेस्ट डॉन के जीवन में मील का पत्थर साबित

हुआ। उन्होंने 79 और 112 की शानदार पारियां भी खेलीं। इसके बाद वह अपने आलोचकों के भी प्रशंसा पात्र बन गये। एडीलेड में हुए चौथे टेस्ट मे डॉन ने 40 और अविजित 58 रन बनाए। पांचवें टेस्ट में उन्होंने शतक जमाया। उस सत्र में डॉन ने प्रथम श्रेणी क्रिकेट में अधिकतम रन बनाने का आस्ट्रेलियाई रिकार्ड तोड़ा।

उपलब्धियों का वर्ष

1930 का वर्ष डॉन के लिए उपलब्धियों का वर्ष था। वह इंग्लैंड के दौरे पर गई आस्ट्रेलियाई टीम में चुने गए थे। ट्रेंट ब्रिज में हुए पहले ही टेस्ट में उन्होंने 131 रन बनाकर दर्शकों को मुग्ध कर दिया। उसके बाद तो ब्रेडमैन के हाथों एक के बाद एक रिकार्ड टूटने लगे। लार्ड्स में उन्होंने दुहरा और हेडिंग्ले में तिहरा शतक जमाकर क्रिकेट इतिहास के पन्नों में अपना नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिख दिया।

इसके बाद डॉन की कहानी प्रसिद्धि और सफलता की कहानी है। वह हर जगह सराहे गए, पूजे गए और स्वीकारे गए। लेकिन इसके बावजूद न तो उन्हें दंभ हुआ और न ही पैसे का लोभ, जो आज के खिलाड़ियों के लिए एक सीख है। उनका अधिकतम 29 शतकों का रिकार्ड तो वर्षों तक दुनिया के बल्लेबाजों के लिए ईर्ष्या की वस्तु रहा। 1932 के अप्रैल में उन्होंने विवाह किया। गृहस्थ जीवन के बावजूद उन्होंने क्रिकेट के लिए पहले जितना ही समय दिया।

1936-37 में डॉन को उनकी योग्यता के अनुरूप आस्ट्रेलिया का कप्तान बनाया गया।

1949 में उन्हें 'सर' की उपाधि से विभूषित किया गया। डॉन बीमारियों से सदा परेशान रहे। 40 वर्ष की उम्र में अच्छे फार्म में रहते हुए भी उन्होंने क्रिकेट से अवकाश ले लिया। उसके बाद भी वह आस्ट्रेलियाई क्रिकेट से जुड़े रहे। उन्हें काफी वर्षों तक चयन समिति में भी रखा गया।

किसी ने सच ही कहा था वह न तो ग्रेस हैं, न ट्रम्पर, न हाब्स, न मैकार्टनी, न ही रणजी —वह सिर्फ डॉन ब्रैडमैन हैं।

डिकेथलन

डिकेथलन में भाग लेने वाले खिलाड़ी को एक साथ अलग-अलग तरह के दस खेलों में भाग लेना पड़ता है। यदि वह किसी एक खेल में भी भाग नहीं लेता तो वह फाइनल तक नहीं पहुंच पाता। यह प्रतियोगिता दो दिन तक चलती है। पहले दिन खिलाड़ी को 100 मीटर की दौड़, लम्बी कूद, गोला फेंकना, ऊंची कूद और 400 मीटर के खेलों में भाग लेना पड़ता है और दूसरे दिन 110 मीटर, बाधा, चक्का फेंकना, बांसकूद, भाला फेंकना और 1500 मीटर

की दौड़ में भाग लेना पड़ता है। इस प्रतियोगिता में हर खिलाड़ी को हर खेल के अलग-अलग अंक प्राप्त होते हैं और जिसको कुल मिलाकर सबसे अधिक अंक प्राप्त होते हैं वही खिलाड़ी प्रथम स्थान प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में डिकेथलन मे प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए हर प्रतियोगिता में या हर खेल में प्रथम रहने की आवश्यकता नही होती। इस बात की भी पूरी सम्भावना रहती है कि खिलाड़ी किसी भी खेल में प्रथम स्थान न पा सके और हर खेल में अच्छे अंक प्राप्त करने के आधार पर प्रथम स्थान का अधिकारी बन जाए।

ओलम्पिक खेलों में डिकेथलन प्रतियोगिता की शुरुआत सबसे पहले 1912 में की गई थी। अमेरिका के हारल्ड ओसबोर्न ने सबसे पहले 6,000 अंक प्राप्त करके यह प्रतियोगिता जीती थी। 1924 के ओलम्पिक खेलों में इसी खिलाड़ी ने ऊंची कूद में स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया था। दस साल बाद जर्मनी के हैंस-हेनरिख सिवर्ट ने 7,000 अंक प्राप्त किए। इसके बाद अमेरिका के ग्लेन मोरिस का नम्बर आता है, जिन्होंने 1936 के ओलम्पिक खेलों में 7,310 अंक प्राप्त करके इस प्रतियोगिता में नया कीर्त्तिमान स्थापित किया। इस खेल में अमेरिका के बाब मैथियास, सोवियत संघ के विसिली कुजनीत्सोव, अमेरिका के ही राफर जानसन के नाम उल्लेखनीय हैं।

ओलम्पिक डिकेथलन प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाला एक ऐसा भी एथलीट हुआ है जो रिकार्डों की सूची में तो स्थान नही पा सका, परन्तु आज भी उसे विश्व का सर्वकालिक महान एथलीट माना जाता है। अमेरिकी एथलीट जिमथोर्प ने स्टाकहोम ओलम्पिक (1912) में अपने खेल-प्रदर्शन से दर्शकों को स्तब्ध कर दिया।

डी. बी. देवधर

भारत में सर्वप्रथम क्रिकेट केवल अंगरेज सेना एवं नौसेना के अधिकारी बन्दरगाह के नगरों—कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास—में ही खेलते थे। वे भारतीयों से खेल सम्बन्धी मेल-जोल बढ़ाना पसन्द नही करते थे। हां, पारसी सम्प्रदाय, जो तत्कालीन भारतीयों की तुलना में प्रगतिशील विचारों से ओत-प्रोत था, अपने व्यवसाय के कारण जल्दी ही अंग्रेजों के सम्पर्क में आया और इस प्रकार सन 1875 में पृथक रूप से पारसी जिमखाना क्लब की स्थापना हुई। धीरे-धीरे हिंदू एवं मुसलिम क्लबों की स्थापना भी हुई। पारसी क्लब ने सर्वप्रथम अपने ही खर्च पर पहले सन 1883 एवं बाद में सन 1887 में अपने दल को इंग्लैंड भेजा। मुझे अब भी याद है कि पारसी दल के कप्तान ने 1940 में एक कप इस लेख के साथ भिजवाया—"अवकाश प्राप्त खिलाड़ियों में सबसे पुराने खिलाड़ी के लिए भेंट।" तब मैं दोबारा रणजी ट्राफी जीत चुकने के कारण प्रसिद्ध हो चुका था।

उस समय केवल साम्प्रदायिक मैच ही हुआ करते थे। पहला मैच अंग्रेजों और पारसियों के बीच हुआ। यद्यपि आज हम विशेष सम्प्रदाय को महत्त्व नही देते हैं, किन्तु जब यहां अंग्रेज थे, तब उनके स्तर में बहुत बड़ा अन्तर था। उस समय जाति सम्बन्धी भेदभाव अधिक थे।

क्रिकेट के प्रति मेरी रुचि पूना में यूरोपियन जिमखाना क्लब के पारसियों एवं अंग्रेजो के बीच हुए मैच को देखकर जाग्रत हुई। उस समय आज के समान कॉलेज न थे। केवल चार अथवा पांच कॉलेज के चैम्पियन मैच में ही नार्थकोट शील्ड का वितरण होता था। मैंने पूना में सन 1911 के बाद फर्गूसन कॉलेज की ओर से बम्बई कॉलेज को अनेक बार हराया, इस प्रकार 60 रन संख्या बना लेने पर मेरा चुनाव हिन्दू टीम में हुआ।

दस वर्ष की आयु में मैंने पहली बार बल्ला सम्भाला। कॉलेज में प्रवेश के पहले तक मैं धोती, सिर पर क्रिकेट की टोपी और पैड पहनकर क्रिकेट खेलता रहा। बम्बई आकर क्रिकेट की पोशाक अपनाई।

अंग्रेजों का क्रिकेट के प्रति उत्साह अब शनैः-शनैः चुकने लगा था। शासक होने के कारण वे हार जाने पर घृणा करते थे। अपनी पराजय पर वे यही कहकर स्वयं को दोषमुक्त करते थे कि वे भारत में प्रथम श्रेणी की खिलाड़ी नही भेज सके थे। सन 1971 में वाडेकर की टीम ने जब उन्हे पराजित किया, तब अंग्रेजो ने यह स्वीकारा कि भारत के खिलाडी कही अधिक कुशल हैं। अंग्रेज खिलाडी, विशेषकर जो सैनिक अधिकारी थे, अपने अहं भाव के कारण हम भारतीयो से खेल व भोजन के समय वार्तालाप कम ही करते थे। पूना क्लब के साथ जब उनका मैच हुआ तो वे पैवेलियन में बैठे और हम भारतीय बाहर एक तम्बू में। बाद मे साइमन कमीशन के प्रयास से भारतीयों के प्रति उनके व्यवहार मे अन्तर आया।

भारत के महाराजा एवं राजकुमारों ने भी क्रिकेट को प्रोत्साहित किया। उदाहरण के तौर पर पटियाला के महाराजा, जामनगर एवं कठियावाड़ के महाराजा इन सभी ने चुने हुए खिलाड़ियों कोआमंत्रित करने उन्हें अनेक सुविधाएं प्रदान की किन्तु उन्होने स्थानीय खिलाड़ियों को कभी प्रेरित नही किया। एक विश्वविद्यालय का अध्यापक होने के कारण मैंने सदैव आत्म सम्मान को धन की तुलना में अधिक महत्त्व दिया है अतः मैं कभी किसी महाराजा की टीम में नहीं रहा। कुछ खिलाड़ी अल्प शिक्षित होने के कारण राजाओ के आश्रित रहे। अद्‌भुत क्षमता के धनी होने के बाद भी धन के लिए वे राजकुमारों पर आश्रित रहते थे। खिलाडियों में से कुछ गवर्नर एवं वायसराय के साथ खेलने का मोह न त्याग सके। हास्यास्पद स्थिति तो तब पैदा होती थी, जब वे खेल के मैदान में आते थे, तब उनके सिर पर छाता लगाए रखने की व्यवस्था होती थी। पटियाला के महाराजा एक कुशल बल्लेबाज होते हुए भी तृतीय श्रेणी के फील्डर थे। एक

बार वे अंग्रेजों के विरुद्ध खेल रहे थे कि उनका लाखों रुपये मूल्य का कर्णफूल खो गया। खेल रोककर प्रत्येक व्यक्ति ने उसे खोजना शुरू किया। अन्त में वह मिल तो गया किन्तु किसी ने भी खेल के शिष्टाचार पर ध्यान नहीं दिया।

डी. सी. एम. कप

डी. सी. एम. कप प्रतियोगिता देश में फुटबाल के स्तर को विकसित करने तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से दिल्ली क्लाथ मिल द्वारा 1945 से आयोजित की जा रही है। वर्तमान समय में यह राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख प्रतियोगिता बन गई है। विदेशी टीमों के प्रवेश से इसका स्वरूप निखर उठा है। ताज क्लब तेहरान की टीम ने 1969-71 में इस कप को लगातार तीन बार जीतकर एक तहलका मचा दिया था। ईस्ट बंगाल क्लब ने इस कप को सर्वाधिक 7 बार तथा मुहम्मडन स्पोर्टिंग ने 6 बार जीता है।

तेहरान की ताज क्लब एकमात्र ऐसी टीम है जिसने लगातार तीन बार बार (1969 से 1971) इस कप पर अधिकार करने का गौरव प्राप्त किया। 1968 से जब से इसमें विदेशी टीमों ने भाग लेना शुरू किया तब से इस पर अधिकांशतः उन्ही ने अधिकार जमाया। 1988 में इस पर दक्षिण कोरिया की पास्को टीम ने अधिकार जमाया। यानी लगातार 5 वर्षों से भारत की कोई भी टीम इस पर अधिकार नहीं कर पायी।

डूरंड कप

डूरंड प्रतियोगिता का इतिहास लगभग उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं भारतीय फुटबाल का। यों तो भारतीय फुटबॉल की राष्ट्रीय प्रतियोगिता संतोष ट्रॉफी को माना जाता है, लेकिन भारत की प्राचीनतम फुटबॉल प्रतियोगिता होने के कारण इसका अपना विशेष महत्व है।

हाल ही में शताब्दी वर्ष मानने वाली इस डूरंड प्रतियोगिता को प्रारम्भ करने का श्रेय भारत में विदेशी मामलो के तत्कालीन सचिव स्वर्गीय सर मॉर-टिमेर डूरंड को प्राप्त है, जिन्होंने आज से सौ वर्ष पूर्व अर्थात् सन 1888 में सेना के जवानों के मनोरंजन हेतु की थी। पहले वर्ष इस प्रतियोगिता में मात्र छह टीमों ने भाग लिया था।

स्वर्गीय डूरंड चाहते थे कि सेना के जवान अवकाश के क्षणों में खेलों में दिलचस्पी लें और इस कार्य को मूर्त रूप देने में फुटबॉल सबसे श्रेष्ठ साधन था। अन्ततः काफी विचार-विमर्श के पश्चात् यह निर्णय किया गया कि इस प्रतियोगिता का आयोजन ग्रीष्म ऋतु में शिमला मे किया जाना चाहिए। उन दिनों

गर्मियों के मौसम में सरकारी कार्यालय शिमला स्थानांतरित हो जाते थे। शुरू-शुरू में एक विजेता के लिए एक ट्रॉफी प्रदान की जाने लगी और यह घोषणा की गई कि जो टीम निरन्तर तीन वर्ष तक जीतेगी उसे हमेशा के लिए यह ट्रॉफी प्रदान कर दी जाएगी। सन् 1893, 1894 और 1895 में हाइलैंड लाइन इफेंटरी की टीम ने लगातार तीन बार जीतकर इस टॉफी पर अपना स्थायी अधिकार जमा लिया।

इसके बाद सर हेनरी मॉरटिमेर ने ठीक उसी तरह दूसरी ट्रॉफी भेंट की। उसके बाद ब्लैक वाच की टीम ने 1897, 1898, 1899 में लगातार तीन बार प्रतियोगिता जीत कर उस ट्रॉफी पर अपना अधिकार जमा लिया। अब तीसरी बार ट्रॉफी बनवाने की समस्या उठ खड़ी हुई। लेकिन मॉरटिमेर डूरंड ने सहर्ष उसी तरह की तीसरी ट्रॉफी भेंट की। सर मॉरटिमेर डूरंड फुटबॉल के इतने शौकीन थे कि स्वयं मैदान में जाकर विदेश विभाग की टीम का नेतृत्व किया करते थे।

सन् 1888 से 1923 तक इस प्रतियोगिता का आयोजन प्रति वर्ष शिमला में किया जाता था। तब तक हमेशा इसमें गोरी पल्टन को विजयश्री प्राप्त होती रही। प्रथम महायुद्ध के दौरान इस प्रतियोगिता का आयोजन नहीं हो पाया। इसके बाद 1920 से 1940 तक पुनः प्रतिवर्ष इस प्रतियोगिता का आयोजन किया जाना लगा। भारत सरकार ने 1939 में एक महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया कि चूंकि अब अधिकांश सरकारी कार्यालय पूरे वर्ष दिल्ली में ही रहा करेंगे, इसलिए 1940 से प्रतियोगिता का आयोजन राजधानी में किया जाना चाहिए।

सन् 1940 का वर्ष भारतीय फुटबॉल के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण और गौरवपूर्ण अध्याय साबित हुआ। पहली बार भारतीय खिलाड़ियों की टीम 'मोहम्मडन स्पोर्टिंग क्लब' ने अंग्रेज खिलाड़ियों की टीम को पराजित कर डूरंड कप अधिकार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त किया। विदेशी वॉरविकशायर टीम के विरुद्ध खेलते हुए भारतीय खिलाड़ियों ने फाइनल मुकाबला जीत कर विदेशी टीमों के एकाधिकार को समाप्त किया। इस ऐतिहासिक मैच का आयोजन राष्ट्रीय स्टेडियम में किया गया था, जो उस समय तक इर्विन स्टेडियम कहलाता था। उस समय तक इस प्रतियोगिता में निर्णायक की भूमिका भी अंग्रेज ही निभाते थे, लेकिन इस मैच के निर्णायक थे हरनाम सिंह। यह पहला अवसर था, जब किसी भारतीय को रेफरी का दायित्व सौंपा गया था। यह फाइनल मुकाबला बड़े उत्तेजनापूर्ण क्षणों में प्रारम्भ हुआ। पूर्वार्द्ध में दोनों टीमें एक-एक गोल से बराबर रहीं। उत्तरार्द्ध में मोहम्मडन स्पोर्टिंग के लेफ्ट-इन साबू ने एक गोल ठोक दिया। सारा स्टेडियम खुशी से झूम उठा और पूरे देश में हर्ष की लहर दौड़ गई।

इसके पश्चात् द्वितीय महायुद्ध के कारण 1949 तक डूरंड प्रतियोगिता फिर स्थगित हो गई। 1950 से पुन: इस प्रतियोगिता का नियमित आयोजन किया जाने लगा, लेकिन इसके पूर्व सन् 1947 में इस ट्रॉफी को भारत में रखने के लिए काफी संघर्ष हुआ। देश के बंटवारे के समय पाकिस्तान की आंखें इस सुन्दर ट्रॉफी पर लगी हुई थीं। पाकिस्तान ने डूरंड कप हथियाने की जी-तोड़ कोशिश भी की, मगर भारतीय सेना के अधिकारियों ने अपनी इस प्राचीन ख्याति को भारत भूमि से अलग नहीं होने दिया। कहा जाता है कि बंटवारे के समय दोनों देश इस कप पर अपना-अपना दावा पेश करने लगे थे। तत्कालीन कमांडर इन चीफ सर क्लॉड औचिनलेक की मंशा इस कप को पाकिस्तान को देने की थी, लेकिन इस बीच एस. डी. सिन्हा को (जो कि इस समय टूर्नामेंट के सहायक सचिव थे) कुछ खबर मिली और उन्होंने जाकर एच. एम. पटेल को सूचित किया।

रक्षा सचिव श्री पटेल ने इस ट्रॉफी को स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया में जमा करा और एयर चीफ मार्शल मुखर्जी को इस बात के लिए सचेत कर दिया कि किसी भी सूरत में और किसी भी कीमत पर यह ट्रॉफी भारत से बाहर नहीं जानी चाहिए।

आखिर में कश्मीर फंड के लिए एक प्रदर्शनी मैच का आयोजन किया गया। एयर मार्शल मुखर्जी के व्यक्तिगत प्रयास से मोहन बागान की टीम को उस प्रदर्शन मैच के लिए बुलाया गया। मोहन बगान की टीम को शानदार सफलता प्राप्त हुई। बस फिर क्या था, श्री पटेल ने डूरंड कप प्रतियोगिता की कमेटी का पुनर्गठन किया और इस प्रतियोगिता का आयोजन दिल्ली में कराने का फैसला किया गया तथा कानूनी अड़चनों से बचने के लिए डूरंड कमेटी को एयर मार्शल मुखर्जी की अध्यक्षता में रजिस्टर्ड भी करवा दिया गया।

सन् 1950 से पुन: इस प्रतियोगिता का नियमित आयोजन किया जाने लगा। हालांकि 1962 में चीनी आक्रमण के समय राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति के कारण प्रतियोगिता में एक बार फिर बाधा पड़ी।

सन् 1950 में जब यह प्रतियोगिता पुन: प्रारम्भ हुई तो डूरंड की परम्परा को बनाए रखने के उद्देश्य से राष्ट्रपति ने इसका संरक्षक बनना स्वीकार कर लिया।

डेविस कप

डेविस कप प्रतियोगिता 1900 में शुरू हुई। डेविस कप ट्रॉफी डेविट एफ० डेविस द्वारा भेंट की गई। डेविस अपने जमाने में स्वयं भी लान टेनिस के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। 1900 में लांगवुड, बोस्टन (अमेरिका) में अमेरिका और ब्रिटेन के बीच मुकाबला हुआ। धीरे-धीरे इस प्रतियोगिता की

लोकप्रियता बढ़ने लगी। अब दुनिया के लगभग 50 देश इस प्रतियोगिता में भाग लेने लग गए हैं। इस कप पर जिस देश का अधिकार होता है उसे शौकिया टेनिस का चैम्पियन माना जाता है।

भारत ने 1921 में डेविस कप की प्रतियोगिता में पहली बार भाग लिया था और 1948 तक डेविस कप के यूरोपीय क्षेत्र में खेलता रहा। 1921 में भारतीय टीम ने पहले दौर में फ्रांस को हराया पर अगले दौर में जापान से हार गया। इसी प्रकार 1922 में भारत ने पहले दौर में रूमानिया को 5-0 से हराया, किन्तु दूसरे दौर में स्पेन से 4-1 से हार गया।

1952 में जब से पूर्व क्षेत्र की स्थापना हुई तब से भारत बराबर इसमें भाग लेता आ रहा है। डेविस के 59 वर्ष के इतिहास में 12 वर्ष, विश्व युद्ध के दौरान, इस प्रतियोगिता में व्यवधान पड़ा।

शुरू में इस प्रतियोगिता में चैलेंज राउंड की प्रथा थी। यानी जो देश इस ट्रॉफी पर अपना अधिकार जमाता उसे बस एक बार अन्त में चैलेंज राउंड (चुनौती मुकाबले) में ही खेलना पड़ता था। कुछ वर्ष पहले इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया और अब विजेता देश को भी अन्य देशों की तरह सभी मुकाबलों में खेलना पड़ता है। उस समय चैलेंज राउंड में पहुंचना भी बहुत बड़े गौरव की बात मानी जाती थी। भारत को 1966 और 1974 में डेविस कप के चैलेंज राउंड में पहुंचने का गौरव प्राप्त हुआ। 1974 में भारत ने दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति के विरोध में फाइनल में भाग ही नहीं लिया।

त

तीरंदाजी

धनुष और बाण प्राचीन युग के योद्धाओं की याद दिलाते हैं, आज हम राम या अर्जुन के चित्र की परिकल्पना धनुष और बाण के बिना नहीं कर सकते। इतिहास गवाह है कि भारतीय वीर अपने अक्षय तरकश गांडीव जैसे धनुष और आग्नेय आदि बाणों के साथ जुड़े रहे हैं। यह कैसी विडम्बना है कि उसी भारत में अब तीरंदाजी के नामलेवा लोग उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।

तीरंदाजी की उत्पत्ति कुश्ती जितनी पौराणिक है। हम मल्ल विद्या में जनक

होने का दम तो भरते हैं किंतु हमारे पहलवान आगे बढ़ने का नाम नहीं लेते। हमारी यही स्थिति तीरंदाजी में है। नाम भी नहीं है और इनाम भी नहीं। सिंगापुर में अक्तूबर 1981 में हुई द्वितीय एशियाई स्पर्धा में पुरुष वर्ग में भारत का स्थान पांचवां और महिला वर्ग में चौथा रहा। यह स्थिति संतोषप्रद नहीं थी क्योंकि इस स्पर्धा में कुल मिला कर 6 देशों ने ही भाग लिया था। जापान और चीन जैसे शक्तिशाली देशों की टीमें तो आयी ही नहीं। अर्जुन के देश के तीरंदाजों का यह स्तर नि.संदेह शर्मनाक है।

समय बदलने के साथ-साथ तीरंदाजी के स्वरूप में भी तब्दीली आती रही है। पहले लोग इसे रक्षा का साधन मानते थे, फिर यह वीरता का चिह्न बना और आज के युग में तीरंदाजी एक अत्यंत आधुनिक खेल बन गया है। अब न तो बांस के धनुष होते हैं और न ही स्थानीय आधार पर निर्मित तीर। अब ग्लास फाइबर के अत्याधुनिक धनुष बनाये जाते हैं। यह धनुष अमरीका, जापान और दक्षिणी कोरिया में बनते हैं। भारत में पहुंचते-पहुंचते एक धनुष की कीमत दो हजार रुपये से 4,500 रुपये तक बैठती है। अब आप ही सोचिये कि कोई साधारण परिवार का युवक इतना खर्चा कैसे बर्दाश्त कर सकता है।

देश में इस समय 50 के करीब आधुनिक स्तर के धनुष हैं, इनका उपयोग करने वाले तीरंदाज भी उसी हिसाब से कम हैं—वे भी प्रायः बंगाल और दिल्ली के ही हैं। जब कभी राष्ट्रीय प्रतियोगितायें होती भी हैं तो उन में लगभग 100 तीरंदाज ही हिस्सा लेते हैं। नयी प्रतिभाएं सामने आ नहीं पाती और हर वर्ष वही पुराने चेहरे दिखाई पड़ते हैं। इसके भी कारण हैं। एक तो देश में खेल का सामान ही पर्याप्त मात्रा में नहीं है, दूसरे खेल का सामान आयात करने की नीति भी तो उतनी उदार नहीं है। एक ओर पद की इच्छा रखते है और दूसरी ओर खेल सामान मंगाने की कंजूसी, आखिर क्यों? इस पक्ष को थोड़ी देर के लिए छोड़ भी दें पर क्या हमारे दृष्टिकोण में अंतर आया है। जवाब मिलेगा नहीं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर को मद्दे नजर रखते हुए हमारे दृष्टिकोण में अंतर आये तो वह कैसे आये, जब हमारे तीरंदाज इसके नियमों-उपनियमों से ही भली-भांति परिचित नहीं है। आइये, देखें नियम क्या कहते है। प्रत्येक तीरंदाज को 90, 70, 50 और 30 मीटर की दूरी पर लगे गोलाकार टार्गेट पर 36-36 निशाने लगाने होते हैं। इस तरह चार विभिन्न दूरियों में कुल अधिकतम 1440 अंक बनते हैं। महिलाओं के लिए टार्गेट की दूरियां अक गिनने की भी एक विधि होती है। टार्गेट के मध्य पीला रंग और उसके बाद लाल, उसके बाद नीला, बाद में काले और सफेद रंग के वृत्त होते हैं।

मध्य में तीर लगने से 10 अंक और उसके बाहर के वृत्तों में 9, 8, 7, 6, 5, 4, 3, 2, और 1, और एकदम बाहर लगने पर 0 अंक मिलते हैं। अंतर-

राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त तीरंदाज 1440 अंकों में से 1300 अंक तक अर्जित कर लेते है लेकिन हमारे तीरंदाज 1200 से आगे नही बढ़ पाते।

वास्तव में भारत ने अपने इस परंपरागत खेल को एक आधुनिक खेल के रूप मे बहुत देरी से स्वीकार किया जबकि ओलम्पिक खेलो में इस स्पर्धा को 1904 मे दूसरे ओलम्पिक खेलों मे स्थान मिल गया था। यह स्पर्धा दो बार 1908 और और 1920 के ओलम्पिक खेलों मे भी हुई, किंतु इसके बाद इसका आयोजन 1972 के म्युनिख ओलम्पिक खेलो मे ही हो सका। तीरंदाजी का संदर्भ विकास विधिवत 1931 मे अंतरराष्ट्रीय तीरंदाजी फैडरेशन (फीटा) की स्थापना से हुआ।

इस संबंध मे भारत की स्थिति 'देर आयद दुरुस्त आयद' वाली भी नही है। पहले तो भारतीय तीरंदाजी फैडरेशन की स्थापना ही 1973 में हुई और इसके बाद भी हम कभी वह उल्लेखनीय सफलता नही मिली जो हम अपने प्राचीन खेल के दावे के कारण कर सकते हैं। 1978 के बैंकाक एशियाई खेलों में कुल 11 देशो ने तीरंदाजी में हिस्सा लिया और हमारा स्थान सबसे अंतिम था।

तेनजिंग नार्के

29 मई, 1953 का दिन पर्वतारोहण के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण दिन माना जाता है। इस दिन पहली बार तेनजिंग नार्के और एडमंड हिलैरी ने एवरेस्ट (सगरमाथा) का तिलक करके एक असम्भव काम को सम्भव कर दिखाया। इस ब्रितानी पर्वतारोही दल का नेतृत्व करने का श्रेय सर जान हंट को प्राप्त हुआ। इससे पहले यही समझा जाता था कि एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करना इन्सान के बस या बूते की बात नही है। एक शेरपा कहावत के अनुसार एवरेस्ट पर्वत इतना ऊंचा है कि कोई चिड़िया तक भी उसे पार नहीं कर सकती।

लेकिन तेनजिंग नार्के और हिलैरी द्वारा सगरमाथा (एवरेस्ट) का तिलक करने के बाद तो एवरेस्ट पर चढ़ने की एक प्रकार से होड़-सी चल पड़ी। आए दिन यह खबरें सुनने को मिलने लगीं कि अमुक दल ने एवरेस्ट पर विजय प्राप्त कर ली है, या कि भारतीय अभियान के 9 सदस्य संसार के इस सर्वोच्च शिखर (29,028 फुट) पर चढ़ने में सफल हो गए हैं। यहां यह बता देना आवश्यक है कि 29 मई, 1956 को भारतीय दल के 9 पर्वतारोही एवरेस्ट पर पहुंचने में सफल हुए, जो कि साहसिक प्रयत्नों का एक नया विश्व रिकार्ड है। इस दल के नेता लेफ्टिनेंट कमाण्डर कोहली थे। लेकिन पर्वतारोहण के क्षेत्र में जितनी लोकप्रियता पहली बार एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने वाले पर्वतारोही तेनजिंग नार्के को प्राप्त हुई उतनी और किसी पर्वतारोही को प्राप्त नहीं हुई। एक साधारण-सा शेरपा देश का बहुत बड़ा सूरमा बन गया। और इस प्रकार तेनजिंग ने विश्व

के उच्चतम शिखर एवरेस्ट पर विजय प्राप्त कर पर्वतारोहण के क्षेत्र मे भारत का मान बढ़ाया।

तेनजिंग नार्के को पर्वतो पर चढ़ने का बचपन से ही शौक था। इनके पिता बहुत गरीब थे। पर्यटकों का सामान अपनी पीठ पर ढोते और किसी तरह अपने परिवार का खर्च चलाते। पिताजी की देखा-देखी तेनजिंग को भी पहाड़ों पर चढ़ने का शौक हुआ।

1936 से लेकर 1953 तक जितने भी अधिकृत अनधिकृत अभियान एवरेस्ट पर हुए प्रायः सभी दलो में तेनजिंग शामिल होते थे। उन्होने एवरेस्ट पर चढ़ने के अपने स्वप्न को साकार करने के लिए कई प्रयत्न किए। वह किसी अहंकार, अभिमान या बदले की भावना से एवरेस्ट पर नही चढ़ते, बल्कि स्नेह की भावना से चढ़ते थे। एवरेस्ट उनके लिए माता के समान थी, और उसपर चढ़ने का प्रयत्न करते हुए उन्हे ऐसा लगता, जैसे वह अपनी मां की गोद में चढ़ने की कोशिश कर रहे हों।

1953 से पहले भी बहुत-से पर्वतारोहियों ने एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने की कोशिश की, मगर किसी को सफलता नही मिल सकी।

तैराकी

तैराकी एक कला है और इसका उद्गम लगभग नौ हजार ईसा पूर्व हुआ बताते हैं। इस कला की साफ-सुथरी तस्वीर सोलहवीं सदी के मध्य मे ही उभर कर सामने आई। प्राचीन तैराकी का पहला प्रमाण हमें पश्चिमी एशिया के कला-चित्रों में मिलता है। ये कला चित्र लीबियाई रेगिस्तान के वाडीसारी गुफाओं की दीवारों पर देखे गये हैं। चित्रो मे दिखाया गया है कि तैराक पहले किस तरह हाथ-पाव चलाते थे, इन चित्रो मे सिर ऊंचे होते थे और टांगें विश्राम की मुद्रा में होती थीं। मिस्र में तैराकी के अभ्यास किए जाने के चित्र मिले हैं। एक चित्र से पता चलता है कि ब्रेस्ट स्ट्रोक का 1580 ईसा पूर्व में प्रचलन था। ईरानी धार्मिक ग्रन्थ 'अवेस्ता' के अनुसार पारसी तैराकी में रुचि रखते थे।

यूनान में जब एक बच्चे की शिक्षा शुरू की जाती थी तब उसे तैराकी का पाठ भी पढाया जाता था। रोमन की तरह यूनानी लोग भी अध्ययन में तैराकी को महत्त्व देते थे। स्पार्टन लोगों ने तैराकी को एक सामाजिक उत्सव के रूप में अपनाया।

रोम मे तैराकी की कला का प्रचलन रोमन साम्राज्य से पूर्व पाया गया है। प्रायः सैनिक विकट परिस्थितियों के लिए तैरने आदि का अभ्यास करते थे। इस कला मे तेजी से परिवर्तन उस समय हुआ जब रोमन लोगो ने इसे नहाने और तैरने के रूप में विकसित किया। इसका लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि अकेले रोम

मे 850 तरणताल बना दिए गए, अब यह सर्वसाधारण रूप से माना जाता है कि रोमन तैरने में अच्छे होते थे। लड़कियों का तैराकी में स्तर बहुत ऊंचा था।

सन् 537 में गोथ लोगों ने रोम पर चढ़ाई की और शहर मे पानी की आपूर्ति को अस्त-व्यस्त कर दिया। रोमन साम्राज्य के पतन के साथ जनसाधारण में तैराकी का रिवाज खत्म हो गया। चर्च के अभ्युदय के साथ पानी में सार्वजनिक रूप मे नहाने की घोर निंदा की जाने लगी। उत्तरी यूरोप में तो इसे अंधविश्वास समझा जाने लगा। इन अंधविश्वासों में एक यह भी था कि तैराक के दोनों हाथ-पांव बांध दिए जाते थे और उसे नदी मे फेंक दिया जाता था। यदि वह डूब जाता था तो उसे निर्दोष समझा जाता था और यदि वह पानी में तैरता रहता था तो उसे अपराधी समझा जाता था। इसलिए इस दौरान कोई भी व्यक्ति तैराक बनना पसंद नही करता था। इस पानी के प्रयोग को भगवान का निर्णय कहा जाता था। यूरोप मे कानून भी बनाया गया और किसी व्यक्ति के डूबने पर उसको मदद करने को जुर्म समझा जाता था। कैथोलिक नियमों मे शारीरिक और तैराकी की किसी भी गतिविधि पर कड़ा प्रतिबंध लगा दिया गया। यह प्रतिबंध सन् 1000 से 1500 तक लागू रहा। और इस दौरान तैराकी के बारे में बहुत कम उदाहरण मिलते हैं।

हां, एक बहादुर सैनिक के लिए सात अहर्ताओं मे से एक तैरना जरूरी माना जाता था। लेकिन इस ढील का साधारण जनता उपयोग नहीं कर सकती थी।

असल मायनों मे तैराकी की तकनीक का विकास सोलहवीं शताब्दी में हुआ। तैराकी पर पहली पुस्तक एक जर्मन प्राध्यापक निकोलस विनमैन ने 1538 में लिखी थी। इसके बाद एक फ्रेंच ने तैराकी की कला पर एक और पुस्तक लिखी। इस पुस्तक मे तैराकी की तकनीकी बारीकियों का जिक्र किया गया है। विनमैन ने 1538 मे जो पहली पुस्तक तैराकी पर लिखी थी, वह लेटिन भाषा मे प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में ब्रेस्ट स्ट्रोक और बैक स्ट्रोक पर विस्तार से चर्चा की गई। पुस्तक के अनुसार लड़के और लड़कियां आसानी से तैराकी सीख सकते थे। लेकिन अंग्रेजी भाषा मे पहली पुस्तक 1587 में लिखी गई। इसके लेखक सर ई डिग्बी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के स्नातक थे और एक अच्छे तैराक माने जाते थे। इस पुस्तक मे साइड स्ट्रोक की विस्तार से चर्चा की गई है। कहा जाता है कि इस पुस्तक ने सौ वर्षों तक तैराकी मे नये ॒वा तैराकों का पथप्रदर्शन किया।

1769 मे प्रकाशित पुस्तक के लेखक बेंजामिन फ्रेंकलिन ने लिखा है कि 'कम-से-कम समय मे कैसे एक योग्य और कुशल तैराक बना जा सकता है।' यह पुस्तक 1850 तक एक पाठ्य पुस्तक के रूप में उपयोग में लाई गई।

पहला आधुनिक तरणताल—पेरिस मे 1767 मे पहला आधुनिक तरणताल बनाया गया। इस तरणताल में नहाने आदि के लिए छने हुए पानी का इस्तेमाल

किया जाता था। इस तरणताल में एक आधुनिक प्रशिक्षक के होने का भी जिक्र आता है। यह प्रशिक्षक पाइटेंबिन था जो तैराकी में 48 घंटे का पूरा पाठ्यक्रम देता था।

19वीं सदी में इंग्लैंड मे 58 पुस्तकें तैराकी पर प्रकाशित हुईं। इस युग मे आधुनिक तैराकी प्रणाली का विकास पूरी तरह से हुआ। अंग्रेजी स्कूल तैराकी के महत्त्व को जानते थे। 1820 में एटन मे एक तैराकी प्रशिक्षक 'शेपो' नियुक्त किया गया। इग्लैंड मे यह अपने किस्म का सुनियोजित प्रशिक्षण था। तत्पश्चात 1840 मे इग्लैंड में पहली बार तैराकी सघ का गठन हुआ।

थ

थामस कप

बैडमिंटन की दुनिया में चैंपियनशिप के लिए श्रेष्ठता के प्रतीक थामस कप माना जाता है। थामस कप के लिये विश्व बैडमिंटन टीम चैंपियनशिप (पुरुष) की शुरूआत 1948 में अंतरराष्ट्रीय बैडमिंटन संघ के अध्यक्ष सर जार्ज थामस के नाम पर हुई। विजेता-उपविजेता के नाम निम्न हैं।

वर्ष	स्थान	देश	विजेता	उपविजेता
1948-49	प्रेस्टान	10	मलाया	डेनमार्क
1951-52	सिंगापुर	12	मलाया	अमेरिका
1954-55	सिंगापुर	21	मलाया	डेनमार्क
1957-58	सिंगापुर	19	इंडोनेशिया	मलाया
1960-61	जकार्ता	19	इंडोनेशिया	थाईलैंड
1963-64	टोक्यो	26	इंडोनेशिया	डेनमार्क
1966-67	जकार्ता	23	मलेशिया	इंडोनेशिया
1969-70	क्वालालंपुर	25	इंडोनेशिया	मलेशिया
1972-73	जकार्ता	23	इंडोनेशिया	डेनमार्क
1975-76	बैंकाक	26	इंडोनेशिया	थाईलैंड
1978-79	जकार्ता	21	इंडोनेशिया	डेनमार्क
1981-82	लंदन	26	चीन	इंडोनेशिया

दत्तू गायकवाड़

'टेस्ट क्रिकेट' इन शब्दों का अपना एक रोमांच है और मनोवैज्ञानिक प्रभाव। टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश करते ही रन बनाते समय या गेंद फेंकते समय दिमाग पर एक अजीब-सा बोझ होता है जो सफलता मिलने पर ही हट पाता है। कई खिलाड़ी इस बोझ को हटाने में कामयाब हो जाते हैं और बहुत आगे निकल जाते हैं जबकि कुछ अन्य असफलता में दब कर ही रह जाते हैं।

ऐसे ही खिलाड़ियों में एक थे दत्तू गायकवाड़ (जन्म 27 अगस्त, 1928) जो टेस्ट क्रिकेट में तो अभागे रहे लेकिन घरेलू क्रिकेट में बहुत आगे रहे।

वैसे यह भी कम हैरानी की बात नहीं है कि टेस्ट क्रिकेट में असफल रहने के बावजूद गायकवाड़ को भारतीय टीम का कप्तान बनाया गया। उनमें सफल कप्तान के सभी गुण मौजूद थे तभी तो उनके नेतृत्व में बड़ोदा 1957-58 में रणजी चैंपियन बनने में सफल हो गया था। मगर जब टेस्ट क्रिकेट की कप्तानी मिली तो वही 'टेस्ट क्रिकेट' का 'हौआ' उनके दिमाग पर छा गया, फलस्वरूप भारत बुरी तरह हारा और उनका प्रदर्शन तो खराब रहा ही।

टेस्ट क्रिकेट में गायकवाड़ का प्रवेश 1952 में इंग्लैंड के विरुद्ध एक प्रारंभिक बल्लेबाज के रूप में हुआ था लेकिन पहले टेस्ट की स्मृतियां काफी दुखद हैं। दोनों पारियों में वह तेज गेंदबाज एलक बेडसर का शिकार बन गये और रन बने 9 और 0, फलस्वरूप श्रृंखला के शेष चार टेस्टों में उन्हें नहीं खिलाया गया।

1952-53 में पाकिस्तान की टीम पांच टेस्टों की श्रृंखला खेलने भारत आयी। लखनऊ टेस्ट में गायकवाड़ को उतारा गया। पहली पारी में तो वह 6 रन ही बना पाये किंतु दूसरी पारी में कुछ मजबूती से 32 रन जोड़े। फिर भी यह प्रदर्शन ऐसा नहीं था कि चयनकर्ता संतुष्ट हो पाते। यूं भी इस श्रृंखला में चयनकर्ता प्रारंभिक बल्लेबाजों की जोड़ी ही ढूंढते रहे। कभी मांकड को आजमाया गया, कभी पंकज राय को, कभी गायकवाड़ को और कभी आप्टे को। लेकिन कोई भी जोड़ी फिट न बैठी। इसी श्रृंखला के अंतिम टेस्ट में गायकवाड़ को फिर मौका मिला और इस बार उनका स्कोर रहा 21 और 20 (आउट नहीं)।

जब गायकवाड़ पारी का सफलतापूर्वक प्रारंभ न कर सके लेकिन रणजी ट्रॉफी में लगातार अच्छी पारियां खेलते रहे तो अततः उन्हें 1952-53 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ पोर्ट आफ स्पेन टेस्ट में मध्य क्रम में उतारा गया। यह प्रयोग थोड़ा सफल रहा। पहली पारी में गायकवाड़ ने 43 रन बनाये और दूसरी में 24। इससे

पहले कि गायकवाड़ इस सफलता का मनोवैज्ञानिक लाभ उठा पाते, अगले टेस्ट में वह घायल हो गये और फिर टेस्ट क्रिकेट में पुन: प्रवेश के लिए छ: वर्ष का लंबा इंतजार करना पड़ा।

1958-59 मे जब वेस्ट इडीज की टीम भारत आयी और भारत शृंखला के चार में से तीन टेस्टों मे बुरी तरह हार गया तो अतिम टेस्ट में गायकवाड को फिर आजमाया गया। दिल्ली मे खेले गये इस टेस्ट मे गायकवाड ने दूसरी पारी मे 52 रन बनाकर अपने जीवन का पहला और एकमात्र अर्द्धशतक अर्जित किया। पंकज राय, चंदू बोर्डे और कप्तान अधिकारी के अलावा गायकवाड़ की पारी के कारण ही भारत इस टेस्ट मे पराजय से बच सका था।

1959 में जून में भारत को 5 टेस्ट मैचो की शृंखला खेलने इंग्लैड जाना था। भारतीय टीम के हौंसले वेस्ट इंडीज और उससे पूर्व आस्ट्रेलिया से हारने के कारण पस्त थे। ऐसे में चयनकर्ताओ ने अजीब निर्णय लिया और गायकवाड को टीम का कप्तान बना दिया। स्वयं गायकवाड को इसकी आशा नही थी। गायकवाड के अतिरिक्त अन्य कई नये खिलाडी भी टीम मे लिये गए और कई नामी खिलाड़ी यहां तक कि वीनू माकड का नाम भी टीम से नदारद था।

आखिर वही हुआ जिसकी आशका थी। भारत पांचों ही टेस्टां में हार गया दूसरे लाड्र्स टेस्ट में अस्वस्थ होने के कारण गायकवाड़ न खेल पाये और कप्तानी का निर्वाह पंकज राय ने किया। एक बल्लेबाज के रूप में भी गायकवाड़ वेहद असफल सिद्ध हुए और 4 टेस्ट मैचों की 8 पारियो में केवल 128 रन बना पाये जिनमें केवल 33 ही सर्वश्रेष्ठ था।

इसके बाद आस्ट्रेलियाई टीम रिची बेनो के नेतृत्व में भारत आयी। इंग्लैड में भारत की पराजय के जख्म अभी ताजा थे। परिणामस्वरूप गायकवाड़ पूर्णत: उपेक्षित रहे और उन्हें एक टेस्ट में भी मौका नही दिया गया।

1960-61 में पाकिस्तान के खिलाफ चौथे (मद्रास) टेस्ट में उन्हें एक बार फिर याद किया गया लेकिन दुर्भाग्य से वह एकमात्र खेली गयी पारी में 9 रन ही बना सके। यही टेस्ट बाद में गायकवाड़ के जीवन का अतिम टेस्ट साबित हुआ।

दूसरी ओर प्रथम श्रेणी क्रिकेट में गायकवाड़ ने कीर्तिमानो के नये आयाम स्थापित किये। 1949 में उन्होने गुजरात के विरुद्ध दोनों पारियों में शतक बनाया। 1957 में उन्होने जीवन की कई स्वर्णिम पारिया खेली। इस वर्ष उन्होंने कुल सात पारियों में 78.00 की औसत से 546 रन ठोके जिनमें बंबई के विरुद्ध बनाये गये 218 रन शामिल है। 1959 में महाराष्ट्र के विरुद्ध उन्होने 249 (आउट नही) रन बनाये, रणजी ट्रॉफी में यह उनका अधिकतम स्कोर है।

रणजी ट्रॉफी में उन्होने कुल मिलाकर 47.56 की औसत से 3139 रन बनाये जिनमें 14 शतकों का योगदान है।

गायकवाड़ की सुरक्षा जितनी मजबूत थी आक्रमण उतना ही तीखा। विशेष-कर कवर की ओर लगाये गये उनके शाट्स दर्शनीय होते थे। वह कभी-कभी लेग स्पिन गेंदबाजी भी कर लिया करते थे।

दत्तू गायकवाड़ के पुत्र अंशुमन गायकवाड़ को पिछले दिनों भारतीय टीम में वेस्ट इंडीज के खिलाफ पुनः शामिल किया गया था। अपने पिता की तरह वह बडौदा के कप्तान हैं और उन्होंने पिछले वर्ष कई लाजवाब पारियां खेली।

टेस्ट प्रदर्शन : 11 टेस्ट, 20 पारी, 350 रन, 52 उच्चतम 18.42 औसत कोई विकट नही।

दिलीप दोषी

22 दिसंबर 1947 को राजकोट में जन्मे दोषी का अधिकांश जीवन कलकत्ता मे ही व्यतीत हुआ। 1968 में दोषी ने बंगाल की तरफ से उड़ीसा के विरुद्ध अपना पहला रणजी ट्राफी मैच खेला। उस रणजी सत्र मे दोषी ने 12 78 की औसत से 23 विकेट प्राप्त किए। स्मरण रहे उस वर्ष बंगाल की टीम दस वर्ष पश्चात रणजी ट्राफी विजेता बनी थी।

उसके बाद दोषी को तीन वर्षों के लिए इग्लेंड की काउटी क्रिकेट से भी अनुबंधित किया गया। वह आस्ट्रेलिया के विरुद्ध मद्रास टेस्ट में 1979 में चुने गए। अपनी पहली शृंखला मे 27 विकेट लेकर दोषी ने अपने आपको अन्य श्रेष्ठ स्पिनरों मे स्थापित कर लिया।

टेस्ट क्रिकेट मे उन्हें उस समय प्रवेश मिला जब प्रायः खिलाडियों का खेल जीवन समाप्ति की ओर होता है। 31 वसंत देखने के बाद उनके सिर पर टेस्ट कैंप पहनाई गई। इसे इत्तफाक कहिए या दुर्भाग्य कि प्रतिभा का धनी होने के बावजूद दिलीप दोषी भाग्य का निर्धन रहा। उसे इग्लेंड की काउण्टी क्रिकेट ने तो 1973 मे ही स्वीकार कर लिया था लेकिन टेस्ट क्रिकेट मे यह प्रतीक्षा के एक लम्बे दौर से गुजरा।

दोषी ने अपने प्रथम श्रेणी क्रिकेट की शुरुआत 1968-69 मे बंगाल की ओर से खेलकर की थी। शीघ्र ही उसे दिलीप ट्राफी मे भी चुन लिया गया। किंतु टेस्ट टीम में बेदी के होते हुए उसी की तरह के अन्य गेंदबाज को रखना संभव न था। फलस्वरूप दोषी बिना किसी कारण के टेस्ट टीम में न आ सका।

दोषी ने 1970-71 मे नौगांव में असम के विरुद्ध रणजी ट्रॉफी मे 29 रन देकर 7 विकेट उखाड़ फेंकी थी। 1977-78 में वारविक शायर के विरुद्ध काउटी क्रिकेट मे उसने 67 रन देकर 7 विकेट उखाड़ी। प्रथम श्रेणी क्रिकेट के यह उसके बेहतरीन आंकड़े हैं। टेस्ट मैंचों मे दिलीप की गेंदबाजी का सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण 103 रन देकर छह विकेट हथियाना है।

दिलीप दोषी की बल्लेबाजी भी कभी-कभी महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। 1980 में पाकिस्तान के विरुद्ध कलकत्ता और कानपुर टेस्टों में उसने बल्लेबाजी में भी अपने धैर्य का परिचय दिया था।

1981 में जब रवि शास्त्री को भारतीय टीम में लिया गया तब ऐसा समझा जाने लगा था कि शायद दोषी का टेस्ट कॅरियर समाप्त हो गया लेकिन इंग्लैंड और बाद मे श्रीलंका के विरुद्ध दोषी ने अपने शानदार प्रदर्शन से इस बात को गलत साबित कर दिया।

दोषी में धैर्य कूट-कूटकर भरा हुआ है। वह कभी उतावला नही होता। इसी का यह परिणाम है कि उसे टेस्ट क्रिकेट में अवसर मिला और उसने सफलता के झंडे गाड़े। यह कहा जाना गलत नही कि यदि किस्मत उसके साथ दगा न करती तो आज वह विश्व का सफलतम स्पिनर होता। अब तक 28 टेस्टों में 105 विकेट ले चुके हैं।

दिलीप वेंगसरकर

6 अप्रैल 1956 को राजपुर में जन्मे वेंगसरकर बाद मे अपने परिवार सहित बम्बई आकर बस गए थे और यही उनकी स्कूली शिक्षा के साथ-साथ क्रिकेट की शिक्षा-दीक्षा भी हुई। वह शुरू मे सलामी बल्लेबाजी पर ही ज्यादा जोर देते थे। 19 वर्ष की उम्र में उन्हें भारत की टेस्ट टीम में भी चुन लिया गया लेकिन आरभिक टेस्टो में वे अपनी कोई फार्म न दिखा सके।

1977-78 की भारत-आस्ट्रेलिया श्रृखला में कुछ सफलतापूर्वक बल्लेबाजी दिखाने के कारण उन्होने टेस्ट टीम में अपना स्थान सुरक्षित बना लिया।

. 1978-79 की भारत वेस्ट इंडीज श्रृखला के कलकत्ता टेस्ट में गावसकर के साथ उन्होने दूसरे विकेट पर 344 रन बनाकर नया भारतीय रिकार्ड स्थापित किया था। स्वयं वेंगसरकर ने अविजित 157 रनो की पारी खेली थी। वेंगसरकर के टेस्ट शतको की शुरुआत भी इसी शतक से हुई थी। 1979 के लार्ड्स टेस्ट मे उन्होने शून्य व शतक का भी अभूतपूर्व रिकार्ड कायम किया।

1982 के लार्ड्स टेस्ट मे भी वेंगसरकर ने एक और शतकीय पारी खेली और 157 रन बनाए। यह वेंगसरकर की श्रेष्ठता का ही परिचायक है। हालांकि वर्तमान समय मे वह अपनी ख्याति के अनुरूप प्रदर्शन नही कर पा रहे हैं लेकिन भविष्य में वह पुनः अपनी पिछली फार्म मे आ जाएगे, ऐसी आशा की जाती है।

यह पहले भारतीय हैं जिसे क्रिकेट की मक्का मानी जाने वाले ऐतिहासिक मैदान पर 3 शतक बनाने का गौरव प्राप्त हुआ है। यह इनके टेस्ट जीवन का 10वा शतक था। उनके पहले जेकहाब्स, ज्योफ बायकाट, बिल एड्रिच, डेनिस काम्प्टन और लेन हटनको ही लार्ड्स पर तीन शतक बनाने का दुर्लभ सौभाग्य

मिला था। ये पांचों बल्लेबाज इग्लैंड के ही थे। इस प्रकार विश्व के छठे और भारत के पहले बल्लेबाज हैं। बस उसी के बाद उन्हें महान खिलाड़ियों की सूची में शामिल कर लिया गया। कवर ड्राइव, स्क्वेयर कट, लेट कट, स्टेट ड्राइव, हुक, पुल और स्वीप के अलावा लाफ्टेड शाट जैसी स्टोकों की विविधता उनकी मुख्य विशेषता है।

15 शतको की सहायता से टेस्ट मैचों मे 5651 रन बना चुके हैं और भारत की ओर से 100 टेस्ट खेलने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं। 1986 में विस्डन से सम्मानित दिलीप वेंगसरकर पद्मश्री और अर्जुन पुरस्कार से भी अलकृत हैं।

दिलीप सर देसाई

भारत में योग्य सलामी बल्लेबाजों की समस्या प्रायः हमेशा से ही रही है। जिस प्रकार पिछले दशक मे हमें काफी समय से गावसकर के साथी की तलाश रही, उसी प्रकार 1970-71 के वर्षों में हमे दिलीप सरदेसाई के साथी की तलाश थी और 1971 के वेस्ट इंडीज दौरे के बाद जब सरदेसाई को गावसकर के रूप में योग्य साथी मिल गया, तब कुछ समय बाद ही सरदेसाई ने क्रिकेट से सन्यास ले लिया।

8 अगस्त 1940 को जन्मे सरदेसाई आठ के अक को अपने लिए शुभ मानते थे और विदेशी दौरों के दौरान प्रायः उसी कमरे में ठहरते थे जिसकी सख्याओ का योग आठ हो। मसलन जमैका में वे 53 नम्बर के कमरे में रहे तो त्रिनिदाद में 314 नम्बर के कमरे में। वह आरंभ में बंबई की तरफ से रणजी ट्रॉफी मैचों में खेलते थे।

सरदेसाई के आकड़े बताते है कि वह बल्लेबाजी में पूर्णतः माहिर थे, यदि उनमें कुछ कमजोरी थी, तो वह उनका क्षेत्ररक्षण ही था। उन्होने तीस टेस्ट मैचो की कुल 55 पारिया खेलीं, जिनमें चार बार अविजित रहकर 39.23 की औसत से 2001 रन बनाए, जिसमें 5 शतक व 9 अर्द्धशतक सम्मिलित हैं। 30 टेस्टों में 4 कैच लपक सके।

दिलीप सिंहजी

दिलीप सिंह जी भारत के उन दो महान खिलाड़ियों में से एक हैं जो मूल रूप से भारतीय हैं लेकिन कभी भारत की तरफ से टेस्ट मैच नही खेले। यदि एक को क्रिकेट का राजा और दूसरे को क्रिकेट का राजकुमार कहा जाए तो अनुचित नही होगा। निजी जीवन में भी ये राजकुमार ही थे। राजा थे रणजीत सिंह और राजकुमार थे दिलीप सिंह जी। रणजीत सिंह जी चाचा थे और दिलीप सिंह जी उनके भतीजे थे।

13 जून 1905 को दिलीप सिंह जी का जन्म जाम [illegible] राजघराने में

हुआ था। इंग्लैंड में अपनी प्रारंभिक शिक्षा के साथ-साथ उन्होंने क्रिकेट का प्रशिक्षण लेना भी शुरू कर दिया और कैंब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के बाद सबसे पहले ससेक्स काउंटी की ओर से खेले।

1930-31 में जब आस्ट्रेलिया की टीम ने इंग्लैंड का दौरा किया था तो लार्ड्स के पहले ही टेस्ट में दिलीप सिंह जी को भी सम्मिलित किया गया जिसमें उन्होंने शतक उड़ाया।

ससेक्स की तरफ से इन्होंने 330 मिनट में 333 रन की आकर्षक पारी खेली और अन्त तक यही इनके जीवन का सर्वश्रेष्ठ स्कोर रहा। प्रथम श्रेणी क्रिकेट में दिलीप सिंह जी ने कुल *15537* रन बनाए जिनमें *49* शतक भी सम्मिलित हैं। क्षय रोग से पीड़ित रहने के कारण इन्हें क्रिकेट जल्दी ही छोड़नी पड़ी। वह भारत भी आए और भारतीय क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड की चयन समिति के सदस्य भी रहे। 5 दिसम्बर 1959 को रात को सोते में ही हृदय गति रुक जाने से दिलीप सिंह जी की मृत्यु हो गई। उनकी याद में क्रिकेट की दिलीप ट्रॉफी प्रतियोगिता खेली जाती है।

देवधर ट्रॉफी

वर्ष	स्थान	विजेता	उपविजेता
1973-74	बंबई	दक्षिण क्षेत्र	पश्चिम क्षेत्र
1974-75	हैदराबाद	दक्षिण क्षेत्र	पश्चिम क्षेत्र
1975-76	मद्रास	पश्चिम क्षेत्र	दक्षिण क्षेत्र
1976-77	कलकत्ता	मध्य क्षेत्र	दक्षिण क्षेत्र
1977-78	पुणे	उत्तर क्षेत्र	पश्चिम क्षेत्र
1978-79	दिल्ली	दक्षिण क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1979-80	दिल्ली	पश्चिम क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1980-81	मद्रास	दक्षिण क्षेत्र	पश्चिम क्षेत्र
1981-82	चण्डीगढ़	दक्षिण क्षेत्र	मध्य क्षेत्र
1982-83	कटक	पश्चिम क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1983-84	शोलापुर	पश्चिम क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1984-85	विजयवाड़ा	पश्चिम क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1985-86	मद्रास	पश्चिम क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1986-87	दिल्ली	उत्तर क्षेत्र	पश्चिम क्षेत्र
1987-88	फरीदाबाद	उत्तर क्षेत्र	पश्चिम क्षेत्र
1988-89	कानपुर	उत्तर क्षेत्र	दक्षिण क्षेत्र

द्रोणाचार्य पुरस्कार

भारतीय संस्कृति में गुरुओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

1985 से शुरू किए गए द्रोणाचार्य एवार्ड को पाने का गौरव ओ एम नांबियर, ओम प्रकाश भारद्वाज और बाल भागवत को मिला। नांबियर का चयन पीटी उषा को प्रशिक्षण देने के आधार पर हुआ। वहीं भारद्वाज और भागवत का चयन मुक्केबाजों और पहलवानों को प्रशिक्षण देने के आधार पर किया गया है।

ध

ध्यानचन्द

29 अगस्त, 1905 को इलाहाबाद में जन्मे सीधे और सरल व्यक्तित्व के धनी ध्यानचन्द की चर्चा के बगैर हाकी की कोई भी चर्चा अधूरी रहेगी। ध्यान चन्द ने 1928, 32 और 36 ओलम्पिक में भारतीय टीम का प्रतिनिधित्व किया। वह सन् 36 में बर्लिन ओलम्पिक में कप्तान थे। अपने उत्कृष्ट खेल से ध्यानचन्द को 'हाकी का जादूगर' कहा जाता था।

हाकी स्टिक से चिपकी हुई गेंद के साथ चीते की सी फुर्ती से दौड़ना, कठिन से कठिन कोणों से गोल में अचूक ढंग से गेंद डालना, अपने साथी खिलाड़ियों को सही समय पर पास देना आदि खूबियाँ ध्यानचन्द को सर्वकालिक सर्वश्रेष्ठ हाकी खिलाड़ी सिद्ध करती हैं। 1922 में सेना में भर्ती हुए ध्यानचन्द ने ओलम्पिक खेलों के अलावा न्यूजीलेंड, आस्ट्रेलिया, अफगानिस्तान आदि देशों का भी दौरा किया था।

1932 के लास एंजल्स ओलम्पिक खेलों में भारत ने अपना पहला मैच जापान को 11-0 से हराकर जीता। इस बार एक और महान खिलाड़ी ध्यान चन्द के भाई रूपसिंह भी भारतीय दल में थे। ध्यानचन्द ने चार और रूपसिंह व गुरमीत सिंह ने तीन-तीन गोल दागे।

11 अगस्त को भारत ने अमेरिका को 24-1 से पराजित कर ओलम्पिक खिताब जीतने के साथ-साथ एक ऐसा रिकार्ड कायम किया जो कि आज तक नहीं तोड़ा जा सका। ध्यानचन्द ने 8, रूपसिंह ने 10 और गुरमीत सिंह ने 5

गोल दागे। लास एंजल्स के एक अखबार ने फाइनल मैच का विवरण देते हुए लिखा था, "भारतीय दल ध्यानचन्द और रूपसिंह के रूप में एक तूफान लाया है जिसने अमेरिकी ओलम्पिक खिलाड़ियों को स्टेडियम से बाहर ला पटका और खाली मैदान पर भारतीय टीम ने मनमाने गोल दागे।"

इंग्लैंड, जर्मनी अमेरिका, श्रीलंका और कई देशों के खिलाफ अपने विश्व भ्रमण में भारतीय टीम ने 37 मैच खेलकर 338 गोल किए। इनमें ध्यानचन्द ने सर्वाधिक 133 गोल किये। न्यूजीलैंड के भ्रमण के दौरान ध्यानचन्द ने 43 मैचों में 201 गोल दागकर एक बार फिर कमाल किया।

1936 का बर्लिन ओलम्पिक भारत और ध्यानचन्द के लिए यादगार रहा। हंगरी को 4-0, अमेरिका को 7-0, जापान को 9-0 और फ्रांस को 10-0 से हरा कर भारत का मुकाबला जर्मनी से पड़ा। फाइनल में भारत ने जर्मनी को 8-1 से हराया। चासलर हिटलर ध्यानचन्द का खेल देखकर गदगद हुए और उन्होंने अनेक प्रलोभन देकर ध्यानचन्द को अपनी सेवा मे भर्ती करना चाहा, लेकिन ध्यानचन्द ने हिटलर के निमन्त्रण को ठुकरा दिया।

हिटलर का प्रस्ताव

1926 में न्यूजीलैंड का दौरा करने वाली टीम मे जब ध्यानचन्द को शामिल किया गया तब वह सेना में मात्र एक साधारण सिपाही थे। वहां का सफल दौरा करने के बाद जब स्वदेश लौटे तो उन्हें लास नायक बना दिया गया। इसी प्रसंग में ध्यान दादा स्वयं लिखते हैं :

न्यूजीलैंड का दौरा करने के बाद मेरे नाम की चर्चा घर-घर होने लगी थी। मैं भी अपने को बड़ा भाग्यशाली मानने लगा पर मेरा यह भ्रम तो उस समय दूर हुआ जब मैं बर्लिन ओलम्पिक मे (सन् 1936) भारतीय टीम के कप्तान के रूप मे गया। वहा पर हमने देखा कि कोई भी जर्मन सैनिक यदि अच्छी सफलता प्राप्त करता तो अगले ही दिन उसे लेफ्टिनेंट बना दिया जाता इस हिसाब से तो हिटलर मुझे सचमुच ही फील्ड मार्शल बना देते।

यह बात तो अब जगजाहिर ही हो चुकी है कि बर्लिन ओलम्पिक में हिटलर उनके खेल से इतने प्रभावित हुए कि साथियो से अनायास ही पूछ बैठे कि भारतीय सेना मे वह किस पद पर है। जवाब मिला लांस नायक। तब उन्होंने कहा कि उससे कहो कि जर्मनी आ जाए मैं उसे फील्ड मार्शल बना दूंगा।

1956 में पद्म भूषण से अलंकृत इस श्रेष्ठतम हाकी खिलाड़ी की 3 दिसंबर, 1980 को दिल्ली मे मृत्यु हुई।

नरेन्द्र हिरवानी

गोरखपुर में जन्मे और इंदौर में बढ़े 'हीरू' यानी नरेन्द्र हिरवानी अपने पहले टेस्ट के बाद ही काफी तरह चर्चित हो चुके हैं। दाहिने हाथ से गेंद फेंकनेवाले योग्य स्पिन गुगली गेंदबाज बहुत ही कम हैं। चन्द्रशेखर, कादिर के बाद वह पहले ऐसे खिलाड़ी दिखाई देते हैं जिनके अन्दर विकेट ले सकने वाले गेंदबाजों जैसे गुण हों।

मद्रास के चेपक मैदान पर अपने पहले ही टेस्ट में 16 विकेट लेने के बाद हिरवानी इस कदर शांत और सहज थे, लग रहा था जैसे उन्हें पूरा विश्वास था कि वह पहले ही टेस्ट में 16 विकेट ले लेंगे। मनिंदर सिंह या चेतन शर्मा के विकेट लेने की खुशी देखने के बाद कोई हिरवानी को देखे, निश्चित रूप से अगर हिरवानी ने विकेट लिया हो तो भी दर्शक खामोश ही रहेंगे, क्योंकि उन्हें इस बात का थोड़ा भी अहसास हिरवानी नहीं होने देंगे कि मैदान पर कुछ हुआ भी हो। यही शायद हिरवानी की सबसे बड़ी विशेषता है।

गोरखपुर में 18 अक्तूबर 1968 को जन्मे हिरवानी अपने बचपन के तेरह चौदह साल तक गोरखपुर में ही रहे। विश्वकप 83 के आसपास उन्हें यह अहसास हुआ कि गोरखपुर या उत्तरप्रदेश में रहकर क्रिकेट में ज्यादा आगे नहीं जा सकता। आखिरकार यह गोरखपुर से खिसक कर मध्यप्रदेश में इंदौर में आ गए।

इंदौर में उन्हें सबसे पहले परखा, एक समय के मध्यप्रदेश रणजी टीम के कप्तान संजय जगदले ने उनको साथ रखकर क्रिकेट की और लेग स्पिन की बारीकियों से हिरवानी को परिचित कराया लेकिन सबसे पहला काम उन्होंने जो किया वह था, हिरवानी की शारीरिक बनावट को चुस्त दुरुस्त करना।

हिरवानी जो काफी मोटे थे, जगदले ने अपने प्रशिक्षण और मेहनत के सहारे हिरवानी का वजन तीन साल में 18 किलो कम कराया, उन्होंने हिरवानी को कड़ा प्रशिक्षण दिया, उन्हीं की मेहनत के सहारे चश्माधारी हिरवानी दिन में 6 से लेकर 8 घंटे लगातार गेंद फेंका करते थे। गेंद से वह कितना प्यार करते हैं। यह इसी बात से समझा जा सकता है कि बल्लेबाजी में वह दूसरे चन्द्रशेखर कहलाने लगे है।

जगदले के बाद ए. डब्ल्यू. कमआदिकर ने हिरवानी को पहचाना। शायद इसी कारण हिरवानी को इन्दौर के नेहरू स्टेडियम में खेलने और रहने दोनों की सुविधा मिल सकी। अपने रणजी ट्रॉफी क्रिकेट की शुरुआत हिरवानी ने उस सेशन

में 15 विकेट लेकर की, उसके बाद से वह लगातार आगे बढ़ते गए। 1986-87 में उन्नीस वर्ष से कम आयु के खिलाड़ियों की टीम के साथ वह आस्ट्रेलिया के दौरे पर गए। ऑस्ट्रेलियाई दौरे में उन्होने 23 विकेट लिये।

लेकिन टेस्ट क्रिकेट में आने का या पहुंचाने का सबसे सबसे बड़ा योगदान रहा उनका, बोर्ड एकादश की टीम मे चयन। इस मैच में हिरवानी ने दूसरी पारी में वेस्टइडीज के गिरने वाले सभी छ: विकेट लिये थे। उसके बाद भारतीय स्पिनरों की लगातार असफलता के बाद उन्हें मद्रास मे पहला टेस्ट खेलने को मिला, और रिचर्ड्स को एक ही मैच में दो बार आउट करने का मौका भी।

हिरवानी की गेंद फेंकने के अंदाज से ऐसा लगता ही नही कि बहुत प्रभावशाली गेंदबाजी एक्शन हो, न कादिर की तरह अजीव सा स्टार्ट, न शिवराम की तरह गेंद को एक हाथ से दूसरे में उछालना और न ही महान लेग स्पिनर चन्द्रशेखर की तरह एक हाथ का असर। बिलकुल सीधे साधे 5-6 कदम का रन अप इस तरह साधारण मानों ओई ऑफ स्पिनर गेंद फेंक रहा हो, कलाई के सहारे स्पिन करने वाले गेंदबाज हैं, हिरवानी बल्लेबाजों पर प्रयोग करने में बिल्कुल भी नहीं हिचकते है। एक बार बेदी ने कहा था 'स्पिनरों को विकेट खरीदने पड़ते है।' इसका वह पूरी तरह से प्रयोग करते हैं। वह बल्लेबाज को फ्लाइट गेंद फेंकने से नही हिचकते। वह परिस्थितिओं को समझकर गेंद फेंकने की क्षमता रखते हैं।

अपने पहले ही टेस्ट में उन्होंने यह दिखा दिया कि वह बल्लेबाजो को पढ़ने की या उनकी गलतियों को समझने की कोशिश करते हैं। हिरवानी को गेंद फेंकते हुए देखकर ऐसा लगता है मानों बहुत दिनों के बाद किसी वास्तविक स्पिनर को गेंदबाजी करते देख रहे हो। अपने पहले ही टेस्ट में हिरवानी ने पूरी तरह से अपनी लैथ पर भरोसा किया और सही दिशा में गेंद फेंककर पिच को पूरा मौका दिया कि वह गेंद में कुछ 'अतिरिक्त' कर सके।

बोलिंग एक्शन से हिरवानी बिल्कुल ही सीधे साधे दिखाई देते हैं। वह उतने कलात्मक नहीं लगते, जितने कि उनकी श्रेणी और अन्य स्पिनर, लेकिन ऐसा दिखाई देता है कि वह एक स्टडी या एक निश्चित स्तर की गेंद फेंक सकते हैं।

वैसे ही लेग स्पिन गेंदबाजी की कला अब बहुत ही कम दिखाई देती है, दाहिने

क्या योगदान देते हैं यह तो
16 विकेट लेकर और बाद में
शुरुआत की है और अब 3 टे
शायद यह किसी गेंदबाज के लिए आश्चर्यजनक सफलता है।

नवरातिलोवा, मार्टिना

मार्टिना नवरातिलोवा पिछले छः वर्षों में चार मर्तबा विम्बलडन विजेता भी रह चुकी है। और आज, उन्हें विश्व टेनिस में, टेनिस की रानी या मलिका कहा जाता है।

तो, आखिरकार, ये मार्टिना नवरातिलोवा है कौन? ये अमेरिका का प्रतिनिधित्व क्यों करती है?

मार्टिना, मूलतः चेकोस्लोवाकिया की निवासी थी। 1974 में, जब विश्व टेनिस समीक्षकों ने इस 18 वर्षीया वामहस्त खिलाड़ी की 91 मील प्रति घंटा रफ्तार की 'चहुमुखी सर्विस' देखी, तो वे स्तंभित रह गए। समीक्षक नील आमदूर ने मार्टिना की तेज सर्विस को 'राकेट का धमाका' निरूपित किया। उसी वर्ष, जब लोगों ने मार्टिना के जोरदार 'फोरहैंड वमोली स्ट्रोक' तथा दौड़ते हुए हर गेंद को सफलतापूर्वक मारते देखा, तो महिला समीक्षक, जेन ग्रोस ने टिप्पणी की कि—"मार्टिना महिला टेनिस जगत में एक धमाका है।"

जब मार्टिना का नाम विश्व टेनिस में फैलने लगा, चेकोस्लोवाकिया की सरकार ने अमेरिका तथा दूसरे प्रजातांत्रिक देशों में जाकर खेलने पर उनपर प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दिया। जब किसी तरह, वे अमेरिकी ओपन में भाग लेने 1975 में न्यूयार्क पहुंची तो उस समय की विश्व नंबर एक, क्रिस एवर्ट को पराजित करके उन्होंने सनसनी पैदा कर दी। और उसी समय वे अमेरिका में स्वयं की इच्छा से रहने लगी।

नादिया कोमानेच

नादिया कोमानेच का जन्म 12 नवम्बर, 1961 को रुमानिया में हुआ था। नादिया विश्व की ऐसी पहली जिमनास्ट थी जो 1976 मांट्रियल ओलम्पिक जिमनास्टिक्स की अन ईवन बार में पूर्णांक अर्जित कर ओलम्पिक रानी के खिताब से विभूषित हुई। उसने जिमनास्टिक में रूसी प्रभुत्ता को चुनौती देते हुए 3 स्वर्ण पदक प्राप्त किए। 1978 में अपनी अद्भुत कला का प्रदर्शन कर नादिया विश्व चैंपियन बनी। 1980 ओलंपिक्स में उसे 2 स्वर्ण पदक प्राप्त हो सके।

बेलेंस बीम पर नादिया, जैसे हवा में तैर रही थी—आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे, मांट्रियल ओलम्पिक के जिमनास्टिक, स्टेडियम के 8000 दर्शक हैरान थे। वे एक ऐसे अद्भुत प्रदर्शन को देख रहे थे, जो जिमनास्टिक्स के इतिहास में स्वयं इतिहास बनता जा रहा था। जी हां, आधुनिक ओलम्पिक के 80 वर्षों के इतिहास में ऐसा अद्वितीय प्रदर्शन किसी जिमनास्ट ने नहीं किया था। यह असंभव-सा माना जाता था कि कोई जिमनास्ट 10 में से 10 अंक प्राप्त कर

सकता है। आयोजकों ने भी कंप्यूटर पर 10 अंक टंकित करने की व्यवस्था भी नहीं की थी, मगर नादिया ने एक…नहीं, दो…नहीं…पूरे सात बार अपने प्रदर्शन के दौरान 10 में से 10 अंक प्राप्त किए। ऐसा प्रदर्शन, जिसे देखकर हर दर्शक के मुंह से निकला—वाह, अद्‌भुत, अनुपम !

अपने देश के लिए नादिया का योगदान इसलिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि मांट्रियल ओलम्पिक से पहले, जिमनास्टिक के शीर्षस्थ देशों में रूमानिया की गिनती ही नहीं होती थी। लेकिन मांट्रियल में जो कुछ हुआ, उसने रूमानिया को जिमनास्टिक के शीर्षस्थ देशों के बीच लाकर खड़ा कर दिया।

नितीन्द्रनारायण राय

एक बार एक मशहूर पर्वतारोही से किसी ने पूछा कि आप अपनी जान जोखिम में डालकर इतने ऊंचे-ऊंचे पर्वतों की चोटियों पर क्यों चढ़ते हैं ? उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया था—"पर्वत हैं तो हम चढ़ते हैं।" ठीक यही उत्तर इंग्लिश चैनल पार करने वाले तैराक भी दे सकते हैं और कह सकते हैं कि इंग्लिश चैनल है तो हम उसे पार करते हैं। पिछले कुछ वर्षों में दुनिया के अनेक देशों के तैराकों ने इंग्लिश चैनल (इंग्लैंड और फ्रांस के बीच का 20 मील चौड़ा समुद्र) पार किया। जिन [illegible] भारतीय तैराकों को इस चैनल को पार करने का गौरव प्राप्त हुआ उनके नाम हैं: मिहिर सेन, [illegible] चन्द्र, नितीन्द्रनारायण राय, कुमारी आरती [illegible] और [illegible] सारंग।

नितीन्द्रनारायण राय ने डोवर (इंग्लैंड) से [illegible] इंग्लिश चैनल को 10 घंटे और 21 मिनट में पार करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। पिछला कीर्तिमान कैनाडा के हेलन [illegible] था। उन्होंने इस समुद्र को 10 घंटे और 23 मिनट में पार किया था। [illegible] इंग्लिश चैनल को दोनों तरफ से पार करने के इरादे से [illegible] (दोनों तरफ से बिना रुके इंग्लिश चैनल पार करना) [illegible] नहीं। वह ऐसे पहले भारतीय हैं जिन्होंने दोनों तरफ से इंग्लिश चैनल को पार करने का प्रयास किया था।

अर्जेंटीना के एंटोनिया अबेरतोंदो ने 43 घंटे और 10 मिनट में और 1965 में अमेरिका के टेड इरिक्सन ने 30 घंटे और 3 मिनट में दोहरा चैनल पार किया था।

निशानेबाजी

पहली बार 1900 में ओलम्पिक खेलों में निशानेबाजी की प्रतियोगिता शामिल की गई। प्रारम्भ में केवल एक प्रतियोगिता होती थी परन्तु आजकल भिन्न प्रकार की कुल सात प्रतियोगिताएं होती हैं। इन सात प्रतियोगिताओं में तीन राइफल, दो पिस्तौल तथा शेष स्कीट से होती हैं। नार्वे के स्कंटवा का तीन स्वर्ण-पदक जीतने का रिकार्ड है। अमेरिका के कार्ल ओसबर्न ने 1912 से 1924 के बीच कुल 11 पदक प्राप्त किए। 1972 के म्यूनिख ओलम्पिक में इटली के एंजलो ने 'क्लेपिजन' का नया रिकार्ड बनाया था, जब कि उन्होंने सौ मील प्रति घंटा की चाल से उड़ती हुई 200 चिड़ियों में से 199 को गिराया। छोटी राइफल से ही 600 में 599 सही निशाने लगा कर उत्तरी कोरिया के ही जुन ली ने पिछले ओलम्पिक में नया रिकार्ड बना कर स्वर्णपदक जीता था। फ्री राइफल में अमेरिका के गैरी एण्डरसन का 1200 में 1157 निशाने लगाने का भी एक रिकार्ड अभी तक बरकरार है, जो उन्होंने 1968 में बनाया था।

कुश्ती व्यायाम की भांति निशानेबाजी का इतिहास पुराना चाहे न रहा हो, रोमांचक अवश्य रहा है। ओलम्पिक खेलों में निशानेबाजी ही ऐसा एक-मात्र नाजुक खेल है जिसमें जरा सी भी असावधानी खिलाड़ी को विजय से वंचित कर सकती है। सम्भवतः इसलिए इस खेल में अधिक सफलताएं प्राप्त करने वाले खिलाड़ियों की मिसाल बहुत कम है। 1934 में क्ले पिजन में अमेरिका के एविन्स ने विजय प्राप्त की जिसे वह 1908 में भी दोहराने में सफल रहे। 1952 में फ्री राइफल में सबसे पहले रहने वाले रूस के बोगदानोनमें स्माल बोर राइफल में भी सफल हो गए। फ्री राइफल में यदि अमेरिका के एंडरसन ने लगातार दो-दो वर्ष (1964 व 1968) पहला स्थान लिया तो रैपिड फायर पिस्टल में पोलेंड के आपेद्रकी भी 1968 व 1972 में पहला स्थान प्राप्त कर उनसे पीछे नहीं रहे।

नेविल कार्डस

क्रिकेट समीक्षक के रूप में जितनी ख्याति और सम्मान 85 वर्षीय नेविल कार्डस ने प्राप्त किया उतना दुनिया के किसी अन्य समीक्षक को प्राप्त नहीं हुआ। उनके द्वारा लिखी 'गुड डेज इन सन' और 'आस्ट्रेलियन समर' जैसी पुस्तकें आज भी क्रिकेट साहित्य की अमूल्य संपदा मानी जाती हैं। क्रिकेट

लेखन में उन्होंने जो शैली अपनाई वह कई पीढ़ियों तक क्रिकेट समीक्षकों का मार्गदर्शन करती रहेगी।

उनका जन्म 1889 में मानचेस्टर में विचित्र परिस्थितियों में हुआ। अज्ञात पिता की संतान होने के कारण वह अंत तक अपने पिता का नाम नहीं जान पाए। अपने बारे में इतना जरूर लिखा कि मेरा पालन-पोषण एक वेश्या के घर हुआ था। बचपन कठिनाइयों में बीता। साधारण-सी शिक्षा प्राप्त करने के बाद 12 साल की उम्र में उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। उन्हें कई छोटे-मोटे काम (जैसे चपरासी, पत्रवाहक, ओल्ड कामेडी थियेटर के बाहर खड़े होकर चाकलेट बेचना आदि) करने पड़े। लेकिन अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण देखते ही देखते उन्होंने असाधारण ख्याति अर्जित कर ली और 1919 में उनका क्रिकेट पर पहला लेख प्रकाशित हुआ।

उन दिनों मैक्लारेन और ट्रूपर जैसे खिलाड़ियों की बड़ी धूम थी। जब-जब भी ये खिलाड़ी खेलना शुरू करते कार्डस सब कुछ छोड़कर क्रिकेट के मैदान में पहुंच जाते। 1913 में उन्होंने 'डेली सिटीजन' में संगीत समालोचक के रूप में काम शुरू किया और दो वर्ष बाद ही उन्हें 'गार्जियन' जैसे प्रतिष्ठित पत्र में नियमित रूप से संगीत का स्तंभ लिखने का काम मिल गया। 'गार्जियन' के संपादक ने उन्हें एक दिन वैसे ही साधारण काउंटी मैच की रपट तैयार करने को कहा, लेकिन उन्होंने क्रिकेट के खेल में जो संगीत की सुरें मिलाईं उससे उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई।

1936 और 1939 में वह आस्ट्रेलिया गए और वहां उन्होंने 'मेलबोर्न हेरल्ड' में काम शुरू कर दिया। उसके बाद उन्होंने 'सिडनी मार्निंग हेरल्ड' में काम किया, कुछ समय तक उन्होंने 'संडे टाइम्स' में भी काम किया, लेकिन फिर वह 'गार्जियन' में आ गए। 1916 में उन्होंने इस पत्र में लिखना शुरू किया और अंतिम दिनों के कुछ सप्ताह पहले तक उसमें लिखते रहे।

जिस समय उन्होंने 'डेली सिटीजन' में लिखना शुरू किया उस समय उन्हें खेलों का पारिश्रमिक बहुत कम मिलता था, इसलिए उन्होंने सी० पी० स्काट को यह लिखा कि क्या ही अच्छा हो कि आप मुझे क्लर्क के रूप में रख लें। लेकिन दो महीने के अंदर ही वह क्लर्क तो नहीं बल्कि रिपोर्टर जरूर बन गए। 1963 में उन्हें सी० बी० ई० और 1967 में सर की उपाधि से अलंकृत किया गया।

उन्होंने लगातार छह दशकों तक क्रिकेट की समीक्षा की और इस सिलसिले में उन्होंने इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया के लगभग सभी स्थानों का दौरा किया। संगीत समीक्षा के सिलसिले में वह पूरा यूरोप घूमे। इन दोनों विषयों पर उन्होंने लगभग 20 पुस्तकें लिखीं और संगीत के सुरों में और क्रिकेट के खेल में जो रिश्ता है उसका भी उन्होंने बखूबी बखान किया। तभी तो ब्रैडमैन जैसे खिलाड़ी को भी

यह कहना पड़ा, "कार्डस अपने आप में अनोखे हैं। इस परिवर्तनशील खेल और इस परिवर्तनशील जगत में उन जैसा शायद ही कोई दूसरा क्रिकेट समीक्षक हो सके।"

नेहरू हाकी

इस प्रतियोगिता का शुभारम्भ 1964 में हुआ। पहली बार इसे उत्तर रेलवे ने जीता।

1975 से अब तक के विजेता इस प्रकार हैं :

वर्ष	विजेता	रनर अप
1975	सीमा सुरक्षा बल, जालंधर	पंजाब पुलिस
1976	पंजाब पुलिस	ए० एस० सी० जालंधर
1977	सीमा सुरक्षा बल, जालंधर	इंग्लैंड एकादश
1978	सीमा सुरक्षा बल, जालधर	पंजाब पुलिस
1979	सी० आर० पी० एफ०	सीमा सुरक्षा बल, जालधर
1980	पंजाब पुलिस	ई० एम० ई० जालंधर
1981	सीमा सुरक्षा बल, जालंधर	ए० एस० सी० जालंधर
1982	पंजाब पुलिस	ए० एस० सी० जालंधर
1983	ई० एम० ई० जालंधर	सी० आर० पी० एफ०
1984	इंडियन एयरलाइंस	सीमा सुरक्षा बल, जालंधर
1985	इंडियन एयरलाइंस	पजाब पुलिस
1986	इंडियन एयर लाइंस	पंजाब पुलिस
1987	सीमा सुरक्षा बल, जालंधर	इंडियन एयरलाइंस
1988	इंडियन एयर लाइंस	रेल कोच फैक्ट्री, कपूरथला

भारतीय हाकी का गढ़ किसे माना जाये ? इस प्रश्न का उत्तर देते समय पजाब और इंडियन एयरलाइंस की टीम का ही ध्यान आता है।

प

पंकज राय

बंगाल के लोगों को स्वभाव से मृदु और अत्यंत सौम्य माना जाता है। यही सौम्यता थी पंकज राय (जन्म: 31 मई, 1928) की बल्लेबाजी में, तभी तो क्रिकेट प्रेमी उन्हें बंगाल का रत्न कहते हैं।

भारत आज प्रारंभिक बल्लेबाज की समस्या से ग्रस्त है लेकिन कितनी हैरानी की बात है कि अंतरराष्ट्रीय रिकार्ड पुस्तिकाओं में प्रथम विकेट की साझेदारी का विश्व कीर्तिमान भारत के ही नाम लिखा है। इस रिकार्ड के रचयिता है वीनू मांकड और पंकज राय।

ठिगने कद के पंकज राय की अपनी कोई विशेष शैली नहीं रही। न वह पूर्णत: कलात्मक बल्लेबाज गिने जाते थे और न ही आक्रामक। समय की जरूरत के हिसाब से वह अपने आपको ढालने का प्रयास करते थे। किंतु एक बार निगाहें जम जाने के बाद उनका आत्मविश्वास डिगाना बहुत मुश्किल समझा जाता था।

पंकज राय ने इग्लैंड के विरुद्ध 1951 मे अपने क्रिकेट जीवन की शुरुआत की थी। दिल्ली में खेले गये इस टेस्ट मैच में तो वह केवल 12 रन ही जोड़ सके थे। किंतु दूसरे टेस्ट में उन्होंने शानदार 140 रन बनाकर अपनी बल्लेबाजी प्रतिभा का आभास दिला दिया। मद्रास टेस्ट में भी शतक जमाकर उन्होने इस शृंखला मे कुल 55.29 की औसत से 387 रन बनाकर टेस्ट क्रिकेट में शानदार प्रवेश किया था।

इससे अगली शृंखला इंग्लैंड में हुई। पहली शृंखला मे वह जितने सफल थे इस शृंखला में उतने ही असफल। 7 पारियों में 5 बार शून्य पर आउट हो गये और शेष दो पारियों मे कुल रन जोड़े 54।

अगले वर्ष पाकिस्तानी टीम पाच टेस्ट खेलने भारत आयी। पंकज राय को पहले, दूसरे और पांचवें टेस्ट में अवसर मिला लेकिन उनका प्रदर्शन ख्याति के अनुरूप नहीं रहा।

1953 में जब विजय हजारे के नेतृत्व में भारतीय टीम वेस्ट इंडीज गयी तो पंकज राय भी साथ गये। पहले टेस्ट मे तो उन्हें मौका न मिला। लेकिन जब इस टेस्ट मे माकड बतौर प्रारभिक बल्लेबाज नही चल सके तो पंकज राय को आजमाया गया। उन्होने इस शृंखला में 283 रन बनाकर अपने आलोचकों के मुंह बंद कर दिये।

इसी प्रदर्शन के आधार पर उन्हें 1954-55 मे पाकिस्तान जाने वाली टीम के लिये भी चुन लिया गया। हालांकि इस शृंखला के पांचो टेस्ट अनिर्णीत समाप्त हुए लेकिन पंकज राय कुल 272 रन बनाकर सर्वोच्च रहे।

न्यूजीलैंड के विरुद्ध पंकज राय ने 1955-56 की शृंखला के तीन टेस्ट खेले। चौथे टेस्ट की दूसरी पारी मे उन्होने 100 रन बनाकर फार्म में लौटने का प्रमाण दिया।

अंतिम (मद्रास) टेस्ट क्रिकेट इतिहास का एक स्वर्णिम पन्ना बन गया है। वीनू माकड के साथ पहले विकेट के लिये पंकज राय ने 413 रन की विशाल साझेदारी खेली। प्रथम विकेट के लिये यह कीर्तिमान आज भी अटूट बना हुआ है।

आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 1956 में और वेस्ट इंडीज के विरुद्ध 1958-59 में पंकज राय को सभी टेस्टों में मौका मिला। इस बार उनका प्रदर्शन बहुत अच्छा तो नहीं रहा लेकिन फिर भी वह सफल रहे।

1959 में इंग्लैंड जाने वाली टीम में पंकज राय उप कप्तान बनाये गये। कप्तान थे दत्तू गायकवाड़। लेकिन दूसरे टेस्ट में उनके अस्वस्थ होने के कारण कप्तानी का दायित्व राय ने संभाला। उनकी कप्तानी का यही एकमात्र अवसर था।

1959-60 में आस्ट्रेलिया गयी भारतीय टीम में पंकज राय प्रमुख सदस्य थे। उन्होंने 5 टेस्टों में कुल 263 रन बनाये हालांकि यह शृंखला भी भारत हार गया लेकिन सबसे ज्यादा रन बनाने वालों में पंकज राय दूसरे स्थान पर रहे।

राय अपने क्रिकेट जीवन का अंतिम टेस्ट पाकिस्तान के विरुद्ध खेले। इस टेस्ट में उन्होंने 23 रन बनाये लेकिन प्रथम श्रेणी क्रिकेट में उन्होंने उड़ीसा के विरुद्ध रणजी ट्रॉफी में सर्वाधिक स्कोर 202 रन बनाकर प्रथम श्रेणी क्रिकेट को अलविदा कह दिया।

रणजी ट्रॉफी में पंकज राय ने 66.01 की औसत से 5149 रन बनाये। जिनमें 21 शतक भी शामिल हैं। रणजी प्रतियोगिताओं में उनसे अधिक शतक विजय हजारे और अशोक माकंड ने ही बनाये। राय ने रणजी ट्रॉफी में दो बार दोनों पारियों में शतक तथा दो बार एक सीजन में 500 से अधिक रन ठोंके।

पंकज राय ने टेस्ट क्रिकेट मे एकमात्र विकेट भी प्राप्त की। वह सीमा रेखा पर काफी अच्छी फील्डिंग किया करते थे। उन्होंने अपने टेस्ट जीवन में कुल 16 कैच भी पकड़े। पिता की प्रेरणा पाकर उनके पुत्र प्रणव राय भी भारत की ओर से प्रारंभिक बल्लेबाज के रूप में खेल चुके हैं जबकि उनके भतीजे अंबर राय ने भी भारत का प्रतिनिधित्व किया है। पंकज राय ने एक दशक तक भारतीय बल्लेबाजी की कमान संभाले रखी। अब वह चयन समिति के सदस्य हैं।

टेस्ट प्रदर्शन :

बल्लेबाजी : 43 टेस्ट मैचों की 49 पारियों में 32.56 की औसत से 2442 रन। उच्चतम स्कोर 173 रन। 5 शतक और 9 अर्द्धशतक। गेंदबाजी : 104 गेंदों पर 66 रन देकर एक विकट। सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण 6—1।

पाली उमरीगर

पाली उमरीगर—यह नाम याद आते ही एक आकर्षक व्यक्ति का चेहरा हमारे दिमाग में घूम जाता है। छह फुट लंबे, अपनी बात के धनी और सिद्धांतवादी उमरीगर का नाम एक बेहतरीन आलराउंडर के रूप मे भारतीय क्रिकेट के इतिहास में हमेशा-हमेशा के लिये सुरक्षित रहेगा।

पाली उमरीगर का जन्म 28 मार्च, 1926 को बंबई में हुआ। शिक्षा शोलापुर में हुई और वहीं मैटिंग पर ही उन्होंने क्रिकेट खेलना आरंभ किया। पाली उमरीगर का पूरा नाम है—पालन जी रतन जी उमीरगर लेकिन लोग उन्हें प्यार से 'पाली' ही कहते हैं।

स्कूल के दिनों में पाली को दौड़, हाकी, फुटबाल और वालीबाल खेलने का भी शौक था किंतु जब वह प्रसिद्ध विकेट कीपर बहादुर कपाड़िया के संसर्ग में आये तो उन्होंने पाली को केवल एक क्रिकेटर के रूप में संवारा।

प्रथम श्रेणी क्रिकेट में उमरीगर 1944 में उतर आये थे। 1946-47 में उन्हें बंबई की रणजी टीम में शामिल कर लिया गया था। शुरू-शुरू में पाली बहुत तेज और आक्रामक क्रिकेट खेला करते थे लेकिन बाद में उनमें संयम और धैर्य का पुट भी आ गया।

1948-49 में जब वेस्ट इंडीज की टीम गोडार्ड के नेतृत्व में भारत आयी तो पाली उमरीगर ने संयुक्त विश्वविद्यालय की ओर से खेलते हुए शानदार शतक (115 आ० न०) ठोंका, यही वह पारी थी जिसने बंबई में श्रृंखला के दूसरे टेस्ट में पाली का टेस्ट क्रिकेट में पदार्पण करवा दिया। पहले टेस्ट में उन्हें केवल एक पारी खेलने को मिली जिसमें उन्होंने 30 रन बनाये किंतु गेंदबाजी में 15 ओवर में उन्होंने 51 रन खर्च किये। फलस्वरूप अगले टेस्टों में उनका नाम टीम से गायब था।

1949 और 1950 में राष्ट्रमंडलीय टीमों के विरुद्ध पाली के उत्कृष्ट प्रदर्शन के कारण 1951-52 में भारत भ्रमण पर आयी इंग्लैंड टीम के खिलाफ उन्हें सभी टेस्टों में मौका मिला। श्रृंखला के अंतिम मद्रास टेस्ट में पाली ने 130 (आ०न०) रन बनाये। उनके इसी प्रदर्शन की बदौलत भारत पहली टेस्ट विजय अर्जित कर सका।

1952 में इंग्लैंड के खिलाफ यह सर्वाधिक असफल खिलाड़ी सिद्ध हुए। हालांकि टेस्ट मैचों में उन्होंने 6.14 की औसत से 43 रन बनाये लेकिन अन्य मैचों में उन्होंने सबसे ज्यादा 1688 रन अर्जित किये।

पाली उमरीगर का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन 1955-56 में न्यूजीलैंड के विरुद्ध रहा। इस श्रृंखला के पांच टेस्टों में उन्होंने 70.20 की औसत से कुल 351 रन बनाये जिनमें हैदराबाद टेस्ट में बनाये गये 223 रन भी शामिल हैं। रनों के योग के दृष्टिकोण से उनकी बेहतरीन श्रृंखला 1953 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ रही। इस श्रृंखला में उन्होंने दो शतकों (130 और 117) और 4 अर्द्धशतकों सहित कुल 560 रन जोड़े। पाकिस्तान के विरुद्ध 1960-61 में उन्होंने एक ही श्रृंखला में तीन शतक जड़ दिये थे।

गेंदबाजी में पाली कभी आतंक के रूप में नहीं छाये लेकिन फिर भी वह

आक्रमण की शुरुआत करते समय अपनी मध्यम तेज गेंदबाजी और बाद में आफ स्पिन गेंदबाजी से बल्लेबाजों के लिए काफी परेशानी खड़ी करते रहे थे। पाली ने अपने टेस्ट जीवन मे 42.08 की औसत से कुल 35 विकेट हासिल कीं। 14 पाकिस्तान के विरुद्ध, 11 वेस्ट इंडीज के विरुद्ध, 8 आस्ट्रेलिया के विरुद्ध और दो इंग्लैंड के विरुद्ध— न्यूजीलैंड के विरुद्ध पाली को कोई विकेट नही मिली।

पाली उमरीगर का टेस्ट क्रिकेट में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन पाकिस्तान के विरुद्ध बहावलपुर टेस्ट में रहा। इस टेस्ट में उनका गेंदबाजी विश्लेषण बड़ा ही आकर्षक था—58 ओवर, 25 मेडन, 74 रन, 6 विकेट। 1948-49 मे वेस्ट इंडीज के विरुद्ध पोर्ट आफ स्पेन टेस्ट में भी उन्होंने 107 रन देकर पांच विकेट उखाड़े थे।

पाली उमरीगर ने कुल 14 श्रृंखलाओ में भारत का प्रतिनिधित्व किया। भारत में वह वेस्ट इंडीज के विरुद्ध 1948-49 और 1958-59 में, इंग्लैंड के विरुद्ध 1951-52 और 1961-62 में, पाकिस्तान के विरुद्ध 1955-56 में और आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 1956-57 और 1959-60 में खेले जबकि विदेशी दौरे में वह 1953 और 1959 में इंग्लैंड, 1952-53 और 1961-62 में वेस्ट इंडीज, और 1954-55 में पाकिस्तान गये।

उमरीगर ने आठ टेस्टों में भारत का नेतृत्व भी किया। वास्तव में कप्तानी का पद उनके साथ एक विवाद के रूप में जुड़ा रहा। 1958-59 में चयनकर्ताओं से किसी बात पर असहमत रहने के कारण उन्होंने कप्तानी छोड दी थी। इसके बाद उन्हे कभी कप्तान नही बनाया गया। 1963-64 मे जब एम० सी० सी० की टीम के विरुद्ध भी उनकी अनदेखी इसी प्रकार जारी रही और जूनियर पटौदी को कप्तान बनाया गया तो उन्होंने टेस्ट क्रिकेट से सन्यास ले लिया, हालांकि खेल समीक्षको का विचार था कि वह तब भी पूर्णतया फिट और सक्षम थे।

उन्होने रणजी ट्रॉफी में बंबई और गुजरात का प्रतिनिधित्व किया। 1958-59 से 1962-63 तक वह बंबई के कप्तान ही नही रहे बल्कि इन पांचो वर्षों में बबई को रणजी चैंपियन भी बनाया।

पाली उमरीगर ने 59 टेस्टों से 3631 रन 44.22 की औसत से बनाये जिनमें 12 शतक शामिल है। बाद मे सबसे ज्यादा टेस्ट मैचों में खेलने का रिकार्ड बिशनसिंह बेदी ने तथा रनों के योग और शतकों का रिकार्ड सुनील गावसकर ने भग किया, पाली उमरीगर का क्षेत्ररक्षण भी उच्च स्तरीय माना जाता था। मैदान के किसी भी कोने मे उसकी 'थ्रो' सीधी विकेट कीपर के हाथ में पहुचती थी। उन्होंने टेस्ट मैचों में इसी क्षेत्ररक्षण के बल पर 33 विकेट भी बटोरे।

प्रथम श्रेणी मैचों में पाली ने 52.53 की औसत से 16,023 रन बनाये। जिनमें 49 शतको का योग शामिल है। उन्होने कुल 249 विकेट भी उखाड़े।

क्रिकेट को अलविदा करने के बाद भी पाली उमरीगर क्रिकेट के साथ बराबर

जुड़े रहे—कभी प्रशिक्षक के रूप में, कभी मैनेजर के रूप में और कभी चयनकर्ता के रूप में। क्रिकेट के प्रति उनकी सेवाएं अमूल्य हैं जिनकी कोई तुलना नहीं की जा सकती।

पावो नुरमी

लम्बी दूरी की दौड़ों में तकनीक, प्रतिभा, क्षमता और दमखम के साथ-साथ साहस की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है। इन दौड़ों में फिनलैंड के धावकों की खूब धाक रही है। फिनलैंड के इन धावकों में पावो नुरमी (जन्म 13 जून, 1897) को कभी नहीं भुलाया जा सकता। लंबी दूरी की दौड़ों में वह सर्वाधिक सफल और सक्षम धावक माना जाता था।

इधर 1896 में ओलम्पिक खेलों की दुदुंभि बजी और अगले ही वर्ष पावो नुरमी का जन्म हुआ। जब वह केवल नौ वर्ष के थे तो उन्होंने दौड़-कूद में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था। 15 वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते राष्ट्रीय मंच पर उभर आये। 1912 में एंटवर्प ओलम्पिक खेलों का आयोजन हुआ तो उसमें फिनलैंड के कोलेहमनेन ने पांच हजार व दस हजार मीटर में स्वर्ण जीतकर सनसनी फैला दी। फिनलैंड के युवा धावकों पर कोलेहमनेन की सफलता का बहुत प्रभाव पड़ा। इन युवा धावकों में नुरमी का नाम भी प्रमुख है, तभी से उन्होंने ओलम्पिक खेलों में पदक जीतने का सपना संजो लिया। इसके लिए आवश्यक था लगन, मेहनत तथा संकल्प। नुरमी में सभी विशेषतायें कूट-कूटकर भरी थी।

नुरमी ने सबसे पहले 1920 में ओलम्पिक खेलों में भाग लिया। 5000 मीटर दौड़ में उनका फ्रांस के जोसेफ गुलिमट के साथ कड़ा संघर्ष हुआ। दौड़ के अंतिम चरण में गुलिमट ने जोर लगाया और सफलता प्राप्त कर ली। नुरमी को रजत पर ही संतोष करना पड़ा।

10 हजार मीटर में भी नुरमी का मुकाबला गुलिमट के ही साथ था। नुरमी ने गुलिमट की तकनीक का इस्तेमाल उसी के खिलाफ किया। प्रारंभ में नुरमी गुलिमट से पीछे रहा लेकिन अंतिम समय में उसने एकदम आगे निकलकर स्वर्ण पदक पर कब्जा जमा लिया। उसके बाद नुरमी ने आठ किलोमीटर क्रास कंट्री दौड़ और टीम चैंपियनशिप में भी पहला स्थान जीतकर स्वर्ण पदक बटोरे।

1924 के पेरिस ओलम्पिक खेलों का पावो नुरमी को चैंपियन कहा जाता है। दस हजार मीटर दौड़ में अवश्य नुरमी हार गया लेकिन 3000 मीटर टीम दौड़ जो अब नहीं होती, 1500 मीटर तथा 5000 मीटर में स्वर्ण पदक जीतकर इस असफलता का विषाद धो दिया। दरअसल पेरिस ओलम्पिक खेलों में जबरदस्त गर्मी पड़ रही थी जिस दिन 10 हजार मीटर दौड़ हुई उस दिन तापमान 45° से० था।

इतने महान एथलीट के खेल जीवन का अंत भी बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण था। जब

1932 के लास एंजल्स खेलों में उतरने की वह तैयारी कर रहे थे तो उन्हें बताया गया कि उन्हें व्यावसायिक खिलाड़ी मान लिया गया है। नुरमी ने इस फैसले को अनुचित बताया लेकिन विडंबना देखिये कि इतने कीर्तिमान तथा पदकों का अंबार जुटाने वाले नुरमी को दर्शक दीर्घा में बैठकर ही मन मसोसना पड़ा।

1952 में हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों में मशाल लेकर स्टेडियम में प्रवेश करने का गौरव उन्हें प्रदान किया गया। आज भी स्टेडियम के बाहर उनकी एक कांस्य की मूर्ति स्थापित है जो उनकी महानता तथा सर्वश्रेष्ठता का सबूत पेश करती है। इस महान धावक की 13 अक्टूबर, 1973 में मृत्यु हो गई।

पी० टी० ऊषा

खेल जगत में एक नाम ऐसा भी है जिसे अनेक इनाम और उपनाम प्राप्त हैं। भारतीय ट्रैक क्वीन, 'एशिया की स्प्रिंट', 'उड़नपरी', 'गोल्डन गर्ल' किसी भी उपनाम का विशेषण लगा सकते हैं। सियोल में हुए 10वें एशियाई खेलों में जितनी सफलता इसने प्राप्त की है या फिर प्रतिष्ठा के जिस शिखर पर वह आज पहुंची है उस पर प्रत्येक भारतवासी गर्व कर सकता है। एक साथ चार स्वर्ण-पदक और एक रजत-पदक जीतना अपने आप में गौरवपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है। दूसरे शब्दों में आप इसे यों भी कह सकते हैं कि सियोल में सारी सफलता पी० टी० ऊषा तक ही सीमित रही। 200 मी०, 400 मी०, 400 मी० बाधा और 1600 4500 मीटर रिले में स्वर्ण-पदक जीतने वाली यह खिलाड़ी 100 मीटर में केवल रजत-पदक ही जीत पायी और 'एशिया की सबसे तेज धावक' का विशेषण प्राप्त करने से वंचित रह गयी। यह गौरव मिला फिलीपीनी सुन्दरी लीडिया डिवेगा को।

किसी ने ठीक ही कहा है—"बड़े काम के लिए कोई उम्र नहीं होती।" जन्म-तिथि 20-5-1964, केरल के प्योली गांव में जन्म और पोलपट्टम के समुद्री किनारे पर प्रतिदिन मीलों दौड़ती रहती। 1978 में किलवान में हुई अन्तर्राज्य एथलेटिक प्रतियोगिता में 14 साल की इस लड़की ने 100 मीटर की दौड़ को 13.1 सेकिंड में पूरा किया, बस उसके बाद तो प्रदर्शन में निरन्तर सुधार और निखार ही आता गया। एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ने लगी। इसी बीच कन्नूर स्पोर्ट्स स्कूल में वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षण प्राप्त हुआ और फिर ओ० एम० नम्बियार जैसे प्रशिक्षक से प्रशिक्षण प्राप्त करने का सुख। अक्सर कहा जाता है कि कुछ रत्न ऐसे होते हैं जिन्हें परखने के लिए जौहरी की जरूरत नहीं होती।

सियोल ओलम्पिक (1988) में उनका प्रदर्शन बहुत निराशाजनक रहा। पांव की चोट के कारण वह पूरी तरह स्वस्थ नहीं थीं। उनको इस बात के लिए

आलोचना की गयी कि उन्हें भाग ही नहीं लेना चाहिए था।

पेंटाथेलॉन

ग्रीक शब्द 'पेंटा' का अर्थ है पांच तथा 'एथलॉन' का अर्थ है स्पर्धा। पेंटाथेलॉन यानी पांच स्पर्धाएं। इसलिए इस खेल में पांच विभिन्न प्रकार की स्पर्धाओं का समावेश है। पुराने समय में जब ग्रीस में ओलम्पिक पेंटाथेलॉन शामिल किए गए, तो उनका स्वरूप कुछ भिन्न था। उस समय भी आज के आधुनिक पेंटाथेलॉन की तरह ही पांच स्पर्धाएं होती थी, लेकिन वे अलग थी। उस समय की प्रतियोगिता निम्न थी: (1) मुख्य स्टेडियम की दौड़ (लगभग 210 गज) (2) लंबी कूद (3) चक्का फेंक (4) भाला फेंक (5) कुश्ती।

इन पांचों प्रतियोगिताओं में से अन्तिम प्रतियोगिता यानी कुश्ती केवल उन दो प्रतियोगियों के बीच होती थी, जिन्होंने अन्य चार प्रतियोगिताओं में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया हो। इस प्रकार प्रथम स्थान अथवा स्वर्ण पदक का निर्धारण कुश्ती की अन्तिम प्रतियोगिता के अनुसार होता था। यह प्रतियोगिता पुराने समय में केवल पुरुषों तक ही सीमित थी।

धीरे-धीरे महसूस किया जाने लगा कि ये पांचों स्पर्धाएं, जो पेंटाथेलॉन में सम्मिलित हैं, उद्देश्यों के दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हो पा रही हैं, क्योंकि अगर कोई खिलाड़ी अच्छा चक्का और भाला फेंक सकता है और बाकी स्पर्धाओं में साधारण है, तो उसके जीतने की अधिक संभावना रहती है। इस कारण को मद्देनजर रख, पेंटाथेलॉन में सम्मिलित स्पर्धाओं का नवीनीकरण किया गया और इसी नवीनीकरण के साथ सर्वप्रथम 1912 के ओलम्पिक खेलों में सम्मिलित किया गया। इस नवीनीकरण के बाद, पेंटाथेलॉन प्रतियोगिताओं में स्टेडियम दौड़ (210 गज) के स्थान पर 200 मीटर की दौड़ और कुश्ती के स्थान पर 1,500 मीटर की दौड़ शामिल की गई। इन दोनों स्पर्धाओं के साथ पेंटाथेलॉन 1924 तक ओलम्पिक में इसी प्रकार होती रही।

पेंटाथेलान का आधुनिक रूप

इसी दौरान अन्तर्राष्ट्रीय पेंटाथेलॉन संघ का गठन हुआ, जिसने पेंटाथेलॉन में अभी तक सम्मिलित स्पर्धाओं का गहनता से अध्ययन किया गया। संघ ने इसमें परिवर्तन के सुझाव दिए, जिसके द्वारा पेंटाथेलॉन का आधुनिक रूप सामने आया। इस आधुनिक पेंटाथेलॉन का नाम है, मिलिट्री पेंटाथेलॉन और इसमें सम्मिलित की गई स्पर्धाएं हैं: (1) घुड़सवारी प्रतियोगी के लिए, अपरिचित घोड़ा, चयनकर्ता घोड़ों के समूह में से चुन कर देते हैं इस घोड़े से प्रतियोगी को [illegible] 5000 मीटर की बाधा घुड़सवारी करनी होती है। (2) तलवारबाजी (इट [illegible]

(3) पिस्तौल से निशानेबाजी। (4) 300 मीटर की तैराकी प्रतियोगिता (5) 4000 मीटर की अज्ञात क्रॉस कंट्री दौड़ प्रतियोगिता।

आधुनिक पेंटाथेलॉन के नियमानुसार, एक दिन में केवल एक ही प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार पेंटाथेलॉन को पूरा होने में पाच दिनों का समय लगता है।

इन स्पर्धाओं से आप समझ गए होंगे कि इसे मिलिट्री पेंटाथेलॉन क्यों कहा जाता है। इसमें सम्मिलित सभी स्पर्धाओं की विशेषता यह है कि ये युद्ध-मैदानों जैसे गुणों से युक्त हैं। आज ऐतिहासिक युद्धों को प्रतिपादित करने का काम सेना ने ले लिया है और इसीलिए इसको सेना या मिलिट्री पेंटाथेलॉन कहा गया।

इस प्रतियोगिता की पांचों स्पर्धाओं में ऐतिहासिक योद्धाओं के गुणों का समावेश है, इसलिए यह आवश्यक है कि इस प्रतियोगिता के प्रतियोगी को एक अच्छा निशानेबाज, धावक, तैराक, घुड़सवार होने के साथ-ही-साथ जीवट वाला भी होना चाहिए। इसके लिए सभी क्षेत्रों में अभ्यास और लगन की आवश्यकता होती है, क्योंकि प्रतियोगी को सभी स्पर्धाओं में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनी होती है, तभी वह स्वर्ण, रजत या कांस्य पदक का हकदार हो सकता है।

पेंटाथेलॉन में भाग लेने वाले प्रत्येक देश की टीम के सदस्यों की संख्या तीन होती है, कौन से देश इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं, इसका निर्णय इन देशों की टीमों के प्रदर्शन के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय पेंटाथेलॉन संघ करता है। ओलम्पिक खेलों में टीम का पुरस्कार तीन प्रतियोगिताओं (विश्व चैंपियनशिप, ओलम्पिक प्रतियोगिता तथा अन्तर्राष्ट्रीय अव्यावसायिक एथलेटिक फेडरेशन स्पर्धा) के परिणामों को देखकर दिया जाता है। विश्व चैंपियनशिप तथा अव्यावसायिक एथलेटिक फेडरेशन की प्रतियोगिताएं, ओलम्पिक वर्ष को छोड़कर प्रत्येक वर्ष होती हैं।

ओलम्पिक में टीम प्रतियोगिता का समावेश 1952 में हुआ था। इसके पूर्व यानी 1948 तक पेंटाथेलॉन की केवल व्यक्तिगत प्रतियोगिताएं ही होती थी।

ओलम्पिक महिला संघ इस प्रतियोगिता को महिलाओं के लिए प्रारंभ कराने के लिए आरंभ से ही प्रयत्नशील था, परंतु तकनीकी, वैधानिक तथा अन्य कई कारणों से इसे ओलम्पिक में सम्मिलित नहीं किया जा सका था। फिर भी संघ (महिला) ने हिम्मत नही हारी और अन्त में उनके प्रयत्नों को 1964 में सफलता मिली, जब पेंटाथेलॉन को महिलाओं के लिए प्रारम्भ किया गया। महिलाओं की शारीरिक क्षमताओं को देखते हुए उनके लिए महिला पेंटाथेलॉन प्रतियोगिता में ऐसी स्पर्धाएं सम्मिलित की गई, जो पुरुषों की स्पर्धाओं से सर्वथा भिन्न है। ये प्रतियोगिताएं निम्नलिखित है : (1) गोला फेंकना (2) ऊंची कूद (3) 200 मीटर की दौड़ (4) 80 मीटर की बाधा दौड़ (5) लम्बी कूद।

पेंटायेलॉन में सम्मिलित पांच स्पर्धाओं में से चार (बाधा घुड़सवारी, निशानेबाजी, दौड़ तथा तैराकी) भारत में भी काफी प्रचलित हैं तथा इनके बारे मे खेल प्रेमियों को भी काफी जानकारी है, परंतु पांचवी स्पर्धा-तलवार के बारे में हमें अपेक्षाकृत कम जानकारी है। तलवारबाजी, ओलम्पिक खेलों में पेंटायेलॉन के अतिरिक्त स्वयं के अस्तित्व के साथ संपूर्ण खेल के रूप मे सम्मिलित है। आइए, आपको इसके बारे में थोड़ी-सी जानकारी दे दें। वास्तव में खेलों मे तलवारबाजी का समावेश प्राचीनतम कला 'सुरक्षा तथा हमला' पर आधारित है। इसका प्रतिपादन तीन विभिन्न प्रकार की तलवारों द्वारा किया जाता है। ये तीनो तलवारें हैं: (1) पर्ण तलवार (2) द्वंद्व युद्ध तलवार, और (3) तेग तलवार। तीनों प्रकार की तलवारों का अपना इतिहास, अपनी विशेषताएं तथा अपने नियम है, परंतु आधुनिक तलवारबाजी का अन्तिम उद्देश्य है—अपने प्रतिद्वंदी को तलवार द्वारा स्पर्श करना और स्वय को विरोधी की तलवार के स्पर्श से बचाना।

ओलम्पिक खेलो में यह प्रतियोगिता 1896 से सम्मिलित होती रही है। उत्तम तलवारबाजी के लिए आवश्यक है, सुन्दर फुटवर्क तथा अच्छी हस्त तकनीकी का संपूर्ण सामंजस्य। इन दोनों गुणों और निपुणता के लिए आवश्यक है नियमित अभ्यास। किसी अच्छे-निपुण तलवारबाज के शागिर्द के रूप में तलवारबाजी की प्रतियोगिता में बेहतर खिलाड़ी वह माना जाता है, जो अधिक बार अपने प्रतिद्वंदी को तलवार द्वारा स्पर्श करता है। तलवारबाजी की अवधि का निर्धारण पाच अधिकारियों द्वारा किया जाता है। ओलम्पिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय तलवारबाजी प्रतियोगिताओं के लिए विशेष प्रकार के लिनोलियम अथवा कॉर्क की पट्टियों का निर्माण किया जाता है, जिसके ऊपर तलवारबाजी की जाती है।

यदि आधुनिक पेंटायेलॉन पर हम एक नजर डालें, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें सम्मिलित होने के लिए प्रतियोगियों का 'संपूर्ण' खिलाड़ी होना आवश्यक है। पेंटायेलॉन सिर्फ वही प्रतियोगी जीत सकता है, जो खेल-कूद की सभी विधाओं में औसत से अच्छा हो और जिसमें भरपूर दम-खम हो। विशेषज्ञों ने ठीक ही कहा है कि पेंटायेलॉन की प्रतियोगिता जीतना कोई बच्चों का खेल नही है।

पेले

यों उनका पूरा नाम एडसन अरांतीस नासिमेंटो है लेकिन दुनिया उन्हें पेले के नाम से ही जानती है। फुटबाल के जादूगर का खेल देखने के लिए लोगों का लालायित हो उठना स्वाभाविक है। उनकी लोकप्रियता का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि एक बार उनका खेल देखने के लिए बिआफ्रा युद्ध कुछ घंटों के लिए रोक दिया गया था। 1960 मे उन्हें ब्राजील की राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित किया गया। 39 वर्षीय पेले (कद 5 फुट 8 इंच) फुटबाल खेलते-खेलते

करोड़पति हो गए हैं। यों उन्होंने 2 अक्तूबर, 1974 को फुटबाल से संन्यास ले लिया था, लेकिन उसके बाद उन्हें अमेरिका के एक क्लब 'कासमस क्लब' से एक साल खेलने के लिए 50 लाख डालर का प्रलोभन मिला जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और अमेरिका में फुटबाल के खेल को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से वहां चले गए। उनकी देखादेखी और भी कई चोटी के खिलाड़ी वहां पहुंच गए। पेले ने चार विश्व कप प्रतियोगिताओं में अपने देश का प्रतिनिधित्व किया। 1958 में स्वीडन में हुई विश्व कप प्रतियोगिता में जब उन्हें ब्राजील की टीम में पहली बार शामिल किया गया तब उनकी उम्र केवल 17 साल की थी।

पेले का जन्म 23 अक्तूबर, 1940 को सानतोस शहर के निकट एक छोटे-से गांव में हुआ था। पेले ने, जो कि 10 नं० की जर्सी पहनकर खेलते हैं, ब्राजील को तीन बार 1958, 62 और 1970 में विश्व कप जिताने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पेले अब तक 1277 गोल कर चुके हैं।

पेले के पिता डोनडिनहो स्वयं फुटबाल के खिलाड़ी थे। उनकी देखादेखी पेले ने भी खेलना शुरू कर दिया। बचपन में वह काफी गरीब थे और मूंगफली बेच-बेचकर वह खेलने के बूट खरीदा करते थे। जब वह केवल 10 साल के ही थे तो उन्होंने नंगे पाव गली के दूसरे लड़कों के साथ फुटबाल खेलना शुरू कर दिया। वह आज भी अक्सर कहते है कि शुरू-शुरू में जब हमारे पास फुटबाल नहीं होता था तो हम कुछ ऊन इकट्ठी करके उसके ऊपर कुछ कपड़े लपेटकर एक फुटबाल बना लिया करते थे। 11 साल की उम्र में उन्होंने पहली बार फुटबाल के बूट खरीदे और वाल्देमर द ब्रिटो की सहायता से बाउरू क्लब में फुटबाल सीखने की नीयत से पहुंचे। पेले के पिता भी फुटबाल के पेशेवर खिलाड़ी थे और मिनास गेराइस की अटलेटिको टीम की ओर से खेला करते थे। पेले 4 साल तक बाउरू क्लब में छोटे खिलाड़ियों के साथ अभ्यास करते रहे। 15 साल की उम्र में वह सानतोस क्लब में चले गए और इस प्रकार उन्हें स्कूल की पढ़ाई-लिखाई से मुक्ति मिल गई।

वह कहते हैं कि जब मैं केवल 16 वर्ष का ही था तो मुझे ब्राजील की राष्ट्रीय टीम मे शामिल कर लिया गया। उस समय मुझे इस बात का एहसास हुआ कि मैं सचमुच अच्छा खिलाड़ी हूं, जो बिना किसी सिफारिश या राजनीतिक दबाव के राष्ट्रीय टीम मे चुना गया।

1966 मे पेले का विवाह हुआ और उनकी पत्नी का नाम रोजमेरी डोस रीस कोलबी है। उनका कहना है कि एक बार आप प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि प्राप्त कर लें फिर आपकी काली-गोरी चमड़ी को कोई नही देखता। मुझे ही देखिए, दुनिया भर के लोग (काले, गोरे) मेरी तारीफ करते नही थकते!

पैट कैश

पैट कैश का जन्म आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न शहर के एक भरे-पूरे परिवार में 1965 में हुआ। उनके पिता मेलबोर्न में ही बैरिस्टर हैं। कैश की शिक्षा आस्ट्रेलिया के एक ऐसे स्कूल में हुई जिस स्कूल में केवल युवा प्रतिभाशाली एथलीटों को ही दाखिला मिलता है। इस स्कूल में पढ़ने के फलस्वरूप कैश शुरू से ही काफी तेज खिलाड़ी थे। स्कूल में अध्ययन के दौरान ही पैट कैश ने टेनिस के खेल को अपना लक्ष्य चुना, और आज उसी की बदौलत विश्व के श्रेष्ठ खिलाड़ियों में वे अपना स्थान बनाने में सफल रहे।

कैश की सफलता की कहानी शुरू होती है सन् 1982 से, जब उन्होंने विंबलडन जूनियर का खिताब जीता। इस विजय अभियान के बाद कैश निरन्तर आगे बढ़ते रहे। कैश की मदद से ही 1983 में आस्ट्रेलिया ने डेविस कप के मुकाबले में स्वीडन को हराया। कैश 1984 में विंबलडन प्रतियोगिता के सेमीफाइनल में भी पहुंचने में सफल हुए लेकिन उससे आगे नहीं बढ़ सके। उसी वर्ष यू० एस० ओपन प्रतियोगिता के सेमीफाइनल में भी पहुंचने कैश को सफलता मिली, लेकिन एक मैच पाइंट गंवाने की वजह से जीत लेंडल की हुई। वर्ष 1985 कैश के लिए काफी दुर्भाग्यशाली साबित हुआ। इसी वर्ष उनको कमर के दर्द की शिकायत हुई। यह दर्द धीरे-धीरे बढ़ता गया। बाद में उन्हें आप्रेशन करवाना पड़ा। इस बीमारी की वजह से कैश को टेनिस-जगत से काफी लंबे अरसे के लिए बाहर रहना पड़ा। लोग लगभग यह मान चुके थे कि शायद कैश अब दुबारा टेनिस खेलने में उतने सफल नहीं हो पाएंगे। लेकिन कैश पूरी तरह से स्वस्थ होकर एक बार फिर मैदान में उतरे। वर्ष 1986 के डेविस कप के मुकाबले में कैश ने पहले अमरीका के टिम मेयोट् और ब्रेड गिलबर्ट को हराया और फिर फाइनल में स्वीडन के स्टीफन एडबर्ग को पराजित किया।

अब तक कैश और लेंडल की छह बार आपस में भिड़न्त हो चुकी है। इन छह मुकाबलों में कैश दो बार जीते हैं और लेंडल चार बार। लेंडल को पहली बार कैश ने जनवरी 1987 के आस्ट्रेलियन ओपन के सेमीफाइनल में हराया था तथा दूसरी बार वर्ष 1987 में विंबलडन के फाइनल में पराजित किया।

फाइनल मुकाबले में कैश की अपेक्षा लेंडल अधिक थके हुए से लग रहे थे। जबकि कैश, जिनका इस प्रतियोगिता के शुरू होने से पहले कमर का दुबारा आप्रेशन हुआ था, काफी चुस्त नजर आ रहे थे। आप्रेशन को देखते हुए यह लग रहा था कि शायद इस बार कैश प्रतियोगिता में हिस्सा नहीं ले पाएंगे। लेकिन कैश ने सारी संभावनाओं को गलत साबित करते हुए प्रतियोगिता में हिस्सा लिया और चैम्पियन बनने का गौरव प्राप्त किया।

पोलो

मूल रूप से पोलो स्टिक और गेंद का खेल है जो घोड़े पर बैठकर खेला जाता है। घुड़सवारी के खेलों में यह सबसे पुराना खेल है। कई विद्वान इसे फारस की देन कहते हैं और ईसा से 2,000 वर्ष पूर्व इसकी शुरुआत मानते हैं।

आरंभ मे पोलो को घोडों की ट्रेनिंग के रूप में माना जाता था। यह सैनिक शिक्षा का एक प्रमुख अंग था। बाद में यह राष्ट्रीय खेल के रूप में प्रचलित हो गया। फारसी इसे अधिकाशतः खेलते थे। फारस से यह खेल अरब पहुंचा और वहां से होता हुआ तिब्बत, चीन व जापान पहुंचा। इंग्लिश शब्द पोलो का अर्थ 'बॉल' है। चीन में 910 ई० मे इस खेल ने खूनी छवि धारण कर ली थी। उस समय के राजा टेआएट्‌ध्यू ने अपने एक संबंधी की पोलो खेलते समय मृत्यु हो जाने पर यह आज्ञा दे दी थी कि बचे हुए अन्य खिलाडियों को भी मौत के घाट उतार दिया जाए।

भारत में पोलो का आगमन गुलाम वंशीय राजाओं द्वारा तेरहवी शताब्दी में हुआ। छह शताब्दी बाद पश्चिमी सभ्यता के एक अधिकारी ने इस खेल को पहली बार खेला। महिलाएं भी पोलो खेलती थी। इसका प्रमाण काव्य चित्रण से मिलता है। छठी शताब्दी में राजा खुसरो परवेज व उसके दरबारियों से महिलाओं के खेलने के प्रमाण मौजूद हैं।

फारस में इस खेल को 'चौगान' के नाम से पुकारा जाता है जिसका अर्थ है 'स्टिक'। अबुल फजल ने अपनी किताब आईने अकबरी में लिखा है कि यह अकबर ही था जिसने पहली बार केवल महिलाओं के लिए रात्रि पोलो की शुरु-यात की। कहते हैं कुतबुद्दीन ऐबक जो कि गुलाम वंश के संस्थापक थे, इसी खेल को खेलते हुए परलोक सिधारे थे। बाबर ने भी इसके बारे मे बहुत कुछ लिखा है। तुलसीदास ने गीतावली में राम और लक्ष्मण को भरत व शत्रुघ्न के विरुद्ध खेलने का विवरण दिया है। कबीर ने भी यदा-कदा इस पोलो की चर्चा की है।

जयपुर मे गलता क्षेत्र मे एक दीवार पर पोलो खेलती हुई महिलाओ के चित्र अंकित है। अकबर के समय में महिलाओं द्वारा हाथी पर बैठकर चौगान खेलने के चित्र भी कई जगह अंकित हैं। उदयपुर में एकलिंग मंदिर में चौगान खेलते हुए छोटे-छोटे असंख्य चित्र हैं। आमेर मे भी यह खेल बहुत प्रसिद्ध था।

यद्यपि पोलो खेल का विवरण सर एंथनी शेरले की रचना 'ट्रैवल्स टू पर-शिया' 1613 के समय मिलता है, परंतु प्रथम यूरोपियन खेलने वाले आसाम मे कुछ ब्रिटिश चाय बागान वाले थे जिन्होंने यह खेल मणीपुर मे सीखा और सिल्चर में प्रथम यूरोपियन पोलो क्लब 1859 मे बना। 1860 में कलकत्ता पोलो क्लब की स्थापना हुई।

जब अमेरिका मे पोलो खेल शुरू हुआ तब टीम मे आठ खिलाड़ी होते थे।

बाद में यह संख्या घटकर पांच हो गई और फिर 1881 में अमेरिका व 1881 मे यह संख्या चार हो गई जो कि आज तक चली आ रही है। पोलो 300 गज लंबे व 160 गज चौड़े घास के मैदान पर खेला जाता है। आठ-आठ गज की दूरी पर गोल पोस्ट लगे होते हैं। स्कोर बाल को हिट करके इन गोलों के बीच में से ले जाते हुए बनता है। एक गेम छः पीरियडों से मिलकर बनता है या साढ़े सात मिनट में प्रत्येक चक्कर से। अर्जेंटीना में आठ चक्कर खेले जाते हैं जबकि इंग्लैंड व यूरोप में प्रायः चार चक्कर ही होते हैं। थोड़ा-सा परिवर्तन करके इस खेल को इंडोर भी खेला जा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में पहली प्रतियोगिता ब्रिटेन में 1886 में अमेरिका के साथ हुई। 1909 में वेस्ट चैस्टर कप सीरीज से आधुनिक खेल की शुरुआत हुई।

अब यह खेल अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है जिसमें घुड़दौड़, फुटबाल व हाकी जैसी मिश्रित उत्तेजना बनी रहती है।

प्रकाश पादुकोन

1962 की मैसूर राज्य सब जूनियर प्रतियोगिता में भाग लेकर प्रकाश ने अपने बैडमिंटन जीवन की शुरुआत की। पहले ही मैच में उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। लेकिन इस पराजय में भी सुख का भाव था। 22 सितम्बर 1962 को हुए इस मुकाबले मे हार पर फूट-फूटकर रोने वाले प्रकाश को सर्वोत्तम पराजित खिलाड़ी की ट्रॉफी दी गई।

दो साल बाद वह राज्य का सब जूनियर चैंपियन बना और 1967 मे केवल 12 वर्ष की आयु में उसे राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिए राज्य की टीम का प्रतिनिधित्व करने हेतु चुना गया। तीन वर्ष बाद जूनियर खिताब पर उसने अपने नाम की मुहर लगा दी। 1972 मे तो उसने तहलका मचाकर जूनियर और सीनियर दोनों ही खिताबों को हथिया लिया। सीनियर राष्ट्रीय चैंपियन बनने वाला वह सबसे कम आयु का खिलाड़ी रहा।

देश का प्रतिनिधित्व करने का मौका उसे 1972 में ही मिल गया जब थामस कप के लिए चुनी गई भारतीय टीम में उसे शामिल कर लिया गया। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र पर अपनी पहचान बनाने के लिए उसे 1978 तक इंतजार करना पड़ा। इग्लैंड के डेरेक टेलबट को हराकर राष्ट्रमंडलीय खिताब के रूप में उसने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय सफलता प्राप्त की।

इस कामयाबी से प्रकाश को यश और कीर्ति तो मिली ही, अगले वर्ष आल इग्लेंड चैंपियनशिप मे इंडोनेशिया के लिम स्वी किंग के साथ शीर्ष वरीयता का सम्मान भी मिला। दुर्भाग्य से चोटग्रस्त हो जाने के कारण उसे प्रतियोगिता से

छूटना पड़ा लेकिन छह महीने बाद ही उसने लन्दन मास्टर्स में पहली इनामी प्रतियोगिता जीतकर सनसनी फैला दी थी।

आल इंग्लैंड की सफलता को वह अपने जीवन का सबसे रोमांचक और गौरवमय क्षण मानता है। चूंकि इस मुकाबले से पूर्व वह तीन इंडोनेशियाई खिलाड़ियों को हरा चुका था, इसलिए किंग कुछ हड़बड़ाया हुआ था। शुरुआत अच्छी रही और किंग की गलतियों का लाभ पाकर उसे पहला गेम 15-3 से जीतने में दिक्कत नहीं हुई। दूसरा गेम 15-10 से जीत कर मैंने विश्व की प्रतिष्ठित प्रतियोगिता जीतने का सपना साकार कर लिया।

महान इंडोनेशियाई खिलाड़ी रूडी हार्तोनो को वह अपना आदर्श मानता है। 1971 में जबलपुर में उसकी हार्तोनो से पहली मुलाकात हुई। मैच से पूर्व एक घंटे तक रूडी को 'वार्म अप' करते देख प्रकाश हैरत में पड़ गया था और उसने जान लिया कि अगर शिखर पर पहुंचना है तो उसे भी इसी तरह कड़ा श्रम करना होगा। हार्तोनो से उसकी दो भिड़तें हुई। 1971 में तो वह बुरी तरह पिट गया किंतु 1980 में उसने पराजय का बदला चुका लिया।

पिछले वर्षों में उसने नामी दिग्गजों को नीचा दिखाकर प्रथम विश्व कप प्रतियोगिता जीती और फिर पुणे मास्टर्स में भी चीनी चुनौती पर पार पाकर वह चैंपियन बना। लेकिन इसके बाद सभी प्रमुख टूर्नामेंट में उसकी असफलता से यह चर्चा होने लगी है कि क्या प्रकाश पराभव की राह पर चल पड़ा है?

हांग-कांग ओपन के एकल मुकाबले में नामी खिलाड़ियों की अनुपस्थिति में सर्वोच्च वरीयता प्रकाश को दी गई थी। फाइनल में इंडोनेशिया के सुगियार्तो से उसकी भिड़ंत की अपेक्षा की जा रही थी। सुगियार्तो के साथ हैदराबाद इनामी बैडमिंटन और इंडोनेशिया बैडमिंटन की सफलता थी मगर वह पहले ही चक्र में इंग्लैंड के केविन जौली से पिट गया।

प्रकाश को फाइनल तक पहुंचने में कोई खास परेशानी नहीं हुई। हां, दूसरे चक्र में स्वीडन के स्टीफन कार्लसन ने जरूर एक गेम जीतकर उसे परेशानी में डाला। क्वार्टर फाइनल में प्रकाश ने तारिक वदूद को 15-10, 15-8 से तथा सेमीफाइनल में इंडोनेशिया के एडी काननियवन को 15-8, 15-0 से रौंद डाला। फानइल में भिड़ंत हुई चीन के राष्ट्रीय चैंपियन चेन टियांग लोंग से। प्रकाश की कला के समक्ष नतमस्तक हो चीनी खिलाड़ी स्मैशों की लड़ाई में सीधे गेमों में हार गए।

लगातार नौ वर्ष चैंपियन रहने के बाद मोदी ने उसके प्रभुत्व को तोड़ते हुए राष्ट्रीय एकल खिताब जीत लिया था।

प्रदीप कुमार बैनर्जी

फुटवाल के क्षेत्र में प्रदीप कुमार बैनर्जी के नाम से इतने लोग परिचित नहीं जितने कि 'पी० के०' के नाम से परिचित हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे क्रिकेट में कोट्टारी कर्न्हेया नायडू को कोई नही जानता और 'सी के०' को दुनिया जानती है।

पी० के० का जन्म 23 जून, 1936 को हुआ। बचपन से ही उन्हें खेलकूद मे काफी दिलचस्पी थी। क्रिकेट, हाकी, फुटवाल, वालीबाल, बैडमिंटन और एथलेटिक में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। बचपन में ही उनके मन मे मैच जीतने की इच्छा कितनी प्रबल होती थी, इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है—जमशेदपुर मे एक बैडमिंटन प्रतियोगिता का आयोजन हो रहा था। आठ वर्षीय पी० के० अपने पिता की साझेदारी में खेलते हुए सेमी-फाइनल तक पहुच गए। सेमी-फाइनल में पिता-पुत्र की जोडी हार गई। इस पर पी० के० को इतना दु:ख हुआ कि उनकी आंखों में आसू आ गए। वह रोता हुआ सीधा अपनी मा मे अपने पिता की शिकायत करते हुए कहने लगा कि चूकि पिताजी अच्छी तरह से नही खेले इसीलिए मैं हार गया।

1952 में जब पी० के० की उम्र केवल 16 वर्ष की ही थी तो उन्हें फुटवाल राष्ट्रीय प्रतियोगिता में हिस्सा लेने का गौरव प्राप्त हुआ। इसका श्रेय वह आज भी अपने पिताजी को ही देते हैं जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और आशीर्वाद से वह 1952 में बिहार राज्य की ओर से सन्तोष ट्राफी में हिस्सा ले सके।

पी० के० ने अपने जीवन काल मे 84 मैचों मे भारत का प्रतिनिधित्व किया और 60 गोल किए। वह लगातार 12 वर्षों तक (1955-1966) भारतीय फुटबाल टीम के सदस्य रहे। 1956 के मेलबोर्न ओलम्पिक खेलों में भारतीय फुटवाल टीम का नेतृत्व सभाला। वह ऐसे पहले फुटवाल खिलाड़ी हैं जिन्हें 'अर्जुन पुरस्कार' से अलकृत किया गया।

1966 मे बैंकाक मे हुए एशियाई खेलों मे भाग लेने के बाद उन्होंने फुटवाल के खेल से संन्यास लेने घोषणा कर दी। 1955 से लेकर 1966 के बीच उन्होंने एशिया के सभी देशों मे फुटबाल खेली। उन्होने तीन बार एशियाई खेलों में और दो बार ओलम्पिक खेलो में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

खिलाड़ी जीवन से रिटायर होने के बाद वह प्रशिक्षक बन गए। काफी समय तक वह ईस्ट बगाल की टीम के प्रशिक्षक रहे और इस समय मोहन बागान की टीम के प्रशिक्षक हैं।

प्रवीण कुमार

एथलेटिक क्षेत्र मे मिल्खा सिंह के बाद यदि किसी भारतीय एथलेटिक को

अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है तो वह है प्रवीण कुमार। प्रवीण कुमार का जन्म पंजाब में 6 दिसम्बर, 1947 को सरहाली (जिला अमृतसर) में हुआ। शुरू-शुरू में परिवार के अन्य सदस्यों की देखा-देखी उनमें भी कुश्ती और भारोत्तोलन का शौक पैदा हुआ और इस प्रकार बचपन में उनका कद-बुत इतना बढ़ गया कि किशोरावस्था में ही वह भरे-पूरे आदमी दीखने लगे। इनका कद 6 फुट 7 इंच और वजन 250 पौंड (115 किलो) है।

1966 में बंगलोर में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिता में उन्होने राष्ट्रीय रिकार्ड स्थापित किया। उसके बाद पूना और पटियाला में भी उनका प्रदर्शन बहुत शानदार और जोरदार रहा। 1966 में बैंकाक में हुए एशियाई खेलों में उन्हें चक्का फेंकने में स्वर्ण पदक और तारगोला में कांस्य पदक प्राप्त हुआ। उसके बाद किंग्स्टन खेलों में उन्होंने तारगोला में भी रजत पदक प्राप्त किया।

शुरू-शुरू मे प्रवीन चक्का, गोला और तारगोला सभी मुकाबलों में हिस्सा लेते थे, लेकिन बाद में पीठ दर्द होने के कारण उन्होंने चक्का फेंकने पर सारा ध्यान केंद्रित कर दिया। चक्का फेंकने में उन्होने 1973 मे 56.74 मीटर का जो राष्ट्रीय रिकार्ड स्थापित किया था वह अब भी ज्यों का त्यों बरकरार है। तारगोला फेंकने में उन्होंने 1969 मे 65.76 मीटर राष्ट्रीय रिकार्ड स्थापित किया था।

प्रसन्ना

जन्म 22 मई, 1940। भारतीय स्पिन गेंदबाजी की त्रिमूर्ति बेदी, प्रसन्ना, और चन्द्रशेखर दुनिया में विख्यात है। अंगुलियों में गिने जाने वाले ख्याति प्राप्त घुमावदार गेंदबाजों में से प्रसन्ना ही एकमात्र ऐसे हैं जो कीमत देकर विकेट लेने में विश्वास रखते हैं। प्रसन्ना की फ्लाइटेड गेंदें अच्छे से अच्छे बल्लेबाज को लालच में ले डूबती हैं। रेडियो एण्ड इलेक्ट्रिकल्स मैन्युफेक्चरिंग कम्पनी बंगलोर में वह कार्यरत हैं।

सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन न्यूज़ीलैंड के विरुद्ध आकलैंड में रहा। वहां उन्होंने 76 रनों पर 8 विकेट लिए।

टेस्ट 49, पारी 84, अपराजित 20, रन 735, सर्वाधिक 37, वेस्टइंडीज़ के विरुद्ध बंगलोर में, कैच 18। गेंदें 14367, मेडन 600, रन 5742, विकेट 189।

प्रेमचन्द

शरीर सौष्ठव खेल का नाम लेते ही झट अमेरिका की ओर ध्यान जाता है क्योंकि यह खेल मुख्य रूप से इसीसे जुड़ा है। लेकिन जब से भारत के प्रेमचन्द ने,

लगातार 5 बार (1983 से 1987 तक) मिस्टर एशिया (एशिया श्री) का खिताब जीता है तबसे भारतीय खेल प्रेमी इस खिलाड़ी के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी फौलादी देह में चमकती मांसपेशियां पोजिंग देखना चाहते हैं।

प्रेमचन्द का जन्म 1-12-1955 को बाबरी नंगल गांव गुरदासपुर में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा टिब्बर स्थित सरकारी स्कूल में प्राप्त की। लेकिन पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं के कारण स्कूली शिक्षा समाप्त कर पुलिस की नौकरी करनी पड़ी। लेकिन इस खेल में और आगे बढ़ने के लिए जितनी खुराक चाहिए उतनी उस आय में सम्भव नही थी।

1984 में पुलिस की नौकरी छोड़ उन्होंने टिस्को, जमशेदपुर की नौकरी स्वीकार कर ली। यहां से उन्हें प्रशिक्षण और खुराक की हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त होती हैं इसलिए उनका बल और मनोबल काफी ऊंचा है।

कल तक तो कोई इस बात पर विश्वास करने को तैयार नहीं था कि भारत का कोई खिलाड़ी 'मिस्टर यूनिवर्स' में दूसरा स्थान प्राप्त कर सकता है लेकिन आज उन्हें इस बात का भी विश्वास हो रहा है कि 22 अक्तूबर से मेड्रिड (स्पेन) में होने वाली विश्वश्री प्रतियोगिता में भारत का यही खिलाड़ी यह गौरव भी अवश्य प्राप्त करेगा।

इस खेल में अपनी प्रगति की गति पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचन्द ने एक विशेष भेंट में बताया कि यों तो मुझे पिछले वर्ष तोक्यो में हुई प्रतियोगिता में भी विश्व श्री का पद प्राप्त होने का गौरव प्राप्त हो जाता पर अम्पायरों के परस्पर मतभेद के कारण बस एकाध अंक से वंचित हो गया था। लेकिन इतना तो सभी ने स्वीकार किया ही कि आज नही तो कल भारत का यही खिलाड़ी यह गौरव एक न एक दिन अवश्य प्राप्त करेगा और इस प्रकार पहला एशियाई खिलाड़ी होगा। तभी से विदेशों से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में मेरे सचित्र प्रकाशित होने लगे।

15 से 19 जुलाई 1987 को मालका (मलेशिया) में हुई इस प्रतियोगिता में मुझे पांचवी बार एशिया श्री का खिताब प्राप्त हुआ। यह भी अपने आपमें एक रिकार्ड है।

'मिस्टर यूनिवर्स' प्रतियोगिताओं के आयोजन पक्ष के बारे में प्रेमचन्द ने बताया कि आजकल इन प्रतियोगिताओं का आयोजन भी कुश्ती की ही तरह अलग-अलग वजनों के आधार पर किया जाता है। पहले कद बुत के अनुसार हुआ करती थीं। खिलाड़ी को अपने हिसाब से अपने शरीर की बनावट और मांसपेशियों का प्रदर्शन करना होता है।

पृथीपाल सिंह

भारतीय खेलकूद में पृथीपाल की तुलना नहीं की जा सकती और शायद की भी न जा सके। भारत के खेल मैदानों पर ऐसा कोई महान खिलाड़ी देखने को नहीं मिला जिसमें स्वच्छता और निर्भीकता दोनों ही गुण मौजूद रहे हों। यूं भारतीय खेलों में क्रिकेट में लाला अमरनाथ व बिशनसिंह बेदी और कुश्ती में मास्टर चंदगीराम जैसे व्यक्तित्व हुए मगर पृथीपाल जैसे ईमानदार खिलाड़ी का उदाहरण मिलना मुश्किल है। वह कभी भी अधिकारियों के हाथों का खिलौना नहीं बने। उन्होंने अपने आदर्शों की कीमत पर कभी समझौता नहीं किया और कभी भी दबाव के आगे नहीं झुके।

भारतीय हाकी में पृथीपाल सिंह का नाम एक पेनल्टी कारनर विशेषज्ञ के रूप में ही नहीं बल्कि एक सीधे-सच्चे किंतु निर्भीक इनसान और हाकी के सच्चे प्रेमी के रूप में हमेशा जाना जायेगा। पृथीपाल सिंह का जन्म 28 जनवरी, 1932 को नानकाना साहब जैसे पवित्र स्थान पर हुआ। भारत उन दिनों स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए तो संघर्ष कर ही रहा था, ओलिम्पिक खेलों में हाकी में स्वर्ण पदक जीतने के कारण युवकों में हाकी सीखने और खेलने की ललक भी थी। हाकी के तीर्थ पंजाब में तो मानो हाकी ज्वर चढ़ा हुआ था। ऐसे में भला बालक पृथीपाल कहां बच सकते थे और उन्होंने भी स्टिक पकड़ ली। उनके मजबूत शरीर और करारी हिट को देखते हुए उन्हें उनके शुभचिंतकों ने फुल बैक बनने की सलाह दी। पृथीपाल ने इस सलाह को गंभीरता से लिया और अभ्यास में दिन-रात एक कर दिया।

राष्ट्रीय मंच पर पृथीपाल का नाम पहली बार 1957 में चमका जब राष्ट्रीय हाकी खेलने के लिए पंजाब की टीम में उन्हें शामिल कर लिया गया। उन्होंने अपने खेल से हाकी चयनकर्ताओं को इतना अधिक प्रभावित किया कि अगले वर्ष भारतीय हाकी संघ द्वारा बनायी गयी विशेष टीम में उनका नाम शामिल था। आई० एच० एफ० की इस टीम ने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया और प्रायः सभी मैचों में पृथीपाल का खेल सराहनीय रहा। 1959 में भारतीय हाकी संघ की टीम ने पूर्वी अफ्रीका के देशों का दौरा किया और खूब नाम कमाया।

अगले वर्ष यानी 1960 में रोम ओलम्पिक खेल आयोजित हुए। पृथीपाल सिंह तब तक फुल बैक और पेनल्टी कारनर विशेषज्ञ के रूप में काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। रोम ओलम्पिक के लिए घोषित भारतीय टीम में पृथीपाल का नाम एक अनिवार्यता के रूप में सामने आया। यद्यपि भारत फाइनल में पाकिस्तान से 0—1 से हार गया लेकिन पृथीपाल के प्रदर्शन पर कोई उंगली नहीं उठा सका।

1962 में एशियाई खेलों का आयोजन जकार्ता में हुआ। पृथीपाल सिंह फिर

भारतीय टीम में थे। भारतीय टीम एक बार फिर पाकिस्तान से फाइनल में हार गई। इस बार पराजय का अंतर रहा 0—2। 1964 के ओलम्पिक खेल जापान की राजधानी टोक्यो में हुए। भारतीय टीम ने इस बार पाकिस्तान के हाथों हुई पराजय का जबरदस्त बदला लिया और खोया हुआ स्वर्ण पदक भी प्राप्त कर लिया। पृथीपाल सिंह के खेल की सर्वत्र सराहना हुई। उन्हें उस समय विश्व का सर्वश्रेष्ठ फुल बैक तथा पेनल्टी कारनर विशेषज्ञ माना गया। 1966 के बैंकाक एशियाई खेलों में भी भारत ने पाकिस्तान को हराया और एशियाई चैंपियनशिप भी हासिल कर ली। 1968 में मैक्सिको ओलम्पिक खेलों में पृथीपाल सिंह को कप्तान बनाया गया। दरअसल उस समय कप्तानी पर विवाद छिड़ गया था इसलिए पृथीपाल और गुरबख्श सिंह दोनों को ही संयुक्त रूप से कप्तानी दे दी गई थी।

इसके बाद पृथीपाल सिंह को टीम में नहीं चुना गया। इसे यों भी कहा जा सकता है कि उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया गया। दरअसल पृथीपाल सिंह खिलाड़ियों के साथ हाकी अधिकारियों के किसी भी अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और फौरन सच्चाई के लिए संघर्ष पर उतर आते थे। उन्हें इसी सत्यवादिता का मूल्य चुकाना पड़ा। पृथीपाल सिंह जितने अच्छे खिलाड़ी थे, अधिकारियों के साथ उनके संबंध उतने ही बुरे रहे। उन्हें 1970 के बाद हाकी चयन समिति में लिया गया। उन्हीं के कार्यकाल में भारत ने विश्व कप भी जीता लेकिन अगले ही वर्ष मांट्रियल ओलम्पिक में भारतीय हाकी को बुरी तरह मात खानी पड़ी। पृथीपाल ने इस पराजय के बाद नैतिकता को मद्देनजर रखते हुए चयन समिति से इस्तीफा दे दिया। हाकी अधिकारी टीम के चयन और प्रशिक्षण आदि में जिस तरह से दखलंदाजी करने लगे थे, उसे प्रकाश में लाने में भी वह नहीं हिचकिचाये।

पृथीपाल 1961 के बाद पंजाब पुलिस में नौकरी पाने में सफल हुए। इसके बाद 1967 में वह रेलवे में चले गए थे। वह केवल कुछ ही गिने-चुने खिलाड़ियों में से थे जिन्होंने खेल के साथ-साथ पढ़ाई में भी गहन रुचि ली। उन्होंने कृषि में एम० ए० की शिक्षा हासिल की थी और जब उनकी हत्या की गई उस समय भी वह लुधियाना में कृषि विश्वविद्यालय के डीन थे। मृत्यु के समय उनके शोक विह्वल परिवार में पत्नी व दो दत्तक पुत्रियां थीं।

पृथीपाल का आत्मविश्वास और खेल दोनों ही चट्टान की तरह मजबूत थे। विरोधी खिलाड़ी उनके आसपास से भी गेंद निकाल पाने को बहुत बड़ी सफलता मानते थे। युवा खिलाड़ियों के लिए वह उदाहरण थे। भारतीय टीम में फुल बैक आयेंगे और चले जायेंगे लेकिन पृथीपाल का स्थान न कोई ले पाया है और न ही ले पायेगा।

फ्लायड पैटर्सन का जन्म 4 जनवरी, 1935 को अमेरिका में वाको नामक स्थान पर हुआ। जब वह केवल एक साल के ही थे तो उनके माता-पिता न्यूयार्क में आकर बस गए। मुक्केबाजी का शौक उन्हें बचपन से ही था। वह अक्सर अपने भाइयों के साथ व्यायामशाला में जाया करते। 14 वर्ष की उम्र में उन्होंने मुक्केबाजी के जो दाव-पेच दिखाए उससे कांस्टेंटाइन नामक पेशेवर मुक्केबाजों के मैनेजर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने पैटर्सन को एक साल तक अपने ढंग से प्रशिक्षित किया। सन् 1951 तक पैटर्सन ने मुक्केबाजी के क्षेत्र में काफी धाक जमा ली। तब तक वह शौकिया मुक्केबाज ही थे। 1952 में उन्होंने हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों में भाग लिया और मिडिल वेट में स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

ओलम्पिक खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त करने के बाद पैटर्सन पेशेवर मुक्केबाज बन गए। दो वर्षों में ही उन्होंने 13 मुक्केबाजों को न केवल चुनौतियां दी, बल्कि एक-एक करके दुनिया के सभी मुक्केबाजों को धराशायी करने लगे।

फारुख इंजीनियर

जिन खिलाड़ियों ने विश्व क्रिकेट में भारत का नाम उज्ज्वल किया उनमें फारुख इंजीनियर (जन्म : 2 फरवरी, 1938) भी शामिल हैं। सही मायनों में इंजीनियर ही पहला ऐसा भारतीय विकेट कीपर था जिससे विपक्षी बल्लेबाज आतंकित हुए। इंजीनियर ने लगभग 15 वर्ष तक भारतीय क्रिकेट में विकेट कीपिंग का काम जितनी मुस्तैदी और चुस्ती-फुर्ती के साथ संभाला, उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

इंजीनियर ने अपना प्रथम श्रेणी क्रिकेट 1958-59 में भ्रमणकारी वेस्ट इंडीज के खिलाफ संयुक्त विश्वविद्यालय की टीम की ओर से खेलते हुए शुरू किया था। इसी मैच मे चयनकर्ता उनके खेल से मंत्रमुग्ध हो गए थे लेकिन इंजीनियर उस मैच मे केवल विकेट कीपर के रूप मे ही प्रभावित कर पाया। फलस्वरूप 1961-62 में टेड डेक्सटर के नेतृत्व में जब वेस्ट इंडीज की टीम भारत आई तो दूसरे (कानपुर) टेस्ट में विकेट कीपिंग का काम इंजीनियर को सौंप दिया गया। इंजीनियर ने पहली पारी में दो कैच लपके। पहला कैच था पुलर का और दूसरा एलन का। किन्तु बल्लेबाजी में उन्हें नम्बर नौ पर भेजा गया। इंजीनियर ने 33 रन बनाकर अपनी बल्लेबाजी योग्यता का पहली बार दावा पेश किया। इसी शृंखला के मद्रास टेस्ट में भी इंजीनियर ने 65 रन बनाकर एक बार फिर अच्छी पारी खेली।

इंजीनियर के इस प्रदर्शन के आधार पर ही उन्हें 1962 में वेस्ट इंडीज जाने वाली भारतीय टीम में चुन लिया गया। किंग्स्टन के दूसरे टेस्ट मे वेस्ले हाल की आग्नेय गेंदों के समक्ष भी इंजीनियर ने क्रमशः 53 व 40 रन बनाए। इस शृंखला

1983 में पृथीपाल को अज्ञात हमलावरों ने लुधियाना में गोली से उड़ा दिया था।

फ

फजल महमूद

फजल महमूद का जन्म 18 जनवरी, 1927 को हुआ। फजल गेंद को 'स्विंग' और 'कट' कराने में माहिर थे। बल्लेबाजों के लिए वह हमेशा खौफ बने रहे। उनका टेस्ट जीवन भी हनीफ के साथ 16 अक्तूबर, 1952 को दिल्ली टेस्ट के साथ शुरू हुआ। लखनऊ टेस्ट (26 अक्तूबर) की दूसरी पारी में केवल 42 रन देकर 7 विकेट लेते हुए उन्होंने अद्‌भुत गेंदबाजी का प्रदर्शन किया।

1956-57 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध कराची टेस्ट में फजल की गेंदबाजी का प्रदर्शन अपने चरमोत्कर्ष पर था। पहली पारी में उन्होंने 34 रन देकर 6 तथा दूसरी पारी में 80 रन देकर 7 विकेट उखाड़ कर रख दिए और इस प्रकार फजल ने नील हार्वे, कीथ मिलर, रिची बेनो, जैसी दिग्गज हस्तियों की बल्लेबाजी का विश्लेषण बिगाड़ कर रख दिया।

तत्कालीन पाकिस्तानी क्रिकेट के लिए फजल की गेंदबाजी कितनी अपरिहार्य थी इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 1954 में ओवल में उन्होंने 99 रन देकर इंग्लैंड की 11 विकेट धराशायी कर दी थी।

फजल ने कुल 34 टेस्ट खेले। 9,834 गेंदों पर 3,434 रन देकर उन्होंने 24.70 के औसत से 139 विकेट लिए। उन्होंने 13 बार एक पारी में 5 या 5 से अधिक विकेट लिए। एक टेस्ट में 10 विकेट लेने का करिश्मा उन्होंने 4 बार दिखाया। बल्लेबाजी में उन्होंने 50 पारियों में 14.09 के औसत से 620 रन बनाए।

फ्लायड पैटर्सन

भूतपूर्व विश्व हैवीवेट चैम्पियनों की सूची को देखते ही नजर एकाएक फ्लायड पैटर्सन के नाम पर टिक जाती है। कारण यह कि उस सूची में केवल यही एक ऐसा नाम है जो दो बार लिखा गया है।

फ्लायड पैटर्सन का जन्म 4 जनवरी, 1935 को अमेरिका में वाको नामक स्थान पर हुआ। जब वह केवल एक साल के ही थे तो उनके माता-पिता न्यूयार्क में आकर बस गए। मुक्केबाज़ी का शौक उन्हें बचपन से ही था। वह अक्सर अपने भाइयों के साथ व्यायामशाला में जाया करते। 14 वर्ष की उम्र में उन्होंने मुक्केबाज़ी के जो दांव-पेच दिखाए उससे कांस्टेंटाइन नामक पेशेवर मुक्केबाज़ों के मैनेजर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने पैटर्सन को एक साल तक अपने ढंग से प्रशिक्षित किया। सन् 1951 तक पैटर्सन ने मुक्केबाज़ी के क्षेत्र में काफ़ी धाक जमा ली। तब तक वह शौकिया मुक्केबाज़ ही थे। 1952 में उन्होंने हेलसिंकी ओलम्पिक खेलों में भाग लिया और मिडिल वेट में स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

ओलम्पिक खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त करने के बाद पैटर्सन पेशेवर मुक्केबाज़ बन गए। दो वर्षों में ही उन्होंने 13 मुक्केबाज़ों को न केवल चुनौतियां दीं, बल्कि एक-एक करके दुनिया के सभी मुक्केबाज़ों को धराशायी करने लगे।

फारुख इंजीनियर

जिन खिलाड़ियों ने विश्व क्रिकेट में भारत का नाम उज्ज्वल किया उनमें फारुख इंजीनियर (जन्म : 2 फरवरी, 1938) भी शामिल हैं। सही मायनों में इंजीनियर ही पहला ऐसा भारतीय विकेट कीपर था जिससे विपक्षी बल्लेबाज आतंकित हुए। इंजीनियर ने लगभग 15 वर्ष तक भारतीय क्रिकेट में विकेट कीपिंग का काम जितनी मुस्तैदी और चुस्ती-फुर्ती के साथ संभाला, उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

इंजीनियर ने अपना प्रथम श्रेणी क्रिकेट 1958-59 में भ्रमणकारी वेस्ट इंडीज के खिलाफ संयुक्त विश्वविद्यालय की टीम की ओर से खेलते हुए शुरू किया था। इसी मैच में चयनकर्ता उनके खेल से मंत्रमुग्ध हो गए थे लेकिन इंजीनियर उस मैच में केवल विकेट कीपर के रूप में ही प्रभावित कर पाया। फलस्वरूप 1961-62 में टेड डैक्सटर के नेतृत्व में जब वेस्ट इंडीज की टीम भारत आई तो दूसरे (कानपुर) टेस्ट में विकेट कीपिंग का काम इंजीनियर को सौंप दिया गया। इंजीनियर ने पहली पारी में दो कैच लपके। पहला कैच था पुलर का और दूसरा एलन का। किन्तु बल्लेबाज़ी में उन्हें नम्बर नौ पर भेजा गया। इंजीनियर ने 33 रन बनाकर अपनी बल्लेबाज़ी योग्यता का पहली बार दावा पेश किया। इसी शृंखला के मद्रास टेस्ट में भी इंजीनियर ने 65 रन बनाकर एक बार फिर अच्छी पारी खेली।

इंजीनियर के इस प्रदर्शन के आधार पर ही उन्हें 1962 में वेस्ट इंडीज जाने वाली भारतीय टीम में चुन लिया गया। किंग्स्टन के दूसरे टेस्ट में वेस्ले हाल की आग्नेय गेंदों के समक्ष भी इंजीनियर ने क्रमशः 53 व 40 रन बनाए। इस शृंखला

में इंजीनियर को पहले तीन टेस्टों में खिलाया गया जिसमें उन्होंने कुल चार कैंच लपकी। शेष दो टेस्टों में बुद्धि कुंदरन को विकेटकीपिंग सौंपी गई।

1965 तक इंजीनियर को कभी टीम में लिया गया और कभी निकाल दिया गया लेकिन 1965 के बाद वह टीम में स्थायी स्थान पाने में कुछ हद तक कामयाब हो गए।

इस वर्ष जान रीड के नेतृत्व में न्यूजीलैंड की टीम भारत आई थी। मद्रास टेस्ट में इंजीनियर के केवल 115 मिनट में ही तावड़तोड़ 90 रन जड़कर पहली बार अपनी आक्रामक बल्लेबाजी का परिचय दिया। इस प्रदर्शन के आधार पर उन्हें बल्लेबाजी में काफी पहले भेजा जाने लगा। इसी शृंखला के बम्बई टेस्ट में उन्हें पहली बार बतौर प्रारंभिक बल्लेबाज भेजा गया।

1966-67 में इंजीनियर को वेस्ट इंडीज के खिलाफ अंतिम (मद्रास) टेस्ट में खिलाया गया। इंजीनियर ने दो कैंच लपके तथा अपने टेस्ट जीवन का पहला शतक बनाया। उन्होंने भारतीय पारी का प्रारंभ करते हुए भोजन काल तक 94 रन बनाए। यदि वह छह रन और बना लेते तो भोजन काल से पूर्व शतक बनाने का विलक्षण श्रेय उन्हें भी हासिल हो सकता था।

1967 में भारतीय टीम इंग्लैंड के दौरे पर गई तो इंजीनियर उस समय भारत के प्रमुख बल्लेबाज और चतुर विकेट कीपर के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके थे। लीड्स में खेले गए पहले टेस्ट में उन्होंने 47 व 57 रन बनाकर भारत की पराजय को टालने का प्रयास किया लेकिन सफल न हो सके। इसी शृंखला के बाद इंजीनियर को इंग्लैंड के लंकाशायर क्लब ने काउंटी क्रिकेट के लिए आमंत्रित कर लिया। 1976 तक वह काउंटी क्रिकेट खेलते रहे।

1967-68 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ उसी की धरती पर एक और शृंखला खेली। इस शृंखला के चार टेस्टों में उन्होंने आठ खिलाड़ियों को विकेट के पीछे आउट कराने में सहायता की और कुल 215 रन बनाए। इसी वर्ष न्यूजीलैंड के खिलाफ चार टेस्टों में भी उन्होंने 10 शिकार पकड़े और 321 रन 40.13 की औसत से बनाए। इसके बाद न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया के खिलाफ अपने ही देश में इंजीनियर ने कुल सात टेस्ट खेले और अपने रनों और शिकारों का योग बढ़ाना बराबर जारी रखा।

1971 की ऐतिहासिक इंडीज और इंग्लैंड यात्रा में इंजीनियर भारतीय टीम का एक वरिष्ठ सदस्य था। इंग्लैंड दौरे पर तो उसने 43.00 की औसत से 172 रन जोड़े। उल्लेखनीय है कि भारत यह दोनों शृंखलाएं जीता था। 1972-73 में इंग्लैंड के खिलाफ गृह शृंखला में इंजीनियर ने अन्तिम टेस्ट (बम्बई) में एक और शतक उड़ाया। 1974 में इंग्लैंड दौरे में उन्होंने तीन टेस्टों में सर्वाधिक 195 रन जोड़े।

1974-75 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ इंजीनियर ने अपनी अन्तिम शृंखला खेली। इस शृंखला में दिल्ली टेस्ट में जब पटौदी बीमार पड़ गए तो इंजीनियर को कप्तानी का दायित्व सौंपा जाना निश्चित लग रहा था। लेकिन मैच समाप्ति से कुछ देर पूर्व ही वेंकटराघवन को कप्तान बना दिया गया। इस घटना ने बाद में तीव्र विवाद का रूप ले लिया। इसके बाद आगामी शृखलाओं में इंजीनियर को भारतीय टीम में नहीं चुना गया और उनका स्थान सैयद किरमानी ने ले लिया।

इंजीनियर अपने साथी खिलाड़ियों और विशेषकर इंग्लैंड मे 'फकी' के नाम से जाना जाता है। भारतीय स्पिनरों की ऐतिहासिक सफलता में इंजीनियर का महान योगदान माना जाता है। विकेटकीपिंग करते हुए उन्होंने कभी बल्लेबाज को कोई आजादी नहीं बरतने दी। बल्लेबाज के रूप में 'स्क्वेयर कट' उनका पसंदीदा शाट था और 'आफ' व 'आन' दोनों दिशाओं पर समान प्रभुत्व था।

इंजीनियर स्वभाव से बहुत ही मजाकिया किस्म के व्यक्ति हैं। मैदान में हल्की छेड़छाड़ से दर्शकों से वह विशेष प्रिय रहे हैं। टेस्ट क्रिकेट से निपटने के बाद वह इंग्लैंड में एक टैक्सटाइल मिल मे उच्च पद पर कार्य करते रहे हैं।

टेस्ट रिकार्ड : *46 टेस्ट, 87 पारी, 2611 रन, 121 उच्चतम, 31.08* औसत 2 शतक, 16 अर्ध शतक 82 शिकार, (66 कैच, 16 स्टंप)

फुटबाल

'हाकी' तथा 'रग्बी' की तरह फुटबाल भी एक रोमांचक खेल है। इसे विश्व के सर्वाधिक देश खेलते हैं। फुटबाल का अर्थ है—पैरों से खेले जाने वाला गेंद। अन्य सभी खेलों की तरह फुटबाल भी विश्व में अति प्राचीनकाल से खेला जाता रहा है। फुटबाल का प्रारंभ कब और कहां से हुआ, इस विषय पर अभी कोई प्रमाण नही मिल पाया है। किन्तु आधुनिक फुटबाल का विकास इंग्लैंड से माना जाता है।

प्राचीनतम रूप

इस बात के काफी प्रमाण मिलते हैं कि फुटबाल का खेल चीन में काफी प्राचीन समय से प्रचलित था। 2500 वर्ष ईसा पूर्व चीन मे पैरों से खेला जाने वाला एक खेल 'सु चू' था। 'सु चू' का शाब्दिक अर्थ था—चमड़े की बनी गेंद पर पैर से ठोकर मारना। गेंद को एक बड़े गोल दायरे में रखकर खिलाड़ियों द्वारा उसे सीधा रेखाओं के पार करने का प्रयास किया जाता था। इसके उपरान्त इस खेल का प्राचीन रूप दूसरी शताब्दी मे डलमेटिया मे मिलता है जो उस समय रोमनों का प्रमुख खेल था। उस समय गेंद काफी बड़ी चमड़े की होती थी जिसे

युवा खिलाड़ी खिलाड़ियों के ऊपर से किक करने का प्रयास करते थे। ग्रीक में इस खेल का नाम 'एपिस्कायरस' तथा स्पार्टा में 'हर पास्टम' था। इसके खेलने की विधि दो टीमों के बीच चीन तथा डलमेटिया जैसी ही थी।

आधुनिक रूप

फुटबाल का आधुनिक रूप इंग्लैंड में 14वीं शताब्दी से मिलने लगता है। किन्तु आरम्भ में इसका रूप भिन्न था। पहले यह शहर के बीच गली-मुहल्लों में खेला जाता था और इसके खिलाड़ियों की संख्या भी अधिक होती थी। इसमें शोर-शराबा इतना होता था कि लोग इसे खेलते समय अपने घरों की खिड़कियां तक बन्द कर लेते थे। इसमें बढ़ते शोर-शराबे को देखकर एडवर्ड द्वितीय द्वारा इंग्लैंड में इसके खेलने पर रोक लगा दी गई।

किन्तु रिचर्ड द्वितीय के समय इस पर लगी पाबंदियों में ढीलापन आया तो इंग्लैंड में इसका प्रचलन पुनः आरम्भ हुआ। फिर भी उस समय तक इसमें कोई सुधार नहीं हुआ था। पहले की तरह यह अब भी असभ्य तथा हिंसात्मक खेल माना जाता था जो दोपहर को शुरू होता और सूर्यास्त तक खेला जाता था। इस समय इसके न तो कोई नियम बने थे और न कोई निश्चित मैदान ही था। 1615 में जेम्स प्रथम ऐसा राजा था जिसने फुटबाल मैच देखा। बाद में चार्ल्स द्वितीय ने इस खेल में सुधार किया और उसने रायल हाउसहोल्ड तथा ड्यूक आफ एल्बेमार्ले के बीच 1681 में हुए मैच को देखा। इसके बाद इंग्लैंड में वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रान्ति से यह खेल स्कूली बच्चों तक सीमित रह गया। 1846 के आसपास कैंब्रिज के दो व्यक्तियों—डी. विस्टन तथा थ्रिंग ने इस खेल में व्याप्त हिंसा को रोकने तथा इसे गंभीर बनाने का प्रयास किया और उन्होंने 1862 में खेल से संबंधित दस नियम बनाए जो कैंब्रिज नियम के नाम से विख्यात हुए।

इसी के आसपास इंग्लैंड के ग्यारह क्लबों के प्रतिनिधि जिसमें ब्लैक हीथ प्रमुख था, 26 अक्तूबर 1863 को एकत्रित हुए और उन्होंने मिलकर फुटबाल खेलने के कुछ नियम बनाए। इस संगठन द्वारा बनाए गए नियमों तथा कैंब्रिज नियमों में काफी अंतर था। नियमों को लेकर दोनों संगठनों में काफी मतभेद भी था। चार वर्ष की बहस के बाद फुटबाल के निश्चित नियम तैयार किए गए, जिसके तहत 2 नवम्बर 1867 को मिडिलसैक्स तथा केंट के बीच प्रदर्शनी मैच खेला गया जो काफी सीमा तक सफल रहा। 1880 में इस खेल को नियंत्रित रखने तथा निर्णय देने के लिए रेफरी की नियुक्ति की गई। 1885 तक यह खेल पूर्णतया पेशेवर बन गया और यूरोप के अधिकांश देशों में उसके प्रमुख क्लब बन गए। 21 मई 1904 को अन्तर्राष्ट्रीय फुटबाल फेडरेशन का गठन हुआ जिसमें इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम, डेनमार्क, नीदरलैंड, स्पेन, स्वीडन तथा स्विटजरलैंड के

प्रतिनिधि उपस्थित थे। यद्यपि 1900 में पेरिस मे होने वाले ओलम्पिक में ही इसे शामिल कर लिया गया था किन्तु उस समय इसे कोई खास मान्यता नही मिली। 1908 में लंदन में हुए ओलम्पिक से इसको अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान हुआ। इसके बाद तो यह खेल विश्व स्तर का बन गया।

1930 में फ्रांस के एक प्रसिद्ध वकील जूले रीमे के सहयोग से विश्व कप का आयोजन हुआ जिसमें विजयी टीम को 'जूले रीमे' ट्रॉफी प्रदान की जाती थी। इस समय तक फुटबाल का खेल यूरोप, एशिया, अमेरिका आदि देशों मे काफी लोकप्रिय हो चुका था।

भारत में फुटबाल

भारत में फुटबाल का विकास अन्य खेलों की तरह अंग्रेजों के ही द्वारा हुआ। 1885 में कुछ अंग्रेज सैनिकों के प्रयत्नों से डलहौजी क्लब एथलेटिक की स्थापना हुई और उसमें फुटबाल के खेल पर काफी ध्यान दिया गया। बाद में यही क्लब इंडियन फुटबाल एसोसिएशन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 1888 में ब्रिटिश सैनिकों ने शिमला में डूरंड टूर्नामेंट की नीव रखी, तब से यह खेल भारत में दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता गया। ओलम्पिक तथा एशियाई खेलों में फुटबाल को शामिल कर लेने से भारत में भी इस खेल के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी है। संतोष ट्रॉफी, आई० एफ० ए० शील्ड, रोवर्स कप, डी० सी० एम० कप, फेडरेशन कप, सुब्रत कप, बी० सी० राय ट्रॉफी तथा नेहरू गोल्ड कप जैसी प्रतियोगिताओं से भारत मे इस खेल की लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत फुटबाल टीम कोई खास सफलता नही अर्जित कर सकी है, किन्तु एशियाई खेलों मे दो बार स्वर्ण पदक प्राप्त कर अपनी लोकप्रियता कायम रखने में सफल रह सकी है। नेहरू गोल्ड कप में विदेश की टीमों के भाग लेने से भारत को भी कुछ सीखने और समझने का अच्छा अवसर मिला है।

ओलम्पिक में फुटबाल

ओलम्पिक में सर्वप्रथम फुटबाल 1908 के लदन ओलम्पिक खेलों से शामिल की गई। इसका श्रेय फीफा के तत्कालीन अध्यक्ष डेनियल वर्ले को जाता है। 1908 मे ब्रिटेन ने फ्रांस को 4—0 से हराकर पहली बार फुटबाल का स्वर्ण पदक जीता। भारत ने पहली बार ओलम्पिक फुटबाल मे 1948 में भाग लिया था। उसके बाद, 1952, 56 और 60 के ओलम्पिक में भी भाग लिया। ओलिम्पिक में भारत का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन रहा 1956 के मेलबोर्न ओलम्पिक में चौथा स्थान प्राप्त करना। अब तक के ओलम्पिक विजेताओं की सूची निम्न है:

वर्ष	स्थान	विजेता	उपविजेता
1908	लंदन	ब्रिटेन	डेनमार्क
1912	स्टाकहोम	ब्रिटेन	डेनमार्क
1920	एंटवर्प	वेल्जियम	स्पेन
1924	पेरिस	उरुग्वे	स्विटजरलैंड
1928	एम्स्टर्डम	उरुग्वे	अर्जेंटीना
1932	लास एंजेलस	(फुटबाल नहीं)	
1936	बर्लिन	इटली	आस्ट्रिया
1948	लदन	स्वीडन	यूगोस्लाविया
1952	हेलसिंकी	हंगरी	यूगोस्लाविया
1956	मेलबोर्न	रूस	यूगोस्लाविया
1960	रोम	यूगोस्लाविया	डेनमार्क
1964	टोक्यो	हंगरी	चेकोस्लोवाकिया
1968	मैक्सिको	हगरी	वुल्गारिया
1972	म्यूनिख	पोलैंड	हगरी
1976	माट्रियाल	पूर्वी जर्मनी	पोलैंड
1980	मास्को	चेकोस्लोवाकिया	पूर्वी जर्मनी
1984	लास एंजेलस	फ्रांस	ब्राजील
1988	सोल	सोवियत संघ	ब्राजील

फेडरेशन कप

इस कप का आयोजन 1977 से आल इंडिया फुटबाल एसोसिएशन द्वारा भारत में फुटबाल के विकास की दृष्टि से किया गया। तब से यह प्रतियोगिता भी प्रति वर्ष खेली जा रही है। अब तक की हुई कुल 12 प्रतियोगिताओं में इस कप पर मोहन बागान की टीम ने चार बार कब्जा किया है।

इसके अतिरिक्त स्कूली बच्चे ... को लोकप्रि ... उनमें से प्रतिभावान खिलाड़ियों को चु ... राष्ट्रीय ... प्रतियोगिताएं—सुब्रतो कप, जू ... टबाल फुटबाल चैंपियनशिप आदि ... ट्रॉफियों की प्र ... के उठा है।

वर्ष	स्थान	विजेता	उपविजेता
1977	अर्नाकुलम	आई०टी०आई० बंगलौर	मोहन बागान
1978	कोयम्बेटूर	ईस्ट बंगाल और मोहन बागान	(संयुक्त विजेता)
1979	गुवाहाटी	बी० एस० एफ	मफतलाल मिल्स
1980	कलकत्ता	ईस्ट बंगाल और मोहन बागान	संयुक्त विजेता
1981	कोयम्बेटूर	मोहन बागान	मोहम्डन स्पोर्टिंग
1982	कालिकट	मोहन बागान	मफतलाल मिल्स
1983	केन्नानोर	मोहम्डन स्पोर्टिंग	मोहन बागान
1984	तिरुचलापल्ली	मोहम्डन स्पोर्टिंग	ईस्ट बंगाल
1985	बंगलोर	ईस्ट बंगाल	मोहन बागान
1986	श्रीनगर	मोहन बागान	ईस्ट बंगाल
1987	कटक	मोहन बागान	सलगाओकर S. C. गोआ
1988	दिल्ली	सलगाओकर गोआ एस० सी०	बी० एस० एफ०

फ्रैंक टायसन

सामान्यतः एक अध्यापक और एक तेज गेंदबाज मे समानता ढूंढना आसान नही होता। एक शान्त प्रकृति का होता है जिसे दूसरों को सुख देकर ही सुख मिलता है जबकि तेज गेंदबाज स्वभाव से ही उग्र होता है और बल्लेबाजों की परेशानी में ही उसकी सफलता निहित होती है। परन्तु यदि यह दोनों विरोधाभासी गुण एक ही व्यक्ति में हों तो निश्चित रूप से ही वह एक अपवाद व्यक्तित्व होगा। यह व्यक्ति है इंग्लैंड का तेज गेंदबाज फ्रैंक टायसन जिसका जन्म 6 जून, 1930 को लंकाशायर के फार्नवर्थ मे हुआ। यद्यपि टायसन को हाल, ग्रिफिथ, लिंडवाल, लारवुड या लिली-थामसन जितना सफल तेज गेंदबाज नहीं माना जाता लेकिन जहां तक रफ्तार का सवाल है टायसन इन सबको पीछे छोड़ देता है।

फ्रैंक टायसन ने तेज गेंदबाज, एक अध्यापक, हैडमास्टर के रूप में जितनी लोकप्रियता पाई उन्हें उससे कहीं अधिक प्रसिद्धि मिली एक लेखक, पत्रकार तथा कमेंटेटर के रूप मे। आज भी उनकी समीक्षा अकाट्य तथा सटीक मानी जाती है। इसके अलावा उन्होंने विक्टोरिया में मुख्य प्रशिक्षक के रूप मे नवोदित प्रतिभाओ को संवारने का काम भी बखूबी किया।

शुरुआत—टायसन ने प्रथम श्रेणी क्रिकेट मे अपेक्षाकृत देरी मे कदम रखा।

22 वर्ष की उम्र में वह पहली बार लंकाशायर की टीम मे चयन के लिए ट्रायल पर गए परन्तु इससे पहले कि वह लंकाशायर टीम में चुने जाते, पड़ोसी नार्थपटन-शायर ने उन्हें अपनी टीम में शामिल कर लिया। टायसन को प्रथम श्रेणी क्रिकेट मे सबसे पहले भारत के खिलाफ ही मौका दिया गया। 1952 मे भारत की टीम नार्थपटनशायर के खिलाफ मैच खेलने उतरी। टायसन जैसे ही पहली गेंद फेंकने के लिए आए उन्होने गेंद का पहला टिप्पा पहली स्लिप से भी पांच गज पीछे फेंका। दर्शक उपहास स्वरूप हस पड़े लेकिन इसके बाद टायसन ने अपनी गति, नियन्त्रण तथा लेंग्थ से भारतीय टीम को ही नही वल्कि दर्शकों को भी इतना प्रभावित किया कि वे उन्हें 'तूफानी टायसन' के विशेषण से विभूषित किए बिना न रह सके।

पहला टेस्ट—टायसन को टेस्ट में पाकिस्तान के खिलाफ ओवल टेस्ट मे प्रवेश मिला। पहली ही पारी में वह इग्लैंड की ओर से सफलतम गेंदबाज सिद्ध हुए। उन्होने केवल 35 रन देकर 13.4 ओवरों मे ही चार विकेट उखाड़ फेंके थे।

यादगार प्रदर्शन—पाकिस्तान के खिलाफ इस प्रदर्शन के आधार पर टायसन को उसी वर्ष होने वाले आस्ट्रेलिया दौरे के लिए चुन लिया गया। पहले टेस्ट मे तो टायसन ने 160 रन देकर एक विकेट ही हासिल किया। लेकिन इसके बाद उनका प्रदर्शन एक इतिहास बन गया। दूसरे टेस्ट में टायसन ने अपना रन अप काफी कम कर लिया लेकिन उन्हें विध्वंसकारी गेंदबाजी की प्रेरणा मिली लिंड-वाल के एक बाउंसर से। इस बाउंसर से उनके सिर के पीछे चोट लगी तथा दो पुलिस वाले उन्हें सहारा देकर मैदान के बाहर लाए। बस फिर क्या था, टायसन ने देखते-ही-देखते दोनों पारियों मे कुल दस विकेट बिखेर दिए। इग्लैंड ने टायसन की गेंदबाजी की बदौलत ही यह टेस्ट 58 रन से जीत लिया।

इसके बाद मेलबोर्न में हुए तीसरे टेस्ट में जो हुआ वह एक क्रिकेट की पुस्तकों मे एक अचंभे के रूप मे दर्ज है। टायसन ने दूसरी पारी में केवल 27 रन देकर सात खिलाड़ियों को पेवेलियन का रास्ता दिखा दिया था। आस्ट्रेलिया के अन्तिम आठ विकेट केवल 36 रन में ही निकल गए थे। टायसन ने अपनी अंतिम 51 गेंदों में सिर्फ 16 रन देकर 6 विकेट उखाड़े थे। हार्वे की गेंद पर विकेट कीपर इवांस ने जैसे ही अपने दाएं ओर डाइव लगाकर खूबसूरत कैच लिया। टायसन का करिश्मा शुरू हो गया। असामान्य उछाल वाली पिच का टायसन ने बखूबी लाभ उठाया। आस्ट्रेलिया केवल 111 रन बनाकर आउट हुआ और इग्लैंड को 128 रन की अविश्वसनीय विजय मिल गई। पूरी शृंखला मे टायसन ने 28 विकेट अर्जित की।

चोटों का कुप्रभाव—टायसन के टेस्ट कैरियर पर मैदान में लगी चोटों का बहुत बुरा असर पड़ा। वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने क्रिकेट इसीलिए छोड़ी कि वह चोटों से बुरी तरह त्रस्त थे। टायसन ने 1954 से 1956 तक विश्व

क्रिकेट में तहलका मचाया लेकिन सिर्फ 17 टेस्ट ही खेल पाए। उन्होंने अपना अन्तिम टेस्ट 1958-59 मे न्यूजीलेंड के खिलाफ आकलैंड में खेला। रिटायर होने के बाद वह आस्ट्रेलिया में बस गए।

शैली—टायसन का गेंदबाजी एक्शन बड़ा ही अजीब था। प्रारम्भ में वह लगभग 50 गज के रन अप से गेंद फेंकते थे पर धीरे-धीरे रन अप कम होता गया लेकिन गेंद की तेजी पर विशेष अन्तर नही पड़ा। वह अन्य तेज गेंदबाजों की तरह गेंद फेंकते समय शरीर को हवा में ज्यादा नही झुलाते थे बल्कि एक स्पिनर के एक्शन से गेंदबाजी करते थे। दरअसल गेंद में तेजी का कारण उनका लम्बा-तगड़ा तथा सुडोल बाजुओ वाला शरीर था।

एक क्रिकेट समीक्षक ने टायसन के बारे में लिखा है कि अगर शेक्सपीयर अपनी किसी रचना में तेज गेंदबाज का उल्लेख करते तो निश्चित रूप से टायसन का जिक्र आता।

टेस्ट रिकार्ड—17 टेस्ट, 24 पारी, 230 रन, (10.95 औसत), 76 विकेट (18.56 औसत) 7-27 सर्वश्रेष्ठ।

फ्रेंक वारेल

वेस्ट इंडीज के संसार प्रसिद्ध तीन डब्ल्यूज का नाम क्रिकेट की दुनिया में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। वारेल, वीक्स, वॉलकॉट—इन तीनो ने मिलकर विश्व के अच्छे-से-अच्छे गेंदबाज के धुर्रे बिखेरने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इस क्रिकेट जादूगर का जन्म बारबाडोस के एक साधारण परिवार मे 1 अगस्त, 1924 को हुआ। वारेल का बचपन कष्ट और आर्थिक संकटों से गुजरा। बचपन में एक बार एम्पायर क्लब की दीवार लांघने के प्रयास में वारेल के दाएं हाथ में फ्रेक्चर हो गया, लेकिन जिस व्यक्ति की नस-नस में क्रिकेट समाया हो वह हाथ तुड़वाने के बाद चुप कैसे बैठ सकता था। उसने बाएं हाथ से गेंद फेंकने का अभ्यास शुरू कर दिया। फ्रेक्चर तो ठीक हो गया किन्तु बाद में भी उसने बाएं हाथ से ही गेंद फेंकना जारी रखा—क्योकि उसमें उसने इतनी प्रवीणता अर्जित कर ली थी कि उसे छोड़ना असम्भव था।

वारेल की क्रिकेट प्रतिभा दूसरे विश्व युद्ध के बाद चमकी। अपने पहले ही प्रथम श्रेणी के मैच मे उसने अपने को सफल गेंदवाज के रूप में स्थापित कर लिया। सन् 1939 से 1945 के मध्य वह वेस्टइंडीज का एक सफल आल राउण्डर बन चुका था। एक मैच मे उसने अपराजित रहकर 308 रन ठोक दिए। जॉन गोडार्ड के साथ इसी मैच में वारेल ने चौथे विकेट की भागीदारी मे 502 रन बनाए—जो एक रिकार्ड था। बाद में इसी रिकार्ड को वारेल ने वॉलकॉट को साथ लेकर 574 रनों की भागीदारी करके तोड़ा। ऐसा खिलाड़ी जिसने दो बार

500 रनों की भागीदारी की हो, क्रिकेट इतिहास में दीया लेकर भी ढूंढ़ने पर नहीं मिलता'''आज भी नहीं'''।

उब्ल्यू तिकड़ी का टेस्ट रिकार्ड

	टेस्ट	पारियां	न. आउट	रन	उ. स्कोर	औसत	शतक
एवर्टन वीक्स	48	81	5	4455	207	58.61	15
फ्रेंक वारेल	51	87	9	3860	261	49.48	9
क्लाइड वाल्काट	44	74	7	3798	220	56.68	15

ब

बलबीर सिंह (भारोत्तोलन)

दिल्ली के बलबीर सिंह ने सर्वप्रथम 1958 में कटक में राष्ट्रीय प्रतियोगिता मे मिडिल हैवी वेट चेम्पियनशिप जीती। इसके बाद 1959 में बम्बई में इन्होने लाइट हैवी वेट चैम्पियनशिप जीती। 1960 दिल्ली, 1962 जबलपुर और 1963 कटक मे ये मिडिल हैवीवेट चैम्पियन रहे। इसके बाद ये हैवीवेट वर्ग मे आ गए और 1964 कलकत्ता और 1965 कोयम्बतूर की प्रतियोगिताओं मे यह राष्ट्रीय चैम्पियन रहे। 1965 में दिल्ली राज्य भारोत्तोलन प्रतियोगिता में इन्होंने 'प्रेस' मे 130.5 किलो वजन उठाकर के० ईश्वरराव का रिकार्ड तोड़ दिया।

यह देश के एक ऐसे अनोखे भारोत्तोलक हैं जिसने 1958 से लगातार 13 वर्ष तक राष्ट्रीय चैम्पियन का गौरव प्राप्त किया। इस बीच उन्हे अपना कोई प्रतिद्वन्द्वी तक नहीं मिला। उन्होंने 37 बार अपने ही रिकार्डों में सुधार किया। अन्तिम रूप से उन्होंने 422.5 किलो का रिकार्ड स्थापित किया।

बलबीर सिंह का जन्म 31 अगस्त, 1935 को हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने दिल्ली के मोरीगेट गवर्नमेंट स्कूल मे प्राप्त की। एफ० ए० की परीक्षा उन्होंने प्राइवेट रूप से (कैंप कालेज से) प्राप्त की। लोग खेलकूद को स्कूल और कालेजों में अनिवार्य विषय बनाने की दुहाई देते हैं, लेकिन इसी बलबीर सिंह को बी० ए० मे प्रवेश पाने के लिए दर-दर भटकना पड़ा था, क्योंकि वह केवल 1 प्रतिशत कम नम्बर प्राप्त कर पाए थे। तब वह दिल्ली राज्य के भारोत्तोलन चैम्पियन थे। उनका कहना है, "एफ० ए० में पढ़ते समय ही मैंने भारोत्तोलन का अभ्यास शुरू कर दिया था। जो 'पीरियड' खाली होता मैं पचकुइया रोड पर भारोत्तोलन का अभ्यास करने चला जाता।" 1954 मे खाद्य मन्त्रालय मे एल० डी० सी० के रूप में उन्होने नौकरी शुरू की। उन्हें भारत सरकार ने अर्जुन

पुरस्कार से भी अलंकृत किया। वह अब खाद्य निगम में सहायक निदेशक हैं।

बलबीर सिंह, हाकी

10 अक्तूबर 1924 को हरिपुर (पंजाब) में जन्मे बलबीर सिंह देश के सर्वश्रेष्ठ सेंटर फारवर्डों में से एक रहे हैं। 1948 लंदन ओलम्पिक की विजय में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। 1952 के हेलसिंकी ओलम्पिक में भारतीय टीम के 13 गोलों में 9 गोल बलबीर ने किये थे जो उनकी श्रेष्ठता की कहानी स्वयं कहते हैं। 1956 में बलबीर के नेतृत्व में भारत ने मेलबोर्न ओलम्पिक में लगातार छठी बार स्वर्ण पदक जीता। बलबीर 1958 के एशियाई खेलों में भी भारतीय टीम के कप्तान थे। बलबीर को सन् 1957 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

बहादुर सिंह

यह एक सुखद संयोग की ही बात थी कि 1973 में मनीला में हुई एशियाई एथलेटिक प्रतियोगिता में गोला फेंकने (शाट पुट) की प्रतियोगिता में प्रथम तीन स्थान भारतीय खिलाड़ियों को ही प्राप्त हुए। उस समय विजय मंच पर जो तीन खिलाड़ी खड़े थे उनके नाम थे : जगराज सिंह, गुरदीप सिंह, और बहादुर सिंह। जगराज को स्वर्ण पदक, गुरदीप को रजत और बहादुर को कांस्य पदक मिले थे। जगराज, जिसने स्वर्ण पदक हासिल किया था, टेल्को (जमशेदपुर) में आज भी बहादुर सिंह के साथ कार्यरत है। इन तीनों प्रतियोगिताओं में बहादुर ही सबसे छोटी उम्र वाला था। तब उसकी उम्र महज 23 वर्ष की थी। 1975 में सियोल में आयोजित एशियाई एमेच्योर एथलेटिक चैम्पियनशिप में बहादुर सिंह ने सोने का तमगा हासिल कर एशिया में अपनी सर्वोच्चता प्रकट की।

यह ऐसा पहला भारतीय एथलीट है, जिसने शाट पुट को 18 मीटर से कहीं ज्यादा दूर फेंका है। तेहरान के एशियाई खेलों के लिए 1974 में बंगलौर में आयोजित चयन प्रतियोगिता में बहादुर सिंह ने 18.44 मीटर शाट पुट फेंका था। 1982 में दिल्ली में हुए 9वें एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त किये।

पदक तालिका

1973	बैंकाक एशियाई दौड़ कूद	कांस्य
1974	तेहरान एशियाई खेल	रजत
1975	सियोल एशियाई दौड़कूद	स्वर्ण
1977	विश्व कप—डसलडर्फ	स्थान नहीं
1978	बैंकाक एशियाई खेल	स्वर्ण
1979	टोकियो एशियाई दौड़कूद	कांस्य
1980	मैक्सिको अंतरराष्ट्रीय	पदक नहीं
1981	टोकियो एशियाई दौड़कूद	रजत

बाथम, इयान

बाथम के रिकार्ड भी अपने आप में एक कीर्तिमान हैं। वह 3000 से अधिक रन बना चुका है और 300 विकेट भी ले चुका है। यह उपलब्धि अब तक केवल तीन खिलाड़ी ही प्राप्त कर सके हैं। अन्य दो हैं पाकिस्तान के इमरान खान और न्यूजीलैण्ड के रिचर्ड हैडली।

सबसे कम समय में दोहरा डबल

इयान बाथम ने दोहरा डबल (2000 रन और 200 विकेट) पूरा करने मे सबसे कम समय लिया और सबसे कम टेस्टों में यह श्रेय हासिल किया। दोहरा डबल हासिल करने वाले अन्य खिलाड़ी हैं—सोबर्स, इमरान, कपिल और रिची बेनो। इनका रिकार्ड इस प्रकार है :—

खिलाड़ी	टेस्ट	रन	विकेट	प्रति टेस्ट रन	प्रति टेस्ट विकेट	समय	डबल का टेस्ट
इयान बाथम (इग्लैंड)	64	3686	283	57.59	4.11	4 वर्ष 126 दिन	42
सोबर्स (वेस्ट इंडीज)	93	8032	235	86.37	2.52	17 वर्ष 4 दिन	80
इमरान (पाकिस्तान)	52	2178	232	41.89	4.64	12 वर्ष 211 दिन	50
कपिल देव (भारत)	62	2483	247	40.05	3.98	4 वर्ष 150 दिन	5)
रिची बेनो (आस्ट्रेलिया)	63	2201	248	34.94	3.94	9 वर्ष 6 दिन	60

बापू नादकर्णी

भारत में टेस्ट स्पिनरों का स्वर्णिम युग रहा है। हालांकि इस युग के मुख्य कर्णधार बेदी, प्रसन्ना, चंद्रा और वेंकट ही कहे जाते हैं लेकिन इनसे पूर्व जिस खब्बू स्पिनर ने अपनी कलापूर्ण व चतुराई से विश्व क्रिकेट को चमत्कृत किया वह था बापू नादकर्णी जिनका जन्म 4 अप्रैल, 1932 को नासिक में हुआ था।

नादकर्णी जितने अच्छे गेंदबाज थे उतने ही अच्छे बल्लेबाज, यह उनका दुर्भाग्य रहा कि वह टेस्ट क्रिकेट में 100 विकेट और 1000 रन का रिकार्ड पूरा करने से चूक गए। अन्यथा वीनू मांकड के बाद यह श्रेय प्राप्त करने वाले वह दूसरे आल राउंडर होते। नादकर्णी को 1955-56 मे न्यूजीलैंड के विरुद्ध दिल्ली टेस्ट में पहली बार खिलाया गया। एक गेंदबाज के रूप मे तो उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली लेकिन 68 रन बनाकर उन्होंने अपनी बल्लेबाजी का मजबूत दावा पेश किया। इस पर भी कलकत्ता और मद्रास टेस्ट में नादकर्णी को

मौका नहीं मिला। अगले वर्ष आस्ट्रेलिया के विरुद्ध भी नादकर्णी टेस्ट क्रिकेट से वंचित रहे।

1958-59 में एलेक्जेंडर के नेतृत्व में वेस्टइंडीज की टीम भारत भ्रमण पर आयी। बंबई में उन्होंने दो विकेट लिये। अगले चार टेस्टों में नादकर्णी का नाम टेस्ट टीम से फिर गायब था।

1959 में दत्तू गायकवाड़ के नेतृत्व में भारतीय टीम इंग्लैंड दौरे पर गयी। पहले टेस्ट में नादकर्णी बहुत शानदार गेंदबाजी कर रहे थे और दो विकेट भी हासिल कर चुके थे लेकिन उसी समय स्टैथम की एक तेज ड्राइव को रोकने का प्रयास करते हुए उनका हाथ जख्मी हो गया। फलस्वरूप वह उस टेस्ट में आगे गेंदबाजी नहीं कर पाये और न ही लार्ड्स में हुए दूसरे टेस्ट में खेल पाये। इस शृंखला में उन्होंने कुल 9 विकेट प्राप्त किये और 193 रन बनाये। 1959-60 में आस्ट्रेलिया की भ्रमणकारी टीम के खिलाफ नादकर्णी पांचों टेस्ट खेले। नादकर्णी को तब तक एक प्रमुख गेंदबाज की हैसियत प्राप्त नहीं हुई थी। कानपुर में हुए दूसरे टेस्ट में तहलका मचाने वाले जसु पटेल बंबई टेस्ट में नहीं खेल पाये तो नादकर्णी का पूरा उपयोग किया गया। उन्होंने 105 रन देकर छह खिलाड़ियों को आउट किया। इस शृंखला में उन्होंने कुल 10 विकेट प्राप्त किये और 150 रन बनाये।

टेस्ट रिकार्ड : 41 टेस्ट 1414 रन, (औसत 25.70), एक शतक, 88 विकेट (औसत 29.07), 22 कैच।

बाब बीमन

जमैका में जन्मे अमेरिकी नीग्रो खिलाड़ी बाब बीमन ने मैक्सिको ओलम्पिक खेलों (1968) में 8.90 मीटर (29 फुट 2.5 इंच) लम्बी छलांग लगाई तो लोगों को इस बात पर यकीन नहीं हुआ। निर्णायक और अन्य खेल अधिकारी पांच मिनट तक फीता हाथ में लेकर यह दूरी मापते रहे और बड़े ध्यान से यह देखते रहे कि कहीं फीते में तो कोई गड़बड़ नहीं है। मगर कहीं भी कुछ गड़बड़ नहीं थी। बाब बीमन ने सचमुच 29 फुट 2.5 इंच लम्बी छलांग लगाई थी। 1896 तक लम्बी कूद की प्रतियोगिता में अमेरिका का ही बोलबाला रहा, लेकिन 1964 में तोक्यो ओलम्पिक में ब्रिटेन के लिन डेविस ने इस खेल में स्वर्ण पदक प्राप्त किया, मगर 1968 में अमेरिका ने इस खेल में फिर अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर लिया। बाब बीमन द्वारा स्थापित इस कीर्तिमान को टूटने में अब कई वर्ष लगेंगे। इस खेल के कीर्तिमानों में अब तक खिलाड़ी इंचों के हिसाब से सुधार करते थे, मगर दुनिया में सबसे लम्बी टांगों वाले इस खिलाड़ी ने तो पिछले कीर्तिमान में फुटों के हिसाब से सुधार कर डाला। इस प्रतियोगिता का

पिछला रिकार्ड 27 फुट 4.75 इंच का था जो कि राल्फ बोस्टन और तेर ओवानेस्यान द्वारा संयुक्त रूप से स्थापित किया गया था।

अमेरिका ने राल्फ बोस्टन ने कुछ ही दिन पहले यह भविष्यवाणी की थी कि बाब बीमन 28 फुट 10 इंच लम्बी छलाग लगाने की क्षमता रखता है। मगर जब मैक्सिको ओलम्पिक खेलो में यह घोषणा की गई कि बीमान ने 29 फुट से भी ज्यादा लम्बी छलांग लगाई है तो राल्फ बोस्टन सबसे पहले मैदान में अपने परिचित और प्रतिद्वन्द्वी 21 वर्षीय बाब बीमन को बधाई देने के लिए पहुचे राल्फ बोस्टन ने, जो 1960 में लम्बी कूद प्रतियोगिता मे स्वर्ण पदक और 1964 में रजत पदक प्राप्त कर चुके थे, 1968 मे केवल कास्य पदक प्राप्त करने में ही सफल हो सके। लेकिन उन्हे अपनी हार का इतना गम नही था जितनी अपने साथी की इस असाधारण जीत पर खुशी। इस खेल के जानकारों का कहना है कि बाब बीमन को कूदने की प्राकृतिक देन प्राप्त है।

बाबर (इलियास)

जन्म 1 फरवरी, 1926। स्वयं 100 मीटर बाधा (हर्डल) के खिलाड़ी रहे और 1945 मे उस्मानिया विश्वविद्यालय की ओर से उन्होने श्रीलंका का दौरा किया। बी० काम० तक की शिक्षा प्राप्त करने वाले इस उस्ताद का कहना है कि यह कहना एकदम गलत है कि खेलकूद मे हिस्सा लेने वाले छात्र पढाई मे इतने अच्छे साबित नही होते। संयोग से जितने भी मेरे शिष्य रहे वे सब पढ़ाई मे बहुत अच्छे साबित हुए। शिक्षा पूरी करने के बाद बाबर ने 7-8 साल तक हैदराबाद के एथलीटों को प्रशिक्षित किया। 1958 में वह नेशनल डिफेंस अकादमी कड़कवासला (पूना) में प्रशिक्षक नियुक्त हुए। चार साल तक उन्होंने राजदूत रेजीमेंट सेन्टर फतेहगढ उ० प्र० मे प्रशिक्षक का काम किया। तीन साल तक ई० एम० ई० सेन्टर सिकंदराबाद मे और 1967 से वह राजपूताना राइफल मे प्रशिक्षक का कार्य कर रहे हैं। और इस समय जितने भी चोटी के प्रशिक्षक हैं वे सभी बाबर के शिष्य हैं और उनमे से अधिकाश राजपूताना राइफल के ही है।

बेछिन्द्री पाल

23 मई, 1984 को दोपहर एक बजकर सात मिनट पर कुमारी बेछिन्द्री पाल ने एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने वाली प्रथम भारतीय महिला होने का गौरव प्राप्त किया। जब, उत्तर काशी मे जन्मी बेछिन्द्री विश्व मे एवरेस्ट फतह करने वाली पांचवी महिला है। वैसे जापान की जुनको तबई ने 1974 मे सबसे पहले यह गौरव प्राप्त किया था।

आज भारतीय महिलाओं ने खेलकूद के क्षेत्र में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर ली है। कल तक दुनिया के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ना पुरुषों के लिए असभव समझा जाता था आज महिलाओं के लिए बायें हाथ का खेल बन गया है। इस क्षेत्र में पहल का सुख बेछन्द्री पाल को है। उनके इसी साहस के लिए झट से उन्हें 1984 में अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत किया गया।

बायकाट ज्योफ

ज्योफ बायकाट का जन्म 21 अक्तूबर, 1940 को यार्कशायर के फिट्ज-विलियन स्थान में हुआ। बायकाट ने प्रथम श्रेणी की क्रिकेट में 1962 में कदम रखा और 1963 में वह यार्कशायर टीम का सदस्य बना। 1963 में ही उसे इंग्लैंड का वर्ष का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी घोषित किया गया। 1964 में उसने आस्ट्रेलिया के विरुद्ध टेस्ट क्रिकेट में कदम रखा और उस वर्ष बाबी सिम्पसन की टीम के विरुद्ध शृंखला के 4 टेस्ट मैचों की 6 पारियों में 48.50 रन के औसत से कुल 291 रन बनाए, जिनमें एक शतक (ओवल के अन्तिम टेस्ट में) और एक अर्द्ध-शतक (ओल्ड ट्रैफर्ड में हुए चौथे टेस्ट में) शामिल था। तब से लेकर बायकाट ने रनों व शतकों की झड़ी सी लगा दी। बायकाट का उच्चतम टेस्ट स्कोर 246 रन (आउट नहीं) है, जो उसने 1967 में मंसूरअली खां पटौदी की भारतीय टीम के विरुद्ध लीड्स टेस्ट में बनाया था। इंग्लैंड की ओर से टेस्ट क्रिकेट में बायकाट ने सबसे अधिक रन बनाए हैं। टेस्ट क्रिकेट में उनके रनों के रिकार्ड को गावस्कर ही पार कर पाया है।

कांटैक्टलेंस पहनकर खेलने वाला बायकाट 1971 में यार्कशायर का कप्तान है। उसके क्रिकेट जीवन का सबसे शानदार सत्र 1971 का रहा, जब उसने 100.12 रन प्रतिपारी की औसत से 2503 रन बनाए, जिनमें 13 शतक शामिल थे। काउंटी क्रिकेट में आज तक इंग्लैंड के किसी खिलाड़ी की इतनी ऊंची औसत नहीं रही। प्रथम श्रेणी के मैचों में बायकाट का उच्चतम स्कोर 261 रन (आउट नहीं) है, जो उसने 1973-74 में वेस्टइंडीज प्रेजीडेंट इलेविन के विरुद्ध ब्रिजटाउन में बनाया था। प्रथम श्रेणी के मैचों में बायकाट अब तक 30,000 से अधिक रन बना चुका है। उसने अब अपने क्रिकेट-जीवन के सौ शतक पूरे कर लिए हैं।

बॉयकाट, इंग्लैंड के उन चार बल्लेबाजों में एक है जो टेस्ट क्रिकेट खेलने वाले प्रत्येक देश के विरुद्ध शतक लगा चुके हैं। बायकाट के अतिरिक्त यह श्रेय केन बैरिंगटन, कोलिन काउड्रे एवं हैमण्ड को प्राप्त है।

इतनी महान प्रतिभा का स्वामी होने के बावजूद ऐसा नहीं कि बॉयकाट के क्रिकेट जीवन में कोई विवाद आया ही न हो—क्या आप मानेंगे कि बॉयकाट को टेस्ट मैच में दोहरा शतक बनाने के बाद टीम से निकाल दिया गया था। 1967 में भारत के विरुद्ध बॉयकाट ने 246 रन बनाए, लेकिन चयनकर्त्ताओं का विचार था कि बॉयकाट बहुत धीमा खेला और उसने टीम को नुकसान पहुंचाया—दंड स्वरूप उसे टीम से निकाल दिया गया।

1974 से 1977 के अरसे में वह टेस्ट क्रिकेट नही खेला और इस बीच इंग्लैंड ने 30 टेस्ट मैच खेले। शायद चयनकर्त्ताओं द्वारा उसके स्थान पर टोनी ग्रेग को कप्तान बनाया जाना इसका एक कारण रहा हो। 1977 में उसे फिर से टेस्ट क्रिकेट में खिलाने का निर्णय लिया गया और एशेज शृंखला में उसने 107,80, 191, 39 एवं 25 की पारियां खेली।

बाब विलिस

जीवन के खेल मे सफलता हमेशा उसी को मिलती है जो सामने आने वाली तमाम बाधाओं को हिम्मत से पार कर लेता है। ऐसे ही सफल क्रिकेट खिलाड़ियों में बाब विलिस (जन्म: 30 मई, 1949) का नाम भी शामिल है। विलिस की यह संघर्ष क्षमता इस कारण और भी अतुलनीय है कि वह तेज गेंदबाज था जिसके लिए संघर्ष क्षमता के साथ-साथ शारीरिक दम-खम का होना भी बहुत जरूरी होता है।

विलिस ने अपना क्रिकेट जीवन 1969 में सरे की ओर से खेलते हुए आरंभ किया। काउंटी क्रिकेट में प्रवेश करते ही उसने कोई तहलका नही मचाया। इसका एक कारण था और वह यह था कि विलिस अपने 'रन अप' मे अक्सर चूक कर जाया करता था। उसका 'रन अप' अन्य गेंदबाजों की तरह लम्बा ही था और विलिस वहा से भागता हुआ आता था किन्तु विकेट के पास पहुंच क्षण भर के लिए रुक जाता था। इस खामी की वजह से उसकी गेंद मे अपेक्षित तेजी नही आ पाती थी। विलिस के प्रशिक्षक आर्थर मेकलिनटायर ने इस गलती को पकड़ा और फिर इसे सुधारा भी।

1970-71 में आस्ट्रेलिया में 'एशेज' शृंखला में विलिस को एलन वार्ड के स्थान पर बाद मे बुलाया गया। अपने पहले टेस्ट में तो उसे केवल एक विकेट ही मिल सकी लेकिन बाद के तीन और टेस्ट मैचों मे उसे 11 विकेट और मिली औसत रही 27.41।

इसके बाद 1974 तक वह वेस्ट इंडीज, भारत और पाकिस्तान के खिलाफ शृंखलायें खेला लेकिन धमाकेदार सफलता का इन्तजार [illegible] ऐसी विस्फोटक सफलता उसे पहली बार 1974 मे वेस्ट इंडीज के [illegible] टेस्ट मैचों

मे 30.70 की औसत से उसने 17 विकेट उखाड़ी थी।

इसी शृंखला के दौरान विलिस के घुटने में पहली बार असह्य दर्द उठा। विलिस हताश और निराश हो गया। क्रिकेट समीक्षकों ने उसके बारे में आशंका व्यक्त कर दी कि घुटने की चोट एक अन्य तेज गेंदबाज को निगल गई। विलिस के घुटने का आपरेशन हुआ और धीरे-धीरे वह क्रिकेट मैदान पर उतर आया। यही वह समय था जब विलिस ने महसूस किया कि अपने आपको 'फिट' रखने के लिए प्रतिदिन अभ्यास कितना जरूरी है। विलिस ने प्रतिदिन दौड़ लगाना और व्यायाम करना एक नियम बना लिया।

1976 में वह फिर मैदान में उतरा और दो टेस्टों में ही वेस्ट इंडीज के 11 विकेट उखाड़ कर यह जता दिया कि वह कितनी हिम्मत और जीवट वाला खिलाड़ी है। हैडिंग्ले टेस्ट में उसने दूसरी पारी में केवल 42 रन देकर वेस्ट इंडीज के 5 विकेट उखाड़ फेंके थे। पूरे मैच में उसने 8 विकेट लिए थे।

1976-77 में टानी ग्रेग के नेतृत्व में वह भारत भ्रमण पर आया और पांचों टेस्ट मैच खेलते हुए केवल 16.75 की औसत से 20 भारतीय बल्लेबाजों को पैवेलियन लौटाने में सफलता हासिल की।

क्रिकेट विज्ञों का कहना है कि माइक ब्रेयरली के कप्तान बनने के बाद विलिस की प्रतिभा और निखरकर सामने आयी। 1977-78 में पाकिस्तान व न्यूजीलैंड के खिलाफ तीन-तीन टेस्टों की शृंखलाओं में उसने 21 विकेट लिए। 1978 में पाकिस्तान के विरुद्ध उसने 17.92 औसत से 13 विकेट और न्यूजीलैंड के विरुद्ध 17.92 की औसत से 12 विकेट उखाड़ी।

1978-79 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 6 टेस्ट मैचों मे उसने 20 और वेस्ट इंडीज के खिलाफ 3 टेस्ट मैचों में 10 विकेट हासिल कीं। अगले वर्ष आस्ट्रेलिया और वेस्ट इंडीज के खिलाफ उसकी सफलता का यह क्रम निर्बाध रूप से जारी रहा लेकिन 1980 में वेस्ट इंडीज के दौरे पर अचानक विलिस के घुटने का दर्द फिर उभर आया। वह वेस्ट इंडीज दौरा अधूरा छोड़कर स्वदेश लौट आया। एक बार फिर उसके टेस्ट जीवन की समाप्ति की आशंकाएं जागृत हो उठी। फिर विलिस का आपरेशन हुआ और वह पुनः अपनी संघर्ष क्षमता और इच्छा शक्ति से मैदान में था।

1981 में उसने आस्ट्रेलिया के 29 खिलाड़ी आउट किए। इंग्लैंड यह शृंखला अप्रत्याशित रूप से जीता था। विशेषकर हैडिंग्ले टेस्ट जिसमें इंग्लैंड को फालोआन करना पड़ा था लेकिन बाद विलिस ने आस्ट्रेलिया के 8 विकेट केवल 43 रन पर उखाड़ कर इंग्लैंड को अविश्वसनीय ढंग से जिता दिया था।

1982 में विलिस को इंग्लैंड का कप्तान बना दिया गया। भारत के खिलाफ न केवल उसने 1-0 से शृंखला जीती बल्कि 22.00 की औसत से 15 विकेट भी

हासिल कीं। उसी के नेतृत्व में इसके फौरन बाद इंग्लैंड ने पाकिस्तान के विरुद्ध भी शृंखला जीती।

कप्तान के रूप में पहली असफलता विलिस को आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 1982-83 में मिली जब इंग्लैंड को 1-2 से पराजित होना पड़ा। विलिस ने 27.00 की औसत से 18 विकेट प्राप्त की थीं। तत्पश्चात् विश्व कप में इंग्लैंड सेमी-फाइनल में भारत से 6 विकेट से हार गया था।

इसके तुरन्त बाद न्यूजीलैंड को इंग्लैंड ने अपने ही देश में 2-1 से हराया। इसी शृंखला में विलिस ने 300 विकेट पूरी कीं। लेकिन इसके बाद न्यूजीलैंड और पाकिस्तान के खिलाफ इंग्लैंड की दो लगातार असफलताओं से विलिस को ब्रिटिश प्रेस की आलोचना का कोप भाजन बनना पड़ा। पाकिस्तान दौरे में ही उसकी पीठ में दर्द उठ खड़ा हुआ। डाक्टरों ने स्पष्ट रूप से विलिस को बता दिया कि अब वह क्रिकेट नहीं खेल पाएगा परिणामस्वरूप इस वर्ष विलिस को संन्यास लेना पड़ा।

विलिस संगीत का रसिया है। अमेरिकी गायक बाब डायलन उसका पसंदीदा गायक है। इसीलिए उसने अपने नाम में बाब डायलन जोड़ा हुआ है। विलिस स्लिप में माहिर फील्डर भी समझा जाता रहा है।

टेस्ट रिकार्ड : 90 टेस्ट 128 पारी, 55 बार आ. न., 840 रन (औसत 11 50) 325 विकेट (औसत 25.20), 16 बार पारी में 5 विकेट, 8-43 सर्वश्रेष्ठ।

बास्कटबाल

19वीं सदी के दूसरे दशक के प्रारम्भ में स्प्रींगफील्ड अमेरिका में, बास्कटबाल की शुरुआत हुई और और इसके दो वर्ष बाद इसका एशिया महाद्वीप में भी प्रचलन हो गया। दुर्भाग्य से अभी तक किसी भी एशियाई देश ने विश्व अथवा ओलम्पिक की बास्कटबाल प्रतियोगिता में कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं की है। विश्व स्तरीय प्रतियोगिताओं में प्रायः एशियाई टीमों का स्थान नीचे की टीमों में ही होता है। 1980 में मास्को ओलम्पिक खेलों में भारत को पहली बार भाग लेने का सुअवसर मिला। यह दूसरी बात है कि इस प्रतियोगिता में भारत निम्न स्थान पर रहा। एशियाई सर्किट में कुछ ही देश— चीन, दक्षिण कोरिया, जापान, फिलीपीस सदैव प्रभुत्व जमाते आए हैं। एशिया में बास्कटबाल के निम्न स्तर का यदि कोई कारण हो सकता है तो वह खिलाड़ियों का छोटा कद होना है। अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेने के पर्याप्त अवसर भी नहीं मिल पाता है।

आर्थिक कठिनाइयां

असल में किसी भी खेल के स्तर का अनुमान प्रतिस्पर्धा से ही लगाया जा

सकता है। 1913 से ऐसे चंद देश रहे हैं जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामेंटों में भाग लेने का मौका मिला है। 1951 के एशियाई खेलों में बास्कटबाल को भी शामिल कर लेने से एशियाई दे   ा में
जाने, खेलने और   भाग
नहीं ले पाए हैं। कुछ ही देश ऐसे हैं जिन्होंने नियमित रूप से एशियाई खेलों में भाग लिया है। भारत ने केवल दो बार भाग लिया है।

एशियाई देशों के बास्कटबाल के स्तर को उठाने के लिए 1960 में एशियाई देशों की ए० बी० सी० प्रतियोगिता शुरू की गई और तब से लगातार प्रतियोगी देशों की संख्या में वृद्धि हो रही है फिर भी एशियाई बास्कटबाल महासंघ से संबद्ध 50 प्रतिशत देश अभी भी प्रतियोगिताओं में भाग नहीं ले रहे हैं।

एशियाई खेलों में 1962 तक फिलिपीस का प्रमुत्व रहा। इसका मुख्य कारण यह रहा कि फिलिपीस 1913 से लगातार पान-अमेरिकन प्रतियोगिता में भाग लेता रहा है। ए० बी० सी० प्रतियोगिता के बाद फिलिपींस का एकाधिकार समाप्त होने लगा तथा इजराइल, कोरिया और जापान एक नई शक्ति के रूप में उभरकर सामने आने लगे। चीन गणराज्य को 1974 में एशियाई खेलों में स्थान मिला और इसके बाद से वह अब एशियाई बास्कटबाल में बड़ी शक्ति बन गया
ी० सी०
ा, जापान
और फिलिपीस दूसरे से चौथा स्थान प्राप्त ले कर हैं। बास्कटबाल में इन महारथी देशों और अन्य देशों के बीच भारी अन्तर को देखते हुए भी कमजोर देशों ने अधिक उत्साह नहीं दिखाया है।

भारत में बास्कटबाल

भारतीय बास्कटबाल टीम 1965 से नियमित रूप से ए० बी० सी० में भाग लेती आ रही है। 1975 में भारतीय टीम चौथे स्थान पर रहने से भाग्यशाली रही। इसके बाद तो ए०बी०सी० में भारत ने अपनी पांचवीं स्थिति बरकरार रखी है। केशव कुमार और सुब्रह्मण्यम भारतीय पुरुष और महिला टीम को प्रशिक्षण दे रहे हैं। इन दोनों वर्गों की टीमों को अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव दिलाने के उद्देश्य से ए० बी० सी० प्रतियोगिता, सियोल आमंत्रण प्रतियोगिता तथा मास्को में प्रतिस्पर्धा और प्रशिक्षण दिया गया। हाल ही में एक सोवियत टीम ने भारत का दौरा किया था। इन खिलाड़ियों को शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान आधुनिकतम खेल सुविधाएं और उपकरण जुटाए गए हैं।

भारत के साथ-साथ अरब देशों में भी बास्कटबाल के स्तर में सुधार के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए यहां अमेरिका के प्रशिक्षक बुलाए गए हैं और अरब देशों की टीमें अमेरिका का दौरा कर रही हैं। इसी तरह जापान और दक्षिण कोरिया भी गम्भीरता से अपनी टीमों को तैयार करने में जुटे हैं।

एशियाई खेलों में

एशियाई खेलों मे महिला बास्कटबाल की शुरुआत देर से अर्थात् 1974 के तेहरान खेलों मे हुई। बैंकाक खेलों मे महिला बास्कटबाल की प्रतियोगिता हुई थी। इस प्रतियोगिता मे तब पांच देशों ने भाग लिया था। दक्षिण कोरिया, चीन और जापान महिला बास्कटबाल में पहले तीन स्थानों पर आए। इन खेलों के अलावा एशियाई बास्कटबाल चैंपियनशिप में भी इन तीनों देशों ने ही पहले तीन स्थान बनाए।

भारतीय महिलाओं का स्तर निम्न होने के कारण भारत ने एशियाई खेलों में अपनी प्रविष्टियां नहीं भेजीं। चूंकि 1982 के एशियाई खेलों की मेजबानी भारत ने की। इसलिए भारतीय पुरुष टीम के साथ-साथ महिलाओं को भी एक योजनाबद्ध ढंग से शिक्षण-प्रशिक्षण जुटाया गया। चीन की पुरुष टीम का स्तर एशिया में बहुत अच्छा है और उसे एशियाड से पूर्व कोलंबिया में विश्व चैम्पियनशिप में भाग लेने का गौरव भी प्राप्त है। इन दौरों से एशिया टीमों के स्तर मे नि:संदेह सुधार हुआ है।

आशा करनी चाहिए कि यूरोप, अमेरिका के दौरे और एशियाई टीमों के अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामेंट में भाग लेने से एशिया का विश्व बास्कटबाल में नाम ऊंचा होगा।

बिल 'बिग' टिल्डन

क्रिकेट के क्षेत्र मे जो गौरव डब्ल्यू० जी० ग्रेस का था वही गौरव लान टेनिस के क्षेत्र में बिल टिल्डन का था। कुछ समय पहले सभी विबलडन चैंपियन द्वारा सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का चुनाव करवाया गया तो टिल्डन का नाम सर्वसम्मति से सामने आया। लम्बा, तगड़ा व कसरती शरीर वाले टिल्डन की छाप उसके तूफानी शाटों से थी। उसकी सर्विस की गति लगभग 124 मील प्रति घंटा आंकी गई। हल्के रैकिट से खेलने वाले टिल्डन के 'फोरहैंड्स' व 'बैकहैंड्ड' शाट्स दर्शनीय थे। यही कारण था कि टेनिस विशेषज्ञ उसे बेताज खिलाड़ी कहने से नहीं चूकते।

30 फरवरी, 1893 के फिलीपीडिया में जन्मे 'विलियम टेटम टिल्डन' ने टेनिस के प्रति जन्मजात प्रतिभा दिखाई और केवल सात वर्ष की उम्र मे पहला

कप जीता। उसके जीवन का युवा वर्ष प्रथम विश्व युद्ध के कारण बेकार चला गया फिर भी उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसके खेल में निखार आता गया। 1920 में उसने पहली बार टेनिस के तीर्थ में भाग लिया और पुरुष एकल का खिताब जीता। वह विंबलडन में एकल खिताब पाने वाला पहला अमेरिकी था। अगले वर्ष उसने बीमार होने के बावजूद अपने खिताब की रक्षा की। उसके बाद 1926 तक उसने विंबलडन में भाग नहीं लिया। 1927, 28, 29 में सेमी-फाइनल में अच्छे प्रदर्शन के बाद भी आगे न बढ़ सका। 1930 में अन्तिम बार विंबलडन में भाग लिया और फाइनल में अमेरिका के ही विल्मर एलीसन को 6-3, 9-7 व 6-4 से हराकर अपना सपना पूरा किया। 1920 से 1925 और 1929 में वह अमेरिकी चैंपियन भी रहा। 1923 में उसे अपने दाहिने हाथ की उंगली का ऊपरी भाग कटवाना पड़ा। फिर भी उसके खेल में कोई अन्तर नहीं आया।

1930 के बाद उसके खेल में उतार आना शुरू हो गया इसलिए उसने अपने आप को सीमित कर लिया। पत्नी से हमेशा अनबन रहने के कारण उसने शराब व सिगरेट का सहारा लेना शुरू कर दिया। संगीत प्रेमी टिल्डन ने अपने अन्तिम दिनों में कई नाटक व उपन्यास भी लिखे परन्तु उसके बावजूद वह अपनी घरेलू परिस्थिति से बिलकुल टूट चुका था। उसके जीवन के अन्तिम दिन बड़े कष्टपूर्ण बीते और अंततः 5 जून, 1953 को हालीवुड में उसकी मृत्यु हो गई।

बिली जिन 'किंग'

टेनिस की दुनिया में यों तो कई ऐसे खिलाड़ी मौजूद हैं जो अपने अद्भुत खेल के कारण हमेशा सराहे जाएंगे, पर टेनिस की महिला खिलाड़ी बिली जिन किंग का अपना अलग अंदाज रहा है। शायद इसीलिए उन्हें टेनिस की रानी कहा जाता है। उनकी प्रतिभा का हल्का-सा जायजा लेने के बाद ही यह स्पष्ट हो जाएगा।

बिली जिन, बिल एवं बेटि जिन की पहली संतान थी। परिवार की आर्थिक दशा अत्यन्त साधारण थी। इस कारण बिली को स्कूली जीवन में काफी आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा था, जबकि लास सेरिटोस एलिमेंटरी स्कूल के अधिकतर बच्चे पैसे वाले परिवार के थे। अतः उनके सामने बिली अपने आपको बहुत हीन समझती थी। वैसे बाद में *विभिन्न परिस्थितियों में* रहकर उन्होंने अपने मन से इस प्रकार की भावना को हटा दिया था।

बिली जिन जब पाच साल की थी तब उनके एक भाई रैंडी का जन्म हुआ। रैंडी जब पांच साल का हुआ तब से बिली जिन ने टेनिस के खेल में दिलचस्पी लेना शुरू किया। इसमें उन्हें अपने पिता का भी भरपूर सहयोग मिला, जो समय मिलते ही दोनो भाई-बहन को लेकर खेलते थे। बिली जिन ने शुरू में फुटबाल खेलना शुरू किया था, लेकिन मा को लड़की का फुटबाल खेलना अच्छा नहीं

लगा। इसलिए बिली को फुटबाल छोड़ना पड़ा और उसने अपने माता-पिता की पसन्द पर टेनिस खेलना शुरू कर दिया। बाद में इसी टेनिस के पीछे ये दीवानी हो गईं।

दस साल के होते न होते लांग बिच के हिउटन पार्क में उन्होंने टेनिस खेलना शुरू कर दिया था। क्लाइव वाकर नाम के एक प्रशिक्षक उन्हें टेनिस का प्रशिक्षण देते थे। वाकर को जब मालूम हुआ कि बिली की उम्र मात्र दस साल है, तो उन्होंने बहुत ही उत्साहित होकर उन्हें सिखाना शुरू किया और पहले ही दिन उनके खेल से वे इतने प्रभावित हो गए कि उन्होंने भविष्यवाणी कर दी कि यह लड़की एक दिन विश्व के अच्छे टेनिस खिलाड़ियों में गिनी जाएगी।

इस प्रशिक्षण के शुरू होने के तीन माह बाद बिली ने एक प्रतियोगिता में भाग लिया। लेकिन उसमें वह कोई करिश्मा न दिखा पाईं। फाइनल में जाकर सुसान विलियम से वह बहुत ही जल्दी हार गईं। इसके ठीक छह माह बाद 1955 के जून माह में बिली ने एक स्वीकृत प्रतियोगिता में भाग लिया। उस समय वह 11 साल की हो चुकी थी और उन्हें 13 वर्ष वाले ग्रुप में खेलना पड़ा था। पहला दौर जीतकर दूसरे दौर में उन्हें एन ज्यामिटकोमस्कि के साथ खेलना पड़ा। दोनों ने एक-एक सेट जीता, पर तीसरे सेट में बिली हार गईं। इसके पहले तीन सेट वाला मैच उन्हें कभी खेलना नहीं पड़ा था। लेकिन बिली जरा भी हताश नहीं हुईं और पूरी निष्ठा और परिश्रम के साथ अपना अभ्यास जारी रखा।

सन् 1958 में दक्षिण केलिफोर्निया में 15 साल से कम उम्र की ग्रुप प्रतियोगिता में बिली का स्थान द्वितीय रहा। उस साल बिली को दक्षिण केलिफोर्निया के एक नंबर खिलाड़ी कैथी शावट को हराना था, तभी वह उच्च प्रतियोगिता में जा सकती थी। दस हफ्ते के कठिन अभ्यास के बाद दो सेट के मैच में शावट को हरा सकने में वह समर्थ हुईं। पर अफसोस, पैसे के अभाव के कारण बिली कई प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकीं। फिर भी प्रतियोगिता में वे चौथे नंबर पर थीं, लेकिन वह यह सफलता सुरक्षित नहीं रख सकीं और क्वार्टर फाइनल में उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। अलबत्ता इसके बाद बिली को यह सुविधा मिली कि उसे विम्बलडन चेम्पियन एलिस मार्बल से प्रशिक्षण लेने का मौका मिल गया। बिली ने बिना देर किए उनसे प्रशिक्षण शुरू कर दिया। तब बिली को ऐसा लगा कि प्रशिक्षक क्लाइव वाकर से उन्होंने जितना कुछ सीखा था, एलिस ठीक उसके बाद का तरीका उसे सिखा रही है।

इसके बाद बिली जिन ने खुलकर प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू कर दिया। उसी का परिणाम था कि 1959 में विश्व के चुने हुए श्रेष्ठ टेनिस खिलाड़ियों की तालिका में उनका नाम 19वें नंबर पर आया। अपने इस क्रम में उन्होंने एक साल के अन्दर ही सुधार किया और 1960 में उनका नाम चौथे

नंबर में आ गया था। इसके दूसरे ही साल विम्बलडन में खेलने के लिए विली को आमंत्रित किया।

बिशन सिंह बेदी

बिशन सिंह बेदी, भगवत चन्द्रशेखर, इरापल्ली प्रसन्ना और श्री निवासन वेंकटराघवन—यह वे नाम थे जिन्होंने भारतीय क्रिकेट को जमीन से उठाकर आकाश की बुलन्दियों पर पहुंचा दिया था।

इन स्पिनरों मे यदि सर्वाधिक सफल स्पिनर को ढूढ़ें तो निश्चित ही वह बिशनसिंह बेदी ही होगा। हालांकि चन्द्रशेखर ने विस्फोटक सफलता प्राप्त की लेकिन एक विश्वसनीय स्पिनर हमेशा ही बेदी को माना गया।

बेदी का जन्म 25 सितम्बर, 1946 को अमृतसर में हुआ। 1961-62 मे बेदी ने अपना प्रथम श्रेणी क्रिकेट जीवन उत्तर पंजाब की ओर से ही किया लेकिन फौरन बाद बेदी दिल्ली आ गए और 1981 तक लगातार खेलते रहे। इस दौरान बेदी ने 14.21 की औसत से 402 रणजी विकेट उखाड़े। उन्होंने दिलीप टॉफी में 52 तथा ईरानी ट्रॉफी में भी 16 विकेट उखाड़े।

बेदी ने अपना टेस्ट जीवन 1966-67 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ कलकत्ता टेस्ट में प्रारम्भ किया था। उन्होंने 67 टेस्ट मैचों में 2871 की औसत से 266 विकेट उखाड़े तथा 256 रन भी बनाए।

बेदी ने भले क्रिकेट से संन्यास ले लिया है लेकिन कभी प्रशिक्षक के रूप में तो कभी पुराने चोटियों के खिलाड़ियों की प्रतियोगिता के आयोजन में व्यस्त रहते हैं क्योंकि जानते हैं कि जब तक खिलाड़ी खेल के मैदान में रहता है तभी तक उसकी जय-जयकार होती है। मैदान से हटते ही खेल प्रेमी उसे झट से भुला देते हैं। फिर वह मात्र इतिहास के पृष्ठों मे स्थान पाता है। उनकी कप्तानी में भारत ने 22 टेस्ट खेले जिसमें 6 जीते, 11 हारे और 5 बराबर रहे।

बिशनसिंह बेदी ने अपना पहला टेस्ट मैच 1966-67 शृंखला मे वेस्टइंडीज की टीम के विरुद्ध खेला। दिलचस्प बात यह है कि इस टेस्ट मैच में खेलने से पहले बेदी ने अपने जीवन में कभी टेस्ट मैच देखा भी नहीं था! बेदी ने अपने टेस्ट जीवन की पहली विकेट बी० एफ० बुचर की ली, जब उनकी गेंद पर पटौदी ने कैच लिया। 1979 मे इंग्लैंड के विरुद्ध अपना आखिरी विकेट डेविड गावर का लिया। अपने टेस्ट जीवन में बेदी ने 28.71 के औसत पर कुल 266 विकेट लिए। एक लम्बे अरसे तक भारतीय क्रिकेट के इतिहास मे किसी भी गेंदबाज का यह सबसे अच्छा प्रदर्शन था, जिससे आगे केवल कपिल देव ही जा सके हैं। बड़ी आसानी से बेदी की गिनती दुनिया के सर्वश्रेष्ठ खब्बू गेंदबाजों मे की जा सकती है। अपने टेस्ट जीवन की शुरुआत के पांच वर्ष के बाद ही बेदी ने अपनी गेंदबाजी

के जादू को दिखाकर यह साबित कर दिया था कि अपने क्षेत्र में वह अद्वितीय हैं। वेदी का टेस्ट जीवन विवादों के वातावरण में समाप्त हुआ। लेकिन आज वेदी के विरोधी भी स्पिन गेंदबाजी के इस अनोखे सरदार की श्रेष्ठता को स्वीकार करने लगे हैं।

वेदी ने 67 टेस्ट मैच खेले। 21364 गेंदों मे उन्होंने 7637 रन दिए और कुल 266 विकेट लिये। प्रति टेस्ट उन्होंने 3.97 विकेट लिये। गेंदबाजी के क्षेत्र में वेदी डेनिस लिली के कमाल के नजदीक तो नही है लेकिन उनकी तुलना अगर वेस्ट इंडीज के स्पिन गेंदबाज लांस गिब्स से की जाये तो हम देखते हैं कि उनकी स्थिति गिब्स से कुछ कम नहीं है। गिब्स ने 309 विकेट लिए और एक टेस्ट में विकेट लेने का उनका औसत 3.91 था।

बिशम्भर

रेलवे के विशम्भर बैंटमवेट वर्ग में विश्व-विख्यात पहलवान हैं। 1967 मे नई दिल्ली (नेशनल स्टेडियम) में हुई विश्व कुश्ती प्रतियोगिता में उन्हे रजत पदक प्राप्त हुआ। वह भारत के बहुत ही भरोसे वाले पहलवान माने जाते है और बचाव व आक्रमण दोनो ही कलाओं में माहिर हैं। 1963 मे जालन्धर में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं मे वह बैंटम वेट वर्ग के राष्ट्रीय चैंम्पियन बने। उसके बाद 1964 में दिल्ली में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओ मे अपने चैंम्पियन के पद को बरकरार रखा। इससे पहले 1962 में दिल्ली मे हुई भारतीय ढग की कुश्ती में उन्हें 'गुर्ज' प्राप्त हुआ। 1963 में श्रीलका में हुई प्रतियोगिताओं मे और 1964 मे काजखस्तान (ईरान) में उन्होने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इन दोनों ही देशों मे इनका प्रदर्शन बहुत ही शानदार रहा। 1964 में तोक्यो में हुए ओलम्पिक खेलों में इन्हे छठा स्थान प्राप्त हुआ। 1965 में मानचेस्टर (इंग्लैंड) में हुई विश्व प्रतियोगिता में भी उन्होने भाग लिया और वहा उन्हे चौथा स्थान प्राप्त हुआ 1965 में उन्हें अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत किया गया और 1966 में राष्ट्रकुल खेलो (जमैका) में बैंटम वेट वर्ग में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। बैंकाक मे हुई पाचवी एशियाई प्रतियोगिताओं मे उन्होंने कास्य पदक प्राप्त किया। 1967 में उन्हे फेदर वेट वर्ग में राष्ट्रीय चैंम्पियन घोषित किया गया। अब वह कुश्ती से संन्यास ले चुके हैं और रेलवे मे कुश्ती के प्रशिक्षक हैं।

बुजकशी

बुजकशी अफगानिस्तान का राष्ट्रीय खेल है। यह खेल बड़ा ही कठिन और जोखिम से भरा होता है। यह अफगानों की बहादुरी, साहस तथा उनके हठ की झांकी प्रस्तुत करता है। इस खेल को खेलने का बड़ा ही अनोखा और नया तरीका है। एक बहुत खुला-सा मैदान होता है। उस मैदान के बीचोंबीच एक खड्डा

खोदा जाता है और उस खड्ढे में बछड़े की एक लाश रख दी जाती है। घुड़सवारों की दो टीमें मैदान में डट जाती हैं। इन टीमों को लाश को गड्ढे से निकाल कर फिर गड्ढे में फेंकना होता है। लाश को निकालने और उसे संभालने के इस दौर मे दोनों टीमों की मुठभेड़ और छीना-झपटी होती है। छीना-झपटी में कौन-सी टीम अधिक तेज और चुस्त साबित होती है इसके अनुसार अलग-अलग टीमों को नम्बर दिए जाते हैं। यह सचमुच बड़ा ही जोशीला खेल होता है।

एक टीम में छह से पन्द्रह खिलाड़ी होते हैं। कभी-कभी तीन टीमें भी मिलकर खेलती है। संकेत मिलने पर सभी टीमें एक साथ इकट्ठे हमला कर गड्ढे से बछड़े की लाश निकालने के लिए टूटी पड़ती हैं। बछड़े की लाश को अपने अधिकार में करने के लिए कशमकश होती रहती है। इस खेल के लिए घोड़ों और घुड़सवारों को खास ढंग से प्रशिक्षित किया जाता है। सवार जरा उखड़ा नहीं कि घोड़े से गिरकर कई खुरों तले कुचलकर जख्मी हो जाता है। यही कारण है कि इस खेल के दौरान कई खिलाड़ी बुरी तरह घायल हो जाते हैं और कई बार तो कई खिलाड़ियों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा जाता है।

यह खेल हर साल 15 अक्तूबर को शाह जाहिर शाह के जन्म दिन पर काबुल में खेला जाता है। यह खेल विशिष्ट लोगों, सरदारों, राजनयिक अधिकारियों को दिखाकर अफगान अपने शौर्य बल और वीरता का परिचय देते है। फैजाबाद, मजारे शरीफ और मैमना की अपनी अलग-अलग टीमें हैं। जब किसी विशेष अतिथि के सामने इस खेल का प्रदर्शन किया जाता है तो टीम का चुनाव करने में बड़ी मुश्किल हो जाती है। साल में एक बार तो यह खेल खेला ही जाता है, कभी-कभी दो-दो या तीन-तीन बार भी इसका आयोजन हो जाता है।

यों तो अफगानिस्तान में एक साधारण घोड़े की कीमत तीन से पांच सौ रुपये तक है, लेकिन बुजकशी के घोड़े की कीमत पांच हजार से भी अधिक होती है।

बुद्धि कुंदरन

1960 के आसपास भारतीय क्रिकेट में कई नए प्रयोग किए गए थे। इन प्रयोगों में युवा खिलाड़ियों को प्रशिक्षित करके टेस्ट स्तर तक लाना था। इस प्रशिक्षण योजना में कई खिलाड़ी उभरकर सामने आए जिनमें से एक थे बुद्धि कुंदरन। बुद्धि कुंदरन, जिनका जन्म 2 अक्तूबर, 1939 को हुआ, न केवल विकेट कीपिंग में माहिर थे बल्कि किसी भी स्थान पर बल्लेबाजी करने में सक्षम थे।

कुंदरन के लिए 1960 का वर्ष पहले ही दिन एक सौगात लेकर आया जब कुंदरन को आस्ट्रेलिया के खिलाफ बम्बई टेस्ट में बतौर विकेट कीपर शामिल

किया गया। प्रशिक्षण योजना के अन्य सदस्य सलीम दुर्रानी को भी इसी टेस्ट में पहली बार चुना गया था।

पहले टेस्ट में कुंदरन ने पहली पारी में साहसिक 19 रन जोड़े। उनके इस साहस तथा गेंद को खेलने की सफल तकनीक देखते हुए उन्हे दूसरी पारी मे नबर तीन पर बल्लेबाज़ी के लिए भेजा लेकिन इस बार मैकिक की एक गेंद पर वह दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से हिट विकेट आउट हो गए।

टेस्ट मैचों में कुंदरन ने अपना पहला शिकार मद्रास टेस्ट में हासिल किया जब उन्होने फैवेल को स्टंप आउट किया। वैसे, एक अतिरिक्त खिलाड़ी के रूप में इस शृंखला के पहले टेस्ट (दिल्ली) मे वह उमरीगर की गेंद पर रोरके का कैच पकड़कर अपने शिकारों का खाता खोल चुके थे। इस टेस्ट में उन्होंने पहली पारी मे 71 रन बनाकर बल्लेबाज के रूप मे एक अद्‌भुत आत्मविश्वास का परिचय दिया। उन्हे प्रारंभिक बल्लेबाज के रूप में उतारा गया था। पूरी भारतीय टीम केवल 149 रन पर ही उखड़ गई थी। केवल कुंदरन ने ही जमकर मुकाबला किया।

इतने शानदार प्रदर्शन के बावजूद कुंदरन को पाकिस्तान के खिलाफ 1960-61 की शृंखला मे पहले तीन टेस्टों मे अवसर नही दिया गया। पहले टेस्ट मे पी०जी० जोशी को विकेट कीपर बनाया गया तो दूसरे व तीसरे टेस्ट में नरेन्द्र तम्हाणे को। जोशी और तम्हाणे की बल्लेबाज़ी कुंदरन के मुकाबले की नही थी। फलस्वरूप चौथे मद्रास टेस्ट में कुंदरन को फिर बुला लिया गया। उन्होने इस टेस्ट में चार बल्लेबाज़ों को अपना शिकार बनाया।

कुंदरन को अच्छे प्रदर्शन के बावजूद बार-बार टीम से निकाला गया। 1961-62 में इंग्लैंड के खिलाफ बम्बई टेस्ट में इंग्लैंड के कुल आठ विकटों मे पांच कुंदरन के सहयोग से ही गिरी थी लेकिन उसके बाद कानपुर और दिल्ली में इंजीनियर भारतीय टीम का नया विकेट कीपर बन गया।

1961-62 मे वेस्ट इंडीज के खिलाफ पहले तीन मैचों मे भी कुंदरन को मौका नहीं मिला और इंजीनियर ने ही विकेट के पीछे कमान सभाली। इन तीनों टेस्टों, किंग्स्टन, त्रिनिडाड और ब्रिजटाउन मे बल्लेबाजी के दृष्टिकोण से इंजीनियर असफल रहे। कुंदरन को भी रिजर्व विकेट कीपर के रूप मे साथ ले जाया गया था। चौथे टेस्ट मे विकेट [illegible] में तो [illegible] करिश्मा नही किया लेकिन पिछले [illegible] बार [illegible]

सर्वोच्च स्कोर था। दूसरी पारी में भी उन्होने 38 रन बनाए। यही नहीं जब वह विकेट कीपिंग के लिए उतरे तो इंग्लैंड के बल्लेबाजों को उन्होंने जमीन पर तारे दिखा दिए। उन्होने उस टेस्ट में 6 बल्लेबाजों को अपना शिकार बनाया। उसके बाद दिल्ली टेस्ट की दूसरी पारी में भी कुंदरन ने एक और सैंकड़ा जड़ा। कुल मिलाकर उस शृंखला की दस पारियों में उन्होंने 52.50 की औसत से कुल 525 रन बनाए।

1964-65 में आस्ट्रेलिया की टीम भारत भ्रमण पर आई। इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि उस समय कुंदरन को एक और विकेट कीपर की प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ा। वह थे युवराज इंद्रजीत सिंहजी। कुंदरन को इससे पहले इंजीनियर और तम्हाणे का सामना तो करना पड़ ही रहा था। आस्ट्रेलिया के खिलाफ उस शृंखला मे कुंदरन को फिर पूरी तरह भुला दिया गया। एक भी टेस्ट में उन्हें मौका नही मिला।

1964-65 में न्यूजीलैंड के खिलाफ फिर उन्हें एक टेस्ट में ही अवसर मिला। इस बार विकेट कीपर इंजीनियर ही थे और कुंदरन को बतौर बल्लेबाज चुना गया था।

1966-67 में सोबर्स के नेतृत्व में वेस्ट इंडीज की टीम भारत आई। शृंखला के पहले टेस्ट (बम्बई) मे कुंदरन को फिर विकेट कीपिंग का अवसर दिया गया उन्होंने दूसरी पारी मे एक बार फिर 79 रनों की पारी खेलकर भारत का स्कोर 312 तक पहुंचाया। वेस्ट इंडीज के तेज गेंदबाजों हाल और ग्रिफिथ के समक्ष केवल 92 मिनट मे खेली गई यह पारी अद्वितीय है। इस प्रदर्शन के बावजूद कुंदरन को अगले तीन टेस्ट मैचो मे नही उतारा गया।

कुंदरन ने अपनी अंतिम शृंखला इंग्लैंड के खिलाफ उसी की भूमि पर खेली। लार्ड्स में वह बल्लेबाज की हैसियत से खेले और 20 व 47 रन बनाए। एजबस्टन टेस्ट उनका अंतिम टेस्ट था। इस टेस्ट मे उन्होंने भारतीय पारी की शुरुआत की और फिर गेंदबाजी मे भी पहला ओवर किया। एक ही मैच में बल्लेबाजी और गेंदबाजी प्रारंभ करने वाले गिने-चुने टेस्ट क्रिकेटरों मे से वह एक है।

कुंदरन काफी समय तक इंग्लैंड की नार्थ लंकाशायर लीग में क्रिकेट खेलते रहे हैं। पिछले कुछ दिनों से वह भारत में हैं।

टेस्ट प्रदर्शन : 18 टेस्ट, 981 रन, 32.70 औसत, दो शतक, विकेट कीपर के रूप में 30 शिकार (23 कैच, 7 स्टंप)।

बेसबाल

संयुक्त राज्य अमेरिका में जाड़ो की बर्फ पिघल गई है और अब नगरो के उद्योगों व देहाती इलाकों मे सर्वत्र रंग-बिरंगे फूल खिले दीखते है, स्फूर्तिप्रद दृश्य

किया गया। प्रशिक्षण योजना के अन्य सदस्य सलीम दुर्रानी को भी इसी टेस्ट में पहली बार चुना गया था।

पहले टेस्ट में कुंदरन ने पहली पारी में साहसिक 19 रन जोड़े। उनके इस साहस तथा गेंद को खेलने की सफल तकनीक देखते हुए उन्हें दूसरी पारी में नंबर तीन पर बल्लेबाजी के लिए भेजा लेकिन इस बार मैकिफ की एक गेंद पर वह दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से हिट विकेट आउट हो गए।

टेस्ट मैचों में कुंदरन ने अपना पहला शिकार मद्रास टेस्ट में हासिल किया जब उन्होंने फैवेल को स्टंप आउट किया। वैसे, एक अतिरिक्त खिलाड़ी के रूप में इस शृंखला के पहले टेस्ट (दिल्ली) में वह उमरीगर की गेंद पर रोरके का कैच पकड़कर अपने शिकारों का खाता खोल चुके थे। इस टेस्ट में उन्होंने पहली पारी में 71 रन बनाकर बल्लेबाज के रूप में एक अद्भुत आत्मविश्वास का परिचय दिया। उन्हें प्रारंभिक बल्लेबाज के रूप में उतारा गया था। पूरी भारतीय टीम केवल 149 रन पर ही उखड़ गई थी। केवल कुंदरन ने ही जमकर मुकाबला किया।

इतने शानदार प्रदर्शन के बावजूद कुंदरन को पाकिस्तान के खिलाफ 1960-61 की शृंखला में पहले तीन टेस्टों में अवसर नहीं दिया गया। पहले टेस्ट मे पी०जी० जोशी को विकेट कीपर बनाया गया तो दूसरे व तीसरे टेस्ट मे नरेन्द्र तम्हाणे को। जोशी और तम्हाणे की बल्लेबाजी कुंदरन के मुकाबले की नहीं थी। फलस्वरूप चौथे मद्रास टेस्ट में कुंदरन को फिर बुला लिया गया। उन्होंने इस टेस्ट में चार बल्लेबाजों को अपना शिकार बनाया।

कुंदरन को अच्छे प्रदर्शन के बावजूद बार-बार टीम से निकाला गया। 1961-62 में इंग्लैंड के खिलाफ बम्बई टेस्ट में इंग्लैंड के कुल आठ विकटों में पांच कुंदरन के सहयोग से ही गिरी थी लेकिन उसके बाद कानपुर और दिल्ली मे इंजीनियर भारतीय टीम का नया विकेट कीपर बन गया।

1961-62 मे वेस्ट इंडीज के खिलाफ पहले तीन मैचों मे भी कुंदरन को मौका नहीं मिला और इंजीनियर ने ही विकेट के पीछे कमान संभाली। इन तीनों टेस्टों, किंग्स्टन, त्रिनिडाड और ब्रिजटाउन मे बल्लेबाजी के दृष्टिकोण से इंजीनियर असफल रहे। कुंदरन को भी रिजर्व विकेट कीपर के रूप में साथ ले जाया गया था। चौथे टेस्ट में विकेट कीपर के रूप में तो उन्होंने कोई विशेष करिश्मा नहीं किया लेकिन पिछले सात टेस्टों में पहली बार कैच आउट हुए।

1963-64 मे इंग्लैंड के विरुद्ध शृंखला के पहले टेस्ट को अब तक कुंदरन टेस्ट के रूप में ही याद किया जाता है। इस टेस्ट मे उन्होंने इंग्लैंड के गेंदबाजों लार्टर, नाइट विल्सन और टिटमस की गेंदों की धुनाई करते हुए शानदार 192 रन बनाए। उस समय इंग्लैंड के विरुद्ध किसी भी भारतीय बल्लेबाज का यह

सर्वोच्च स्कोर था। दूसरी पारी मे भी उन्होने 38 रन बनाए। यही नहीं जब वह विकेट कीपिंग के लिए उतरे तो इंग्लैंड के बल्लेबाजों को उन्होंने जमीन पर तारे दिखा दिए। उन्होने उस टेस्ट में 6 बल्लेबाजों को अपना शिकार बनाया। उसके बाद दिल्ली टेस्ट की दूसरी पारी में भी कुंदरन ने एक और सैंकडा जड़ा। कुल मिलाकर उस श्रृंखला की दस पारियों में उन्होने 52.50 की औसत से कुल 525 रन बनाए।

1964-65 मे आस्ट्रेलिया की टीम भारत भ्रमण पर आई। इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि उस समय कुंदरन को एक और विकेट कीपर की प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ा। वह थे युवराज इंद्रजीत सिंहजी। कुंदरन को इससे पहले इंजीनियर और तम्हाणे का सामना तो करना पड़ ही रहा था। आस्ट्रेलिया के खिलाफ उस श्रृंखला में कुंदरन को फिर पूरी तरह भुला दिया गया। एक भी टेस्ट में उन्हें मौका नही मिला।

1964-65 में न्यूजीलेंड के खिलाफ फिर उन्हें एक टेस्ट में ही अवसर मिला। इस बार विकेट कीपर इंजीनियर ही थे और कुंदरन को बतौर बल्लेबाज चुना गया था।

1966-67 में सोवर्स के नेतृत्व में वेस्ट इंडीज की टीम भारत आई। श्रृंखला के पहले टेस्ट (बम्बई) मे कुंदरन को फिर विकेट कीपिंग का अवसर दिया गया उन्होंने दूसरी पारी मे एक बार फिर 79 रनो की पारी खेलकर भारत का स्कोर 312 तक पहुंचाया। वेस्ट इंडीज के तेज गेंदबाजों हाल और ग्रिफिथ के समक्ष केवल 92 मिनट मे खेली गई यह पारी अद्वितीय है। इस प्रदर्शन के बावजूद कुंदरन को अगले तीन टेस्ट मैचों में नही उतारा गया।

कुंदरन ने अपनी अंतिम श्रृंखला इंग्लैंड के खिलाफ उसी की भूमि पर खेली। लार्ड्स में वह बल्लेबाज की हैसियत से खेले और 20 व 47 रन बनाए। एजबस्टन टेस्ट उनका अंतिम टेस्ट था। इस टेस्ट मे उन्होने भारतीय पारी की शुरुआत की और फिर गेंदबाजी में भी पहला ओवर किया। एक ही मैच में बल्लेबाजी और गेंदबाजी प्रारंभ करने वाले गिने-चुने टेस्ट क्रिकेटरो मे से वह एक है।

कुंदरन काफी समय तक इंग्लैंड की नार्थ लंकाशायर लीग में क्रिकेट खेलते रहे हैं। पिछले कुछ दिनों से वह भारत में हैं।

टेस्ट प्रदर्शन : 18 टेस्ट, 981 रन, 32.70 औसत, दो शतक, विकेट कीपर के रूप में 30 शिकार (23 कैंच, 7 स्टंप)।

बेसबाल

संयुक्त राज्य अमेरिका में जाड़ो की बर्फ पिघल गई है और अब नगरों के उद्योगो व देहाती इलाकों मे सर्वत्र रंग-बिरंगे फूल खिले दीखते है, स्फूर्तिप्रद दृश्य

और वसन्ती बयार की महक से पृथ्वी के लावण्य में निखार आ गया है। और यह सब उस नए मौसम के आगमन का सूचक है जब अमेरिका के लोग मस्ती से अपना प्रिय गीत गा उठते हैं : "टेक मी आउट टू दि बाल गेम।"

अमेरिकियों का 'बाल गेम' निःसंदेह बेस बाल है और यह यहां सबसे अधिक लोकप्रिय दलीय खेल है। देश भर मे खुली जगहों, सार्वजनिक उद्यानों और खेल के मैदानों मे अब उस दिन की तैयारियां हो रही हैं जब अम्पायर साम्मुख्य के लिए 'प्ले बाल' कहकर खेल प्रारंभ करवाता है।

अमेरिका मे प्रायः हर लड़का स्कूल जाने से पहले ही बेस बाल सीख जाता है। 8 वर्ष से अधिक आयु वाला लड़का 'लिटल लीग' मे और 13 वर्ष की आयु का लड़का 'बेब रुथ लीग' में शामिल हो सकता है। अमेरिका में केवल इन दो लीगों की ही 15,000 से अधिक टीमें हैं। 'अमेरिकन लीजन जूनियर लीग' का दावा है कि 17 वर्ष तक के लड़कों की 19,000 से अधिक टीमें हैं और न्यूयार्क की 'पोलिस एथलेटिक लीग', पी० ओ० एन० वाई० लीग चलाती है। युवा लड़कियों के लिए 'पोनी टेल लीग' भी है।

लडके-लडकियों की इन सब लीगो का प्रशिक्षण और प्रबंध-सचालन स्वैच्छिक क्रीडा-प्रेमियों द्वारा किया जाता है। अधिकांश स्कूलों-कालेजों और विश्वविद्यालयों के यहां भी ऐसी टीमें होती हैं जो पढ़ाई बंद होने से पहले वसंत काल में बेस बाल खेलती हैं।

इस विलक्षण अमेरिकी खेल की शुरुआत कैसे हुई? समूचे संसार में क्रीडा-स्तम्भ-लेखकों की भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण होती है। 'एशेज' के लिए लड़ाई, 'रबर' के लिए मुकाबला, मनोवांछित 'डूरण्ड' विजयोपहार''' इसी तर्ज पर क्रीड़ा-समीक्षकों की बोली में अमेरिकी बेसबाल का खेल 'राष्ट्रीय मनोरंजन' कहा जाता है।

बताया जाता है कि 134 वर्ष पुराना यह खेल क्रिकेट से और 'राउण्डर्स' नामक पुराने अंग्रेजी खेल से विकसित हुआ है।

औपनिवेशिक काल में बोस्टन के किशोर और युवक 'वन ओल्ड कैट' या 'टू ओल्ड कैट' नामक खेल खेलते थे और उनमे एक या दो 'बेस' (धावक के छूने के स्थल) होते थे। बाद मे खेल का जो रूप विकसित हुआ उसे 'टाउन बाल' कहते थे और उसमें चार बेस होते थे तथा गेंदबाज के बेस और बल्लेबाज के स्थान के बीच बल्लेबाज का एक घेरा होता था। कुछ अन्य खिलाड़ी भी होते थे जिनका काम गेंद को कैच करना या रोकना होता था। तब कोई पक्के नियम नही थे।

1839 के आसपास कूपर्सटाउन (न्यूयार्क) के ऐलनर डबलडे ने टाउन बाल को बाकायदा नियमबद्ध रूप में संगठित करने पर ध्यान दिया। उन्होंने खेल के नियम, खिलाड़ियों की संख्या तथा उनके खेलने के ठिकाने आदि की बातें तय कीं।

आज बेसबाल बुनियादी तौर पर अपने संस्थापक के बनाए हुए नियमों के अनुसार खेला जाता है।

यद्यपि बेसबाल की शुरुआत लोगों के ऐसे खेल के रूप में हुई, जो शहरी हों, पर तीव्र प्रतिद्वन्द्विता के कारण शीघ्र यह आवश्यक हो गया कि क्लबें चोटी के खिलाड़ियों को अपने यहां रखें और खेलने के लिए धन दें। सभवतः पहला पेशेवर खिलाड़ी जेम्स पी० क्रेटन था जो ब्रुकलिन की एक्सलसियर्स क्लब का पिचर (गेंदबाज) था। यह 1860 की बात है। उसके बाद 1968 में बेस बाल की सभी पेशेवर खिलाड़ियो की क्लब 'सिनसिनाटी रेड स्टॉकिंग्स' कायम हुई।

कुछ लोगो ने इस क्लब की स्थापना का विरोध किया। आलोचक खिलाड़ियों को पेशेवर के रूप में रखने से असहमत थे, क्योकि वे कहते थे कि बेस बाल 'भद्र लोगों' के फुरसत के समय खेलने का खेल होना चाहिए और उसे कभी-कभी ही जनता के मनोरंजन का रूप दिया जाना चाहिए। किंतु जनता की राय भिन्न थी—और पेशे के तौर पर खिलाड़ी रखने की बात चल गई।

आज बेसबाल की चोटी की पेशेवर टीमें दो बड़ी लीगों में से किसी न किसी में खेलती हैं। इनमें से 'अमेरिकन लीग' 1900 में प्रारंभ हुई थी और 'नेशनल लीग' उससे पहले 1876 में।

बेब रुथ और क्रिस्टी मेथ्यूसन के दृष्टांतों से हाल के वर्षों में बेसबाल के नए खिलाड़ियों की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त किया है। इस खेल से सामाजिक बंधनों को तोड़ने मे भी मदद मिली है। बहुत से नीग्रो खिलाड़ियों ने अपार लोकप्रियता हासिल की है। उन्हें बेसबाल से राष्ट्रव्यापी ख्याति और धन की भी प्राप्ति हुई।

तथापि, आज ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि बेसबाल असामयिक और अनुपयुक्त है। और कुछ कहते हैं कि टिकट खरीदकर खेल देखने वाले दर्शकों की वार्षिक सख्या की दृष्टि से बास्केटबाल, फुटबाल और घुड़दौड़ ने बेसबाल को मात दे दी है।

बेसिल डि ओलिवरा

आजकल क्रिकेट मे दक्षिण अफ्रीका को सबसे बड़ा विवाद माना जाता है। क्योकि आए दिन किसी न किसी देश के क्रिकेट खिलाड़ी दक्षिण अफ्रीका जाकर अंतर्राष्ट्रीय मान्यताओं का उल्लघन करते रहते हैं। दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति के कारण उससे खेल संबंध रखने की मनाही है लेकिन जिस खिलाड़ी ने इस विवादों का जन्म दिया वह था बेसिल डि ओलिवरा जिनका जन्म 4 अक्टूबर, 1931 को दक्षिण अफ्रीका के सिगनल हिल केप टाउन में हुआ। हालांकि ओलिवरा ने कभी नही चाहा कि वह इन विवादों का सूत्रधार बने लेकिन चाहे-अनचाहे उन्ही से इस

विवाद की शुरुआत हुई। 1968 में इंग्लैंड टीम को दक्षिण अफ्रीका जाना था। इंग्लैंड के चयनकर्ताओं ने डि ओलिवरा को टीम में चुना। ओलिवरा मूलतः दक्षिण अफ्रीका के खिलाड़ी थे। दक्षिण अफ्रीका के क्रिकेट संरक्षकों ने यह स्वीकार नहीं किया कि उनका बागी उन्हीं के खिलाफ खेले, फलस्वरूप उन्होंने बेसिल के चयन पर एतराज किया। इंग्लिश क्रिकेट के सरपरस्त इससे हिल गए और आखिर 1969-70 से दक्षिण अफ्रीका को टेस्ट बिरादरी से बाहर होना पड़ा।

शुरुआत—बेसिल डि ओलिवरा केप टाउन के प्रतिभाशाली क्रिकेटरों में माने जाते थे। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में टेस्ट क्रिकेटरों को छोड़कर अन्य क्रिकेटरों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। ओलिवरा का जीवन भी बहुत अभावग्रस्त था। उन दिनों इंग्लैंड में काउंटी क्रिकेट खेलना समृद्धि और प्रतिष्ठा की निशानी माना जाता था।

जान आरलोट और पीटर वाकर ओलिवरा की प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने इंग्लैंड में खेलने का बंदोबस्त कराया। आपको यह जानकर हैरानी होगी कि ओलिवरा से सेंट्रल लंकाशायर लीग क्लब मिडलटोन की ओर से खेलने के लिए 1960 के सीजन में सिर्फ 450 पौंड का अनुबंध किया गया। इसमें से भी 200 पौंड तो इंग्लैंड आने-जाने तथा रहने आदि पर खर्च होने थे। ओलिवरा ने अपनी पत्नी तथा नवजात बच्चे को दक्षिण अफ्रीका में छोड़ा और इंग्लैंड की ओर कूच कर लिया।

दृढ़ संकल्प—इंग्लैंड के मौसम और वहां की परिस्थितियों का आदी होने में शुरू में ओलिवरा को थोड़ी परेशानी हुई लेकिन लगन तथा दृढ़ संकल्प ने इस मुश्किल को आड़े नहीं आने दिया। 1964 में ओलिवरा को वरसेस्टरशायर ने काउंटी क्रिकेट खेलने के लिए अनुबंधित कर लिया। यह उनकी बहुत बड़ी कामयाबी थी। 1965 में ओलिवरा ने काउंटी क्रिकेट में सर्वाधिक 1500 से अधिक रन बनाए थे।

अगले ही वर्ष वह घड़ी भी आ गई जिसका ओलिवरा को पिछले छह वर्षों से इंतजार था। क्रिकेट के मक्का लार्ड्स पर ओलिवरा को 1966 में इंग्लैंड की ओर से खेलने का पहला मौका दिया गया। ओलिवरा उस दिन खुशी से फूले नहीं समा रहे थे हालांकि एक मात्र पारी में 27 बनाकर वह दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से रन आउट हो गए लेकिन टीम में उनका स्थान पक्का हो गया था।

पहली सफलता—ओलिवरा को पहली शृंखला में ही पर्याप्त [illegible] मिल

भारत के खिलाफ ओलिवरा ने पहला शतक ठोंका 1967 में जब जूनियर पटौदी के नेतृत्व में भारतीय टीम इंग्लैंड दौरे पर गई तो लीड्स में हुए पहले टेस्ट में ही ओलिवरा ने 109 रन का योग अर्जित किया।

अद्वितीय प्रदर्शन—1967-68 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ ओलिवरा सिर्फ एक अर्धशतक बना पाए लेकिन 1968 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध ओवल लंदन में उन्होंने जो पारी खेली वह लाजवाब थी। उस मैच के अंतिम दिन जबरदस्त तूफान आया था। मैदान में कई गैलन पानी जमा हो गया था। इंग्लैंड ने पहले खेलते हुए 494 रन बनाए। इसमें जान एडिच के 164 तथा ओलिवरा के 158 शामिल हैं। ओलिवरा ने जितनी खूबसूरती से गेंदों को ड्राइव किया वह क्रिकेट की खूबसूरत पारियों में माना जाता है। ओलिवरा ने इस दौरान 44 टेस्ट खेलते हुए अपना अंतिम टेस्ट 1972 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ ओवल में ही खेला।

अन्य प्रदर्शन—1972 के बाद टोनी ग्रेग के हाथों टेस्ट क्रिकेट में स्थान खोने के बावजूद ओलिवरा ने 1979 तक वरसेस्टशायर की ओर से प्रथम श्रेणी क्रिकेट खेली। 1979 में भी उम्र तथा घायल होने के कारण उन्हें मैदान से हटना पड़ा।

शैली और प्रसिद्धि—बेसिल डि ओलिवरा इंग्लैंड में अपनी शैली के कारण काफी लोकप्रिय हुए। उसकी लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1975 में जब इनके सहायतार्थ मैच हुआ तो 27000 पौंड की राशि प्राप्त हुई।

ओलिवरा जब अपने मूड में होते थे तो कुछ भी करने की क्षमता रखते थे। उनका स्टास बहुत खूबसूरत था तथा बाएं हाथ से बल्लेबाजी करते हुए स्क्वेयर कट और ड्राइव बड़ी सफाई से लगाया करते थे। ओलिवरा एक चुस्त फील्डर तथा उपयोगी गेंदबाज भी रहे। कई बार तो उन्होंने वरसेस्टशायर के लिए विकेट कीपिंग भी।

ओलिवरा ने ससार को दिखा दिया कि अगर मन में दृढ़ सकल्प कर लिया जाये तो मुश्किल से मुश्किल मजिल भी पाई जा सकती है। पैसा, प्रसिद्धि और सफलता—ओलिवरा ने जो चाहा वही पाया।

टेस्ट रिकार्ड : 44 टेस्ट, 70 पारी, 158 उच्च, 2484 रन (औसत 40.06) 5 शतक, 15 अर्धशतक, 29 कैच 47 विकेट (औसत 39.55) सर्वश्रेष्ठ 3-46

बैडमिंटन

बैडमिंटन के खेल को साधारण बोलचाल की भाषा मे 'चिड़ी छिक्के' के नाम से पुकारा जाता है। यह कोर्ट के खेलों में सबसे ज्यादा तेज खेला जाता है। इस खेल की लोकप्रियता के कई कारण हैं। एक तो इस खेल में सभी आयु

के लोग यानी बच्चे, बूढ़े, जवान, लड़कियां और स्त्रियां आसानी से भाग ले सकते हैं; दूसरे, यह खेल अन्य खेलों की तुलना में ज्यादा सुविधाजनक और कम खर्चीला है। जिस प्रकार क्रिकेट और टेनिस के खेल को रईसों का खेल माना जाता है उसी प्रकार बैडमिंटन के खेल को जनसाधारण का खेल समझा जाता है। सुविधा की दृष्टि से यह खेल घर के अन्दर (इनडोर) और घर के बाहर (आउटडोर) खेला जा सकता है। वैसे अधिकतर लोग इसे 'इनडोर खेल' ही मानते हैं। इस वर्ग का कहना है कि खुले में हवा के कारण कई बार खेल का मजा किरकिरा हो जाता है। फिर यह खेल किसी भी समय दिन में या रात में गर्मी में या सर्दी में खेला जा सकता है।

बैडमिंटन का कोर्ट बहुत थोड़ी-सी जगह में बन सकता है। आमतौर पर इसका कोर्ट 44 फुट लंबा और 20 फुट चौड़ा होता है। कोर्ट के बीचों-बीच एक रेखा के द्वारा इसको दो भागों में बांट देते हैं। बैडमिंटन का नेट जमीन से $2\frac{1}{2}$ फुट की ऊंचाई पर बांधा जाता है। इस नेट की लंबाई 20 फुट और चौड़ाई 2 फुट 6 इंच होती है। इसके अलावा एक रैकेट और शटल काक लीजिए और खेल शुरू कर दीजिए।

बैडमिंटन के खेल का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। इस पर इस खेल की शुरुआत पर काफी मतभेद हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इस खेल की शुरुआत भारतवर्ष में हुई। यह खेल सबसे पहले पूना शहर में खेला गया। वहां पर कुछ अंग्रेज सैनिक अधिकारियों ने इस खेल को शुरू किया था। पहले ये लोग आमने-सामने खड़े होकर 'शटल काक' को एक छोटे-से बल्ले से एक-दूसरे की ओर फेंकते थे। तब शटल काक को जमीन पर नहीं गिरने दिया जाता था। धीरे-धीरे बीच में नेट लगा दिया गया और इस खेल के नियम और उप-नियम तय कर दिए गए।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस खेल की शुरुआत 200 वर्ष पूर्व इंग्लैंड में हुई। इस वर्ग का कहना है कि 1870 में यह खेल 'ग्लासेस्टर शायर' के 'बैडमिंटन हाल' में खेला जाता था, इसीलिए इस खेल का नाम बैडमिंटन पड़ गया। बैडमिंटन के खिलाड़ी बैडमिंटन गांव को उतना ही महत्व देते हैं जितना कि टेनिस के खिलाड़ी विम्बलडन को या कि क्रिकेट के खिलाड़ी लार्ड्स को।

यह खेल आज भी अपनी जन्मभूमि इंग्लैंड में बहुत लोकप्रिय है। कहा जाता है कि इंग्लैंड में बैडमिंटन के दो हजार आठ सौ से भी अधिक क्लब हैं और अखिल इंग्लैंड बैडमिंटन प्रतियोगिता को, जिसका आरंभ 1899 में माना जाता है, संसार की सबसे बड़ी अंतर्राष्ट्रीय बैडमिंटन प्रतियोगिता माना जाता है।

भारत में भी यह खेल काफी लोकप्रिय हो गया है। शुरू-शुरू में इस खेल को बहुत ही मामूली खेल समझा जाता था और इसके विकास की तरफ भी कोई

विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। मगर आज ऐसी स्थिति नहीं है। भारत में सर्वप्रथम 1934 में कलकत्ता में अखिल भारतीय बैडमिंटन एसोसिएशन की स्थापना हुई। उसी समय कलकत्ता में पहली बार राष्ट्रीय प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। यह प्रतियोगिता महाराष्ट्र के विजय मदगावकर ने जीती। भारत में इस खेल के प्रचार और प्रसार में मदगावकर का विशेष स्थान है।

टामस कप प्रतियोगिता में भी, जिसे बैडमिंटन की सबसे बड़ी प्रतियोगिता माना जाता है, कई बार भारतीय खिलाड़ियों ने भाग लिया। 1948 की टामस कप प्रतियोगिता में भारतीय टीम का नेतृत्व लुई ने किया था और 1952 में देवेन्द्र मोहन ने। 1952 की टामस कप प्रतियोगिता में भारतीय खिलाड़ियों का प्रदर्शन बहुत ही शानदार रहा। लुई और देवेन्द्र मोहन अपने जमाने के मशहूर खिलाड़ी माने जाते हैं। लेकिन मानना होगा कि इस खेल में जितनी प्रतिष्ठा प्रकाश पादुकोने ने प्राप्त की है उतनी और किसी खिलाड़ी ने प्राप्त नहीं की।

जहां तक अखिल इंग्लैंड प्रतियोगिता में भारतीय खिलाड़ियों के प्रदर्शन का सवाल है 1947 में प्रकाशनाथ ने और 1949 में लुई ने कमाल ही कर दिया। 1940-1950 तक के समय को भारतीय बैडमिंटन का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। पर यह सच है कि भारतीय खिलाड़ियों को कभी विश्व की बड़ी प्रतियोगिता जीतने का गौरव प्राप्त नहीं हुआ। दिनेश खन्ना को एशियाई प्रतियोगिता जीतने का गौरव अवश्य प्राप्त हुआ था। इन दिनों जिस खिलाड़ी ने अपने नाम की धूम मचा रखी है उसका नाम है प्रकाश पदुकोने। वह भारत के एकमात्र ऐसे खिलाड़ी हैं जो 1971 से लगातार आठ वर्ष तक राष्ट्रीय चैम्पियन होने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

ब्रिज

ब्रिज का खेल कोट-पीस से मिलता-जुलता है। इसे भी चार व्यक्ति ही खेलते हैं और त्रुप बोलकर सर बनाते हैं। ब्रिज खेलने के लिए दो ताश की गड्डियां अलग-अलग रंग की लें। जोकर निकाल कर अलग रख दें। एक पेंसिल और कागज भी ले लें। इस पर आप खेल खेलने के बाद नंबर लिखेंगे। जैसा कि हम बता चुके हैं—यह खेल चार खिलाड़ियों में खेला जाता है। दो-दो की दो जोड़ियां बन जाती हैं, जो जोड़ीदार (पार्टनर) कहलाते हैं। कौन किसका जोड़ीदार बनेगा, इसका निर्णय करने के लिए एक ताश की गड्डी उलटी करके फैला दी जाती है। हर खिलाड़ी एक पत्ता उठाकर दिखाता है। बड़े पत्ते वालों की एक जोड़ी बनती है और छोटे पत्ते वालों की दूसरी। उदाहरणतया सोहन खिलाड़ी ने ईंट का बादशाह उठाया और मीरा ने पान का दहला। बाकी दो खिलाड़ी जय और तारा ने अट्ठा और पंजा निकाला। सोहन और मीरा के पत्ते जय और तारा

के लोग यानी बच्चे, बूढ़े, जवान, लड़कियां और स्त्रियां आसानी से भाग ले सकते हैं; दूसरे, यह खेल अन्य खेलों की तुलना में ज्यादा सुविधाजनक और कम खर्चीला है। जिस प्रकार क्रिकेट और टेनिस के खेल को रईसों का खेल माना जाता है उसी प्रकार बैडमिंटन के खेल को जनसाधारण का खेल समझा जाता है। सुविधा की दृष्टि से यह खेल घर के अन्दर (इनडोर) और घर के बाहर (आउटडोर) खेला जा सकता है। वैसे अधिकतर लोग इसे 'इनडोर खेल' ही मानते हैं। इस वर्ग का कहना है कि खुले में हवा के कारण कई बार खेल का मजा किरकिरा हो जाता है। फिर यह खेल किसी भी समय दिन में या रात में गर्मी में या सर्दी में खेला जा सकता है।

बैडमिंटन का कोर्ट बहुत थोड़ी-सी जगह में बन सकता है। आमतौर पर इसका कोर्ट 44 फुट लंबा और 20 फुट चौड़ा होता है। कोर्ट के बीचों-बीच एक रेखा के द्वारा इसको दो भागों में बांट देते हैं। बैडमिंटन का नेट जमीन से $2\frac{1}{2}$ फुट की ऊंचाई पर बांधा जाता है। इस नेट की लंबाई 20 फुट और चौड़ाई 2 फुट 6 इंच होती है। इसके अलावा एक रैकेट और शटल काक लीजिए और खेल शुरू कर दीजिए।

बैडमिंटन के खेल का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। इस पर इस खेल की शुरुआत पर काफी मतभेद हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इस खेल की शुरुआत भारतवर्ष में हुई। यह खेल सबसे पहले पूना शहर में खेला गया। यहां पर कुछ अंग्रेज सैनिक अधिकारियों ने इस खेल को शुरू किया था। पहले ये लोग आमने-सामने खड़े होकर 'शटल काक' को एक छोटे-से बल्ले से एक-दूसरे की ओर फेंकते थे। तब शटल काक को जमीन पर नहीं गिरने दिया जाता था। धीरे-धीरे बीच में नेट लगा दिया गया और इस खेल के नियम और उप-नियम तय कर दिए गए।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस खेल की शुरुआत 200 वर्ष पूर्व इंग्लैंड में हुई। इस वर्ग का कहना है कि 1870 में यह खेल 'ग्लासेस्टर शायर' के 'बैडमिंटन हाल' में खेला जाता था, इसीलिए इस खेल का नाम बैडमिंटन पड़ गया। बैडमिंटन के खिलाड़ी बैडमिंटन गांव को उतना ही महत्त्व देते हैं जितना कि टेनिस के खिलाड़ी विम्बलडन को या कि क्रिकेट के खिलाड़ी लार्ड्स को।

यह खेल आज भी अपनी जन्मभूमि इंग्लैंड में बहुत लोकप्रिय है। कहा जाता है कि इंग्लैंड में बैडमिंटन के दो हजार आठ सौ से भी अधिक क्लब हैं और अखिल इंग्लैंड बैडमिंटन प्रतियोगिता को, जिसका आरंभ 1899 में माना जाता है, संसार की सबसे बड़ी अंतर्राष्ट्रीय बैडमिंटन प्रतियोगिता माना जाता है।

भारत में भी यह खेल काफी लोकप्रिय हो गया है। शुरू-शुरू में इस खेल को बहुत ही मामूली खेल समझा जाता था और इसके विकास की तरफ भी कोई

विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। मगर आज ऐसी स्थिति नहीं है। भारत में सर्वप्रथम 1934 में कलकत्ता मे अखिल भारतीय बैडमिंटन एसोसिएशन की स्थापना हुई। उसी समय कलकत्ता में पहली बार राष्ट्रीय प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। यह प्रतियोगिता महाराष्ट्र के विजय मदगावकर ने जीती। भारत में इस खेल के प्रचार और प्रसार में मदगावकर का विशेष स्थान है।

टामस कप प्रतियोगिता में भी, जिसे बैडमिंटन की सबसे बड़ी प्रतियोगिता माना जाता है, कई बार भारतीय खिलाड़ियों ने भाग लिया। 1948 की टामस कप प्रतियोगिता में भारतीय टीम का नेतृत्व लुई ने किया था और 1952 में देवेन्द्र मोहन ने। 1952 की टामस कप प्रतियोगिता में भारतीय खिलाड़ियों का प्रदर्शन बहुत ही शानदार रहा। लुई और देवेन्द्र मोहन अपने जमाने के मशहूर खिलाड़ी माने जाते हैं। लेकिन मानना होगा कि इस खेल में जितनी प्रतिष्ठा प्रकाश पादुकोने ने प्राप्त की है उतनी और किसी खिलाड़ी ने प्राप्त नहीं की।

जहां तक अखिल इंग्लैंड प्रतियोगिता में भारतीय खिलाड़ियों के प्रदर्शन का सवाल है 1947 में प्रकाशनाथ ने और 1949 में लुई ने कमाल ही कर दिया। 1940-1950 तक के समय को भारतीय बैडमिंटन का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। पर यह सच है कि भारतीय खिलाड़ियों को कभी विश्व की बड़ी प्रतियोगिता जीतने का गौरव प्राप्त नहीं हुआ। दिनेश खन्ना को एशियाई प्रतियोगिता जीतने का गौरव अवश्य प्राप्त हुआ था। इन दिनों जिस खिलाड़ी ने अपने नाम की धूम मचा रखी है उसका नाम है प्रकाश पदुकोने। वह भारत के एकमात्र ऐसे खिलाड़ी हैं जो 1971 से लगातार आठ वर्ष तक राष्ट्रीय चैम्पियन होने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

ब्रिज

ब्रिज का खेल कोट-पीस से मिलता-जुलता है। इसे भी चार व्यक्ति ही खेलते हैं और ग्रुप बोलकर सर बनाते हैं। ब्रिज खेलने के लिए दो ताश की गड्डियां अलग-अलग रंग की लें। जोकर निकाल कर अलग रख दें। एक पेंसिल और कागज भी ले लें। इस पर आप खेल खेलने के बाद नंबर लिखेंगे। जैसा कि हम बता चुके हैं—यह खेल चार खिलाड़ियों में खेला जाता है। दो-दो की दो जोड़ियां बन जाती हैं, जो जोड़ीदार (पार्टनर) कहलाते हैं। कौन किसका जोड़ीदार बनेगा, इसका निर्णय करने के लिए एक ताश की गड्डी उलटी करके फैला दी जाती है। हर खिलाड़ी एक पत्ता उठाकर दिखाता है। बड़े पत्ते वालों की एक जोड़ी बनती है और छोटे पत्ते वालों की दूसरी। उदाहरणतया सोहन खिलाड़ी ने ईंट का बादशाह उठाया और मीरा ने पान का दहला। बाकी दो खिलाड़ी जय और तारा ने अट्ठा और पंजा निकाला। सोहन और मीरा के पत्ते जय और तारा

के पत्तों से ऊंचे हैं इसलिए सोहन और मीरा जोड़ीदार बन गए और उनके मुकाबले मे खेलेंगे जय और तारा। यदि चारो खिलाड़ी एक ही तरह के पत्ते उठाते है जैसे चारों के पास नहला आता है तो फिर हुक्म, पान, ईंट और चिड़िया के अनुपात मे बंटते है। अर्थात् सबसे बड़ी हुकुम, फिर पान फिर ईंट और फिर चिड़िया। इस प्रकार हुकुम और पान के नहले एक तरफ ईंट और चिड़िया वाले उनके प्रतिपक्षी बनते हैं। ब्रिज में पत्तों के अंक गिनते समय भी यही क्रम अपनाया जाता है। जो बाद मे अधिक स्पष्ट होगा।

सबसे ऊंचे पत्ते वाले खिलाड़ी को अधिकार है कि वह किसी भी दिशा में बैठ जाए और उनके जोड़ीदार उनके सामने बैठेंगे। जैसे यदि सोहन और मीरा दक्षिण तथा उत्तर दिशा मे बैठेंगे तो जय और तारा पूर्व पश्चिम दिशा मे बैठेंगे।

अब खिलाड़ी अपनी-अपनी जगह बैठते हैं। सोहन जिसका सबसे ऊंचा पत्ता था, ताश बांटेगा। इस खिलाड़ी को वितरक (डीलर) कहते है। पहले वह अपने बायें हाथ के खिलाड़ी यानी तारा को गड्डी फेंटने के लिए देता है। इस फिंटी हुई गड्डी को वह अपने दायें हाथ के खिलाड़ी जय से कटवायेगा। जय कुछ पत्ते, जो पाच से कम नही होने चाहिएं, उठाकर एक तरफ रख देगा। उनके ऊपर वितरक सोहन बाकी के पत्ते रखकर बांटेगा। एक-एक पत्ता करके पहला पत्ता अपने बाएं हाथ के खिलाड़ी को यानी पहला पत्ता पश्चिम, दूसरा उत्तर, तीसरा पूर्व वाले को और चौथा अपने आपको (दक्षिण में) इसी तरह घड़ी की सुइयों के अनुसार एक-एक पत्ता बाटते हुए ताश की एक गड्डी बांटी जाती है। हर खिलाड़ी को तेरह-तेरह पत्ते मिल गए हैं।

एक गड्डी तो बंट गयी और दूसरी गड्डी फेंटकर उत्तर वाला खिलाड़ी (वितरक का जोड़ीदार) पश्चिम वाले के बायें हाथ की तरफ रख देता है ताकि पहली बाट खत्म होते ही पश्चिम वाला ऊपर बताए हुए नियमो के अनुसार दूसरी गड्डी बाट दे। बांट इसी प्रकार घड़ी की सुइयों के अनुसार चलती रहती है। इसी प्रकार तीसरी बाट पहली ताश की गड्डी से उत्तर वाले की ओर, और चौथी बाट पूर्व वाले की। गड्डी वही जो पश्चिम वाले ने बांटी थी। यानी उत्तर-दक्षिण वालो की एक रंग की ताश की गड्डी और पूर्व-पश्चिम वालों की दूसरे रंग की ताश की गड्डी। हार-जीत से बांट का कोई संबध नही होता।

बोर्ग, बोर्न

बोर्न बोर्ग के परिवार मे कोई भी टेनिस खिलाड़ी नहीं था, लेकिन उसे टेनिस खेलने की प्रेरणा कैसे मिली और कैसे वह इतना महान खिलाड़ी बन गया, इसके पीछे उसके बचपन की एक रोचक घटना है।

बोर्न बोर्ग के पिता र्‌यून बोर्ग उन दिनों स्टॉकहोम के एक उपनगर में कपड़ों के सेल्समैन थे। र्‌यून बोर्ग एक शौकिया टेबुल टेनिस खिलाड़ी थे। एक बार किसी प्रतियोगिता में खेलते हुए र्‌यून बोर्ग फाइनल तक पहुंच गए, उस समय बोर्न बोर्ग केवल नौ वर्ष का था। जिस दिन फाइनल मैच होना था, उस दिन बोर्न भी अपने पिता के साथ गया।

फाइनल मैच शुरू होने के पूर्व प्रतियोगिता स्थल पर एक किनारे रखी टेबुल पर पुरस्कारों को सजाया जाने लगा। ये सब पुरस्कार प्रतियोगिता मे विजयी खिलाड़ियों को बांटे जाने वाले थे। इन पुरस्कारों मे एक 'टेनिस रैकेट' भी था। इस चमचमाते हुए रैकेट पर नन्हे बोर्न की नजर टिक गई। फाइनल मैच आरंभ हुआ और बोर्न ने मन-ही-मन प्रार्थना करनी शुरू की कि मैच उसके पिता को ही जीतना चाहिए।

अंततः हुआ भी यही। उसके पिता ने मैच जीत लिया। नन्हा बोर्न खुशी से उछल पड़ा और दौडकर अपने पिता को बधाई देने पहुच गया। बधाई देने के साथ बोर्न ने उनके कान में यह भी कह दिया कि पुरस्कारों में आप 'टेनिस का रैकेट' ही अपने लिए चुनें। इतना कह कर वह अपने स्थान पर आ कर बैठ गया। पुरस्कार वितरण शुरू हुआ और र्‌यून बोर्ग को अपना पुरस्कार लेने के लिए बुलाया गया।

र्‌यून पुरस्कारोंवाली टेबुल के पास पहुंचे और उन्होने वहा से एक बार बोर्न पर नजर डाली। बोर्न अपने स्थान पर सांस रोके बैठा था। बोर्न के पिता को एक मजाक सूझा और उन्होंने मेज पर रखे पुरस्कारों मे से टेनिस का रैकेट न ले कर मछली पकड़ने की एक बंसी उठा ली। अब तो बोर्न की सूरत देखने लायक थी, लगता था कि वह अब रो ही पड़ेगा। तभी र्‌यून बोर्ग ने वह बंसी मेज पर वापस रख दी और टेनिस रैकेट उठा कर कहा कि मैं यह पुरस्कार लूंगा। बोर्न की रोनी सूरत पर खुशी चमक उठी। अगले दिन सवेरे ही वह घर से निकल पड़ा, अपने दोस्तों को वह 'बहुमूल्य' उपहार दिखाने के लिए।

दोस्तों से उस रैकेट की तारीफ सुनकर बोर्न के मन में उससे खेलने की इच्छा हुई। उसके घर के पास ही टेनिस के दो कोर्ट थे। वह उधर ही चल दिया। लेकिन लबे-चौड़े कोर्ट पर खेल पाना नन्हे बोर्न के बस की बात नही थी, इसलिए वह वहां से लौट आया और अपने घर के गैरेज के पास खड़े हो कर गैरेज के दरवाजे पर मार-मार कर वह टेनिस का अपने ढंग का खेल खेलने लगा।

10 वर्ष की उम्र तक पहुचते-पहुंचते वह पार्कों मे टेनिस खेलने जाने लगा। परन्तु अधिकाश कोर्ट बड़े खिलाड़ियों से घिरे रहते थे और नन्हे बोर्न को प्रातः साढ़े छह बजे से कभी-कभी रात तक अपनी 'बारी' आने का इंतजार करना पड़ता था। इस लंबी प्रतीक्षा के धैर्य के ही कारण बोर्न पर धीरे-धीरे टेनिस का भूत

सवार होता गया और ऐसा सवार हुआ कि वह टेनिस के अतिरिक्त सब-कुछ भूल गया।

11 वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते बोर्न की स्थिति यह हो गई थी कि वह हमेशा यही सोचता था कि वह जिस मैच मे भी खेले, वह मैच उसे ही जीतना चाहिए। इसी मानसिकता के कारण वह अकसर निर्णायकों के अपने विरुद्ध निर्णयों पर झगडता भी रहता था। एक बार ऐसे ही एक मैच में 'लाइनमैन' के निर्णयो पर उसकी कई बार झडप हुई। गुस्से मे आ कर उसने अपना रैकेट ही पटक दिया और अधिकारियों से भी झगड़ बैठा। उसके इस आचरण पर न केवल उसे क्लब से निकाल दिया गया, बल्कि उसकी मां ने भी उसे सबक सिखाने के लिए उसका रैकेट ही ताले मे बद कर दिया।

इस सजा का बोर्न पर ऐसा असर पड़ा कि उस दिन के बाद से आज तक उसने खेल के दौरान कभी मुंह भी नही खोला। चाहे कुछ भी हो जाए, वह मैच के दौरान अपना संयम और संतुलन नही खोता यही कारण है कि बोर्न बोर्ग को आज दुनिया का सबसे शालीन, शिष्ट और सयमी खिलाड़ी कहा जाता है।

बोर्ग महान का स्वीडिश सितारा 1976 मे जब पहली बार विंबलडन विजेता बना तो कोई नही जानता था कि यह खिलाड़ी विंबलडन में एक नया इतिहास कायम करेगा। 1976 से विंबलडन मे बोर्ग की जीत का सफर 1980 में कहीं जाके मैकनरो के हाथ से टूटा। बोर्ग को विंबलडन मे खेलने वाला सबसे महान खिलाडी माना जाता है। इसका कारण यह नही कि बोर्ग ने लगातार पाच बार विंबलडन जीता है। इससे पहले विलियम रांस छह बार व एच०लि० डोहर्टी पांच बार विंबलडन जीत चुके हैं। बोर्ग की सबसे बड़ी महानता यह है कि जब बोर्ग ने विंबलडन को जीतने का सिलसिला शुरू किया था तो उस नियम को समाप्त कर दिया गया था जिसके आधार पर पिछले विंबलडन विजेता को चालू प्रतियोगिता मे सीधे क्वार्टर-फाइनल में स्थान दिया जाता था। बोर्ग के आने के बाद पुराने नियम को तोडकर नया नियम लागू किया गया जिसके आधार पर खिलाड़ी को शुरू से ही मैच खेलने पड़ते थे चाहे वह पिछला विंबलडन विजेता हो या न हो। इस प्रकार जब 1980 में बोर्ग मैकनरो के हाथों पराजित हुआ तो उसने विंबलडन के लगातार 41 मैच जीते थे जो अपने आप में एक अभूतपूर्व रिकार्ड है।

इसके अलावा जिमी कोनर्स व जान मैकनरो भी विंबलडन की जानी-मानी हस्ती है।

भारोत्तोलन

एथलेटिक मे जिस प्रकार 100 मीटर की फासले की दौड़ के विश्व चैंम्पियन को दुनिया का सबसे तेज इन्सान माना जाता है उसी प्रकार भारोत्तोलन मे भी सबसे अधिक वजन उठाने वाले विश्व चैंम्पियन को दुनिया का सबसे ताकतवर इन्सान माना जाता है। इस समय दुनिया के सबसे ताकतवर इन्सान का नाम है वासिली एलेक्जीव। सुपर हैवी वेट वर्ग के विश्व चैंम्पियन रूस के वासिली एलेक्जीव 645 किलो वजन उठाते है और भारत का सबसे ताकतवर इन्सान बलवीर सिंह 422.5 किलो। भारोत्तोलन में भारतीय चैंम्पियन और विश्व चैम्पियन मे कितना अन्तर है यह इन आकड़ों से स्पष्ट हो जाता है।

भारत के हैवीवेट चैंम्पियन बलवीर सिंह 1958 से राष्ट्रीय चैंम्पियन का गौरव प्राप्त करते आ रहे है और 13 बार राष्ट्रीय चैंम्पियन का गौरव प्राप्त कर चुके हैं। वह स्वयं ही रिकार्ड बनाते हैं और स्वयं ही उनमें सुधार करते है। जाहिर है कि भारत में भारोत्तोलन मे उनका कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी नही है।

भारोत्तोलन मे भारत की विश्व से तुलना नही की जा सकती। हमारे खिलाड़ी तो एशिया मे भी कही नही टिकते। हमारे देश में जो फ्लाईवेट का राष्ट्रीय चैंम्पियन है, वह क्रम से विश्व चैम्पियन की तुलना मे 100 पौंड पीछे है। इसी क्रम से आप आगे बढ़ते जाइए। हमारे देश का हैवीवेट चैंम्पियन विश्व चैंम्पियन से 400 या 500 पौंड पीछे है।

भारोत्तोलन मे इस समय सोवियत संघ, हंगरी, जापान और पोलैंड के खिलाड़ियों का ही बोलबाला है।

भारोत्तोलन और ओलम्पिक

1896 में एथेन्स मे हुए प्रथम आधुनिक ओलम्पिक खेलों में भारोत्तोलन को भी शामिल किया गया था, लेकिन तब इसका रूप आज से भिन्न था। उस समय प्रतियोगिताओं में वजन के आधार पर कोई वर्गीकरण नही किया जाता था और जो व्यक्ति सबसे अधिक भार उठाता वही चैंम्पियन विश्व चैंम्पियन माना जाता। 1900 में पेरिस में हुए ओलम्पिक खेलों में भारोत्तोलन को शामिल नही किया गया। 1920 में अन्तरराष्ट्रीय भारोत्तोलन संघ की स्थापना हुई और 1924 मे वजन के आधार पर प्रतियोगियों को पाच वर्गों मे बाटा गया। लेकिन अब शरीर के वजन के अनुसार 9 विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है।

फ्लाई वेट (52 किलो), बैंटम वेट (56 किलो), फेदर (60 किलो), लाइट (67 1/2 किलो), मिडिल (75 किलो), लाइट हैवी (82 1/2 किलो), मिडिल हैवी (90 किलो) और हैवी वेट (90 किलो से अधिक)। अन्तरराष्ट्रीय भारोत्तोलन संघ ने अब सुपर हैवी वेट की प्रतियोगिता रखी है। इसमे 110 किलो से अधिक वजन के प्रतियोगियों को रखा जाता है।

लोहा उठाने की इस प्रतियोगिता में कितनी जल्दी-जल्दी कीर्त्तिमान स्थापित होते रहे हैं, इसका अन्दाजा तो इसी बात से लगाया जाता है कि 1924 मे इटली के एक भारोत्तोलक ने 342.5 किलो वजन उठाकर विश्व चैम्पियन का गौरव प्राप्त किया था और अब रूस के एलेक्जीव 645 किलो वजन उठाते है, यानी पिछले 48 वर्षों के इतिहास मे कीर्त्तिमान दो गुणा अधिक हो गया है।

जहां तक भारत का सवाल है, भारत भारोत्तोलन के क्षेत्र में बहुत पीछे है। यों डी० पी० मनी, ईश्वर राव, बलबीर सिंह, आलोकनाथ घोष, लक्ष्मीकांत दास अरुणकुमार दास और मोहनलाल घोष जैसे भारोत्तोलक राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में काफी सफलता प्राप्त कर चुके हैं। 1940 में बम्बई में पहली बार राष्ट्रीय प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें पजाब के मोहम्मद नाकी ने 340 किलो वजन उठाकर सबसे शक्तिशाली पुरुष कहलाने का गौरव प्राप्त किया। बलबीर सिंह ने 422.5 किलो का राष्ट्रीय रिकार्ड स्थापित कर रखा है। लेकिन हम विश्व चैंम्पियनों से कितने पीछे हैं इसका अनुमान 1977 में हुए ओलम्पिक खेलों के परिणामों को देखकर आसानी से लगाया जा सकता है।

भास्करन वी.

1980 के मास्को ओम्पिक में भारत ने स्पेन को हराकर 16 वर्ष के अंतराल के बाद हाकी का स्वर्ण पदक दोबारा जीता। इसका सारा श्रेय भास्करन के कुशल खेल और असाधारण नेतृत्व को जाता है।

29 वर्षीय भास्करन ने टीम में अपने कुशल खेल से नया विश्वास पैदा किया। अजीत पाल सिंह के बाद देश के सर्वश्रेष्ठ सेंटर हाफ के रूप मे प्रतिष्ठित भास्करन 1976 मांट्रियल ओलम्पिक, दो बार विश्व कप और दो बार एशियाई खेलों में भी भारत का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं।

भीमसिंह

हैवी वेट मे भीमसिंह को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उनका जन्म रामपुर (जिला बुलन्दशहर) में एक किसान परिवार में हुआ। उन्होने लगातार कई वर्षों तक राष्ट्रीय चैम्पियन बनने का गौरव प्राप्त किया। पहली बार कुश्ती के अखाड़े में उतरने पर उन्हें रनर-अप (यानी दूसरा स्थान) प्राप्त हुआ। 1963 के बाद से

वह कई वर्षों तक लगातार राष्ट्रीय चैम्पियन बनते रहे। उन्हें भारत सरकार द्वारा सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अन्तर्गत सोवियत संघ (1963) और ईरान (1964) भी भेजा गया। इन दोनों स्थानों पर उनकी कुश्ती-कला को विशेष सराहा गया। 1966 में वह हैवी वेट वर्ग के राष्ट्रीय चैम्पियन बने। 1966 में बेंकाक में हुई पांचवी एशियाई प्रतियोगिताओं में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया और स्वर्ण पदक प्राप्त किया। जमैका में हुए राष्ट्रकुल खेलों में भी उन्हें पदक प्राप्त हुआ। उसी वर्ष यानी 1966 में उन्हें अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत किया गया।

भुवनेश्वरी, कुमारी

कोटा की कुमारी भुवनेश्वरी, जिनका जन्म :9 मई, 1945 को हुआ था, 1968 में महिलाओं की ओलम्पिक ट्रेंप निशानेबाजी में और 1969 में महिलाओं की ट्रेप निशानेबाजी (भारतीय नियम) में, महिलाओं की स्कीट निशानेबाजी आई० एस० यू० और महिलाओं की स्कीट निशानेबाजी (भारतीय नियम) में राष्ट्रीय चैम्पियन थी। 1969 में वह सिंगापुर निशानेबाजी प्रतियोगिताओं में भारत की ओर से भाग लेने वाली खिलाड़ी थी और ओलम्पिक ट्रेंप निशानेबाजी में मैच में सातवें स्थान पर रही। वह उस भारतीय स्कीट टीम की एक सदस्या थी, जिसने इन मैचों में स्वर्ण पदक जीता। अक्तूबर 1969 में सेन सेबेस्तियो में आयोजित विश्व निशानेबाजी चैम्पियनशिप में भी वह भारत की ओर से भाग लेने वाली खिलाड़ी थी और विश्व महिला ओलम्पिक ट्रेंप में चौथे स्थान पर रही। महिला ओलम्पिक ट्रेंप में उनका राष्ट्रीय रिकार्ड है।

म

मंगलराय

गाजीपुर जिले के ग्राम जोगा मुसाहिब में पहलवान मंगल राय का जन्म अगस्त 1916 में पहलवान रामचन्द्र राय के सुपुत्र के रूप में हुआ था। पिता रामचन्द्रराय तथा काका राधा राय दोनों कुश्ती के क्षेत्र में अपनी धाक पहले से ही जमा चुके थे। ये दोनों भाई रंगून में रहते थे और एक अखाड़े में कसरत तथा

जोर करते थे। मंगलराय तथा अनुज कमलाराय ने रंगून में बचपन बिताया और पहलवान पिता तथा पहलवान काका से पहलवानी विरासत में ले ली। काका राधाराय कुश्ती-कला के अच्छे जानकार थे और उन्होंने ही मंगल राय तथा कमला राय को कसरत तथा जोर कराकर कुश्ती-कला का सफल साधक बनाया।

16 वर्ष की अवस्था में मंगल राय खुले दंगलों में कुश्ती लड़ने लगे थे। उन्हें शुरू से विजय मिली और रंगून में मंगलराय का नाम क्रमशः चमकने लगा।

मंगलराय पहलवान की लगभग तीन दशकों तक समस्त पूर्वांचल में विजय पताका फहराती रही। वे रंगून से लेकर बम्बई तथा कलकत्ता से दिल्ली तक कुश्ती लड़ते रहे। उनके माननीय गुरु काशी के स्व० पंडा जी (श्री महादेव पंडा) अखाड़ा बास-फाटक वाले रहे।

'मल्ल-केशरी' मंगलराय अपना नश्वर शरीर छोड़कर 60 वर्ष की आयु में 24 जून, 1976 को चल बसे किन्तु भारतीय कुश्ती कला के यशस्वी साधकों की महान परंपरा में पूरब के महान कुश्तीगीर मंगलराय का नाम सदा श्रद्धा से स्मरण किया जाएगा।

मंजरी भार्गव

कुमारी मंजरी भार्गव का जन्म 18 जनवरी, 1956 को हुआ। आप 12 वर्ष की आयु में 1969 की राष्ट्रीय चैम्पियनशिप में महिला गोताखोर चैम्पियन रहीं। राष्ट्रीय चैम्पियनशिप 1969 में आपने दूसरा स्थान प्राप्त किया। 1970 में राष्ट्रीय खिताब प्राप्त किया तथा उसे 1974 तक बनाए रखा। आपने 1972 तथा 1973 में हुई भारत-श्रीलंका जलक्रीड़ा प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व किया तथा उसमें प्रथम स्थान प्राप्त करके खेल स्वर्ण पदक प्राप्त किया। जबसे आपने राष्ट्रीय तैराकी खेलों में पदार्पण किया है तबसे आपने अपने तैराकी के तौर तरीकों में असाधारण सुधार किया है।

मंसूरअली खां, नवाब पटौदी

मंसूर अली खां (नवाब पटौदी) का जन्म भोपाल में 5 जनवरी, 1941 को हुआ। यह क्रिकेट के मशहूर खिलाड़ी नवाब पटौदी के सुपुत्र हैं। इनके पिता भी नवाब पटौदी के नाम से ही प्रसिद्ध थे। उनकी मृत्यु आज से कोई 20 साल पहले दिल्ली में पोलो खेलते समय हुई थी। क्रिकेट के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ जब बाप-बेटे ने भारतीय क्रिकेट का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व किया है। यहा यह

बता देना भी उचित होगा कि बाप-बेटे दोनो को 'विस्डन' का सम्मान प्राप्त हुआ।

नवाब पटौदी जब केवल 21 वर्ष के ही थे, तब एक कार दुर्घटना में उनकी दाईं आंख जख्मी हो गई थी। यह दुर्घटना इंग्लैंड में हुई थी, लेकिन इस दुर्घटना के बावजूद उन्होंने अपने असाधारण खेल से यह साबित कर दिया कि उनकी एक आख की ज्योति भले ही कम हो गई हो, परन्तु गेंद उन्हें अब भी 'फुटबाल' जितनी नजर आती है। 1962 में वेस्टइंडीज के दौरे में जब भारतीय कप्तान कांट्रेक्टर घायल हो गए तब मंसूर अली को भारतीय टीम का कप्तान बनाया गया। उस समय इनकी आयु केवल 21 वर्ष की थी। सच तो यह है कि उन्हें भारतीय टीम का सबसे कमसिन कप्तान होने का गौरव प्राप्त हुआ।

इंग्लैंड में स्कूल और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के क्रिकेट कप्तान के रूप में मंसूर अली ने 'टाइगर' अर्थात् शेर की उपाधि प्राप्त की। तब यह समझा जाने लगा कि अपने पिता की तरह वह भी किसी दिन इंग्लैंड की ओर से टेस्ट मैच खेलेंगे। लेकिन वह भारत लौट आए। इनकी सर्वश्रेष्ठ रन संख्या 203 (और आउट नही) रही। यह रन सख्या उन्होंने 1964 में इंग्लैंड के विरुद्ध खेलते हुए बनाई थी। इसी टेस्ट शृंखला में नवाब पटौदी ने लगातार पांच बार टॉस जीता था।

वेस्ट इंडीज में नारी कांट्रेक्टर की दुर्घटना हो जाने से कप्तानी की जिम्मेदारी युवा पटौदी के कधों पर आ पड़ी। उस समय उसकी आयु केवल 21 साल 77 दिन थी। यह क्रिकेट इतिहास का एक रिकार्ड है कि इतनी कम उम्र में कोई खिलाड़ी कप्तान नही बना। अनुभव की कमी होने के बावजूद पटौदी ने अपनी जिम्मेदारी इतनी कुशलता से निभाई कि किसी भी अधिकारी को किसी भी प्रकार की शिकायत का कोई मौका नही मिला। उसने न केवल युवा खिलाड़ियों का नेतृत्व किया बल्कि सीनियर खिलाड़ियों से भी बड़ी समझदारी से निपटा।

जिस समय पटौदी ने कप्तानी का भार सभाला उस समय उन्हें एक आंख से लगभग दिखाई ही नही देता था जिससे वह काफी असुविधा महसूस करते। परन्तु खूबी की बात यही रही कि पटौदी के खेल स्तर में कोई फर्क नहीं आया।

कालिन मिलवर्न ने उसे एक विशिष्ट क्रिकेटर कहा और क्रिकेट के इतिहास में उन्हें अत्यन्त पराक्रमी क्रिकेटर मानता है—

"इस समय तक भी मैं उनसे ज्यादा करीब नही आ पाया था। छोटी मुलाकातें स्वाभाविक थी। कई बार जी चाहा कि मैं मिलकर उनकी क्रिकेट योग्यता को परख लू। मैं यह जानना चाहता था कि वह एक आंख के बावजूद तेज गेंदों का सामना कैसे कर पाते हैं।

मैंने पटौदी को हमेशा गंभीर और संकोची प्रकृति का पाया। शुरू-शुरू में

एकदम खुलकर वह किसी से बात नहीं करते। इसके बाद आप जानेंगे कि उनका व्यक्तित्व कितना मधुर और ऊंचा है। उनके अपने कुछ अनुशासित नियम हैं जिससे वे अपने को शारीरिक व मानसिक रूप से चुस्त रखते हैं।" पटौदी ने 40 बार भारत का नेतृत्व किया है।

टेस्ट रिकार्ड : 46 टेस्ट मैचों में छह शतकों सहित 34.91 की औसत से 2793 रन बनाये हैं जिसमें इंग्लैंड के विरुद्ध 203 (आउट नहीं) उनका उच्चतक स्कोर है।

मदनलाल

जन्म 20 मार्च, 1951। मध्यम तेज गति के सफल गेंदबाज। मदनलाल ने शुरुआत में ही अच्छे विकेट चटकाकर अपना स्थान भारतीय क्रिकेट में बना लिया। लेकिन मोहिन्दर अमरनाथ, घावरी और अब कपिलदेव के समक्ष उन्हें टीम में अपना स्थान निश्चित करने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है।

नीचे के क्रम से अच्छी बल्लेबाजी और तूफानी क्षेत्ररक्षण का कार्य वे ईमानदारी पूर्वक निभाते हैं। गाजियाबाद (उ० प्र०) के मोहन मीकिन्स में कार्यरत।

टेस्ट रिकार्ड : 16 टेस्ट, 30 पारी, 428 रन, 6 बार अपराजित, 1 अर्द्धशतक, 81 कैच, गेंदबाजी 1803, मेडन 71, रन 977, विकेट 29।

मनजीत दुआ

आज से दस साल पहले मनजीत दुआ और टेबल टेनिस को एक दूसरे का पर्याय समझा जाता था। 1974-78 में उन्होंने निरंतर चैंपियनशिप जीती। उन्होंने बताया कि टेबल टेनिस के क्षेत्र में उन्हें लाने का श्रेय उनके बड़े भाई राजेन्द्र सिंह, जिनका घरेलू नाम बिल्ला है, को है। बिल्ला स्वयं भी टेबल टेनिस के चैम्पियन थे—राज्य स्तर तक। मनजीत जब छठी कक्षा में पढ़ते थे तो उन्होंने खेलना शुरू किया और सातवीं कक्षा में पहुंचते ही वह अपने स्कूल-खालसा स्कूल के चैम्पियन बन गए। एक बार चैम्पियन बनने के बाद बड़े भाई के उत्साह की पढ़ाई और घर वालों की प्रेरणा के कारण वह निरंतर अभ्यास करते थे और स्कूल छोड़ते-छोड़ते वह दिल्ली के परिचित टेबल टेनिस खिलाड़ियों में माने जाने लगे। उनके बड़े भाई ने अपने छोटे भाई मनजीत की खेल पर इस पकड़ को देखते हुए स्वयं खेल से संन्यास ले लिया और उन्हें आगे बढ़ाने की योजनाएं बनायी जानी लगी।

जहां तक परिवार का संबंध है, मनजीत दुआ मानते हैं उनके माता-पिता ने कभी भी निरुत्साहित नहीं किया। सदैव उनका उत्साह बढ़ाते रहे हैं और बड़े भाई राजेन्द्र सिंह तो मेरे गुरु, मार्गदर्शक और प्रेरणास्रोत हैं ही। मनजीत का

मानना है कि यदि घर से माता-पिता का पूर्ण सहयोग मिले और साथ में किसी प्रशिक्षक की सही शिक्षा तो कोई भी खिलाड़ी अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है।

मनिन्दरसिंह

एक समय भारत के पास विशन बेदी, प्रसन्ना, वेंकट और चन्द्रशेखर जैसे स्पिनर हुआ करते थे और इनमें से किसी को भी टीम से निकालना मुश्किल होता था। इसके बाद दिलीप दोषी, शिवलाल यादव, गोपाल शर्मा, एल० शिवरामा तथा मनिन्दर सिंह स्पिनर के रूप में मुख्यत: खेले। एक लैग स्पिनर के रूप मे दोषी के बाद शिवरामा और मनिन्दर जैसे युवा स्पिनरों को खूब अवसर मिले पर इन दोनों ने कभी तो सफलता पाई और कभी एकदम ही निराश किया।

मनिन्दर, जिसका जन्म 13 जून, 1965 मे हुआ था, आज जो कुछ भी है उसमें विशन बेदी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। एक प्रशिक्षक के रूप में बेदी ने मनिन्दर की गेंदबाजी को उच्च स्तरीय क्रिकेट के योग्य बनाया। और एक चयनकर्त्ता के रूप में बेदी ने हर समय मनिन्दर को टीम में वह स्थान दिलाया जिसका वह सही हकदार था।

1982 में मनिन्दर ने कहा था—"मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आज तक मुझे जो थोड़ी बहुत सफलता मिली है उसका पूरा श्रेय 3 लोगों—गुरचरन सिंह, विशन बेदी एवं श्रीमती हरवंश बख्शी को जाता है।" मनिन्दर ने आगे कहा—"जब मैंने क्रिकेट खेलना शुरू किया तो मेरे पहले प्रशिक्षक के रूप में गुरचरन सिंह सामने आए। उन्होंने ही मुझे ये सिखाया कि स्पिन गेंदबाजी क्या होती है? विशन बेदी ने मुझे स्पिन कला के सब बेहतरीन गुणों के बारे में बताया और ये सिखाया कि बालिंग क्रीज को कैसे प्रयोग किया जाता है। इन दोनों ने एन० आई० एस० के नैटस पर मेरी गेंदबाजी को निखारा और स्कूल में मुझे श्रीमती बख्शी ने हर सुविधा दी और उत्साहित किया।"

मनिन्दर अपने सामने वाले बल्लेबाज की प्रतिष्ठा से तनिक नहीं घबराते और हर बल्लेबाज को एक ही नजरिए से गेंद फेंकते हैं। मनिन्दर की घातक गेंद है 'आर्मर' जो आफ स्टंप के बाहर पड़कर अंदर की तरफ आती है। वे गेंद को उछाल देने से तनिक भी नहीं घबराते हैं, जिससे कई बल्लेबाज उनकी गेंद को समझ नहीं पाते।

मनिन्दर अपनी कामयाबी का जिम्मेदार अपने कोच गुरचरन सिंह और गुरु विशन सिंह बेदी को मानते हैं। वे क्रिकेट के अलावा दूसरे खेलों में भी रुचि रखते हैं। उनके अन्य शौक हैं अच्छी फिल्में देखना और संगीत सुनना। उन्हें खेल की किताबें पढ़ने का बहुत शौक है।

मनिन्दर का लक्ष्य भारत के लिए क्रिकेट खेलना और अपने गुरु बेदी के

आदर्श को बराबर सामने रखना है। इतनी कम उम्र में इतनी प्रतिष्ठा पा लेने पर भी मनिन्दर में जरा सा भी घमंड नहीं आया है। वे अभी भी वही सीधे-सादे, शर्मीले लड़के हैं। अपने हर सीनियर खिलाड़ी का सम्मान करते हैं और हर समय उनसे कुछ न कुछ सीखने की कोशिश करते हैं।

कुछ पुराने खिलाड़ियों का कहना है कि जब वे मनिन्दर को गेंद फेंकता देखते हैं, तो बिशनसिंह बेदी की याद ताजा हो जाती है। मनिन्दर के टीम में चुने जाने से शायद आने वाले समय में भारत को एक नया बेदी मिल जाए।

टेस्ट रिकार्ड: 31 मैचों में 88 रन बनाने के साथ 79 विकेट भी ले चुके है।

महिला क्रिकेट

कुछ समय पहले लड़कियों के लिए क्रिकेट रनिंग कमेंट्री तक ही सीमित थी। इनके लिए क्रिकेट की बात सोचना भी एक आश्चर्य का विषय हुआ करता था। लेकिन यदि आपने पीछे भारत इग्लेंड के बीच शृंखला का कोई भी मैच देखा हो तो वास्तविकता को इससे बिल्कुल विपरीत पायेंगे। पल-पल के बाद इन टेस्ट मैचों में बज रही तालियां और रेडियो कमेंट्री पर उत्तेजना भरे वर्णन इस बात के गवाह हैं कि महिला क्रिकेट में तकनीक और कला का आश्चर्यजनक विकास हुआ है।

राष्ट्रीय महिला चैम्पियनशिप

पहले-पहल विश्व के देशों जैसे इग्लेंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलेंड, जमैका, त्रिनिडाड एंड टोबेगो ने महिला क्रिकेट को अपनाया था। यह देश आपस में बायमत रूप से अतरराष्ट्रीय स्तर के मैच खेला करते थे।

भारत में महिला क्रिकेट पिछले 75 वर्षों से खेली जा रही है लेकिन पहली राष्ट्रीय प्रतियोगिता पुणे में 1973 में आयोजित हुई। लगभग ढाई टीमों (उ० प्र० की टीम में 7 खिलाड़ी थे) ने इसमें भाग लिया। दो अन्य टीमें थी बबई व महाराष्ट्र।

दूसरी राष्ट्रीय महिला क्रिकेट चेंपियनशिप वाराणसी में 1974 में हुई। इसमें आठ टीमों ने भाग लिया। अगली चेंपियनशिप कलकत्ता में हुई जिसमें 14 राज्यों की टीमों ने जोहर दिखाये। इसके बाद नियमित रूप से महिला क्रिकेट की विभिन्न प्रतियोगिताओं का सिलसिला चलता रहा, जो अभी तक कायम है।

भारतीय प्रगति को देखते हुए सर्वप्रथम 1975 में आस्ट्रेलिया की महिला क्रिकेट टीम हमारे यहां आई और फिर पुणे में ही पहला टेस्ट आयोजित किया

गया। दूसरा टेस्ट दिल्ली में तथा तीसरा टेस्ट कलकत्ता में हुआ। शृंखला बराबर रही यानी तीनों मैच ड्रा रहे।

इससे अगले वर्ष ही न्यूज़ीलैंड की महिला क्रिकेट टीम भारत आई। इसने यहां पांच टेस्ट मैच खेले। वेस्ट इंडीज की भी टीम भारत भ्रमण पर 1976-77 में आई और इनके विरुद्ध भी भारत ने शानदार संघर्ष दिखाया। यह शृंखला एक-एक से बराबर रही। अपेक्षाकृत कम अनुभव की भारतीय महिला क्रिकेट टीमों ने इन देशों के विरुद्ध शानदार खेल का प्रदर्शन किया। क्रिकेट प्रेमियों ने भी महिला क्रिकेट का खुले दिल से स्वागत किया। पटना में 60 हजार दर्शकों ने मैच देखा और इतने ही दर्शक जम्मू में भी थे। दूसरी ओर भारतीय महिला टीम को न्यूज़ीलैंड मे तीसरे विश्व कप के दौरान गृहस्थियों के बीच रहना पड़ा। भारत की अतिथि क्रिकेटर पांच सितारा होटलों में ठहरायी जाती है। मैचों मे न्यूज़ीलैंड के दर्शकों की संख्या थी केवल 50।

पहला क्रिकेट टेस्ट

1934 में पहली बार महिलाओं ने टेस्ट खेला जब आस्ट्रेलिया महिला क्रिकेट टीम ने इंग्लैंड का दौरा किया। परन्तु अफसोस की बात है कि महिलाओं को अभी तक 'लार्ड्स' मैदान पर क्रिकेट खेलनी है।

अब पोशाक को ही लीजिए। यह भी एक अजूबा है। आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड तथा न्यूज़ीलैंड की महिला क्रिकेट खिलाड़ी स्कर्ट पहनती हैं जबकि भारत और वेस्ट इंडीज की महिलाएं साधारण पैंट और कमीज में ही क्रिकेट खेलती हैं।

आज क्रिकेट रंग-बिरंगी पोशाकों में खेली जानी आरंभ हो गई है। परंतु यह स्थिति तो महिलाओं ने 2 अक्तूबर 1811 में ही स्थापित कर दी थी जिसमें 14 वर्ष से 60 वर्ष तक की महिलाओं ने भाग लिया। टीमें थी हैंपशायर तथा सेइ हीरोइन की।

कुछ शंकाएं

महिला क्रिकेट के बारे मे कुछ शंकाएं हैं जैसे पिच की लंबाई क्या होती होगी, विकेटों की ऊंचाई क्या होगी, क्या महिलाओं के बैट और उनके लैग गार्ड विभिन्न प्रकार के होते होंगे। सच्चाई तो यह है कि ये सब पुरुषों की भांति ही होते हैं। एम० सी० सी० के नियम तक महिला क्रिकेट में लागू होते हैं। केवल गेंद ही $\frac{1}{2}$ औंस हल्की होती है। इंग्लैंड की महिला क्रिकेट मे कोई पेशेवर खिलाड़ी नहीं है।

अखिल भारतीय खेल परिषद ने महिला क्रिकेट संघ को मान्यता दे दी है और सारे प्रशिक्षण कार्यों के लिए अब सारी राशि का अनुदान मिलता है। अतर

भारतीय यूनिवर्सिटी बोर्ड ने भी महिला क्रिकेट की अंतः विश्वविद्यालय प्रतियोगिता शुरू कर दी है। इससे विश्वविद्यालय स्तर पर महिलाओं को क्रिकेट खेलने का अवसर प्राप्त हो गया है। हर्ष का विषय है कि लगभग 25 विश्वविद्यालयों की टीमें प्रतियोगिता में नियमित रूप से भाग लेने लगी हैं।

महिला क्रिकेट : भारत में

भारत में महिला क्रिकेट का इतिहास कुल 16 वर्ष पुराना है। 1973 में पुणे में पहली राष्ट्रीय महिला क्रिकेट प्रतियोगिता कराई गई थी। तब से लेकर 1986 तक पहुंचते-पहुंचते महिला क्रिकेट कहां-से-कहां पहुंच गया है। इस दौरान जहां महिला क्रिकेट के स्तर में आवश्यक सुधार हुआ है, वहां इस ओर महिलाओं की रुचि भी बढ़ी है। 1973 में हुए प्रथम विश्व कप महिला क्रिकेट में तो भारत भाग नहीं ले सका था, लेकिन बाद में भारतीय महिलाओं के खेल का स्तर और रुचि बढ़ने व देश भर में लोकप्रियता प्राप्त करने के कारण अंतरराष्ट्रीय महिला क्रिकेट परिषद ने द्वितीय विश्व कप का आयोजन भारत को सौंप दिया। इसमें आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, न्यूजीलैंड और भारत ने भाग लिया था। अब तक भारत चार देशों—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, इंग्लैंड और वेस्टइंडीज के साथ आठ श्रृंखलाओं में 29 टेस्ट खेल चुका है।

भारत में महिला क्रिकेट जिस प्रकार लोकप्रिय होता जा रहा है उससे यह आशा है कि जल्द ही महिला क्रिकेट भी पुरुषों की भांति और अधिक स्पर्धात्मक बन जाएगा। महिला टीम की कप्तान डायना एडलजी 104 विकेट लेकर विश्व रिकार्ड बना चुकी है। मानना है कि हमें अपने खिलाड़ियों पर पूरा गर्व है। शातारंगास्वामी अब तक 1602 रन बना कर 52 विकेट ले चुकी हैं। उपकप्तान शुभगी कुलकर्णी अब 77 विकेट लेकर खासा नाम कमा चुकी हैं। इसके अलावा संध्या अग्रवाल, रजनी वेणुगोपाल और रेखा पुणेकर, शशिगुप्त, सुजाता श्रीधर आदि पर भी हमें गर्व है।

महिला विश्व कप क्रिकेट

पहला विश्व कप—1973 इग्लैंड में

देश (टीम)	मैच-खेले	जीते	हारे	परिणाम रहित	अंक
इंग्लैंड	6	5	1	0	20
आस्ट्रेलिया	6	4	1	1	17
इंटर नेशनल इलेविन	6	3	2	1	13

न्यूज़ीलैंड	6	3	2	1	13
त्रिनिडाड एंड टोबेगो	6	2	4	0	8
जमैका	6	1	4	1	5
यंग इंग्लैंड	6	1	5	0	4

दूसरा विश्व कप—1978 भारत में

देश (टीम)	मैच-खेले	जीते	हारे	परिणाम रहित	अंक
आस्ट्रेलिया	3	3	0	0	12
इंग्लैंड	3	2	1	0	8
न्यूज़ीलैंड	3	1	2	0	4
भारत	3	0	3	0	0

तीसरा विश्व कप—1982 न्यूज़ीलैंड में

देश (टीम)	मैच-खेले	जीते	हारे	परिणाम रहित	अंक
आस्ट्रेलिया	12	11	0	1	46
इंग्लैंड	12	7	3	2	32
न्यूज़ीलैंड	12	6	5	1	26
भारत	12	4	8	0	16
इंटर नेशनल इलेविन	12	0	12	0	0

उच्चतम स्कोर (250 रन से अधिक)

273/3—60 ओवर में—इंग्लैंड बनाम आस्ट्रेलिया—1973

266/5—60 ओवर मे—आस्ट्रेलिया बनाम इंटर नेशनल इलेविन —1982

258/1—60 ओवर मे—इंग्लैंड बनाम इटर नेशनल इलेविन —1973

न्यूनतम स्कोर (50 रन से कम)

(अन्तर्राष्ट्रीय) महिला क्रिकेट भारतीय कप्तान

टेस्ट शृंखला	नाम	विरोधी देश	स्थल	वर्ष	मैच खेले	जीते	हारे	अनिर्णीत
1.	उज्ज्वला निगम	आस्ट्रेलिया	भारत	1974-75	1 टेस्ट	—	—	1
	सुधा शाह	आस्ट्रेलिया	भारत	1974-75	1 टेस्ट	—	—	1
	श्री रूपा बोस	आस्ट्रेलिया	भारत	1974-75	1 टेस्ट	—	—	1
2.	शांतारंगा स्वामी	न्यूज़ीलैंड	भारत	1975-76	5 टेस्ट	—	1	4
3.	शांतारंगा स्वामी	वेस्ट इंडीज़	भारत	1976-77	6 टेस्ट	1	1	4
4.	शांतारंगा स्वामी	न्यूज़ीलैंड	न्यूज़ीलैंड	1976-77	1 टेस्ट	—	—	1
5.	शांतारंगा स्वामी	आस्ट्रेलिया	आस्ट्रेलिया	1976-77	1 टेस्ट	—	1	—
	डायना एडलजी	विश्व कप	भारत	1978				
6.	डायना एडलजी	इंग्लैंड	भारत	1981	5 टेस्ट	—	—	5
		इंग्लैंड	भारत	1981	4 एकदिवसीय	1	3	—
	शांतारंगा स्वामी	विश्व कप	न्यूज़ीलैंड	1982				

7.	शांतारंगा स्वामी	आस्ट्रेलिया	भारत	1984	4 टेस्ट	—	—	4
		आस्ट्रेलिया	भारत	1984	4 एकदिवसीय	—	4	—
8.	नीलिमा जोगलेकर	न्यूज़ीलं■	भारत	1985	1 टेस्ट	—	—	1
	डायना एडलजी	न्यूज़ीलैंड	भारत	1985	2 टेस्ट	—	—	2
	डायना एडलजी	न्यूज़ीलैंड	भारत	1985	6 एकदिवसीय	3	3	—
9.	डायना एडलजी	इंग्लैंड	इंग्लैंड	1986	3 टेस्ट	—	—	3
	डायना एडलजी	इंग्लैंड	इंग्लैंड	1986	3 एकदिवसीय	—	3	—

महिला खिलाड़ी

स्त्री जाति को अपने अधिकारों के लिए बहुत लम्बा संघर्ष करना पड़ा है। यूनान की प्राचीन सभ्यता में भी स्त्री जाति को समाज में दूसरे दर्जे का नागरिक समझा जाता था। प्राचीन ओलम्पिक खेलों में महिलाओं को न केवल भाग नही लेने दिया जाता था, बल्कि उन्हें ओलम्पिक खेलों को देखने तक के अधिकार से वंचित रखा गया। लेकिन फिर भी कुछ महिलाएं भेस बदलकर दर्शकों में जा बैठती थी, जबकि उन्हें यह मालूम रहता था कि पकड़े जाने पर मृत्युदंड मिल सकता है।

खैर किसी तरह 1900 में पेरिस में हुए ओलम्पिक खेलों में महिलाओं को भाग लेने की अनुमति मिल गई। इस अधिकार के लिए उन्हें काफी समय डटकर संघर्ष करना पड़ा। खेल बहुत ही लोकप्रिय था। पहली बार छह खिलाड़ियों ने लान टेनिस की प्रतियोगिता में भाग लिया और ब्रिटेन की कुमारी कूपर को पहली बार ओलम्पिक खेलों में एकल चैम्पियन बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उसके बाद धीरे-धीरे करके एथलेटिक, तैराकी, जिम्नास्टिक और दूसरी प्रतियोगिताओं में भी महिलाओं ने भाग लेना शुरू दिया।

आज महिलाएं भागने-दौड़ने, उछलने, कूदने, तैरने, चक्का-गोला, भाला फेंकने या पर्वतारोहण में पुरुषों के साथ बराबरी करने को तैयार है।

खेलकूद में महिलाओं के भाग लेने का जहा तक प्रश्न है, उसका संबंध उनकी शरीर-रचना संबंधी मनोवैज्ञानिक एवं समाज शास्त्रीय विचारधारा से है। उनके क्रीड़ा जीवन में यह सब कारण बाधाएं उपस्थित करते हैं। इन्ही समस्याओ के कारण पुरुषों की तुलना में खेलकूद क्षेत्र में महिलाएं अधिक प्रशंसनीय कार्य नही कर पायी हैं। व्यावहारिक दृष्टि से यह सिद्ध हो चुका है कि ये समस्याएं एक बहुत बड़ी सीमा तक खेलकूद के क्षेत्र में उनकी कुशलता को कम करती हैं और उनके कार्यकलापो पर बड़ा गहरा प्रभाव छोड़ती हैं।

ओलम्पिक ने स्वरूप बदला

जब से ओलिंपिक प्रतियोगिताओं में महिलाओं का समावेश हुआ है, स्त्री स्वरूप के अभिनव रूप का प्रादुर्भाव हो रहा है। इसका कारण पिछले दशकों में खेलकूद के क्षेत्र में घटित परिवर्तन है। आज महिलाएं कूद सकती हैं, तैर सकती हैं, चक्का फेंक सकती हैं। उन्हें हाकी, क्रिकेट, फुटबाल, वालीबाल, जूडो, कबड्डी खेलने का सामर्थ्य प्राप्त है और पुरुषों की समानता करती हुई वह दुर्गम पर्वतारोहण भी कर सकती हैं।

ओलिंपिक खेलों में 1500 मीटर लंबी दौड के लिए जब महिलाओं को इजाजत दी गई तब काफी समय तक इस बात पर विचार एवं संघर्ष चलता रहा कि इस दौड में महिलाओं के भाग लेने से उनके कोमल अंगों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा किंतु इस चर्चा का समापन स्वाभाविक ढंग से हुआ क्योंकि इस दौड़ मे उनकी उपलब्धिया पराकाष्ठा की सीमा तक गईं। आज यह 1500 मी० लंबी दौड़ महिलाओं द्वारा 4 मिनट 1.4 सेकिंड में दौड़ी जा सकती है।

महिला फुटवाल

50 वर्षों तक निरंतर 'इंग्लिश फुटवाल एसोसिएशन' दिसंबर 1921 में पास किए गए प्रस्ताव का समर्थन करती रही। उनका दृढ़ मत था कि फुटवाल जैसा खेल महिलाओं के लिए सर्वथा अनुचित है और उन्हें इस दिशा में प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टि से फुटवाल की महिला खिलाडी मानों एक हास्य का विषय थी किंतु अंततः 'इंग्लिश फुटबाल एसोसिएशन' को महिला फुटवाल को मान्यता देनी पड़ी।

अधिकाश विरोध इस प्रकार के खेलों मे इसलिए किया जाता है क्योंकि इसके पीछे निराधार कल्पना है, सत्य नही। लोगों को भ्रम है कि इस प्रकार के प्रतियोगी खेलों मे महिलाओं का भाग लेना उचित नही क्योंकि ऐसा करने से उनका शरीर पुरुष जैसा कठोर हो जाता है। किंतु अनुसंधानकर्ताओं एवं वैज्ञानिको ने इस भ्रामक धारणा का खंडन कर दिया है कि स्त्री की मांस-पेशियां पुरुष की भांति कठोर हो सकती हैं।

महिलाएं अच्छी बल्लेबाजी

क्या क्रिकेट महिलाओं के लिए एक खतरनाक खेल है ? नही हाकी और फुटवाल से अधिक खतरनाक नही क्योंकि इस खेल मे लड़कियों का मुकाबला लड़कियों से ही होता है। इसलिए बहुत तीव्र गति से उछाली गई गेंदों की संभावना त्यागी जा सकती है। लड़कियों के लिए कठिन समस्या गेंद फेंकने की होती है परंतु महिलाएं अच्छी वल्लेबाज भी होती हैं।

क्रिकेट के खेल मे भारत ने बहुत थोड़े समय मे एक अच्छी टीम तैयार कर ली है। शाता रंगास्वामी ने क्रिकेट मे अपना सिक्का जमा रखा है। लान टेनिस मे भूतपूर्व एशियन चैम्पियन निरुपमा माकड ने लगभग एक दशक तक अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाये रखा। किरण बेदी का नाम आज भी लिया जा सकता है जिसने पूना में 1972 मे एशियाई लान टेनिस चैंम्पियनशिप जीती।

तैराकी के क्षेत्र में आरती साहा (अब श्रीमती आरती गुप्ता ने समुद्र के भयंकर थपेड़ों व उत्ताल तरंगों के बीच तैरकर इंग्लिश चैनल को पार किया और भारत का गौरव बढ़ाया। तैराकी के क्षेत्र में द्वितीय उल्लेखनीय नाम रीमा दत्ता का है।

निशानेबाजी में कुमारी भुवनेश्वरी कुमारी जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। अंजनी एन० देसाई, जयम्मा श्रीनिवासन, ऊषा सुन्दरराज ने क्रमशः गोल्फ, बाल बैडमिंटन और टेबल टेनिस खेलों में अच्छी उपलब्धियां प्राप्त की।

पिछड़ी भारतीय महिलाए

फिर भी भारतीय महिलाए पुरुषों के समकक्ष नही आ सकी हैं। इसका सबसे बड़ा कारण हमारी सामाजिक व्यवस्था है। आज महिलाओ को सामान्य जीवन-यापन में खेल कार्यक्रमों को अग बनाने का अवसर नही मिला है। बड़े-बड़े शहरो में महिलाओ के कुछ क्लब हैं जो कि उच्च वर्ग की महिलाओं की आवश्यकताओ की पूर्ति करते हैं। इन क्लबों में उन्हें मिलने-जुलने के अवसर प्राप्त होते हैं और वे केवल समाज-सेवा, पाक-सज्जा मे दक्षता, सिलाई और बुनाई को ही गौरव-पूर्ण कार्य समझती हैं। वास्तव में इस प्रकार के कार्य से महिला खेलों पर बहुत बड़ा आघात पहुंचता है। स्कूलों में प्रदान किए जाने वाले थोड़े अवसर भी उन्हें प्राप्त नही।

शिक्षा शास्त्री, अध्यापिकागण महिलाओं की आवश्यकताओं, इच्छाओं और प्रकृति के अनुरूप खेलों को विकसित करने का प्रयास करें। सभी खेल फैडरेशनो का प्रयास रहे कि हर स्पर्धा में महिलाएं विजय पथ पर बढ़ सकें। आशा की जाती है कि इन प्रकार के कार्यक्रम लड़कियों और महिलाओं के समाज में भूमिका विकसित कराने तथा खेलकूद में सहायक सिद्ध होंगे।

महिलाएं जो अर्जुन बनीं

देश के उत्कृष्ट खिलाडियों को सम्मानित, करने के लिए 1961 में सरकार ने अर्जुन पुरस्कारो की शुरुआत की। इस योजना के अतर्गत देश के प्रतिभाशाली पुरुष और महिला खिलाड़ियो के समग्र प्रदर्शन के आधार पर विशेष रूप से जिस वर्ष के ये पुरस्कार होते हैं उससे पहले तीन वर्षों के दौरान उनके प्रदर्शन को ध्यान मे रखते हुए दिए जाते हैं। पुरस्कार विजेता के दूसरे गुण नेतृत्व, खेल भावना व अनुशासनबद्धता को भी ध्यान में रखा जाता है।

इन खिलाड़ियों का चयन, मान्यताप्राप्त राष्ट्रीय खेल संघों द्वारा की गई

सिफारिशों के आधार पर किया जाता है। जिन पर अखिल भारतीय खेल परिषद यथापूर्वक विचार करती है और अंत में सरकार अपनी मंजूरी देती है।

पुरुषों की अपेक्षा महिला खिलाड़ियों की संख्या पुरस्कार विजेताओं में काफी कम रही है। राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई महिला खिलाड़ियों का स्तर काफी बेहतर रहा है।

इस स्पृहणीय पुरस्कार को पाने का सर्वप्रथम श्रेय हाकी खिलाड़ी कुमारी एन. लम्सडन को जाता है। इसने यह पुरस्कार पहले वर्ष 1961 में पाया और 1962 में कुमारी मीना शाह को बैडमिंटन में उत्कृष्ट प्रदर्शन द्वारा अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

कुमारी स्टीफि डिसूजा जिसने तीसरे टोक्यो एशियाई खेलों की महिला 200 मीटर दौड़ में रजत पदक जीता था और कई वर्ष स्प्रिंट दौड़ों में तहलका मचा रखा था, 1963 में इसे अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

वर्ष 1964 में किसी भी महिला एथलीट को इस पुरस्कार के लिए नहीं चुना गया। वर्ष 1965 के लिए हाकी खिलाड़ी कुमारी एलवीरा ब्रिटो को चुना गया।

1966 में तीन महिला खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जिनके नाम हैं—सुनीता पुरी (हाकी), रीमा दत्त (तैराकी) तथा ऊषा सुंदरराज (टेबल टेनिस) 1967 में किसी भी महिला खिलाड़ी को यह पुरस्कार नहीं मिला।

वर्ष 1968 में मनजीत वालिया (एथलेटिक्स) तथा बीकानेर की राजकुमारी राज्यश्री (निशानेबाजी) को पुरस्कृत किया गया। मनजीत वालिया को पांचवें एशियाई खेलों में 80 मीटर बाधा दौड़ में कांस्य पदक मिला था।

दो कुमारियां सम्मानित

कुमारी भुवनेश्वरी कुमारी ने निशानेबाजी में राज्यश्री के साथ कई अंतरराष्ट्रीय स्पर्धाओं में काफी नाम कमाया था। इसे 1969 में इस पुरस्कार को पाने का श्रेय प्राप्त हुआ। 1970 में बैडमिंटन की श्रेष्ठ खिलाड़ी श्रीमती दमयंती बी तांबे केवल एकमात्र महिला रही जिसे पुरस्कृत किया गया। 1971 के लिए तीन महिला खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार मिला। इनके नाम हैं। कुमारी शोभा मूर्ति (बैडमिंटन), कुमारी अचला सुबेराव देवरे (खो-खो) और श्रीमती कैंटी फरुख खोदायजी (टेबल टेनिस)।

पहली बार बाल बैडमिंटन तथा गोल्फ में महिला खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार 1972 में दिया गया। कुमारी जयम्मा श्रीनिवासन को बाल बैडमिंटन

तथा गोल्फ में श्रीमती अंजनी एन. देसाई को सम्मानित किया गया।

1973 में ओटीलिया मस्क्रीनाज को हाकी में, कुमारी भावना हसमुखलाल पारिख को खो-खो तथा श्रीमती जी. मुलिनो रेड्डी को वालीवाल में यह गौरव प्राप्त हुआ।

1974 में भी तीन महिला खिलाड़ी अर्जुन पुरस्कार के लिए चुनी गयी। इनके नाम हैं: अजिंदर कौर (हाकी), नीलिमा चन्द्रकाता सरोलकर (खो-खो) तथा मजरी भार्गव (तैराकी)।

सर्वाधिक पांच महिला खिलाड़ियों को वर्ष 1975 में यह पुरस्कार मिले। वी. अनुसूया बाई को एथलेटिक्स, रूपा सैनी को हाकी, उपा वसंत नागरकर को खो-खो, के. सी. एलम्मा को वालीवाल तथा समिता देसाई को तैराकी में सम्मानित किया गया।

गीता-शांता पुरस्कृत

भारतीय एथलेटिक्स की उत्कृष्ट धाविका गीता जुत्शी को 1976 मे अर्जुन पुरस्कार मिला। इसी वर्ष विख्यात बैडमिंटन खिलाड़ी अमी घिया, क्रिकेट जगत में तहलका मचाने वाली शाता रंगास्वामी तथा शैलजा सलोखे को टेबल टेनिस मे यह पुरस्कार मिले। गीता जुत्शी ने बैंकाक की आठवीं एशियाड मे 800 मीटर दौड़ में स्वर्ण पाकर अपने देश का नाम ऊंचा किया था।

वर्ष 1977 मे कंवल ठाकुर सिंह (बैडमिंटन), श्रीमती सीता रावल्लो (गोल्फ) तथा कुमारी लोरोने लुना फर्नांडिस को हाकी मे पुरस्कृत किया गया। 1978 में 17 खिलाड़ियो में पांच महिला रही। इनके नाम हैं। एंजल मेरी जोसफ (एथलेटिक्स), मिनाती महापात्र (साइकिलिंग), शकुन्तला पंडारीनाथ खटावकर (कबड्डी) श्रीमती निरुपमा माकड (लान टेनिस) तथा विकलांग खिलाड़ी कुमारी शेरनाज किरमानी।

वर्ष 1979 में कुल 11 खिलाड़ी चुने गए जिनमें दो महिला रहीं। महिला खिलाड़ियो के नाम है। रेखा बी. मुंडप्पन (हाकी) तथा इंदुपुरी (टेबल टेनिस)।

1980-81 के लिए अंतरराष्ट्रीय शतरंज मास्टर कुमारी रोहिणी खाडिलकर तथा मास्को ओलम्पिक की भारतीय हाकी कप्तान एलिजा नेलसन को यह पुरस्कार पाने का गौरव प्राप्त हुआ।

मर्डेका फुटवाल

एशियाई फुटवाल का सबसे चर्चित टूर्नामेंट है मर्डेका। 1957 में खेल प्रेमी प्रधानमन्त्री तुनक अब्दुल रहमान ने मलेशियाई स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य पर राजधानी क्वालालंपुर मे अंतरराष्ट्रीय फुटबाल टूर्नामेंट के आयोजन का निर्णय

लेकर मलेशियाई नागरिकों को अनुपम उपहार भेंट किया।

मलेशियाई नागरिकों का उत्साह और प्रथम टूर्नामेंट की जोरदार सफलता से मलेशियाई फुटबाल संघ ने इसे हर वर्ष आयोजित करने का फैसला किया। तब से एशिया का यह सर्वाधिक लोकप्रिय टूर्नामेंट निर्विघ्न आयोजित किया जा रहा है। शुरू-शुरू मे दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र ही इसमें भाग लेते रहे किन्तु बाद में अन्य एशियाई देशों का भी इसके प्रति आकर्षण बढ़ता गया।

मर्डेका और भारत

पहली दो प्रतियोगिताओं मे भारत ने भाग नही लिया। एस. ए. लतीफ के नेतृत्व में 1959 में भारतीय टीम ने पहली बार प्रतियोगिता मे भाग लिया। 11 देशों की उपस्थिति में भारत ने उप-विजेता बनने का गौरव प्राप्त किया। फाइनल मे भारत मलेशिया से हारा।

एक वर्ष के अंतराल के बाद भारतीय टीम पी. के. बनर्जी की कप्तानी में गई मगर प्रारंभिक दौर में ही उसे पिटकर लौटना पड़ा। 1962-63 मे भारत ने टीम नही उतारी। 1964 मे टीम का दायित्व चुन्नी गोस्वामी को सौंपा गया और भारत ने पाच वर्ष पूर्व की कहानी को दोहरा दिया। भारत की चैम्पियन बनने की आशा को बर्मा ने ठेस पहुंचाई।

सन् 1965, 66, 67 में जरनैल सिंह टीम लेकर गया। पहले दो वर्षों में तो भारतीय टीम संतोषप्रद प्रदर्शन कर तीसरा स्थान ले आई लेकिन 1967 में टीम की बहुत बुरी दुर्गति हुई। 12 देशों की टीमों के बीच भारत को आठवा स्थान मिल पाया। अगले दो वर्ष भी खराब प्रदर्शन जारी रहा। 1968 में छठा और 1969 में आठवां स्थान मिला। इन पराजित टीमों के कप्तान थे अरुण घोष और इन्दर सिंह।

1970 में नईमुद्दीन की टीम ने भारतीय छवि को सुधारा और तीसरा स्थान दिलाया। परंतु चंद्रेश्वर प्रसाद की टीम ने तो 1971 में भारत की प्रतिष्ठा ही डुबो दी। मर्डेका फुटबाल में इस वर्ष भारतीय प्रदर्शन निम्न स्तरीय रहा। भारत 10वें स्थान पर लुढ़क गया। 1973, 74 और 76 में भारतीय टीम गई और तीनों बार छठा स्थान ही पा सकी।

पांच वर्ष बाद भारत ने फिर टीम उतारी। इस बार भारतीय टीम ने अच्छा प्रदर्शन किया और मलेशियाई दर्शकों की चहेती टीम बन गई। शाबिर अली के नेतृत्व में भारत सेमी-फाइनल तक पहुचा।

अपने वर्ग मे भारत ने न्यूज़ीलेंड के साथ छह अंक लेकर संयुक्त रूप से दूसरा स्थान प्राप्त किया। बेहतर गोल औसत से भारत सेमी-फाइनल में स्थान पा गया। रोचक वर्ग मुकाबले मे जापान से 2—3 से हारा, संयुक्त अरब अमीरात को

2—0 से इंडोनेशिया को 1—0 से हराया जबकि मेजबान मलेशिया से उनकी टक्कर 2—2 से बराबरी पर छूटी। लेकिन हरजिंदर, परमार और कांपटन दत्ता का चोटग्रस्त होना भारतीय टीम को महंगा पड़ा। फिर भी अव्यवस्थित भारतीय टीम ने ब्राजील का पूरे जोश से मुकाबला किया और पराजय का अंतर रहा सिर्फ दो गोल। मर्डेका फुटबाल की रजत जयंती के अवसर पर किए गए प्रदर्शन ने भारतीय फुटबाल को नई ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया।

माइकेल फरेरा

भारत का कोई खिलाड़ी किसी व्यक्तिगत खेल में विश्व चैम्पियन का पद प्राप्त कर सकता है इस बात पर आसानी से विश्वास नहीं होता, क्योंकि भारतीय खेलकूद के पूरे इतिहास में दो-चार खिलाड़ियों से ज्यादा नाम नहीं ढूंढे जा सकते।

1977 में मेलबोर्न में हुई विश्व बिलियर्ड प्रतियोगिता के फाइनल में भारत के 40 वर्षीय माइकेल फरेरा ने इग्लैंड के बाब क्लोज को 2,683—2,564 से हराकर विश्व चैम्पियन का पद प्राप्त किया था। इनसे पहले विल्सन जोंस ने 1958 और 1964 में दो बार विश्व चैम्पियन का पद प्राप्त किया था।

11 दिसंबर, 1958 को बिलियर्ड के खेल में विश्व चैम्पियन का पद प्राप्त करने वाले विल्सन जोंस पहले भारतीय थे।

बम्बई के 40 वर्षीय वकील फरेरा ने इससे पहले छह बार विश्व प्रतियोगिताओं में भारत का प्रतिनिधित्व किया जिसमें तीन बार वह फाइनल तक पहुंचे और दो बार उन्हें तीसरा स्थान प्राप्त हुआ। उनका जन्म 1 अक्तूबर, 1938 को हुआ और 1969 में उन्होंने विश्व एमेच्योर बिलियर्ड चैम्पियनशिप में भाग लिया। श्री फरेरा ही ऐसे खिलाड़ी थे जिन्होंने उस खेल में वह एक गेम जीता जिसमें इग्लैंड के चैम्पियन श्री जे० कारनेहन की हार हुई थी। उस समय उन्हें भारत का नम्बर-2 का खिलाडी माना जाता था। तब उन्हें दो विश्व चैम्पियनशिप ट्राफियां प्रदान की गई—एक रनर-अप की तथा दूसरी सबसे अच्छे ब्रेक की। उनके इसी खेल प्रदर्शन के आधार पर उन्हें 1970 में अर्जुन पुरस्कार से भी अलंकृत किया गया।

1981 में दिल्ली में फरेरा ने एक बार फिर विश्व खिताब जीता और इसके साथ ही कुछ और विश्व रिकार्ड बनाए, पर उन्हें इस बार राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तो क्या किसी छोटे सरकारी अधिकारी से भी बधाई का एक शब्द नसीब नहीं हो सका। फरेरा कहते हैं "मैं स्वयं प्रधानमंत्री से मिला।"

दिसंबर 1978 में फरेरा ने एमेच्योर बिलियर्ड के इतिहास में पहली बार

चार अंकों का ब्रेक 1149, विश्व रिकार्ड हासिल किया। 'गिनीस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड' ने इसे उद्धृत किया है।

मार्क स्पिट्ज (तैराकी)

मार्क स्पिट्ज का जन्म 10 फरवरी, 1950 को अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रांत के मोडेस्टो शहर में हुआ। स्पिट्ज ने 1972 म्यूनिख ओलंपिक में तैराकी की प्रतियोगिताओं में सात पदक जीतकर एक रिकार्ड कायम किया था। 100 मी० फ्री स्टाइल 51.22 से०, 200 मी०, फ्री स्टाइल 1:52.78 से०, 100 मी० बटरफ्लाई 54.27 से० तथा 200 मी० बटरफ्लाई 2:00.70 से० में जीतकर एक नया विश्व रिकार्ड बनाया था। इसके अतिरिक्त उसने 4 × 100 मी० फ्री स्टाइल रिले, 4 × 200 मी० फ्री स्टाइल रिले, 4 × 100 मी० मेडिलेरिले में स्वर्ण पदक प्राप्त कर अपने प्रतियोगी खिलाड़ियों तथा दर्शकों में काफी सम्मान प्राप्त किया।

ओलम्पिक खेलों में एक स्वर्ण पदक प्राप्त करना ही बहुत बड़ी बात होती है। लेकिन कुछ खिलाड़ी ऐसे भी होते हैं जो एक ही ओलंपिक में ढेरों स्वर्ण पदक प्राप्त कर लेते हैं। अमेरिका के 22 वर्षीय मार्क स्पिट्ज भी ऐसे ही खिलाड़ियों में से एक हैं। उन्होंने म्यूनिख ओलम्पिक खेलों में एक साथ सात स्वर्ण पदक प्राप्त किए। ओलम्पिक खेलों के इतिहास में आज तक किसी भी खिलाड़ी ने एक साथ इतने स्वर्ण पदक प्राप्त नहीं किए। इसलिए कहा जा सकता है कि उन्होंने कभी न टूटने वाला रिकार्ड स्थापित कर दिया है।

माराडोना

पेले के उत्तराधिकारी के रूप में जिस खिलाड़ी ने फुटबाल सम्राट का सिंहासन संभाला है वह हैं अर्जेंटीना के कप्तान डाएगो माराडोना।

1960 में जन्मे डाएगो एरमांडो माराडोना को बचपन से ही फुटबाल खेलने का शौक था। 1972 में केवल 12 वर्ष की आयु में ही माराडोना ने फ्रांसिस्को के क्लब 'सेबोलीटास' की ओर से खेलना आरंभ कर दिया था।

अंतर्राष्ट्रीय फुटबाल में भी उसका प्रवेश बड़े शानदार ढंग से हुआ। फरवरी 1977 में बोका क्लब के मैदान पर अर्जेंटीना और हंगरी का मैच खेला जा रहा था। आधे समय तक स्कोर 1—1 से बराबरी पर था कि तभी माराडोना को स्थानापन्न खिलाड़ी के रूप में मैदान में उतारा गया। मैदान में उतरते ही उसने गोलों की झड़ी लगा दी। खेल समाप्त होने से पहले उसने कुल चार गोल किए।

इस शानदार प्रदर्शन के बावजूद भी मारादोना को 1978 में होने वाले विश्व कप के लिए राष्ट्रीय टीम में नहीं चुना गया। उल्लेखनीय यह है कि इस विश्व कप में अर्जेंटीना ने पहली बार विश्व कप जीता। इस वर्ष मारादोना ने इंग्लैंड के शेफील्ड युनाइटेड क्लब से 8 लाख डालर का अनुबंध कर लिया। 1979 और 1980 में मारादोना ने दक्षिणी अमेरिकी प्रतियोगिता में काफी अच्छा खेल दिखाया और उसे इस महाद्वीप का सर्वश्रेष्ठ फुटबाल खिलाड़ी घोषित किया गया।

1980 में ही जब मारादोना अर्जेंटीना की ओर से गोल्ड कप स्पर्धा में भाग लेने के लिए इंग्लैंड आए तो वहां पर उसका खूब प्रचार किया गया। मारादोना ने भी अपनी ख्याति के अनुरूप शानदार प्रदर्शन किया जिसकी बदौलत उसकी टीम चैम्पियन बनी। उसके खेल को देखकर फुटबाल सम्राट पेले ने कहा, "इस समय मारादोना को रोकना बहुत मुश्किल है।"

मालवा

फलाई वेट वर्ग के भारत के मशहूर पहलवान मालवा का जन्म 1946 में दिल्ली में हुआ। उन्होंने छोटी उम्र में ही काफी ख्याति अर्जित कर ली है। 1961 में गुंटूर में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में उन्हें अपने वर्ग का राष्ट्रीय चैम्पियन होने का गौरव प्राप्त हुआ। उसी वर्ष योकोहामा (जापान) में हुई विश्व कुश्ती प्रतियोगिता में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। उसके बाद 1962 में जबलपुर में हुई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। 1961 में वह भारत-श्रीलंका प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए श्रीलंका गए, अगले वर्ष ही दिल्ली में भारत-श्रीलंका के पहलवानों की कुश्ती हुई, जिसमें उन्हें बैंटम वेट में पहला स्थान प्राप्त हुआ। उनकी ताकत, चुस्ती और फुर्ती देखते ही बनती है। 1962 में जकार्ता में हुए एशियाई खेलों में उन्होंने फ्री-स्टाइल को ग्रीको-रोमन स्टाइल कुश्तियों में भाग लिया जिसमें उन्हें ग्रीको-रोमन में स्वर्ण पदक और फ्री-स्टाइल कुश्ती में कांस्य पदक प्राप्त हुआ। 1966 में वह राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में फिर राष्ट्रीय चैम्पियन बने।

मार्सिआनो, राकी

यों तो हर व्यक्ति के जीवन का अंत मृत्यु ही है, मगर दुनिया में कुछ अभागे इंसान ऐसे भी होते हैं जिनका जन्म-दिन ही मृत्यु-दिन बन जाता है। ऐसे अभागे व्यक्तियों में ही एक थे राकी मार्सिआनो। राकी मार्सिआनो का जन्म 1 सितम्बर, 1923 को इटली के एक मूल परिवार में हुआ जो बाद में अमेरिका में आकर बस गया। बाल्यावस्था में ही राकी ने अपने पिता से यह कह दिया था कि मैं एक दिन

विश्व का हैवीवेट चैम्पियन बनूगा। मरी जवानी में उन्हें 'दुनिया का सबसे शक्तिशाली निहत्था इंसान' कहा जाता था। लेकिन 1 सितम्बर, 1969 को ही उनकी एक विमान-दुर्घटना में मृत्यु हो गई।

आज से लगभग 36 साल पहले तक मुक्केबाजी की दुनिया में उनका एकछत्र राज्य था। 1952 से 1956 तक वह विश्व के अविजित हैवीवेट चैम्पियन रहे। एक के बाद एक दुनिया के सभी मुक्केबाजों की चुनौतियों को स्वीकार करने वाले राकी मार्सिआनो को जब पांच वर्ष तक दुनिया का कोई मुक्केबाज नही हरा सका तो उन्होने विजित चैम्पियन के रूप में सन्यास लेने का निश्चय किया। उनका भाव शायद यही था कि मेरे मैदान से हट जाने के बाद दूसरों को प्रकाश में आने का अवसर मिलेगा। 23 सितम्बर, 1952 को उन्हें जो विश्व-विजेता का पद प्राप्त हुआ उसे उन्होंने 1956 तक बराबर संभाल कर रखा और अचानक 27 अप्रैल, 1956 को खेल से सन्यास लेने की घोषणा कर डाली। दूसरे मुक्केबाजों की तुलना में मार्सिआनो की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जहां दूसरे मुक्केबाज सन्यास (या अवकाश-ग्रहण) की घोषणा के बाद भी पैसो के प्रलोभन में आ गए वहां उन प्रलोभन से कोसों दूर रहे और सन्यास की घोषणा के बाद फिर कभी रिंग में नही उतरे। उन्होने अपने जीवनकाल में 49 पेशेवर मुकाबलों में भाग लिया और उनमें से 43 मुकाबले 'नाक-आउट' से जीते। अपनी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर पहुचने पर उन्होने दो कारणों से सन्यास लिया। एक तो यह कि वह अपनी पत्नी बारबरा और बेटी मेरी के लिए एक अच्छा-सा घर बनाना चाहते थे और दूसरे यह कि उनकी पीठ में निरन्तर पीड़ा रहने लग गई थी।

उनके हाथों में कितनी ताकत थी इसका अंदाजा तो इस बात से लगाया जा सकता है कि रस निकालने वाली मशीन के बिना वह अपने हाथो से ही अनानास का रस निकाल लेते थे।

मिल्खा सिंह

भारतीय दौड़ाकों मे जितनी लोकप्रियता मिल्खा सिंह को प्राप्त हुई, उतनी और किसी अन्य दौड़ाक को प्राप्त नहीं हुई। सच तो यह है कि भाग-दौड़ के क्षेत्र मे आज भारत को जो भी स्थान प्राप्त है उसका श्रेय मिल्खा सिंह को है। उन्हें उड़ाकू सिख (फ्लाईंग सिख) भी कहा जाता है।

भारत-विभाजन से पहले मिल्खा सिंह लायलपुर में रहते थे। 1947 में जब वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ दिल्ली आए तब उनकी उम्र केवल 12 वर्ष की ही थी। मिल्खा सिंह के परिवार के अधिकतर लोग सेना मे भरती होते आए थे। उनके बड़े भाई माखन सिंह सेना में हवलदार थे। उन्ही के पास

रहकर मिल्खा सिंह ने नवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। 1950 में वह कारों और ट्रकों की मरम्मत करने वाली एक मामूली-सी दुकान मे काम करने लगे। लेकिन इस काम में मिल्खा सिंह का मन नही लगा। उनके भाई ने 1953 में मिल्खा सिंह को सैनिक के रूप मे भरती करा दिया। यह एक संयोग की ही बात थी कि जिस यूनिट में मिल्खा सिंह भरती हुए उसकी बास्केट बाल, हाकी और फुटबाल की अच्छी-खासी टीमें थी। वैसे भी खेलकूद के इतिहास में सेना की टीमों और सेना के खिलाड़ियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

खेलकूद के प्रति अपने साथियों का शौक और रुझान देखकर मिल्खा सिंह भी खेलो में भाग लेने लगे। लेकिन मिल्खा सिंह की रुचि अन्य खेलों की अपेक्षा भागने-दौड़ने में अधिक थी। पहले-पहल वह लम्बे फासले की दौड़ों में हिस्सा लेने लगे। एक बार वह पांच मील की दौड़ प्रतियोगिता मे दूसरे स्थान पर रहे। लेकिन यूनिट के प्रशिक्षकों ने मिल्खा सिंह को यह सुझाव दिया कि उन्हें छोटे फासले की दौड़ों मे हिस्सा लेना चाहिए और सारा ध्यान 400 मीटर की दौड़ पर ही केन्द्रित करना चाहिए। मिल्खा सिंह ने अपने प्रशिक्षकों की यह बात मान ली। और वह दिन-रात एक करके 400 मीटर की दौड़ का अभ्यास करने लगे।

1956 में उन्होने मेलबोर्न ओलम्पिक मे हिस्सा लिया, मगर वहा उनका प्रदर्शन निराशाजनक रहा। वहां उन्होंने 400 मीटर की दौड़ को 48.9 सैकिंड मे पूरा किया। उनकी इस असफलता का एक कारण यह भी था कि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं मे भाग लेने का कोई विशेष अनुभव नही था। लेकिन मिल्खा सिंह निराश नही हुए। मेलबोर्न ओलम्पिक मे 400 मीटर के विश्वविजेता अमेरिकी दौड़ाक जेंकिंस ने उन्हें कुछ मूल्यवान सुझाव दिए और मिल्खा सिंह ने उनपर पूरी तरह अमल करना शुरू किया।

'उड़न सिख' मिल्खा सिंह की यह भाग्यहीनता रही कि वे रोम ओलम्पिक मे पदक नही जीत सके और चौथे स्थान पर ही छूटे। मिल्खा सिंह अब जब कभी किसी एथलेटिक प्रतियोगिता को देखते हैं तो उनके मस्तिष्क मे रोम ओलम्पिक का वही दृश्य घूम जाता है। मिल्खा सिंह बोले : "मैं बताता हूं कि रोम ओलम्पिक की उस 400 मीटर की दौड़ में मैं स्वर्ण पदक से कैसे वंचित रह गया। हुआ यह कि आयोजको ने 400 मीटर में दो दिन का अंतर दे दिया। इससे मेरे मस्तिष्क पर स्ट्रेन पड़ा कि अब क्या होगा। दूसरे मुझे 400 मीटर की आउटर लेन में रखा गया। इस आउटर लेन का नुकसान यह है कि इससे पता नहीं चलता कि दूसरे एथलीट किस गति से दौड़ रहे हैं।

मैं पहले 200 मीटर तक आगे था, मेरे साथ पश्चिम जर्मनी के कार्ल

कोरमैन थे। उनकी गति धीमी थी जबकि मेरी गति तेज थी। मैं 250 मीटर क्रास कर गया तो मैंने आखिरी 100 मीटर की दूरी को देखते हुए अपनी गति पर कुछ नियंत्रण लगा लिया। बस, इसी के कारण मैं अपनी गति पर अपनी पकड़ छोड़ बैठा। फिर भी अंतिम 100 मीटर के फर्राटे के शुरू होने से पहले मैं अन्य धावकों से आगे था। किंतु हम जैसे ही फिनिशिंग लाइन (विजयी रेखा) के करीब पहुंचे तो फोटो फिनिश में मैं चौथे स्थान पर रह गया। मुझे यह विश्वास ही नहीं हुआ कि स्वर्ण पदक की आकांक्षा मन में संजोए मैं चौथे स्थान पर कैसे पिछड़ गया? फिर भी यह संतोष रहा कि हम चारों ने यह दौड़ नए कीर्तिमान के साथ पूरी की।"

मियांदाद, जावेद

जावेद मियांदाद का जन्म 12 जून, 1957 को कराची में हुआ था और वह अपने माता पिता की 7 संतानों में से एक हैं। भारत के विभाजन से पहले उसके पिता गुजरात में पालनपुर के नवाब के पास नौकरी करते थे।

1976-77 में न्यूजीलेंड के विरुद्ध लाहौर में मियांदाद ने अपना पहला टैस्ट खेला। अपनी पहली ही पारी में उसने 163 रन का विशाल स्कोर बनाया और क्रिकेट के रिकार्ड फिर से लिखने का सिलसिला शुरू हो गया। अपनी पहली टैस्ट पारी में शतक बनाने वाला वह सिर्फ दूसरा पाकिस्तानी बल्लेबाज था।

जावेद मियांदाद ने हमेशा ही ये साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है कि वह एक बेहद जोरदार बल्लेबाज है। क्रिकेट जगत ने ऐसे बहुत कम खिलाड़ी पेश किए हैं जिन्होंने टैस्ट क्रिकेट में अपने पहले दिन ही ये संकेत दे दिया था कि वे आंकड़ों की किताबों में कई रिकार्ड फिर से लिखेंगे। मियांदाद इन्हीं में से एक बल्लेबाज है। 1976-77 में उसने अपना पहला टैस्ट मैच खेला तब उसे 'पग वंडर' कहा गया। उस दिन से आज तक मियांदाद कम उम्र में शानदार सफलताएं हासिल करता आ रहा है। उसके पास ढेरों स्ट्रोक हैं और जिस दिन वह मूड में हो वह दुनिया के किसी भी आक्रमण की धज्जियां उड़ा सकता है।

मियांदाद ने समय-समय पर अपने आपको क्रिकेट की लाइन में रन मशीन साबित किया है और वह लगातार जिस तरह से रन बना रहा है वह क्रिकेट इतिहास के कई सफल बल्लेबाजों को पीछे छोड़ सकता है। इसके बावजूद क्या कारण है कि जावेद मियांदाद को क्रिकेट विशेषज्ञ एक मत होकर 'महान बल्लेबाज' नहीं कहते। माजिद खान और जहीर अब्बास को उससे ऊपर माना जाता है। जिन पुराने लोगों ने हनीफ मोहम्मद को बल्लेबाजी करते हुए देखा है वे मियांदाद को अभी भी पाकिस्तान का सबसे बेहतरीन बल्लेबाज नहीं मानते।

अगर मियांदाद मे सयम न होना इसके लिए जिम्मेदार है तो मियांदाद के आकड़े भी इसके लिए जिम्मेदार है। उसने अपने ज्यादातर रन पाकिस्तान में बनाए हैं जहा उसे आउट कर लेना—खास तौर पर एल०बी०डब्ल्यू० आउट कर लेना—एक बहुत बडी उपलब्धि है। पाकिस्तान में अब तक मियादाद ने जो 43 टैस्ट खेले है उनकी 61 पारियों में वह सिर्फ 4 बार एल०बी०डब्ल्यू० आउट हुआ है। मियांदाद के नाम पर एक आश्चर्यजनक विश्व रिकार्ड ये है कि वह अपने देश में खेले अपने 35वें टैस्ट मे पहली बार एल०बी०डब्ल्यू० आउट हुआ था।

इमरान खान ने 'आल राउड व्यू' में लिखा है—मेरा ख्याल है कि महान् कहलाने के लिए मियादाद को पाकिस्तान से बाहर ज्यादा रन बनाने की जरूरत है। अभी तक उसने अपने ज्यादातर रन पाकिस्तान मे ही बनाए हैं और इन्ही की बदौलत उसका रिकार्ड बहुत अच्छा है। 1987 मे ओवल मे उसने 260 रन की गजब की पारी खेली लेकिन इस बात को नही भूलना होगा कि ये इंग्लैड में उसका पहला टैस्ट शतक था।

बहरहाल जावेद मियांदाद एक बेहद सफल बल्लेबाज है और वह आने वाले दिनो मे और भी कई उपलब्धिया हासिल कर सकता है। मैच भले ही टैस्ट मैच हो या एकदिवसीय मैच—मियांदाद से बेहतर और कोई नही जानता कि रन कैसे बनाए जाते हैं। क्रिकेट विशेषज्ञ उसे महान नही मानते पर उसकी बल्लेबाजी और उसके क्षेत्ररक्षण की हमेशा तारीफ करते हैं। इंग्लैड के भूतपूर्व कप्तान माइक गैटिंग को मियांदाद के सबसे बड़े आलोचको मे से एक गिना जाता है लेकिन मियांदाद की प्रतिभा की तारीफ हमेशा गैटिंग ने की है। उसने अपनी किताब 'लिमिटेड ओवर्स' मे लिखा है—"मियादाद का नाम कई विवादास्पद घटनाओं से जुडा हुआ है जिसके कारण वह पूरे क्रिकेट जगत मे लोकप्रिय नही है पर फिर भी उसका सबसे बड़ा दुश्मन भी उसकी योग्यता की तारीफ किए बिना नही रह सकता। मैच मे जब सीमित ओवर के मैच जैसी स्थिति बन जाए तो उस समय मियादाद अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करता है और वह मैच को कोई भी नाटकीय मोड़ दे सकता है। विकेटों के बीच भागकर रन लेने और शानदार क्षेत्ररक्षण करने मे उसका कोई मुकाबला नही है।"

टैस्ट रिकार्ड : 92 टैस्टो मे 17 शतको की सहायता से 6621 रन। सर्वश्रेष्ठ 280 रन (और आउट नही)

मिलर (कीथ)

मिलर का जन्म मैलबोर्न की बेंजामिन गली में 28 नवंबर, 1919 को हुआ। मिलर अपने माता-पिता की चौथी संतान हैं।

मिलर ने 18 वर्ष की आयु मे अपने पहले प्रथम श्रेणी मैच विक्टोरिया की

ओर से खेलते हुए तस्मानिया के विरुद्ध 181 रन बनाकर धूम मचा दी। इसके बाद तो मिलर विक्टोरिया की टीम का नियमित सदस्य बन गया। 1945 में इंग्लैंड में खेलते हुए मिलर ने 72.50 की औसत से 725 रन बनाए। मिलर के इस प्रदर्शन को देखते हुए इन्हें आस्ट्रेलिया की टीम की ओर से इंग्लैंड के विरुद्ध खिलाया गया। इस टेस्ट मे मिलर ने शानदार 79 रन बनाए। पूरी शृंखला में मिलर ने 62.29 की औसत से 443 रन बनाए और 10 विकेट लिए।

1948 में मिलर ने डान ब्रैडमैन की टीम के साथ इंग्लैंड का दौरा किया। इस दौरे मे मिलर बहुत सफल रहे। उन्होंने एक शतक और एक दोहरे शतक की सहायता से 47.30 की औसत द्वारा 1088 रन बनाए। इसके अतिरिक्त मिलर ने 17.58 की औसत से 985 रन देकर 56 विकटें भी हासिल कीं।

इसके बाद मिलर ने 1950-51 के सत्र में दो दोहरे शतको और तीन शतकों की सहायता से 78.35 की औसत से 1332 रन बनाए तथा 1953 में इंग्लैंड के दौरे पर दो दोहरे शतकों की सहायता से 1433 रन बनाए। उनकी प्रति पारी औसत 51.17 थी। इस दौरे मे मिलर ने 22.51 की औसत से 1013 रन देकर 45 विकटें भी ली।

1955 के वेस्टइंडीज दौरे पर मिलर ने किंग्सटन के पहले टेस्ट मे अपने टेस्ट जीवन का उच्च स्कोर 147 रन बनाया। 1956 के इंग्लैंड के दौरे पर मिलर ने अपने क्रिकेट जीवन का उच्च स्कोर बनाया जब उन्होंने लीसेस्टरशायर के विरुद्ध खेलते हुए शानदार 281 अविजित रन बनाए। मिलर ने अपने जीवन के अंतिम टेस्ट में पाकिस्तान के विरुद्ध दो पारियो मे 32 रन बनाए और 58 रन देकर दो विकेट लिए। 1959 मे मिलर ने प्रथम श्रेणी क्रिकेट से सन्यास ले लिया।

मिलर ने अपने टेस्ट जीवन मे 55 टेस्टो मे 36.97 की औसत से 2958 रन बनाए। उन्होने इग्लैंड के विरुद्ध 29 टेस्टो मे 1511 रन, वेस्टइण्डीज के विरुद्ध 10 टेस्टों मे 801 रन, दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध 9 टेस्टों मे 399 रन, भारत के विरुद्ध 5 टेस्टों में 185 रन, पाकिस्तान के विरुद्ध 1 टेस्ट में 32 रन और न्यूजीलैंड के विरुद्ध 1 टेस्ट में 30 रन बनाए। मिलर ने 170 विकेट भी लिए। इग्लैंड के विरुद्ध 87, वेस्टइंडीज के विरुद्ध 40, दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध 30, भारत के विरुद्ध 9 और पाकिस्तान तथा न्यूजीलैंड के विरुद्ध 2-2 विकटें लीं।

मिहिर सेन

एक जमाना था जब इग्लिश चैनल (इंग्लैंड और फ्रास के बीच का 21 मील लम्बा सागर) तैरकर पार करना एक तरह से असंभव काम माना जाता था और एक जमाना यह है कि आए दिन यह समाचार सुनने को मिलते हैं कि अमुक

तैराक ने इंग्लिश चैनल पार कर लिया। 1925 से लेकर 1963 के आरंभ तक जिन 90 तैराकों ने इंग्लिश चैनल पार करने का अपना स्वप्न साकार किया उनमें चार भारतीय तैराक भी हैं। इनके नाम हैं: मिहिर सेन, आरती साहा, विमलचन्द दास और नितीन्द्रनारायण राय। मिहिर सेन इंग्लिश चैनल पार करने वाले पहले भारतीय और एशियाई विजेता हैं। मिहिर सेन उन तैराकों में नहीं हैं जो केवल इंग्लिश चैनल पार करके ही संतुष्ट हो जाते हैं और मन ही मन यह मान लेते हैं कि अब जीवन में उनको और कुछ नहीं करना है। मिहिर सेन ने एक के बाद एक सात समुद्र पार करने का संकल्प किया और उस संकल्प को पूरा करके दिखाया। तैराकी के क्षेत्र में मिहिर सेन ने जो साहस, शौर्य और पराक्रम दिखाया है उनसे हमारे देश के नवयुवक हमेशा प्रेरणा ग्रहण करते रहेंगे।

इंग्लिश चैनल पार करने के आठ वर्ष बाद उन्होंने पाक-जल-संधि (श्रीलंका और भारत के बीच का सागर, जिसे पाक जलडमरूमध्य भी कहते हैं) को तैरकर पार करने का फैसला किया। पाक-जल-संधि की दूरी लगभग 22 मील है परन्तु पूर्णिमा और समुद्र की तेज़ लहरों के कारण उन्हें 30 मील से भी अधिक की दूरी तय करनी पड़ी। इस दूरी को उन्होंने 25 घंटे और 36 मिनट में पूरा किया।

7 अप्रैल को मंडापम के निवासियों ने मिहिर सेन का सार्वजनिक स्वागत किया। इस अवसर पर उन्हें मैरिन बायोलॉजिकल एसोसिएशन ऑफ इंडिया की ओर से 'सेतु कप' (जिसपर हनुमान द्वारा सेतु पार किए जाने के प्रतीक रूप में हनुमान जी का चित्र अंकित था) प्रदान किया गया।

1966 में उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया गया। इससे पहले 1959 में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। मिहिर सेन के अद्‌भुत शौर्य और साहस की कहानी ने भारतीय खेलकूद के इतिहास को चार चाँद लगा दिए हैं।

मिहिरसेन की उपलब्धियाँ: (एक झलक)

तारीख	समुद्र का नाम	दूरी	समय
27 दिसंबर, 1958	इंग्लिश चैनल	21 मील	14 घं० 45 मि०
5-6 अप्रैल, 1966	पाक जलडमरूमध्य	22 मील	25 घं० 36 मि०
24 अगस्त, 1966	जिब्राल्टर सागर	25 मील	8 घं० 1 मि०
21 सितंबर, 1966	दारेदानयाल	40 मील	13 घं० 55 मि०
16 सितंबर, 1966	बासफोरस	16 मील	4 घं०
29-30 अक्तूबर, 1966	पानामा नहर	50 मील	35 घं० 20 मि०

मुक्केबाज़ी

मुक्केबाज़ी शायद विश्व की सबसे पुरानी खेल-प्रतियोगिता है। खेल के जानकारों का कहना है कि जबसे आदमी दुनिया में आया, तब से ही वह मुक्केबाज़ी के जरिए जानवरों और दुश्मनों से अपनी रक्षा करता आ रहा है। ईसा से 4000 वर्ष पहले, मिस्र के सैनिक मुक्केबाज़ी में निपुण होते थे, यह प्राचीन चित्रों से मालूम पड़ता है। मिस्र से मुक्केबाज़ी की कला यूनान ने सीखी। यूनान के प्राचीन ओलम्पिक खेलों में मुक्केबाज़ी की प्रतियोगिता भी होती थी। यह पुराने बीसवें ओलम्पिक खेलों से शुरू हुई। इसमें मुक्केबाज़ जिस 'ग्लव' (दस्ताना) को पहनकर मुक्केबाज़ी करते थे, उसमें नुकीली कीलें लगी होती थी, जिनकी वजह से कभी-कभी मुक्केबाज़ों की जानें भी चली जाती थी।

आगे चलकर, पुराने ओलम्पिक खेलों में 'पक्रेशन' नाम की एक बेरहम प्रतियोगिता शामिल हुई, जिसमे मुक्केबाज़ी के अलावा कुश्ती भी शामिल थी। इस प्रतियोगिता ने भी जाने कितने खिलाड़ियों की जानें ली। पर क्रूर होने के बावजूद यह प्रतियोगिता प्राचीन यूनान में इतनी लोकप्रिय थी कि लड़के भी उसमें भाग लेते थे। यूनान से यह प्रतियोगिता रोम में फैली और रोम से सारी दुनिया मे।

तब से अब तक मुक्केबाज़ी की प्रतियोगिता में कोई खास तब्दीली नही हुई है। आज भी मुक्केबाज़ पहले के मुक्केबाज़ों की तरह चमड़े के दस्ताने इस्तेमाल करते हैं और चमड़े और कैन्वास के बने 'पंचिंग बैग' का प्रयोग करते हैं। पर पुराने ओलम्पिक खेलों मे मुक्केबाज़ों के बीच 'राउन्ड' नही होते थे और न ही मुक्केबाज़ों का उनके वज़न के अनुसार वर्गीकरण किया जाता था। नियम यह था कि प्रतियोगिता तब तक चलती रहेगी, जब तक दोनों मुक्केबाज़ थक न जाएं, या उनमें से एक पूरी तरह या तो बुरी तरह चित्त न हो जाए।

ओलम्पिक खेलों की मुक्केबाज़ी प्रतियोगिता के पहले नियम पुराने ओलम्पिक खेलों में सबसे पहले मुक्केबाज़ी मे प्रथम आने वाले ओनोमास्तस ने बनाए थे। लेकिन ये नियम उदार नही थे और उनके कारण कई मुक्केबाज़ मर तक जाते थे। ईसा के जन्म के 394 वर्ष बाद रोमन सम्राट थियोदोसियस ने इस प्रतियोगिता को बन्द करा दिया। उसमे जीतने वाला अन्तिम मुक्केबाज़ था वरसादेत्स, जो बाद मे आर्मीनिया का राजा बना।

आज की मुक्केबाज़ी को दुनिया भर में फैलाने का काम भी ओलम्पिक खेलों ने ही किया है। 1886 और 1900 के ओलम्पिक खेलो मे इस प्रतियोगिता को कई कारणों से स्थान नही मिल पाया। 1904 के ओलम्पिक खेलों में पहली बार मुक्केबाज़ी की प्रतियोगिताएं हुई। वज़न के अनुसार मुक्केबाज़ों को दस वर्गों मे बांटा गया। अमेरिका के मुक्केबाज़ों ने 9 और हंगरी के एक मुक्केबाज़ ने बाकी

वची प्रतियोगिता जीती। जिन दस वर्गों मे मुक्केबाजों को बांटा गया था, उनके नाम हैं : फ्लाई वेट, बैंटम वेट, फीदर वेट, लाइट वेट, लाइट वेल्टर वेट, वेल्टर वेट, लाइट मिडिल वेट, लाइट हैवी वेट और हैवी वेट।

भारत : हाकी में जो स्थान पंजाब का, फुटबाल मे बंगाल का, एथलेटिक मे केरल, कुश्ती में दिल्ली, क्रिकेट में बम्बई का है, ठीक वही मुक्केबाजी में सेना का है।

जहां तक मुक्केबाजी के राष्ट्रीय स्तर का सवाल है अभी तक पिछले डेढ़ दशक की कहानी मे कोई परिवर्तन नही आया है।

मुक्केबाजी के इतिहास में सबसे लम्बी अवधि तक हैवीवेट विश्व चैम्पियन का मुकुट संभालकर रखनेवाले मुक्केबाज का नाम है जो लुई। वह 11 साल 8 महीने और 9 दिन तक विश्वविजेता बना रहा। 22 जून, 1937 को उसने जेम्स जे ब्रेडोक को हराकर विश्व-विजेता का पद प्राप्त किया और 1 मार्च, 1949 को मुक्केबाजी से संन्यास ले लिया था। इस अवधि में उसने 24 मुक्केबाजो की चुनौतियों को स्वीकार किया।

सबसे कम समय तक विश्वविजेता रहा, इटली का प्रिमो कारनेरा। वह केवल 350 दिन (29 जून, 1933 से 14 जून, 1934) इस सिंहासन पर बैठा।

भूतपूर्व विश्व हैवीवेट चैम्पियन

वर्ष	नाम	वर्ष	नाम
1889-92	जान एल. सिलवन,	1936-49	जो लुई,
1892-97	जेम्स जे. कारबेट,	1949-51	एजर्ड चार्ल्स,
1897-99	राबर्ट एल. फिज्सीम्मंन,	1951-52	जर्सी जो वालकट,
1899-1904	जेम्स जे. जेफरीज,	1952-53	एडी सैंडर्स,
1906-8	टामी वर्न्स,	1953	राकी मार्शिआनो,
1908-14	जैक जानसन,	1957	फ्लायड पैटर्सन,
1915-19	जैस वलर्ड,	1959	इन्गमर जानसन,
1919-26	जैक डेम्पसी,	1961	फ्लायड पैटर्सन,
1926-28	जेने टानी,	1962-1963	सोनी लिस्टन,
1930-32	मैक्स श्मेलिंग,	1964-67	कैसियम क्ले (मोहम्मद अली),
1932-33	जैक शार्के,		
1933-34	प्रिमो कारनेरा,	1972-1973	जो फ्रेजियर,
1934-35	मैक्स बेअर,	1973 से अब तक	जार्ज फोरमैन।
1935-36	जेम्स जे. ब्रडोक,	1989	टायसन

मुश्ताक़ अली

नृत्य की ता-थैया की तरह क्रिकेट में कदमों की लय का बहुत अधिक महत्व है। तेज गेंदबाजी हो या स्पिन गेंदबाज़ी, कलात्मक बल्लेबाज़ी हो या धाकड़ बल्लेबाजी, बिना कदमों की रवानी के सफलता नहीं मिल सकती। कदमों की इस चपलता के माहिर बल्लेबाजों का नाम लेने लगें तो उनमें एक नाम आयेगा— मुश्ताक अली।

17 दिसम्बर 1914 को जन्मे मुश्ताक अली का टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश किसी तूफान की तरह नहीं बल्कि मन्द बयार की तरह हुआ। मुश्ताक अली ने अपना टेस्ट कैरियर एक स्पिनर के रूप में शुरू किया था, इंग्लैंड के विरुद्ध 1933-34 में दो टेस्टों मे मुश्ताक को स्पिनर की हैसियत से शामिल किया गया था। इन दोनों टेस्टों में उनकी बल्लेबाजी का योग 42 (9, 18, 7 आ. न. और 8) था जबकि गेंदबाजी का विश्लेषण था। 19-5-45-1 और 25-3-64-1। किसी भी नये खिलाड़ी के लिए यह प्रदर्शन निराशाजनक ही कहा जा सकता है।

1936 में उन्हें इंग्लैंड दौरे के लिए चुन लिया गया। लार्ड्स में खेले गये पहले टेस्ट में भी वह इंग्लैंड के तेज गेंदबाजों का सस्ते में ही शिकार बन गए। किन्तु इसके बाद आया ऐतिहासिक ओल्ड ट्रैफर्ड टेस्ट और उसकी दूसरी पारी। भारत टॉस जीतकर पहले दिन केवल 203 रन बनाकर आउट हो गया था जवाब में इंग्लैंड ने वाली हैमंड के शानदार 167, हार्डस्टाफ के 94, वार्थिंटन के 87, रोबिंस के 76 और वेरिटी के 66 रनों की बदोलत 871 का विशाल स्कोर खड़ा कर लिया। भारत पहली पारी में 368 रन से पिछड़ गया।

दूसरे दिन रात को भारतीय खिलाड़ी बहुत बेचैन थे। क्योंकि भारत पहला टेस्ट भी हार चुका था।

तीसरे दिन भारत की प्रारंभिक जोड़ी विजय मर्चेंट और मुश्ताक अली मैदान में उतरे। भारत की हार लगभग निश्चित नजर आ रही थी। किन्तु मर्चेंट और मुश्ताक अली कुछ और ही सोचकर क्रीज पर उतरे थे। उन्होंने केवल 150 मिनट में ही 203 रन बनाकर क्रिकेट की अनिश्चितता उभार दी थी। भारत को टेस्ट अनिर्णीत कराने में सफलता प्राप्त हो गई थी। मुश्ताक अली ने 112 और मर्चेंट ने 114 रन बनाये थे। मर्चेंट की बल्लेबाज़ी पर तो सभी को एक विश्वास-सा था लेकिन मुश्ताक अली ने जो कारनामा किया था वह एक अविश्वसनीय घटना थी। इस पारी के बाद मुश्ताक अली हरेक क्रिकेट प्रेमी के दिलोदिमाग पर छा गए थे।

मुश्ताक अली ने कुल 11 टेस्टों में 32.21 की औसत से 612 रन बनाये जिनमें दो शतक और तीन अर्द्धशतक शामिल हैं। उन्होने 67.33 की औसत से तीन विकेट भी हासिल की।

प्रथम श्रेणी क्रिकेट मुश्ताक अली ने कुल 21 वर्ष (1932 से 1963 तक) खेली। इस दौरान उन्होंने 30 शतकों के सहयोग से 12413 रन जोड़े रणजी ट्रॉफी प्रतियोगिता में मुश्ताक ने 17 शतक और कुल 5013 रन एकत्र किए।

मुहम्मद निसार

12 मई, 1906 को जन्मे मुहम्मद निसार देश के नम्बर एक तेज गेंदबाज थे। निसार की गेंदो में जहां तल्ख झनझनाहट थी, वहीं उनकी गेंद की दिशा व लम्बाई भी सटीक थी। अपने आरम्भिक क्रिकेट जीवन में निसार इस्लामिया कालेज के उद्‌घाटक बल्लेबाज थे। उस समय तक गेंदबाजी से उनका इतना गहरा रिश्ता नहीं था, जितना आगे चलकर हुआ। उस समय निसार को नियमित गेंदबाज के विश्राम या उसके छोर बदलने के बीच ही गेंदबाजी का दायित्व सौंपा जाता था।

1928 में पंजाब विश्वविद्यालय की ओर से खेलने के बाद निसार एक तेज गेंदबाज के रूप में उभरे। 1932 में इन्टर कालेज क्रिकेट टूर्नामेंट में निसार ने 104 रन देकर 18 विकेट लिए। यह एक ठोस प्रदर्शन था। उसी वर्ष भारतीय टीम पहली बार टेस्ट खेलने इंग्लैंड जा रही थी। चयन के लिए निसार को भी आमंत्रित किया गया। ट्रायल मैच में उन्होंने अपनी तूफानी गति का भय व्यक्त करते हुए 68 रन पर 6 विकेट लिये। मुहम्मद निसार का चयन फिर भी कुछ हिचक के साथ हुआ।

लार्ड्स मे खेले गए उस ऐतिहासिक मैच मे मुहम्मद निसार ने 6 विकेट लिए। पहली पारी में 93 पर 5 व दूसरी मे 42 पर एक विकेट लेकर निसार ने अपनी प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया। उनकी गेंदबाजी की गति देखकर इंग्लैंड के कुछ आलोचकों ने कहा कि "निसार के आरंभिक ओवर तो गति के मामले मे लारवुड से भी तेज थे। वैसे वह लारवुड के समकक्ष तो है ही।" 1932 के उस संक्षिप्त दौरे में प्रथम श्रेणी मैचों में निसार ने 1285 रन देकर 71 विकेट लिए।

1936 के इंग्लैंड दौरे के तीन टेस्ट मैचों में 343 रन देकर 12 विकेट लिए वही प्रथम श्रेणी के मैचों में 659 रन पर 66 विकेट लिए। निसार ने कुल 6 टेस्ट मैचों की ग्यारह पारियों में तीन बार अविजित रहकर 55 रन बनाए। 42 उन का सर्वाधिक व्यक्तिगत स्कोर था। गेंदबाजी में 707 रन देकर कुल 25 विकेट (टेस्ट) लिए। 5 बार पाच या अधिक विकेट लिए। रणजी ट्राफी में निसार यू० पी० व दक्षिण पंजाब से खेला करते थे। निःसंदेह भारतीय क्रिकेट इतिहास मे मुहम्मद निसार सरीखे शुद्ध तेज गेंदबाज कभी न रहे।

मेवालाल

1951 में नई दिल्ली में हुए पहले एशियाई खेलों में भारत को एशियाई चैम्पियन बनने का गौरव प्राप्त हुआ था। फाइनल मैच में भारत और ईरान का मुकाबला हुआ था, जिसमें भारत ने ईरान को 1-0 से हराया था। यह गोल बंगाल के मशहूर खिलाड़ी एस० मेवालाल ने किया था और वह भी 35 गज की दूरी से। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी कि इन दिनों मेवालाल जिस मकान में रहते हैं उसका नाम है—फुटबाल भवन। इस समय वह अखिल भारतीय खेलकूद परिषद् के समस्य तो हैं ही, साथ-साथ पश्चिम बंगाल और उड़ीसा खेल-परिषद् के भी सदस्य हैं।

मेवालाल अपने ज़माने के सर्वश्रेष्ठ सेण्टर-फारवर्ड माने जाते रहे। खिलाड़ी जीवन की शुरुआत उन्होंने 'मार्निंग स्टोर क्लब' से की, बाद में वह 'आर्यन क्लब' में शामिल हो गए। वह अपने जीवन काल में 1,000 से ज्यादा गोल कर चुके हैं, जिसमें 62 बार उन्होंने तिकड़िया (हैट-ट्रिक) बनाईं। इस मायने में उन्हें भारतीय पेले भी कहा जा सकता है। राष्ट्रीय फुटबाल प्रतियोगिता (सन्तोष ट्राफी) में तो मेवालाल ने 36 गोल किए जिसमें से 5 तिकड़ियां थीं। उनका यह रिकार्ड तो अब तक बरकरार है।

यों तो उन्होंने 1938 से ही फुटबाल खेलना शुरू कर दिया, पर 1946 से 1956 तक वह भारतीय फुटबाल पर छाए रहे। उनके बिना किसी टीम का चुनाव नहीं होता। राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में वह पश्चिम बंगाल का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। 1954 से 1956 तक वह पश्चिम बंगाल की टीम के कप्तान भी रहे। 1948 और 1952 में हुए ओलम्पिक खेलों में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। 1948 में लंदन ओलम्पिक के दौरान उन्होंने 20 गोल किए। वैसे वह और भी बहुत से देशों का दौरा कर चुके हैं, जैसे श्रीलंका, ढाका, अफगानिस्तान, बर्मा, हांगकांग, थाईलैंड, डेनमार्क, स्वीडन, आस्ट्रिया, पूर्व जर्मनी, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस और स्विट्ज़रलैण्ड। 1952 में हेलसिंकी ओलम्पिक में तो उन्होंने भारतीय टीम के उप-कप्तान का दायित्व निभाया।

1958 में खड़गपुर में हुए अन्तर रेलवे के मैच में यदि उनकी टांग जख्मी न होती तो शायद वह और काफी लम्बे समय तक भारतीय फुटबाल की सेवा करते रहते, वैसे सेवा तो वह अब भी कर रहे हैं, लेकिन खिलाड़ी के रूप में नहीं, बल्कि प्रशिक्षक के रूप में। हां, गोल करने वाले बूट उन्होंने 1958 में ही टांग दिए थे।

मेवालाल का जन्म 1 जुलाई, 1926 को हेस्टिंग्स रोड, कलकत्ता में हुआ। उन दिनों कलकत्ता में अंग्रेज सिपाही फुटबाल खेला करते थे। मेवालाल इसे अपना गौरव समझते हैं कि उन्हें सारजेण्ट और बारनेट ब्लैंकी, जे० विल्सन और

अहमद-जैसे खिलाड़ियों से प्रशिक्षण प्राप्त करने का सुअवसर मिला।

फुटवाल से सन्यास लेने के बाद मेवालाल ने प्रशिक्षण देना प्रारम्भ किया। इस समय मेवालाल पटियाला से मान्यता प्राप्त प्रशिक्षक हैं और रेलवे की टीम को यदाकदा प्रशिक्षित करते रहते हैं।

मैकनरो (जान)

जिस समय बोर्ग का डंका बजता था, उस समय भी विवलडन के समाचारों को ध्यान से पढ़ने वाले टेनिस प्रेमियों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि आज बोर्ग यदि दुनिया के किसी दूसरे खिलाड़ी से डरते हैं तो वह है अमेरिका का लवचू खिलाड़ी जान मैकनरो।

1984 अमेरिकी प्रतियोगिता के फाइनल में भी वही दोनों खिलाड़ी (ब्योन बोर्ग और मैकनरो) पहुचे थे जो कि विबलडन के फाइनल मे पहुचे थे। दोनों फाइनल मैच मे खिलाड़ियों को जीतने के लिए एड़ी चोटी का पसीना बहाना पड़ा था। विबलडन जीतने के बाद बोर्ग ने ठंडी सास भरते हुए कहा था कि मैकनरो ने तो नाको चने चबवा दिए। अमेरिकी प्रतियोगिता जीतने के बाद मैकनरो ने भी कुछ-कुछ वैसा ही भाव व्यक्त किया।

अमेरिका का यह सितारा एक न एक दिन विबलडन चैंपियन बनेगा यह भविष्यवाणी तो बहुत पहले ही कर दी गई थी। जो उन्होने 1981 में बोर्ग को हराकर ही साकार की। उससे पहले वर्ष विम्बलडन मे बोर्ग से हार के बावजूद अमेरिकी ओपन मे बोर्ग को हराकर उन्होंने यह भी साबित कर दिया था कि यदि बोर्ग विंबलडन (लंदन) के राजा हैं तो मैं अमेरिका का राजा हूं।

बोर्ग को हराने के बाद मैकनरो ने कहा था दुनिया के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी को हराने का एक अपना ही सुख है। उसे शब्दों मे बयान नही किया जा सकता।

जहा तक इनाम की राशि का सवाल है उस मामले में अमेरिकी प्रतियोगिता को सबसे बड़ी इनामी प्रतियोगिता माना जा सकता है। मैकनरो को 46,000 डालर की और बोर्ग को तीन बार रनर अप रहने के फलस्वरूप 23,000 डालर की धनराशि प्रदान की गई। इससे पहले वह 1976 और 1977 में भी उप-विजेता रहे।

मैकनरो ने 1918 में बोर्ग को, 1983 मे कार्ललुइस व 1984 में कानर्स को हराकर विम्बलडन खिताब जीता। 1979, 80, 81 तथा 84 मे वह अमेरिकी ओपन चैंम्पियन रहे।

मैथ्यू वेब

जिस तैराक ने सबसे पहले इग्लिश चैनल को पार किया था उसका नाम कप्तान मैथ्यू वेब था।

वेब का जन्म 1848 को शिरोपशायर में हुआ। उनके पिता एक डाक्टर थे। जब वह 10 साल का ही था तो उसने अपने भाई को सेवर्न नदी में डूबते हुए बचाया था। उसके बाद उसने एक बार अपने एक साथी तैराक को और एक मल्लाह को भी डूबने से बचाया था। उसके इस साहस के कारण ही उसे एक समुद्री जहाज में पहले तो मामूली सिपाही की नौकरी मिली, पर बाद में उसे जहाज का कप्तान बना दिया गया। वेब को जहाज चलाने में इतना मजा नहीं आता था जितना कि समुद्र में छलांग लगाने में। अचानक एक दिन उसके मन में इंग्लिश चैनल पार करने की धुन सवार हो गई। पहले तो उसने 12 अगस्त, 1875 को इंग्लिश चैनल में छलांग लगाई, लेकिन सात मील की दूरी पार करने के बाद ही तूफानी लहरों ने उसे घेर लिया और उसने अपना इरादा बदल दिया।

23 अगस्त, 1875 को जब वह दोबारा इंग्लिश चैनल में छलांग लगाने के लिए तैयार हुए तो कुछ लोगों ने कहा कि क्यों अपनी जान पर खेलते हो।

लेकिन इस बार वेब ने मन ही मन यह ठान लिया था कि इस बार या तो वे इंग्लिश चैनल पार करके ही ही रहेंगे या फिर सदा-सदा के लिए समुद्र में ही समा जाएंगे। दूसरी कोशिश में भी उन्हें काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। समुद्र की तेज लहरें, मछलियां, जहरीले सांप और कुछ अन्य विषैले जीव-जंतुओं के कारण उन्हें काफी परेशानियां उठानी पड़ी। जब मंजिल सिर्फ एक मील दूर रह गई तो उनकी शारीरिक शक्ति जवाब दे गई। लेकिन मन की शक्ति शरीर की शक्ति से कहीं ज्यादा होती है। और वे इंग्लिश चैनल पार करने में सफल हुए। उन्होंने इंग्लैंड और फ्रांस की ओर का 21 मील का सागर 21 घंटे और 45 मिनट में तय किया। उस समय उनकी उम्र 27 वर्ष की थी।

लेकिन विचित्र संयोग की बात है कि पहली बार इंग्लिश चैनल पार करने वाला साहसी तैराक वेब ज्यादा देर तक जिंदा नहीं रह सका। 1883 में नियाग्रा से सात मील दूर एक जलप्रपात में तैरते समय उनकी मृत्यु हो गई। जब पार करने पर आए तो सागर (इंग्लिश चैनल) पार कर गए और जब डूबने पर आए तो एक जलप्रपात में तैरते हुए डूब गए। दूसरों को डूबने से बचाने वाला मैथ्यू वेब जब स्वयं डूबने लगा तो उसको बचाने के लिए वहां कोई नहीं था।

लेकिन मैथ्यू वेब डूबा कहां? वह तो डूबकर भी अमर हो गया।

मैराथन दौड़

ओलम्पिक खेलों में मैराथन दौड़ का एक विशेष महत्व है। इस दौड़ में दौड़ाक को 26 मील 385 गज की दूरी पार करनी होती है। इस दौड़ में खिलाड़ी के दमखम, धैर्य, शक्ति और संकल्प की अनूठी परीक्षा हो जाती है। दुनिया के खेल-प्रेमियों की इस दौड़ में सबसे ज्यादा दिलचस्पी होती है। ओलंपिक खेलों के

इतिहास में इस दौड़ के साथ कई हर्षपूर्ण, शोकपूर्ण और विचित्र घटनाएं जुड़ी हुई हैं।

यह दौड़ एक यूनानी सिपाही की स्मृति में आयोजित की जाती है। 490 ई० पूर्व की बात है। फारस के एक शासक ने यूनान पर हमला कर दिया। उसके पास बहुत ज्यादा सैनिक थे। एथेन्स से 26 मील दूर मैराथन नामक स्थान पर उसने अपना पड़ाव डाला और एथेन्स पर आक्रमण की योजना बनाने लगा। एथेन्स के सिपाहियों की संख्या सीमित थी। एथेन्स की सेना का नेतृत्व मिल्टीडिएस कर रहे थे। उन्होंने एथेन्स के ओलम्पिक चैम्पियन फेइडीपीड्स को दूत के रूप में स्पार्टा भेजा। फेइडीपीड्स पहाड़ों को लांघता और नदियों को पार करता हुआ मदद के लिए स्पार्टा पहुंचा। स्पार्टा ने एथेन्स की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

इधर एथेन्स के हर घर और बाजार में लोग सिर झुकाए खड़े थे। वे युद्ध के समाचार जानने के लिए बेचैन हो रहे थे। सेनापति मिल्टीडिएस ने बड़ी चालाकी से दुश्मनों पर हमला बोल दिया और उनके लगभग 20 हजार सैनिकों को मार डाला। इससे डेरियम की फौज के पाव उखड़ गए और वह बची-खुची सेना लेकर वहां से भाग खड़ा हुआ। जब यूनान की विजय पक्की हो गई तो सेनापति मिल्टी-डिएस ने अपने यूनानी सैनिक दौड़ाक फेइडीपीड्स को यह आदेश दिया कि वह दौड़कर एथेन्स जाएं और नगरवासियों को यूनान की विजय का शुभ-समाचार सुनाए। यद्यपि फेइडीपीड्स पहले ही बहुत थका हुआ था, फिर भी वह आदेश पाते ही एथेन्स की ओर रवाना हो गया। इधर थकावट और उधर विजय का उत्साह। वह बिना कहीं रुके दौड़ता रहा। उसके होंठ झुलस गए थे, पांव खून से लथपथ हो गए थे, लेकिन वह रुका कहीं भी नहीं। एक बार वह गिरने ही वाला था कि उसे एथेन्स की चारदिवारी दिखाई दी। उसमें पुनः उत्साह लहर दौड़ गई। वह एथेन्स पहुंच तो गया। वह चिल्लाया, 'खुशियां मनाओ, हम जीत गए हैं।' उसके बाद वह नहीं उठ सका। यह उसके अन्तिम शब्द थे।

आधुनिक ओलम्पिक खेलों में मैराथन दौड़ उसी महान दौड़ाक की अमर याद है। 1896 में एथेन्स में ही पहले आधुनिक ओलम्पिक खेलों का आयोजन किया गया। इस बार अधिकांश प्रतियोगिताएं अमेरिका ने जीती थीं। यूनानी दर्शक इस बात से बहुत निराश थे कि उनके देश का कोई भी एथलीट कोई चैम्पियनशिप प्राप्त नहीं कर सका। आखिरी दिन मैराथन दौड़ का आयोजन किया गया। इसमें 25 धावकों ने भाग लिया, इनमें एक दौड़ाक यूनानी भी था—25 वर्षीय स्पिरिडान लुईस। लुईस नाटे कद का दौड़ाक था और पेशे से चरवाहा था। उसने मैराथन में भाग लेने का पक्का फैसला किया। वह दो दिन पहले ही मन्दिर में गया और बिना कुछ खाए-पिए घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करता रहा।

10 अप्रैल, 1896 को दोपहर 2 बजे मैराथन दौड़ शुरू हुई। पहले काफी दूर तक फ्रांस का दौड़ाक सबसे आगे रहा, लेकिन जब मंजिल केवल पांच मील दूर थी तभी यूनानी धावक लुईस सब को पीछे छोड़कर आगे निकल गया। कुछ घुड़सवार सैनिकों ने स्टेडियम में जाकर जब यह समाचार सुनाया तो दर्शक खुशी से झूम उठे। आखिर लुईस विजयी हुआ। उसने यह दूरी 2 घंटे 55 मिनट और 20 सैकिंड में तय की थी। यूनान के लोगों ने लुईस को पुरस्कारों से लाद दिया। एक महिला ने अपनी सोने की जंजीर वाली घड़ी दे दी और एक कपड़े के व्यापारी ने आजीवन लुईस को मुफ्त कपड़ा देने का फैसला किया। एक मोची ने जीवन भर के लिए लुईस के जूते चमकाने का और एक नाई ने जीवन भर उसकी मुफ्त दाढ़ी बनाने का फैसला किया।

1960 और, 64 में क्रमशः रोम तथा टोकियो में हुई ओलम्पिक प्रतियोगिताओं को मैराथन के इतिहास का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। इथियोपिया के अद्भुत धावक अबेब बिकिला ने लगातार दोनों मैराथन जीत कर अद्भुत कीर्तिमान बनाया। बिकिला एकमात्र ऐसे धावक हैं, जिन्होंने लगातार दो बार मैराथन दौड़ का स्वर्ण पदक जीता। बिकिला ने पहले 1960 में दो घंटे 15 मिनट तथा 16.2 सेकंड का कीर्तिमान बनाया तथा बाद में 1964 में दो घंटे 12 मिनट तथा 11.2 सेकंड में दौड़ पूरी करके उसने अपना ही कीर्तिमान तोड़ दिया।

बिकिला का यह कीर्तिमान 12 वर्ष बाद 1976 में मांट्रियल ओलम्पिक के दौरान पूर्व जर्मनी के धावक वलादेमर सेपिंस्की ने तोड़ा, जिन्होंने केवल दो घंटे नौ मिनट और 55 सेकंड में मैराथन दौड़ पूरी की।

मोहम्मद अली (कैसियस क्ले)

मुक्केबाजी के इतिहास में मोहम्मद अली (कैसियस क्ले) का इतिहास जितना दिलचस्प, विवादास्पद और सनसनीखेज है, उतना शायद ही दुनिया के [illegible] दूसरे मुक्केबाज का हो। 1964 में सानी लिस्टन को हराने के बाद और 1971 में जो फ्रेजियर से हार जाने के बाद तक देश-विदेश के समाचार पत्रों में [illegible] सुर्खियों में उनका नाम, उनके बयान और उनके किस्से-कहानियां [illegible] हैं। मोहम्मद अली इस शताब्दी का सबसे बड़ा विवादास्पद मुक्केबाज [illegible] है। उनका व्यक्तित्व सचमुच ही बड़ा निराला है।

18 वर्ष की उम्र में मोहम्मद अली ने राष्ट्रीय [illegible] अभूतपूर्व गौरव अर्जित कर लिया था। उसी समय मात्र [illegible] इच्छा से प्रेरित होकर क्ले ओलम्पिक (1960) के [illegible] गया और स्वर्ण पदक लेकर ही लौटा। उसके बाद उन्होंने [illegible] का मौका पाने के लिए वह आन्दोलन छेड़ा जो [illegible]

के देश में भी अपूर्व माना गया।

सबसे पहले कैसियस क्ले ने सानी लिस्टन को 25 फरवरी, 1964 को 1 मिनट से भी कुछ समय में हराकर विश्व-विजेता का पद प्राप्त किया। उसके बाद सानी लिस्टन ने 24 मई, 1965 को एक बार फिर क्ले के सामने खड़े होने की हिम्मत की, लेकिन कैसियस ने उन्हें पहले राउंड में ही धर दबाया। उसके बाद फ्लायड पैटर्सन और क्ले के बीच 22 नवम्बर, 1965 को यह मुकाबला हुआ। फ्लायड पैटर्सन काफी बुरी तरह से जख्मी हो गए और अन्त में रैफरी ने क्ले को विजयी घोषित कर दिया। 29 मार्च, 1966 को मोहम्मद अली को अपने पद की रक्षा के लिए कैनाडा के चैम्पियन जार्ज चुवालो की चुनौती को स्वीकार करना पड़ा और चुवालो भी 'जान बची और लाखों पाए' वाले अन्दाज़ से मैदान से बाहर निकला।

21 मई, 1966 को मोहम्मद अली और इंगलैंड के हैवी वेट चैम्पियन हेनरी कूपर में एक दिलचस्प मुकाबला हुआ। मुकाबला शुरू होने से पहले जैसे ही दोनों खिलाड़ियों को मंच पर लाया गया, मोहम्मद अली ने बड़ी आश्वस्त मुद्रा में जन-समूह से साक्षात किया और लीडराना अन्दाज में हाथ हिलाकर आश्वासन दिया कि मुझे हराने का दम-खम संसार के किसी व्यक्ति में नहीं है।

मोहम्मद असलम

मुक्केबाज़ी की राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में लम्बे अरसे से सेना के मुक्केबाजों का ही बोलबाला रहा है। बंगलौर में हुई 21वीं राष्ट्रीय मुक्केबाज़ी प्रतियोगिता में सेना की टीम ने चैम्पियनशिप प्राप्त की। सच तो यह है कि जब से सेना ने (1956 में पहली बार सेना की टीम ने भाग लिया था) राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू किया तब से सेना की ही टीम को चैम्पियनशिप प्राप्त होती रही। 1962 में सेना की टीम कुछ कारणों से प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकी और 1965 से सेना और रेलवे की टीम को संयुक्त विजेता घोषित किया गया था।

इस समय भारत के हैवी वेट वर्ग के राष्ट्रीय चैम्पियन 29 वर्षीय मोहम्मद असलम हैं। वह अपनी सामर्थ्य और सीमाओं को बखूबी समझते और पहचानते हैं और उनके इरादे यदि ओलम्पिक चैम्पियन बनने के नहीं तो एशियाई चैम्पियन बनने के ज़रूर हैं।

उनका जन्म 1 जनवरी, 1945 को तियरा (यह स्थान इलाहाबाद से लगभग 9 मील दूरी पर है) में हुआ। कद 6 फुट 1 इंच और वज़न 90 या 92 किलो के आसपास। बचपन में ही मोहम्मद असलम पिता के आशीर्वाद से वंचित हो गए और इसीलिए 8वीं कक्षा के बाद उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ गई।

उन्होंने 27 नवम्बर, 1963 को सेना में एक मामूली सिपाही के रूप में नौकरी स्वीकार कर ली और उसके बाद सेना में रहते हुए ही मुक्केबाजी का अभ्यास शुरू कर दिया। शुरू से ही कद-बुत और वजन अच्छा था इसलिए शुरू से ही हैवी वेट वर्ग में अभ्यास किया।

इस समय वह सेना मे हवलदार हैं। उन्हें सेना में जितनी भी तरक्की मिली है वह केवल मुक्केबाजी के कारण ही मिली है।

मोहसिन खान

1977-78 में जब 'पैकर क्रिकेट सर्कस' के कारण सारे संसार मे टेस्ट क्रिकेट के लिए एक अभूतपूर्व संकट उठ खड़ा हुआ, सभी जाने-माने पाकिस्तानी खिलाड़ी भी पैकर के इस सर्कस में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे, उस आड़े वक्त में पाक को इंग्लैंड के विरुद्ध खेलने के लिए प्रतिभाशाली खिलाड़ियों की तलाश थी। इसी नाजुक मौके पर छरहरे बदन के एक नये खिलाड़ी ने 'पंजाब एकादश' की ओर से खेलते हुए इंग्लैंड के विरुद्ध 97 रन इस धांसू अंदाज मे ठोंके कि चयनकर्ताओं ने प्रभावित होकर तीसरे टेस्ट के लिए उसे पाक टीम में शामिल कर लिया। उस स्वर्ण अवसर का लाभ उठाते हुए पाक की एकमात्र पारी में उसने आकर्षक 44 रनों का योगदान दिया था। आप जानते हैं, कि यह बल्लेबाज कौन था ? वह था सर्वाधिक चर्चित बल्लेबाज मोहसिन खान।

1978 में वह पाकिस्तानी दल के साथ इंग्लैंड दौरे पर गया और सभी तीन टेस्टो मे खेला। इस बार उसे पूरी तरह विपरीत परिस्थितियो में भारी दबाव मे खेलना पड़ा। फिर भी उसने पांच पारियों में 38.20 रनों की औसत से 191 रन बनाये। वह पहली विकेट गिरने के बाद ही बल्लेबाजी के लिए उतरता था और उसने श्रृंखला मे हर बार तीस या उससे अधिक रन बनाये।

पहले बाहर फिर अंदर

1978 मे एक लंबे अंतराल के बाद भारत-पाक क्रिकेट संबंध फिर से प्रारंभ हुए। पाकिस्तान अपनी ही जमीन पर भारत के हाथों पराजित नही होना चाहता था। परिणामस्वरूप पैकरी खिलाड़ी वापस बुला लिए गये। फिर जो हुआ वह सभी जानते है। पर पैकरी खिलाड़ियों के आ जाने से मोहसिन का पत्ता कट गया और उसे भारत के विरुद्ध खेलने का अवसर प्राप्त नही हो पाया।

मोहसिन जीवट का धनी है। उसने साहस नहीं छोड़ा और लगातार अच्छा प्रदर्शन करता रहा। परिश्रम और धैर्य के कारण भाग्य ने फिर पलटा खाया और 1978-79 मे न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया के दौरे पर जाने वाली टीम में उसे शामिल कर लिया गया। इस दौरे की समाप्ति तक वह 6 टेस्ट खेल चुका था और

28.20 रनों की औसत से 282 रन बनाने के अलावा 6 कैच भी उसके हिस्से में आये थे।

1982 में चयनकर्ताओं ने महसूस किया कि उसमें चट्टान की भांति विकेट पर अड़े रहने का माद्दा है। बस, उन्होंने मोहसिन को प्रारंभिक बल्लेबाज के रूप में परिणत कर दिया। इमरान के नेतृत्व में इंग्लैंड दौरे में कई पाक खिलाड़ी उभरकर सामने आये, जिनमें मोहसिन प्रमुख थे। मोहसिन ने इस दौरे के दौरान लार्ड्स मे हुए दूसरे टेस्ट मे दुहरा शतक पीटकर पाकिस्तान को जीत की राह दिखायी।

पिछले वर्षों में पाकिस्तान ने पहली बार इंग्लैंड को उसी की जमीन पर धूल चाटने को विवश कर दिया। बेशक 200 के अंक पर पहुंचते ही मोहसिन आउट हो गया, पर वह संसार का ऐसा 8वां बल्लेबाज बन चुका था जिसने लार्ड्स पर द्विशतक बनाने का श्रेय प्राप्त किया। लार्ड्स पर द्विशतक अर्जित करने वाले अन्य बल्लेबाज हैं—ब्रैडमैन, हैमंड, हाब्स, काघटन, ब्राउन, हार्डस्टफ और डानेली जिन्होंने 1949 में यह श्रेय प्राप्त किया था और इसके ठीक 33 वर्षों के बाद मोहसिन ने यह करतब कर दिखाया।

19 खिलाड़ियों में शुमार

आस्ट्रेलिया के विरुद्ध गृह श्रृंखला में 30 सितंबर' 82 को जब उसने फैसलाबाद में 76 रनो की एक पारी मे 50 का अंक प्राप्त किया तो वह संसार का 223वा और पाकिस्तान का 19वां ऐसा बल्लेबाज हो गया जिसने 1000 या अधिक टेस्ट रन अर्जित किये हैं। 1982-83 की भारत-पाक श्रृंखला के लाहौर टेस्ट की पहली पारी में 94 और दूसरी पारी में नाबाद 101 रन के साथ अब तक 17 टेस्टों में कुल 1370 रन बनाये हैं, जिनमे इंग्लैंड के विरुद्ध 7 टेस्टों मे उसने 545 रन ठोंके हैं।

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 6 टेस्टों में 44.00 रन प्रति पारी की औसत से 396 रन, श्रीलंका के विरुद्ध 2 टेस्ट में 71.66 रनों की औसत से 215 रन, न्यूज़ीलैंड के विरुद्ध एकमात्र टेस्ट में 9.50 रनों की औसत से 19 रन तथा भारत के विरुद्ध 195 की औसत से कुल 195 रन बनाये हैं। लाहौर के शतक को मिलाकर मोहसिन 1982 में 1000 टेस्ट-रन बना चुके हैं एक वर्ष मे 1000 टेस्ट-रन अर्जित करने वाला वह पाकिस्तान का पहला बल्लेबाज है।

कुछ विशेषज्ञों के अनुसार मोहसिन की बैटिंग का अंदाज जहीर से मिलता-जुलता-सा है। हो भी क्यों न ? है भी वह जहीर की तरह ही लंबे-ऊंचे कद का। उस पर जहीर का असर हो या नहीं, पर इसमे दो राय नहीं है कि वह भविष्य में काफी उन्नति करेगा। इसके लिए उसे 'आफ साइड' की गेंदों से अनावश्यक छेड़खानी की आदत को छोड़ने के साथ, अपने फ्लिक को दुरुस्त करना होगा।

मोहसिन का जन्म 15 मार्च 1955 को हुआ। उसने नेशनल कालेज से बी० एस-सी० की डिग्री प्राप्त की है। क्रिकेट के अलावा उसे बैडमिंटन तथा स्क्वैश खेलने का भी शौक है।

य

यजुर्वेंद्रसिंह

यजुर्वेंद्रसिंह, जो एक जमाने मे बिल्खा (सौराष्ट्र) के राजकुमार थे, बचपन से ही क्रिकेट के बहुत शौकीन थे। उनका जन्म 1 अगस्त, 1952 को राजकोट में हुआ। यहीं राजकोट में राजकुमार कालेज में उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। कुछ समय बाद उनके माता-पिता पूना चले गए तब वहा पर वह वाडिया कालेज की ओर से खेलने लगे। यहा उन्हे कमाल भंडारकर से गुरुमन्त्र सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। शुरू-शुरू में यजुर्वेंद्रसिंह सौराष्ट्र और पश्चिमी क्षेत्र के स्कूलों की ओर से खेले। बाद में वह पूना विश्वविद्यालय और पश्चिमी क्षेत्र विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करने लगे। उस समय वह एक औसत दर्जे के बल्लेबाज माने जाते थे।

1971-73 में उन्हे महाराष्ट्र की ओर से रणजी ट्राफी टीम में शामिल किया गया। उस टीम के कप्तान चंदू बोर्डे थे। उनका खेल देखने के बाद बोर्डे ने इतना अवश्य कहा था कि वह एक ऐसा होनहार खिलाड़ी है जो निर्भय होकर खेलता है। उसके बाद से यजुर्वेंद्रसिंह महाराष्ट्र की टीम की ओर से और भी निर्भय होकर खेलने लगे। रणजी मैचो मे उन्होंने तीन शतक भी बनाए। 1975-76 मे जब भारतीय टीम न्यूजीलैंड और वेस्टइंडीज के दौरे पर गई हुई थी तब उन्होंने 9 पारियों में 583 रन बनाए (तीन बार वह अविजित रहे) जिसका औसत 97.17 रहा। इसके बाद उनका भारतीय टेस्ट टीम में शामिल होने का सपना देखना स्वाभाविक ही था।

इतना ही नही दिलीप ट्राफी में पश्चिमी क्षेत्र को जिताने मे उन्होने महत्व-पूर्ण भूमिका निभाई। पहले उन्होने पूर्वी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र को हराया और उसके बाद उत्तरी क्षेत्र के विरुद्ध फाइनल खेलते हुए जब पश्चिमी क्षेत्र की स्थिति काफी कमजोर पड़ गई (उत्तर क्षेत्र के बाएं हाथ के स्पिनर राजेन्द्र गोयल ने गावस्कर और अशोक माकड जैसे खिलाड़ियों को आउट कर दिया था) तब यजुर्वेंद्र

सिंह ने पूरे आत्मविश्वास के साथ खेलते हुए 93 रन बनाकर अपनी टीम को विजय दिलाई।

इससे पहले ईरानी ट्राफी प्रतियोगिता में शेष भारत की ओर से बम्बई के विरुद्ध खेलते हुए उन्होंने सबसे अधिक रन (63 रन) बनाए। उनकी आकर्षक बल्लेबाजी और क्षेत्ररक्षण की चुस्ती चुनाव अधिकारियों के मन पर एक गहरी छाप छोड़ गई। टीम के कप्तान गावस्कर ने उस समय कहा था कि यजुर्वेंद्रसिंह काफी तेज और चुस्त खिलाड़ी है।

एक के बाद एक करके पहले तीन टेस्ट (और शृंखला भी) हार जाने के बाद जब सभी का उत्साह समाप्त हो गया तो उदीयमान खिलाड़ियों को अवसर देने के उद्देश्य से बंगलौर में होने वाले चौथे टेस्ट में यजुर्वेंद्रसिंह को शामिल कर लिया गया। वहां वह बल्लेबाजों के रूप में भले इतने सफल नहीं रहे लेकिन गेंद लपकने (कैच) के मामले में उन्होंने विश्व रिकार्डों की बराबरी कर डाली। ये दोनों रिकार्ड आस्ट्रेलिया के ही खिलाडियों (दादा विक्टर रिचर्डसन और पोता ग्रेगरी चैपल) द्वारा स्थापित किए गए थे।

यशपाल शर्मा

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय क्रिकेट में नये प्रयोग किए जा रहे हैं। स्पिनरों के स्थान पर मध्यम तेज गेंदबाज के प्रति विश्वसनीयता, बल्लेबाजी के मध्य क्रम को मजबूत करना और कप्तानों की अदला-बदली। इन प्रयोगों में कहीं सफलता मिली है, कहीं असफलता। इनसे जिसको सफलता मिली है उनमें प्रमुख है यशपाल शर्मा।

भारतीय बल्लेबाजों में चन्द दिनों के लिए कहा जाता था कि बल्लेबाज तो केवल सुनील गावसकर और विश्वनाथ ही हैं, जहां यह दोनों आउट हुए कि पूरी टीम ढेर हो गई। किन्तु बाद में स्थिति थोड़ी बदली। वेस्टइंडीज के पिछले दौरे में 1983 में विश्वनाथ को शामिल नहीं किया गया। इसका कारण मध्यक्रम के अन्य बल्लेबाजों की लगातार सफलता थी जिनमें यशपाल शर्मा का नाम प्रमुख था।

यशपाल की सफलता का राज उसका मजबूत रक्षण है। वह कभी उतावलापन नहीं दिखाता और न ही तेजी से रन बनाने के चक्कर में पड़ता है। यशपाल पहले गेंदबाजों पर पूरी तरह आखें जमाता है और उसके बाद ही स्ट्रोक खेलता है। मद्रास में जब उसने कीथ फ्लेचर के नेतृत्व वाली इंग्लैंड टीम के विरुद्ध 140 रन का स्कोर खड़ा किया तो दूसरे छोर पर बल्लेबाजी कर रहे विश्वनाथ ने कहा था, "यशपाल का खेल गजब का है और हमें मध्यक्रम में ऐसे ही बल्लेबाजों की जरूरत है।"

पाकिस्तान और वेस्ट इंडीज में खेली गई शानदार पारियों की बदौलत वह सबका चहेता बन गया। पाकिस्तान में उसे अन्तिम दो टेस्टों में ही मौका दिया गया। लाहौर टेस्ट में जब पाकिस्तान ने 323 रन का सम्मानजनक स्कोर खड़ा कर लिया था और भारत के पहले दो विकेट मात्र 41 रन पर गिर गए थे तब यशपाल ही था जिसने मोहिंदर अमरनाथ के साथ मिलकर न केवल इमरान के मंसूबों को असफल किया बल्कि रिकार्ड साझेदारी भी बनाई। इसके बाद कराची टेस्ट की दूसरी पारी में भी उसने मोहिंदर के साथ 74 रन की अविजित पारी खेली।

इसके बाद वेस्ट इंडीज के विरुद्ध जमैका टेस्ट में यशपाल ने एक और बेहतरीन पारी खेली। भारत के छह विकेट मात्र 127 रन पर उखड़ चुके थे। उस संकट की घड़ी में यशपाल ने बलविंदर संधु के साथ मिलकर एक और संयमपूर्ण पारी का प्रदर्शन किया। लगातार तीन टेस्टों में उसके इस प्रदर्शन ने उसे विश्वसनीय बल्लेबाजों की पंक्ति में ला खड़ा किया।

11 अगस्त, 1959 को लुधियाना में जन्में यशपाल शर्मा को क्रिकेट का शौक स्कूल के दिनों से दीवानगी की हद तक था। 18 वर्ष की उम्र में वह पहली बार प्रकाश में आया जब उसने पंजाब की स्कूल टीम की ओर से खेलते हुए जम्मू-कश्मीर के विरुद्ध 264 (आउट नहीं) स्कोर खड़ा किया था। प्रथम श्रेणी क्रिकेट में यशपाल का प्रवेश 1973-74 में हुआ था लेकिन 1977-78 तक उसे सफलता-असफलता और उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरना पड़ा। इसी वर्ष मोहन नगर में जब पंजाब और उत्तर प्रदेश का रणजी मैच हुआ तो यशपाल ने दोनों पारियों में 157 और 142 रन बनाकर उल्लेखनीय कामयाबी हासिल की। इसी वर्ष दलीप ट्रॉफी में उत्तर क्षेत्र की ओर से खेलते हुए उसने दक्षिण क्षेत्र के विरुद्ध 173 रन की एक और मैराथन पारी खेली।

इन सभी सफलताओं से प्रभावित चयनकर्ता भी उसे 1978 में पाकिस्तान जाने वाली भारतीय टीम में लिए बिना रह न सके लेकिन इस दौरे में उसे एक भी टेस्ट न खिलाया गया। कालीचरण की वेस्ट इंडीज टीम के विरुद्ध भी वह अतिरिक्त खिलाड़ी बना रहा और केवल अपनी टीम को पानी पिलाने के दायित्व का निर्वाह करता रहा। कहते हैं सब्र का फल मीठा होता है और यशपाल को भी इस धीरज का फल मिला जब उसे 1979 में इग्लैंड में लार्ड्स टेस्ट में मौका दिया गया। पहले टेस्ट में तो वह 11 और 5 (आ० न०) का स्कोर ही खड़ा कर सका लेकिन उसकी शैली से प्रभावित होकर उसे तीन टेस्टों में मौका मिल गया।

इसके बाद जब किम ह्यूज के नेतृत्व में आस्ट्रेलियाई टीम भारत आई तो यशपाल ने दिल्ली में अपने टेस्ट जीवन का पहला शतक बनाया। इसके पहले टेस्ट में वह दोनों पारियों में शून्य पर आउट हुआ था लेकिन इस सैंकड़े में आत्म-विश्वास, संयम और आक्रमण अद्वितीय था।

इसके बाद पाकिस्तान के विरुद्ध भी उसे सभी छह टेस्टों में मौका मिला और आस्ट्रेलिया में भी वह तीन टेस्टों में ही खेला। लेकिन 1981 में न्यूजीलैंड मे उसका बल्ला सौ का अंबार न जुटा सका। फलस्वरूप उसे टीम से हाथ धोना पड़ा। लेकिन 1981 में इंग्लैंड के विरुद्ध उसकी वापसी हुई जहां उसने एक और शतक बनाया। 1983 में विश्व कप विजयी टीम में उसकी शानदार भूमिका रही।

यशपाल एक पूर्ण बल्लेबाज ही नहीं, मध्यम तेज गेंदबाज भी है। कवर में वह एक लौह स्तंभ माना जाता है और आवश्यकता पड़ने पर कीपर की भूमिका भी निभा सकता है।

इन दिनों वह स्टेट बैंक आफ इंडिया दिल्ली में कार्यरत है।

यीफ्तर

1964 के टोकियो ओलम्पिक में पहली बार किसी अफ्रीकी देश के धावक ने स्वर्ण पदक जीता था। यह पदक इथोपिया के एक गड़रिये के पुत्र दुबले-पतले अबेबे बिकिला ने मैराथन में जीता था। 26 मील की दौड़ लगाने के पहले जब यह पतली काया तैयार होने लगी तो ऐसा लगा कि दो-चार मील दौड़कर यह कहीं गिर-पड़ जाएगा। लेकिन इस युवक ने उस दिन सबको स्तब्ध कर दिया जबकि मैराथन दौड़ उसने जीत ली। यही नहीं जानलेवा दौड़ के बाद अबेबे बिकिला ने जमीन पर लेटकर कुछ कसरत भी की जबकि उससे दौड़ की समाप्ति के बाद बेहोश हो जाने की सबको आशा थी।

मैक्सिको ओलम्पिक में यही प्रदर्शन बिकिला ने भी दोहराया। बिकिला इथोपिया के सम्राट हाले सिलासी का अंगरक्षक था। सम्राट के राजप्रसाद में सिंह और अन्य जंगली जानवर पालतू कुत्तों की तरह घूमा करते थे। बिकिला की विजय पर उसे सिपाही से मेजर बना दिया गया। जब वह अपना पदक लेकर राजप्रसाद सम्राट को दिखाने गया तो सम्राट के शेरों ने अपने दोनों पंजों पर खड़े होकर गुर्राकर कृतज्ञता दिखाते हुए पूरे महल को गुंजा दिया। अद्वितीय स्वागत हुआ था एक खिलाड़ी की सफलता का वहां। लेकिन अबेबे बिकिला जिसे 'राष्ट्रीय सपत्ति' घोषित किया गया था एक भीषण दुर्घटना का शिकार होकर अपनी रीढ़ की हड्डी तुड़वा बैठा था। किन्तु फिर भी उसने अपगों के ओलम्पिक में तीरंदाज के रूप में भाग लिया। चार वर्ष पहले वह लम्बी बीमारी के बाद मर गया। बिकिला की सफलता ने इथोपिया में लम्बी दौड़ का एक दौर शुरू किया। बिकिला के बाद मिरुत्स यीफ्तर ने उसका गौरवमय स्थान लिया। मास्को ओलम्पिक खेलों में मिरुत्स यीफ्तर ने 5,000 और दस हजार मीटर का स्वर्ण पदक 37 वर्ष की आयु में जीतकर पूरे विश्व को चौंका दिया।

यीफ्तर ने 'फ्लाइंग फिन्न' फिनलैंड के लासी विरेन के 1974, 1976 के

पांच और दस हजार मीटर दौड़ के स्वर्ण पदक विजेता के लगातार तीसरे ओलम्पिक में स्वर्ण पदक जीतने के अरमानों को धो दिया।

लम्बी दूरी के युग पुरुष दूसरे विश्व युद्ध के पहले के पावो नूर्मी, 56 के मेलबोर्न ओलम्पिक के 5,000, दस हजार और मैराथन दौड़ के तीन स्वर्ण पदक विजेता के रूप ब्लादिमीर कुत्स और उससे पहले 1952 के लम्बी दौड़ के बादशाह एमिल जैतोपेक के गौरव को मास्को में लासी विरेन को पराजित कर यीफ्तर रोता-सा लगा। मास्को ओलम्पिक 37 वर्षीय इथोपियाई वायुसेना के कप्तान यीफ्तर के प्रदर्शन के लिए यादगार बना गया।

छह बच्चो के बाप यीफ्तर ने दोनों दौड़ें जीती लेकिन फिर भी वह रिकार्डों को नही तोड़ सका। यीफ्तर ने दस हजार मीटर दौड़ 27 मिनट 42.7 सेकिंड में जीती और फिर पांच हजार मीटर 13 मिनट 21.0 सेकिंड में जीती। उसने इस दोनों दौड़ में अपने से कम उम्र के धावकों को पछाड़ा।

1976 के मांट्रियल ओलम्पिक में अफ्रीकी देशों के बहिष्कार को लेकर इथोपिया और अन्य देशों ने ओलम्पिक बहिष्कार किया था, इस कारण मांट्रियल पहुंचकर भी यीफ्तर ट्रेक पर नही आ सका था। उसकी अनुपस्थिति में विरेन का रास्ता साफ हो गया।

यीफ्तर ने म्यूनिख मे 27 वर्ष की उम्र में दस हजार मीटर की दौड़ मे कांस्य जीता था।

पांच हजार मीटर की दौड़ मे यीफ्तर के मुकाबले इथोपिया के ही दो धावक थे। इन्ही धावको के कारण जिसमें से एक मुहम्मद कादिर ने कांस्य पदक जीता; यीफ्तर को अपनी विजय गति कायम रखने में मदद मिली। उसे विरेन से भी अधिक अपने ही टीम के साथी कादिर का भय था। फिनलैंड के धावक ने रजत जीता और विरेन को कोई पदक न मिला। यह अजब ही संयोग था कि यीफ्तर, जो अंग्रेजी बिल्कुल नही जानता, म्यूनिख ओलम्पिक के दस हजार मीटर में विचित्र स्थितियों में भाग नही ले पाया। जब दस हजार मीटर मे भाग लेने वालो का नाम पुकारा जा रहा था, तो वह शौचालय मे था। उसने लाउडस्पीकर की घोषणा नही सुनी। जब वह बाथरूम के बाहर आया तब तक दौड़ शुरू हो चुकी थी और यीफ्तर स्वयं को कोसता रह गया।

1977 और 1979 के विश्व कप विजेता यीफ्तर ने अपनी दोनो दौडो में विजय का श्रेय अपने साथी योहीन मुहम्मद और मुहम्मद कादिर को दिया है, जिन्होंने उसे गति बनाए रखने मे मदद की। इथोपिया समुद्र तल से काफी ऊंचाई पर है। इस कारण वहा की जलवायु लम्बी दौड़ के लिए वरदान साबित होती है।

37 वर्ष की आयु मे यीफ्तर ने नवयुवको को खेलो की ओर रुझान रखने को

प्रोत्साहित किया है। इथोपिया की राजधानी में उसका शानदार स्वागत हुआ। जिस सिंहनाद ने अवेवे बिकिला का स्वागत किया उसे दोबारा अपनी गर्जन को दोहराने के लिए गला साफ करना पड़ा।

यूजेबियो

यूजेबियो पुर्तगाल के सुप्रसिद्ध फारवर्ड खिलाड़ी थे। मित्र लोग इन्हें प्रेमवश 'ब्लैक पेंथर' भी कहते थे। 1966 विश्वकप में इन्होंने पुर्तगाली टीम का नेतृत्व भी किया और क्वार्टर फाइनल में उत्तरी कोरिया को 4—0 से पराजित कर प्रतियोगिता में तीसरा स्थान प्राप्त किया। इनमें फुटबाल खेलने की ऐसी स्वाभाविक क्षमता थी जिसके कारण ये पुर्तगाल में काफी लोकप्रिय खिलाड़ी के रूप में प्रसिद्ध हुए।

यूसुफ खान

आन्ध्र प्रदेश पुलिस के यूसुफ खान से सभी भारतीय फुटबाल प्रेमी अच्छी तरह से परिचित हैं। दढ़ियल यूसुफ खान को गत वर्ष जरनैल सिंह के साथ एशिया के चुने हुए खिलाडियों की टीम में शामिल किया गया था। उन्हीं के कारण आन्ध्र प्रदेश की टीम को इतना सम्मान प्राप्त है। पिछले कई वर्षों से विदेशों का दौरा करने वाली भारतीय टीम में वह भारत का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं।

र

रंगास्वामी कप

यह प्रतियोगिता प्रतिवर्ष होती है। जो टीम राष्ट्रीय चैम्पियन बनती है, उसे 'रंगास्वामी कप' दिया जाता है। इस कप का भी एक इतिहास है।

बात सन् 1935 की है। उस समय तक भारतीय हाकी की दुनिया भर में धूम मच चुकी थी। उसी वर्ष भारतीय टीम ने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का दौरा किया। इस दौरे के 48 मैचों में भारतीय टीम ने कुल मिलाकर 584गोल किए, जिनमें से 200 गोल भारतीय टीम के कप्तान ध्यानचंद ने बनाए थे।

- भारतीय हाकी की जादूगरी से प्रभावित होकर टीम को एक बहुत ही सुन्दर ट्राफी भेंट की गई, जिसका नाम 'माओरीस ट्राफी' था। 1947 में देश का विभाजन होने पर यह ट्राफी पाकिस्तान में ही रह गई। इसके स्थान पर मद्रास से प्रकाशित अंग्रेजी समाचार पत्र 'हिंदू' और 'स्पोर्ट एंड पास्टाइम' के मालिक ने अपने भूतपूर्व संपादक श्री रंगास्वामी के नाम पर एक नई ट्राफी भेंट की। श्री रंगास्वामी अपने जमाने के मशहूर हाकी खिलाड़ी थे।

1928 में पहली बार भारत में राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। उस समय इसे 'अंतर प्रांतीय प्रतियोगिता' कहा जाता था। 1928 में पहली बार उत्तर प्रदेश की टीम को राष्ट्रीय चैम्पियन बनने का गौरव प्राप्त हुआ। तब ध्यानचंद उत्तर प्रदेश की ओर से खेला करते थे।

रणधीर सिंह जेंटल

जेंटल ने तीन ओलम्पिक खेलों में (1948-लंदन, 1952 हेलसिंकी, और 1956-मेलबोर्न) भारत का प्रतिनिधित्व किया। यों तो वह काफी लंबे समय तक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेते रहे लेकिन खिलाड़ी जीवन से सन्यास लेने के बाद भी उन्होंने हाकी से नाता नहीं तोड़ा। उसके बाद उन्होंने प्रशिक्षक का पद संभाल लिया। 1966 में बेंकाक में हुए पांचवें एशियाई खेलों मे प्रशिक्षक के रूप में और उसके बाद 1973 में एम्स्टर्डम में हुई दूसरी विश्व कप (हाकी) प्रतियोगिता में वह मैनेजर के रूप में टीम के साथ गये।

22 सितंबर, 1922 को दिल्ली में जन्मे जेंटल ने हाकी की प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में ही पायी और इंडिपेंडेंट क्लब से अपना हाकी जीवन शुरू किया। 1942 में जेंटल को दिल्ली टीम में लिया गया और इसी वर्ष लाहौर में दिल्ली ने पहली बार राष्ट्रीय चैम्पियनशिप जीती। 1946 में जेंटल के नेतृत्व में दिल्ली राष्ट्रीय चैम्पियनशिप के फाइनल में पहुंची।

कलकत्ता में खेले गए इस फाइनल में हालांकि दिल्ली पंजाब के हाथों पराजित हुई पर यह एक कटु सत्य है कि दिल्ली तब से अब तक फाइनल में नहीं पहुंच पायी।

1947 में भारत विभाजन के कारण इंडिपेंडेंट क्लब छिन्न-भिन्न हो गया तब जेंटल भी टाटा स्पोर्ट्स क्लब, बंबई के निमंत्रण पर बंबई चले गये। जेंटल ने 1947 में श्री लंका का दौरा करने वाली टीम का नेतृत्व किया। 1950 में पूर्वी अफ्रीका और 1954 में सिंगापुर और मलाया का दौरा करने वाली भारतीय टीम के भी वह सदस्य थे।

अपने जमाने में हाकी के सर्वश्रेष्ठ फुलबैक कहे जाने वाले इस खिलाड़ी से

विरोधी खौफ खाते थे। मैदान में आतंक का पर्याय जेंटल को मैदान के बाहर बहुत विनम्र कहा जाता था। तभी तो खेल के समय विरोधी खिलाड़ी उससे प्रार्थना करते, "भाई, तुम तो बड़े जेंटल हो, हमारे ऊपर कृपा करना।" फिर तो यह उपनाम इस खिलाड़ी के नाम से ऐसा जुड़ा कि वह उसका पारिवारिक नाम बन गया। उसका असली नाम रणधीर सिंह—पृष्ठभूमि से हट गया और रह गया केवल 'जेंटल' और यही 'जेंटल' भारतीय हाकी में एक 'रिक्तता' छोड़ 24 सितंबर, 1981 को हमें छोड़कर सदा-सदा के लिए चला गया।

रणजी ट्राफी

रणजी ट्राफी यानी भारतीय क्रिकेट की सबसे बड़ी और सबसे पुरानी राष्ट्रीय क्रिकेट प्रतियोगिता 1933 में शुरू हुई, 54 साल बीत जाने के बाद भी भारतीय क्रिकेट में कोई योगदान दे पाना तो दूर वह अपने अस्तित्व को भी बड़ी मुश्किल से बचा कर रख सकी है। राष्ट्रीय क्रिकेट प्रतियोगिता का मतलब होता है ऐसी प्रतियोगिता जो पूरे देश में क्रिकेट के प्रति दिलचस्पी पैदा करे और नये प्रतिभावान खिलाड़ियों को अपनी क्षमता दिखाने का मौका दे ताकि वे अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट के लिए अपना दावा पेश कर सकें।

हर देश में घरेलू क्रिकेट प्रतियोगिता का विशेष महत्व होता है। खिलाड़ी उसमें खेलना और नए रिकार्ड बनाना अपना सम्मान मानते हैं। लोग भी घरेलू क्रिकेट प्रतियोगिता में दिलचस्पी लेते हैं। पर रणजी ट्राफी के साथ ऐसी बात नहीं है। टेस्ट टीम में खेल चुके खिलाड़ी आम तौर पर रणजी ट्राफी में नहीं खेलते। इसीलिए गावसकर ने टेस्टों में भले ही 10 हजार रन बना लिए हों 'रणजी ट्राफी' में इसका आधा ही पार कर पाए हैं। जितने टेस्ट उन्होंने खेले उतने रणजी ट्राफी मैच नहीं खेले। जबकि 1969 से 1987 तक वे खेले और इस 18-19 साल में बंबई ने कोई सवा सौ रणजी ट्राफी मैच खेले।

रणजी ट्राफी दर्शकों की उपेक्षा का भी शिकार रही है। लोग मैचों की तो बात दूर रही, सेमीफाइनल मैच तक के लिए दर्शक नहीं जुट पाते। इसकी वजह रणजी ट्राफी का ढांचा भी है जो बीच-बीच में कुछ नियम बदलते रहने के बावजूद शुरू से एक जैसा रहा है। रणजी ट्राफी के मैचों को दिलचस्प बनाने की कभी कोई कोशिश ही नहीं हुई है। पहले पैसे की तंगी की वजह से ऐसा होता रहा होगा पर अब तो रणजी ट्राफी को प्रायोजक मिल गए हैं तो फिर क्या दिक्कत है।

रणजी ट्राफी मैचों के लिए मैदानों की भी समुचित व्यवस्था नहीं की जाती। अधिकारी भी मानो बैठे हैं कि रणजी ट्राफी गले में बंधा ढोल है जिसका आयोजन महज खानापूरी के लिए ही होना चाहिए। यही प्रवृत्ति रही तो रणजी ट्राफी को अकाल मौत से कौन बचा सकेगा?

रणजी ट्रॉफी फाइनल परिणाम

वर्ष	स्थान	परिणाम
1934-35	बंबई	बंबई ने उ० भारत को 208 रन से हराया
1935-36	दिल्ली	बंबई ने मद्रास को 190 रन से हराया
1936-37	बंबई	नवानगर ने बंगाल को 256 रन से हराया
1937-38	बंबई	हैदराबाद ने नवानगर को एक विकेट से हराया
1938-39	कलकत्ता	बंगाल ने द० भारत को 178 रन से हराया
1939-40	पूना	महाराष्ट्र ने उ० प्रदेश को 10 विकेट से हराया
1940-41	मद्रास	महाराष्ट्र ने मद्रास को 6 विकेट से हराया
1941-42	बंबई	बंबई ने मैसूर को एक पारी व 281 रन से हराया
1942-43	सिकंदराबाद	बड़ोदा ने हैदराबाद को 307 रन से हराया
1943-44	बंबई	प० भारत राज्य ने बंगाल को एक पारी व 23 रन से हराया
1944-45	बंबई	बंबई ने होल्कर को 374 रन से हराया
1945-46	इंदौर	होल्कर ने बड़ोदा को 46 रन से हराया
1946-47	बड़ोदा	बड़ोदा ने होल्कर को एक पारी व 409 रन से हराया
1947-48	इंदौर	होल्कर ने बंबई को 9 विकेट से हराया
1948-49	बंबई	बंबई ने बड़ोदा को 468 रन से हराया
1949-50	बड़ोदा	बड़ोदा ने होल्कर को 4 विकेट से हराया
1950-51	इंदौर	होल्कर ने गुजरात को 189 रन से हराया
1951-52	बंबई	बंबई ने होल्कर को 531 रन से हराया
1952-53	कलकत्ता	होल्कर ने बंगाल को पहली पारी की बढ़त से हराया
1953-54	इंदौर	बंबई ने होल्कर को 8 विकेट से हराया
1954-55	इंदौर	मद्रास ने होल्कर को 46 रन से हराया
1955-56	कलकत्ता	बंबई ने बंगाल को आठ विकेट से हराया
1956-57	दिल्ली	बंबई ने सेना को एक पारी व 38 रन से हराया
1957-58	बड़ोदा	बड़ोदा ने सेना को एक पारी व 49 रन से हराया
1958-59	बंबई	बंबई ने बंगाल को 420 रन से हराया
1959-60	बंबई	बंबई ने मैसूर को एक पारी व 22 रन से हराया
1960-61	उदयपुर	बंबई ने राजस्थान को 7 विकेट से हराया
1961-62	बंबई	बंबई ने राजस्थान को एक पारी व 287 रन से हराया

1962-63	जयपुर	बंबई ने राजस्थान को एक पारी व 19 रन से हराया
1963-64	बंबई	बंबई ने राजस्थान को 9 विकेट से हराया
1964-65	हैदराबाद	बंबई ने हैदराबाद को एक पारी व 126 रन से हराया
1965-66	जयपुर	बंबई ने राजस्थान को आठ विकेट से हराया
1966-67	बंबई	बंबई ने राजस्थान को पहली पारी की बढ़त से हराया
1967-68	बंबई	बंबई ने मद्रास को पहली पारी की बढ़त से हराया
1968-69	बंबई	बंबई ने बंगाल को एक पारी की बढ़त से हराया
1969-70	बंबई	बंबई ने राजस्थान को एक पारी व 59 रन से हराया
1970-71	बंबई	बंबई ने महाराष्ट्र को 48 रन से हराया
1971-72	बंबई	बंबई ने बंगाल को 246 रन से हराया
1972-73	मद्रास	बंबई ने तमिलनाडु को 123 रन से हराया
1973-74	जयपुर	कर्नाटक ने राजस्थान को 185 रन से हराया
1974-75	बंबई	बंबई ने कर्नाटक को 7 विकेट से हराया
1975-76	जमशेदपुर	बंबई ने बिहार को 10 विकेट से हराया
1976-77	दिल्ली	बंबई ने दिल्ली को 129 रन से हराया
1977-78	मोहननगर	कर्नाटक ने उत्तर प्रदेश को एक पारी व 193 रन से हराया
1978-79	बंगलूर	दिल्ली ने कर्नाटक को 399 रन से हराया
1979-80	दिल्ली	दिल्ली ने बंबई को 240 रन से हराया
1980-81	बंबई	बंबई ने दिल्ली को एक पारी व 46 रन से हराया
1981-82	दिल्ली	दिल्ली ने कर्नाटक को पहली पारी की बढ़त से हराया
1982-83	बंबई	कर्नाटक ने बंबई को पहली पारी की बढ़त से हराया
1983-84	बंबई	बंबई ने दिल्ली को पहली पारी की बढ़त से हराया
1984-85	बंबई	बंबई ने दिल्ली को 90 रन से हराया
1985-86	दिल्ली	दिल्ली ने हरियाणा को एक पारी व 141 रन से हराया
1986-87	दिल्ली	हैदराबाद ने दिल्ली को पहली पारी की बढ़त से हराया
1987-88	मद्रास	तमिलनाडु ने रेलवे को एक पारी व 144 रन से हराया

रणजीत सिंह

अब तो हम इस तथ्य के अभ्यस्त हो चुके हैं कि संसार के सर्वोत्तम क्रिकेट खिलाड़ी केवल श्वेत अंग्रेज ही नहीं अन्य देशों के भी हैं। लेकिन जरा उस समय की भी कल्पना कीजिये जब गत शताब्दी के अंतिम दशक के प्रारंभ में इंग्लैंड में

गोरे क्रिकेट खिलाड़ियों के बीच रणजीत सिंह जी, जिनको लोग प्यार से रणजी कहते थे, को देखकर लोगों को कितना आश्चर्य हुआ होगा। आज से 109 वर्ष पूर्व जन्मे रणजीत सिंह जी 1892 में कैंब्रिज के निश्चय ही सर्वोत्तम बल्लेबाजों में से एक थे, लेकिन इस के बावजूद भी उन को विश्वविद्यालय का विख्यात 'ब्लू' नहीं दिया गया था। उस समय टीम के कप्तान थे एफ० एस० जैकसन, जो आगे चलकर बंगाल के गवर्नर बने और बाद में बड़ी तत्परता से अपनी गलती महसूस भी कर ली थी उन्होंने, फिर भी अपनी ओर से उन्होंने कभी यह जानने का प्रयास नहीं किया कि यह भारतीय राजकुमार कितना अच्छा क्रिकेट खिलाड़ी है। 1893 में फिर केंब्रिज के कप्तान बने थे। सर्दियों में भारत का क्रिकेट दौरा करके आये थे। इस दौरे ने उनके ज्ञान में अभिवृद्धि की थी। इसी ग्रीष्म में रणजीत सिंह जी को 'ब्लू' मिल गया।

उस जमाने में ऐसे अनेक व्यक्तियों का अस्तित्व था जो यह सोचते थे कि आक्सफोर्ड और केंब्रिज के बीच क्रिकेट मैच में किसी भारतीय, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, को आने का हक नहीं है। सर ह्यूम गार्डन, जो ऐसे विचारों से बहुत दूर थे, ने कुछ वर्षों बाद एक गोष्ठी में बताया था कि एम० सी० सी० कार्यकारिणी के एक सदस्य ने उनको बड़े अपशब्द कहे और एक लंबी डाट पिलाई कि 'तुम्हारा इतना घृणित अधोपतन हो गया है कि तुम एक गंदे काले व्यक्ति की प्रशंसा करते हो' लेकिन यह हो-हल्ला ज्यादा दिन नहीं चला, क्योंकि शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि रणजीत सिंह जी एक विलक्षण क्रिकेट खिलाड़ी थे। अब सवाल केवल यह रह गया था कि क्या इनको इंग्लैंड की टीम में शामिल किया जाये?

रमाकांत देसाई

जन्म 20 जून, 1939। कहा जाता है कि रमाकांत देसाई के बाद भारतीय क्रिकेट में कोई वास्तविक तेज गेंदबाज नहीं हुआ। सामान्य कद काठी का यह दायें हाथ का गेंदबाज रणजी ट्राफी के एक सत्र में 50 विकेट लेने वाला पहला खिलाड़ी था। देसाई इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, वेस्ट इंडीज, पाकिस्तान और न्यूजीलैंड के विरुद्ध टेस्ट मैच खेला। बंबई की ओर से रणजी ट्राफी में 200 से अधिक विकेट। उनके टेस्ट आंकड़े इस प्रकार हैं—28 टेस्ट, 418 रन, 74 विकेट, 9 कैच।

रमेश कृष्णन

भारत में अच्छे टेनिस खिलाड़ी औसतन एक दशक में एक की दर से ही होते हैं। साठ के दशक में रामनाथन कृष्णन थे। सत्तर के दशक में विजय अमृतराज हुए और अस्सी के दशक में रमेश कृष्णन। प्रेमजीत लाल, जयदीप मुखर्जी, आनंद अमृतराज, शशि मेनन, नंदन बल, वासुदेवन जब तक डेविस कप में खेलते जरूर रहे हैं पर सारा दारोमदार पहले खिलाड़ी पर ही रहा है।

नये उभरते खिलाड़ियों में जीशान अली से कुछ उम्मीदें बंधती हैं हालांकि उसने अभी तक किसी तरह का चमत्कार नहीं दिखाया है, यों भी भारत में टेनिस के प्रतियोगितात्मक मुकाबले पांच साल पहले की तुलना में बहुत कम हो गए हैं। रमेश कृष्णन को शिकायत है कि "जिन दिनों मैंने खेलना शुरू किया था, तब काफी प्रतियोगिताएं होती थी। मैं काफी खेलता था, कई अच्छे विदेशी खिलाड़ी यहां खेलने आते थे तथा भारत में भी काफी लोग खेलते थे, पर अब मुझे लगता है कि लोगों का उत्साह ही कम हो गया है। इसे फिर से जगाना होगा।

रमेश कृष्णन उन भाग्यशाली खिलाड़ियों में से हैं जिन्हें प्रतिभा और प्रशिक्षण विरासत में ही सहज रूप से मिला है। टेनिस का व प्रारंभिक प्रशिक्षण तथा टेनिस के दावपेचों को समझने और उसमें निखार लाने में उसके सुप्रसिद्ध पिता रामनाथन कृष्णन का बहुत बड़ा योगदान है। इसीलिए रमेश के खेल में दर्शनीय पासिंग शाट्स, ड्राप्स तथा लंबी रैलियों का सुंदर समन्वय है।

लेकिन रमेश के इस सुन्दर रूप के पीछे एक दुखद कमजोरी भी है। वह है अपने पिता की ही भांति तेज-तर्रार सर्विस का अभाव, जो आज टेनिस का सर्वोत्तम हथियार है। इसके अभाव में अभी तक रमेश विश्व के चोटी के टेनिस खिलाड़ी नहीं बन पाए हैं।

रमेश का नाम 1979 में पहली बार सुर्खियों में आया जब उसने जूनियर विबंलडन का खिताब जीता। उल्लेखनीय है कि उसके पिता रामनाथन कृष्णन ने 1954 में जूनियर विबंलडन विजय से ही अपने टेनिस जीवन की शुरुआत की थी। धीरे-धीरे रमेश ने बड़ी प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू किया लेकिन कुछ कमजोरियों की वजह से आशानुरूप प्रदर्शन नहीं कर पाए। 1982 के मध्य में विश्व टेनिस खिलाड़ियों की वरीयता क्रम में उसका 55वां स्थान था जो वर्ष के अंत तक 82वां हो गया था।

लेकिन 1983 के आरंभ से रमेश के खेल में काफी सुधार आया। जून

1983 में उसका स्थान 70वां था, रमेश का इस वर्ष का सबसे उल्लेखनीय प्रदर्शन विंबलडन मे रहा। हालांकि वहां वह प्रथम चक्र मे ही अमेरिकी दिग्गज विटास गेरुलाइटिस से पराजित हुआ, लेकिन पराजित होने से पहले 5 सेटों के लंबे मैच में उसने विटास को नाकों चने चबवा दिए।

कड़े संघर्ष के बाद विटास 7-5, 5-7, 6-7, 7-5, 6-3 से जीता। लेकिन रमेश के खेल की पश्चिमी प्रेस व दर्शकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। 'दि टाइम्स' ने लिखा कि 'भारतीय खिलाड़ी रमेश ने बहुत खूबसूरत ढंग से पासिंग व ड्राप शाट लगाते हुए वर्षों बाद दर्शकों को रामनाथन कृष्णन व केन रोजवेल के क्लासिकल खेल का लुत्फ दिया।' 'डेली टेलीग्राफ' ने इस मैच के लिए लिखा कि 'ताकत और क्लासिकल खेल का सामंजस्य देखने वालों के लिए यह एक शानदार मैच रहा।'

विंबलडन के प्रथम चक्र मे मिली पराजय से दुखी रमेश अपनी फार्म बरकरार नही रख सका और अब विश्व में उसका स्थान 140वां है, लेकिन अब वह फिर से अपने फार्म मे सुधार लाने की कोशिश कर रहा है। सितंबर के अंत में वह ट्रांस अमेरिकी ओपन टेनिस से सेमीफाइनल तक पहुंचा जहां वह चेकोस्लोवाकिया के इवान लेंडल के हाथों 0-6, 1-6 से हारा।

अभी हाल ही मे उसने पूर्वी क्षेत्र डेविस कप में जापान के 5 बार के राष्ट्रीय चैंपियन त्सुओशी फुकुई को 5 सेटों में 6-4, 6-1, 3-6, 4-6, 6-1 से हराकर जापान पर भारत की विजय का मार्ग प्रशस्त किया।

रवि शास्त्री

10 जनवरी 1985। बंबई का वानखेड़े मैदान युवा आलराउंडर रवि शास्त्री की रिकार्डतोड़ बल्लेबाजी का साक्षी रहा। उस दिन उसने कई रिकार्ड तोड़ प्रदर्शन किये। प्रथम श्रेणी क्रिकेट में एक ओवर में 6 छक्के लगाने का वेस्ट इंडीज के सर गारफील्ड सोबर्स का 1968 से चला आ रहा विश्व रिकार्ड, एक बार फिर से 10 जनवरी, 1985 को दोहराया गया, इस बार इसे दोहराने का सम्मान रहा भारत के युवा टेस्ट सितारे रवि शास्त्री को जिनका जन्म 27 मई, 1962 को हुआ था। बंबई मे पश्चिम क्षेत्र रणजी ट्राफी मुकाबले मे शास्त्री ने बड़ौदा के विरुद्ध रिकार्डतोड़ प्रदर्शन करते हुए न केवल एक ओवर में 6 छक्के जड़ने का रिकार्ड बनाया बल्कि सबसे तेज शतक व द्विशतक बनाने का रिकार्ड कायम किया।

1968 में सोबर्स के विरुद्ध आफ स्पिनर मैल्कम नाश थे तो 1985 में

रवि शास्त्री के विस्फोटक बल्ले का सामना करना पड़ा, बाएं हत्था स्पिनर तिलक राज को। 21 वर्षीय 6 फुट 2 इंच लंबे शास्त्री के छक्कों की बहार इस कदर जबरदस्त रही कि हर गेंद क्षेत्ररक्षकों और दर्शकों को भौंचक करते हुए मैदान से बाहर गिरी।

1980-81 में टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश पाया। अब तक टेस्ट मैचों में 7 शतक बनाने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

टेस्ट रिकार्ड : 58 टेस्ट में 7 शतकों की सहायता से 2568 रन सर्वाधिक 142 रन, सफल गेंदबाज के रूप 127 मे विकेट ले चुके हैं।

रहीम

सैयद अब्दुल रहीम का नाम भारतीय फुटबाल के पर्याय के रूप में जाना जाता है। भारतीय फुटबाल का इतिहास रहीम के बिना अधूरा है।

हैदराबाद मे जन्मे रहीम पेशे से अध्यापक थे और फुटबाल के दीवाने थे। विश्व मे कई ऐसे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय फुटबाल प्रशिक्षक हुए हैं जिनकी खिलाड़ियों और खेल के प्रति असीम लगन थी। फुटबाल के वह ऐसे ही अद्वितीय तकनीकी विशेषज्ञ थे। वह पहले भारतीय प्रशिक्षक थे जिन्होंने खिलाड़ियों को आधुनिक तकनीक और शैली का महत्व बताया।

रहीम की प्रशिक्षण प्रणाली की प्रशंसा विदेशियों ने भी की। रहीम से प्रशिक्षण प्राप्त भारतीय टीम के उत्कृष्ट प्रदर्शन को देख कर कई विदेशी भी दांतों तले अंगुली दबा बैठे थे।

1960 में हुए रोम ओलम्पिक खेलों के लिए नयी प्रणाली को अपनाया गया था। ओलम्पिक में भाग लेने के लिए पहले क्वालिफाई मैच कराए गए जिसके आधार पर विश्व की 16 टीमों को ओलम्पिक खेलने का अधिकार प्राप्त हुआ। रहीम द्वारा तैयार की गई टीम रोम ओलम्पिक के लिए क्वालिफाई कर गई।

छोटे कद के रहीम खिलाड़ियों की तंदरुस्ती पर अधिक बल देते थे। इसका सबूत उनकी अपनी चुस्ती-फुर्ती से मिलता है। 1959 में जब वह पश्चिमी एशियाई क्षेत्र प्रतियोगिता के लिए अर्नाकुलम में खिलाड़ियों को प्रशिक्षण दे रहे थे तो एक दिन टीम के खिलाड़ी नदी के किनारे पिकनिक मनाने गए। नदी में नहाने से पूर्व रहीम ने सभी खिलाड़ियों को बारी-बारी से कुश्ती के लिए ललकारा। लगभग सभी को उन्होने चित्त कर दिया।

रहीम एक ऐसे प्रशिक्षक थे जो आत्म-सम्मान, मान-मर्यादा को पद से अधिक

महत्व देते थे। इसका उदाहरण इस बात से मिलता है कि उन्हें राष्ट्रीय क्रीड़ा संस्थान पटियाला के लिए मुख्य फुटबाल प्रशिक्षक की पेशकश भी की गई परन्तु इसके लिए एक शर्त यह रखी गई थी कि वह इग्लैंड के प्रशिक्षक हैरी राईट से प्रशिक्षण लें, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया।

जकार्ता के चौथे एशियाई खेलों में फुटबाल स्वर्ण पदक जीतने वाली भारतीय टीम को प्रशिक्षण रहीम द्वारा ही दिया गया था। 1956 मेलबोर्न ओलम्पिक टीम का प्रशिक्षण भार रहीम के कंधों पर ही था। भारतीय टीम चौथे नंबर पर रही थी। इस ओलम्पिक में नेविल डीसूजा को ऐसा एकमात्र भारतीय खिलाड़ी होने का गौरव प्राप्त हुआ जिसने ओलम्पिक फुटबाल मुकाबलों में तिकड़ी जमाई हो।

1951 में दिल्ली में हुई प्रथम एशियाई खेलों में भारतीय फुटबाल टीम के प्रशिक्षक रहीम ही थे। फाइनल मैच जब ईरान से खेला गया तो रहीम ने भारतीय टीम की रणनीति में तब्दीली कर दूसरे सत्र में आक्रमण दोनों किनारों से करने को कहा। जिसके फलस्वरूप भारतीय टीम को 2-0 से विजयी बनने में सफलता मिली।

रहीम पहले भारतीय प्रशिक्षक थे जिन्होंने खिलाड़ियों को नगे पांव से न खेलकर फुटबाल बूट पहन कर खेलने की सलाह दी। इसका कारण यह रहा कि 1952 के हेलसिंकी ओलम्पिक में भारतीय खिलाडियों को यूगोस्लाविया के खिलाडियों ने अपने बूटो से काफी चोटें पहुंचायी थी। यूगोस्लाविया ने इस मैच में भारत को 10-1 से रौंद डाला।

54 वर्ष की आयु में कुछ महीने बीमार रहने के बाद 11 जून 1963 को इस महान फुटबाल प्रशिक्षक की मृत्यु हो गई।

उन्हीं के पद चिह्नों पर उनके बड़े लड़के एम० एस० हकीम चल रहे हैं। वह देश के चोटी के प्रशिक्षक हैं और अब गोवा की टीम को प्रशिक्षण दे रहे हैं।

राइडर (जैक)

आस्ट्रेलिया के भूतपूर्व क्रिकेट कप्तान जैक राइडर का 3 अप्रैल, 1977 को मेलबोर्न में निधन हो गया। उनकी आयु 87 वर्ष थी। जैक राइडर ने शताब्दी टेस्ट के अवसर पर आयोजित समारोह में इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया के अन्य भूतपूर्व कप्तानों के साथ हिस्सा लिया था। लेकिन टेस्ट समाप्त होने के दो दिन बाद ही उन्हें दिल का दौरा पड़ा।

लम्बे कद के जैक राइडर दायें हाथ के बल्लेबाज और मीडियम पेस गेंदबाज थे। आस्ट्रेलिया और विक्टोरिया के इस भूतपूर्व कप्तान ने अपना क्रिकेट जीवन विक्टोरिया के लिए 1912 में शुरू किया था और वह 1935 तक विक्टोरिया

के लिए खेलते रहे। राइडर ने टेस्ट क्रिकेट में कदम 1920-21 की गृह शृंखला में इंग्लैंड के विरुद्ध रखा। 1921 में वह वारविक आर्मस्ट्रोंग की टीम में इंग्लैंड गए, लेकिन किसी टैस्ट में नहीं खेल सके, हालांकि उस यात्रा में उन्होंने प्रथम श्रेणी के मैचों में 725 रन बनाए थे और 18 विकेट लिए थे। वह एक खूबसूरत बल्लेबाज थे।

जैक राइडर कुल मिलाकर 20 टैस्ट मैचों में खेले, जिनमें से वह 5 में इंग्लैंड के विरुद्ध कप्तान रहे। वह इंग्लैंड के विरुद्ध 1928-29 की गृह शृंखला में कप्तान थे, लेकिन शृंखला 4-1 से हार गए। जैकराइडर ने 20 टेस्ट मैचों की 32 पारियों में प्रति पारी 51.62 रन की औसत से कुल 1394 रन बनाए जिनमें 3 शतक और 9 अर्ध शतक शामिल थे। उनका एक पारी का उच्चतम टेस्ट स्कोर 21 रन (आउट नहीं) था। उन्होंने टेस्ट मैचों मे 17 विकेट और 17 कैच भी लिए। प्रथम श्रेणी के मैचों में उनका अधिकतम स्कोर 295 रन था, जो उन्होंने न्यू साउथ वेल्स के विरुद्ध 1926-27 में बनाया था।

भारत के पुराने क्रिकेट प्रेमी जैक राइडर के नाम से भली भांति परिचित हैं क्योंकि वह महाराजा पटियाला के निमंत्रण पर 1935-36 मे एक आस्ट्रेलियाई टीम लेकर भारत आए थे। राइडर की उम्र उस समय 46 वर्ष की थी और उनकी टीम की औसत उम्र भी करीब 40 वर्ष थी। राइडर की इस टीम में गवर्नर जनरल चार्ल्स मैकार्टनी भी थे, जिनकी उम्र उस समय 49 वर्ष थी। राइडर की इस टीम ने बम्बई और कलकत्ता, लाहौर और मद्रास मे चार अनधिकृत टेस्ट खेले। बम्बई और कलकत्ता मे राइडर की टीम जीती, जबकि लाहौर और मद्रास में भारतीय टीम विजयी रही।

जैक राइडर 1946 से 1970 तक आस्ट्रेलिया के टेस्ट चयनकर्त्ता भी रहे।

राजर बैनिस्टर

आज से कोई 35 साल पहले तक यह माना जाता था कि एक मील के फासले को 4 मिनट से कम समय तय करना दुनिया के किसी इन्सान के बस या बूते की तो बात है नहीं, हां, यदि कोई सुपरमैन (अतिमानव) ही धरती पर उतर आए तो दूसरी बात है। मगर 6 मई, 1954 को इंग्लैंड के चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थी राजर बैनिस्टर ने जब पहली बार एक मील के फासले को 3 मिनट 59.4 सैकिंड मे तय कर दिखाया तो 30 वर्षों से चली आ रही उक्त धारणा गलत सिद्ध हो गई। असम्भव को सम्भव कर दिखाने के कारण राजर बैनिस्टर एक मील के इतिहास में अमर हो गए और इस प्रकार इतनी दूरी को पहली बार चार मिनट से कम समय में तय करने का तिलक इंग्लैंड के राजर बैनिस्टर के माथे लगा। राजर बैनिस्टर ने अपनी उस दौड़ को अपने जीवन की अविस्मरणीय

दौड़ स्वीकार करते हुए लिखा है—"दिसम्बर 1942 में आस्ट्रेलिया के जान लेण्डी ने एक मील की दौड़ को 4 मिनट 21 सेकिंड में दौड़कर दुनिया में एक तरह से हलचल-सी मचा दी थी। जाहिर था कि उसका लक्ष्य एक मील की दौड़ को 4 मिनट में या कि उससे भी कम समय में पूरा करने का था, क्योंकि इस लक्ष्य की प्राप्ति पिछले 30 वर्षों से ससार भर के दौड़ाकों के लिए एक प्रकार का सपना बनी हुई थी। मैंने भी मन ही मन जान लेण्डो के लक्ष्य को प्राप्त करने का निश्चय किया और ,इसके लिए दिन-रात एक करके अपना प्रशिक्षण और अभ्यास शुरू कर दिया।

"6 मई, 1954 को जब एक मील की दौड़ शुरू हुई तब मैं भी उस प्रतियोगिता मे शामिल हो गया। दौड़ कब शुरू हुई यह तो मुझे याद है मगर वह दौड कब खत्म हुई इस बारे मे मुझे कुछ याद नही। दौड़ खत्म होने के बाद मुझे ज़रा भी होश नही था। मेरे सारे शरीर का अग-अंग मारे पीड़ा के फटा जा रहा था। थोड़ी देर बाद जब मुझे होश आया और मैंने परिणाम की घोषणा सुनी तो पता चला मेरे जीवन का स्वप्न साकार हो गया है। मैंने वह दौड़ चार मिनट से कम समय (3 मिनट 59.4 सेकिंड) मे जीत ली है।

राज्यश्री राजकुमारी

बीकानेर के महाराजा डा० कर्णीसिंह की सुपुत्री राज्यश्री का जन्म 4 जून 1953 को हुआ और सात साल की उम्र में ही उन्होंने राइफल चलाना शुरू कर दिया था। 10 साल की उम्र मे तो वह बड़े-बड़े निशानेबाजों को भी पीछे छोड़ गईं। 12 साल की उम्र में उन्होने ट्रैप शूटिंग शुरू की और 16 साल की उम्र में उन्होंने अर्जुन पुरस्कार प्राप्त कर लिया।

जब कुमारी राज्यश्री केवल 14 वर्ष की थी तब उन्होंने 1967 में तोक्यो (जापान) मे हुई प्रथम एशियाई निशानेबाजी की प्रतियोगिता में भाग लिया और अपनी तेज फायरिंग से उन्होने सबको चकित कर दिया था। पुरुषों की प्रतियोगिता में भाग लेने वाली वह अकेली खिलाड़िन थी। इतनी कम उम्र मे इतना बड़ा कमाल और इतना बड़ा हौसला देखकर सब लोग हैरान हो गए थे। उन्होने 400 मे 342 अंक बनाए। उस समय जब उनसे यह पूछा गया कि आप *दनादन गोलियां कैसे चला लेती हैं तो उन्होंने कहा कि मुझे इसकी आदत है।* मुझे निशाना साधने में कुछ देर नही लगती।

राड लेवर

लान टेनिस के क्षेत्र में केवल एक खिलाड़ी ऐसा है जिसे निर्विवाद और

निर्विरोध रूप से दुनिया का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी कहा जा सकता है और उसका नाम है राड लेवर। दूसरी बार ग्रेंड स्लैम का गौरव प्राप्त करने के बाद आस्ट्रेलिया के 31 वर्षीय राड लेवर ने लान टेनिस के इतिहास का एक नया अध्याय जोड़ दिया है। 1959 में विम्बलडन प्रतियोगिता में लेवर का नाम श्रेष्ठता के क्रम में नहीं था—तब वह एक नया खिलाड़ी था। लेकिन बिना किसी सीडिंग के वह मजबूत खिलाड़ियों के घेरे को तोड़ता हुआ फाइनल तक पहुंच गया। सेमीफाइनल में लेवर ने अमेरिका के बेरी मैक्के को 11-13, 11-9 10-8,7-9, और 6-3 से हराया था। वैसे मैच के स्कोर अपने आप में ही बेमिसाल हैं। ओलमेडो जैसे अनुभवी खिलाड़ी के कारण 1959 का विम्बलडन लेवर जीत नहीं पाया, पर उसकी ताकत का अन्दाजा लगभग सभी नये-पुराने खिलाड़ियों को हो गया। मुसीबत में लेवर का खेल अपनी ऊंचाई पर होता है। नील फ्रेज़र ने एक बार उनके खेल की विशेषता की चर्चा करते हुए कहा था कि उसके लिए प्वाइंट और मैच प्वाइंट में कोई फर्क नहीं होता।

रान क्लार्क

आज के युग को पूर्णता का युग कहा जाता है। यानी या तो कोई धावक छोटे फासले की दौड़ों में ही अपना कमाल दिखाकर कीर्तिमान स्थापित कर सकता है या फिर लम्बे फासले की दौड़ों में, लेकिन खेलकूद की दुनिया में एक खिलाड़ी ऐसा भी है जिसने 2 मील से लेकर 15 मील तक की सभी फासले की दौड़ों में विश्व-कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इस महान खिलाड़ी का नाम है रान क्लार्क। आंकड़ों की दृष्टि से सम्भवतः रान क्लार्क को संसार का महानतम धावक कहा जा सकता है, लेकिन साथ ही उन्हें खेल-जगत का सबसे अभागा धावक माना जाता है। कारण यह कि यों तो उन्होंने अलग-अलग फासले की दौड़ों में 19 कीर्तिमान स्थापित किए लेकिन चार ओलम्पिक खेलों में भाग लेने के बावजूद वह एक बार भी स्वर्ण पदक जीतने में सफल नहीं हो सके।

जिस समय रान क्लार्क ने पहली बार मेलबोर्न ओलम्पिक (1956) में भाग लिया तो उस समय उनकी उम्र 19 वर्ष की थी। ओलम्पिक मशाल लेकर जब उन्होंने स्टेडियम में प्रवेश किया तो हजारों लोगों ने तालियां बजाकर उनका स्वागत किया। उस समय सबको इस बात का पूरा यकीन था कि वह 1500 मीटर की दौड़ में अवश्य स्वर्ण पदक प्राप्त करेंगे, लेकिन दुर्भाग्यवश तेज़ हवा के कारण उसी मशाल की लपटों से उनकी बांह जल गई और दूसरे दिन वह खेल के मैदान में आने की बजाय अस्पताल के बिस्तर में पड़े रह गए।

उसके बाद उन्होंने 1960 में रोम ओलम्पिक खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त करने की तैयारी शुरू कर दी, लेकिन वहां पर भी वह खेल शुरू होने से पहले जख्मी

हो गए। 1964 में तोक्यो ओलम्पिक खेलों में भाग लेने से पूर्व उन्होंने विभिन्न फासले की दौड़ों में कई कीर्तिमान स्थापित कर लिए थे। 500 मीटर और 10,000 मीटर में स्वर्ण पदक जीतने के इरादे से वह तोक्यो पहुंचे, लेकिन वहां भी उनकी मुराद पूरी नहीं हो सकी और केवल कांस्य पदक प्राप्त करके ही संतोष करना पड़ा।

चौथी बार उन्होंने 1968 मे मैक्सिको ओलम्पिक खेलों में भाग लिया।

रामचन्द (गुलाबराय)

जन्म 25 जुलाई, 1927। बम्बई का यह दायें हाथ का आक्रामक बल्लेबाज और दाएं हाथ का ही मीडियम पेस गेंदबाज भारत का कप्तान रहा। इंग्लैंड पाकिस्तान और न्यूजीलैंड की यात्रा की। आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 1959-60 की शृंखला मे कप्तान। इंग्लैंड मे लीग क्रिकेट खेली। रणजी ट्राफी में 10 शतकों की सहायता से 75.56 रन प्रति पारी की औसत से 2569 रन बनाए। दो टेस्ट शतक। उनके टेस्ट आंकड़े इस प्रकार हैं—33 टेस्ट, 1180 रन, 41 विकेट, 20 कैच।

रामनाथन कृष्णन्

अन्तर्राष्ट्रीय लान टेनिस में भारत को आज जो मान, सम्मान और स्थान प्राप्त हुआ है उसका श्रेय टेनिस के महारथी रामनाथन कृष्णन् को प्राप्त है। 1954 में रामनाथन कृष्णन ने विम्बलडन की जूनियर प्रतियोगिता जीती थी। उसके बाद से वह लगातार विम्बलडन चैम्पियन बनने की कोशिश करते रहे लेकिन विम्बलडन चैम्पियन बनने का स्वप्न पूरा नहीं हुआ।

29 जून, 1960 का दिन भारतीय लान टेनिस के इतिहास का स्वर्णिम दिन माना जाता है। इस दिन भारत के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी कृष्णन् विम्बलडन की सेमी-फाइनल प्रतियोगिता में खेलने के लिए मैदान में आए। इससे पहले किसी भी भारतीय टेनिस खिलाड़ी को सेमी-फाइनल तक पहुंचने का सौभाग्य नहीं हुआ। वैसे कृष्णन् प्रायः विश्व के सभी चोटी के खिलाड़ियों को कभी न कभी हरा चुके है, लेकिन विम्बलडन में उनकी किस्मत उनका साथ नहीं देती है।

डेविस कप के इतिहास में चुनौती मुकाबले (चैलेंज राउन्ड) का विशेष महत्त्व है। भारत को एक बार चुनौती मुकाबले में पहुंचने का भी गौरव प्राप्त हुआ। अपने जीवनकाल के गौरवपूर्ण क्षणों की चर्चा करते हुए कृष्णन् स्वयं कहते हैं कि जब 1966 मे अन्तर-क्षेत्रीय डेविस कप के फाइनल्स में ब्राजील को हराकर भारतीय टीम डेविस कप के चैलेंज राउंड में पहुंची, उसे मैं अपने और अपने देश का गौरवपूर्ण क्षण मानता हूं। उस दिन मैं कितना खुश था, इसकी कोई कल्पना

भी नहीं कर सकता। व्यक्तिगत मैच जीतने की बजाय या व्यक्तिगत प्रतिष्ठा प्राप्त करने की बजाय अपने देश की प्रतिष्ठा बढ़ाना कहीं ज्यादा सुखदायी होता है।

कृष्णन् का जन्म 11 अप्रैल, 1926 को मद्रास के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उन्होने अपनी उच्च शिक्षा लोयोल्ला कालेज मद्रास मे प्राप्त की। कृष्णन् के पिता स्वयं भी टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे। वह अपने पुत्र को भी मशहूर टेनिस खिलाड़ी के रूप में देखना चाहते थे। फिर भी बचपन में कृष्णन् को टेनिस से खास लगाव नही था। उन दिनों कृष्णन् की रुचि दूसरे खेलो मे थी।

उसके बाद 1961 की विम्बलडन प्रतियोगिता में वह फिर सेमी-फाइनल मे पहुंचकर राड लेवर से हार गए। इस बार वह राय एमर्सन जैसे खिलाड़ी को हराकर सेमी-फाइनल मे पहुंचे थे। 1961 में उन्होंने नई दिल्ली में हुए एक मैच में चैक मेकेन्ली को भी हराया था।

1962 मे वह पूरे आत्म-विश्वास के साथ विम्बलडन पहुंचे। अब तक वह चोटी के खिलाड़ियों—मेकेन्ली, लेवर, नील फ्रेज़र, डोनाल्ट बज और मुलीगान आदि से खेलकर काफी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इस बार सीडिड खिलाड़ियों में उनका चौथा स्थान था। लेकिन इस बार भी किस्मत ने उनका साथ नही दिया। तीसरे राउंड मे जान फ्रेज़र के विरुद्ध मैच खेलते हुए उन्हें बीच में ही कोर्ट छोड़ना पड़ा। कारण यह कि एक दिन पहले के डबल्स मैच में उनको चोट लग गई थी और पांव में मोच आ गई थी। डाक्टरों ने उन्हें अगले दिन मैच में हिस्सा न लेने की सलाह दी, परन्तु भारत का यह निर्भीक खिलाड़ी कोर्ट में उपस्थित हुए बिना न रह सका। संवाददाताओं के पूछने पर कृष्णन् ने उत्तर दिया कि खेल में हिस्सा न लेना मेरे लिए शोभनीय नही था। खेल मे ऐसा होता ही है। सच तो यह है कि कृष्णन् ने भारतीय लान टेनिस की जो सेवा की उसे वर्षों तक नही भुलाया जा सकता।

कुछ वर्ष पहले कृष्णन् ने बड़ी राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं से एक प्रकार का सन्यास ले लिया। उन्होने कहा कि मुझे टेनिस से बेहद लगाव है। मैं 16 वर्ष की उम्र से लेकर 32 वर्ष की उम्र तक टेनिस खेलता आ रहा हू। यों तो मैंने 11 वर्ष की उम्र मे ही टेनिस खेलना शुरू कर दिया था।

1966 मे रामनाथन कृष्णन् को भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण के सम्मान से अलकृत किया गया। उन्हें हेल्मस पुरस्कार भी प्रदान किया गया। यह पुरस्कार दुनिया के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियो को ही प्राप्त होता है।

राममूर्ति

आज से 40 या 50 वर्ष पहले हिन्दुस्तान के हर बच्चे की जुबान पर राम-

मूर्ति का नाम था। वह उनकी अद्भुत शक्ति की कहानियां भी उसी चाव से सुनता था जिस चाव से देव-दानव की लड़ाई की कहानियां। राममूर्ति अपनी छाती पर हाथी खड़ा कर लेते, चलती मोटर रोक देते, रुकी रेलगाड़ी को चलने नही देते, पूरी भैंस उठाकर सीढ़ियां चढ़ जाते, 25 अश्वशक्ति की दो मोटर-गाड़ियों को रोक लेते, छाती पर बड़ी-सी चट्टान को तुड़वाते, आधी इंच मोटी लोहे की जंजीर को अपने हाथों से आसानी से तोड़ देते, 50 आदमियों से लदी गाड़ी को अपनी देह से गुजार देते और नारियल के वृक्ष को नीचे से हिलाकर ही दो-तीन नारियल गिरा देते, आदि। उनकी वीरता भरी कहानियों में सच्ची घट-नाओं का सिलसिला यदि एक बार शुरू हो जाता तो कभी खत्म होने का नाम नही लेता।

राममूर्ति की यह अलौकिक शक्ति ईश्वरीय देन नही, बल्कि अपनी साधना और संकल्प द्वारा अर्जित की गई थी।

राममूर्ति का जन्म आन्ध्र प्रदेश में वीरघट्टम नामक गांव में हुआ था। उनके पिता पुलिस में इंस्पेक्टर थे। राममूर्ति केवल पहलवान ही नही, बल्कि बहुत ही ज्ञानवान और विवेकशील व्यक्ति भी थे। अंग्रेजी और संस्कृत का उन्हें अच्छा ज्ञान था। हिन्दी भी अच्छी बोल लेते थे। ब्रह्मचर्य के वह कट्टर पक्षपाती थे। राममूर्ति की मृत्यु सन् 1938 में हुई। उस समय वह 60 वर्ष के थे।

राल्फ बोस्टन

राल्फ बोस्टन के नामोल्लेख के बिना लम्बी कूद का इतिहास अधूरा है और राल्फ बोस्टन के दो महत्त्वपूर्ण कारनामों के बिना उनका व्यक्ति चरित अधूरा रह जाएगा। एक तो यह कि वह ऐसे पहले इन्सान हैं जिन्होंने 27 फुट से ज्यादा लंबा कूदा और दूसरा यह कि उन्होंने लम्बी कूद मे 25 वर्ष पुराना रिकार्ड भंग किया।

अमेरिका के राल्फ बोस्टन के लम्बे अरसे तक एथलेटिक-जगत में (खास कर लम्बी कूद में) अपने नाम की पताका लहराई और आजकल स्वयं खेलने की बजाय रेडियो और टैलीविज़न पर खेल-समीक्षाएं करते हैं।

अमेरिका के 29 वर्षीय नीग्रो खिलाड़ी (कद 6 फुट 1 इंच) राल्फ बोस्टन ने सन्यास लेने से पहले आखिरी बार फिलडेल्फिया में आयोजित 'मार्टिन लूथर किंग स्मारक' प्रतियोगिता मे भाग लिया था। 1960 मे जब बोस्टन ने लम्बी कूद का 25 साल पुराना रिकार्ड तोड़ा तो वह एक ही दिन में महान खिलाड़ी की संज्ञा पा गए। उन्होंने 26 फुट 11.75 इंच लम्बा कूदकर एक नया कीर्ति-मान स्थापित किया। उसी वर्ष रोम ओलम्पिक प्रतियोगिता में भी उन्होंने स्वर्ण पदक प्राप्त किया। वहां वह अपने प्रतिद्वन्द्वी राबर्टसन से केवल एक सेंटीमीटर

ही ज्यादा कूद पाए। रोम ओलम्पिक में उन्हें 26 फुट 3 इंच लम्बी छलांग लगाई थी। तब तक यह समझा जाता था कि 27 फुट से लम्बा कूदना इन्सान की सीमा और उसकी शक्ति से बाहर की चीज़ है, लेकिन 1964 में उन्होंने 27 फुट से लम्बा कूदकर लोगों की उक्त धारणा को गलत साबित कर दिखाया।

राष्ट्रकुल प्रतियोगिता

जहां तक खेलों की लोकप्रियता और महत्त्व का प्रश्न है, ओलम्पिक प्रतियोगिताओं के बाद राष्ट्रकुल प्रतियोगिताओं का ही नम्बर आता है। इसका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। कहा जाता है कि 1911 में किंग जार्ज पंचम के राज्याभिषेक के अवसर पर ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्धित देशों की सहायता से एक खेल मेले का आयोजन किया गया। परन्तु इसके बाद 1930 में जाकर राष्ट्रकुल खेलों के लिए एक निश्चित रूप-रेखा तैयार की गई और यह फैसला किया गया कि यह खेल भी, ओलम्पिक खेलों की तरह, हर चार साल बाद होंगे। इस तरह से आयोजन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्धित देशों को एक स्थान पर इकट्ठा करना और उनमें मैत्री-भाव जगाना था, ताकि वे सभी देश यह समझें कि वे एक ही परिवार के सदस्य हैं। इस प्रतियोगिता में रंग या जाति का भी कोई ध्यान नहीं रखा जाता था और राष्ट्रकुल से सम्बन्धित कोई भी देश इसमें भाग ले सकता था। यही कारण है कि इन प्रतियोगिताओं में अफ्रीकी देशों के खिलाड़ी भी काफी संख्या में भाग लेते हैं।

भारत ने 1954 में पहली बार इस प्रतियोगिता में भाग लिया था। उस वर्ष भारत का कोई खिलाड़ी कोई भी पदक नहीं जीत पाया था। उसके बाद कार्डिफ प्रतियोगिताओं में भारत के मिल्खा सिंह ने 440 गज की दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। भारत के दो पहलवान—लीलाराम और लक्ष्मीकान्त पाण्डे भी इस प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक और रजत पदक प्राप्त कर चुके हैं। 1966 में हुई आठवीं राष्ट्रकुल प्रतियोगिता में भारत को तीन स्वर्ण पदक, 4 रजत पदक और 4 कांस्य पदक प्राप्त हुए। तीनों स्वर्ण पदक भारतीय पहलवानों ने जीते। स्वर्ण पदक प्राप्त करने वाले भारतीय पहलवानों के नाम इस प्रकार थे : भीमसिंह (हैवी वेट), विश्वम्भर सिंह (बेंटम वेट) और मुख्तियार सिंह (लाइट वेट)।

1978 में हुए एडमंटन में हुए 11वें राष्ट्रकुल खेलों में भारतीयों ने कुल 5 स्वर्ण, 4 रजत और [redacted] कांस्य पदक प्राप्त किए। राष्ट्रकुल खेल कब-कब और कहां-कहां हुए, इसका विवरण इस प्रकार है :

राष्ट्रमंडलीय खेल एक नजर में

1930 ब्रिटिश एम्पायर गेम्स—हेमिल्टन (कनाडा)

1936 ब्रिटिश एंपायर गेम्स – लंदन (इंग्लैंड)
1938 ब्रिटिश एंपायर गेम्स—सिडनी (आस्ट्रेलिया)
1950 ब्रिटिश एंपायर गेम्स—आकलैंड (न्यूजीलैंड)
1954 ब्रिटिश एंपायर एंड कामनवेल्थ गेम्स—वेन्कूवर (कनाडा)
1958 ब्रिटिश एपायर एण्ड कामन वेल्थ गेम्स—कार्डिफ (वेल्स)
1962 ब्रिटिश एंपायर एंड कामनवेल्थ गेम्स—पर्थ (आस्ट्रेलिया)
1966 ब्रिटिश एंपायर एंड कामनवेल्थ—गेम्स—किंग्स्टन (जमैका)
1970 ब्रिटिश कामनवेल्थ गेम्स—एडिनबर्ग (स्काटलैंड)
1974 ब्रिटिश कामनवेल्थ गेम्स—क्राइस्टचर्च (न्यूजीलैंड)
1978 ब्रिटिश कामनवेल्थ गेम्स—एडमंटन (कनाडा)
1982 ब्रिटिश कामनवेल्थ गेम्स—ब्रिस्बेन (आस्ट्रेलिया)
विश्व युद्ध के कारण 1930 से 1950 के बीच राष्ट्रमंडलीय खेल सम्भव नहीं हो सके।)

राष्ट्रमंडल खेल और भारत

एशियाई खेलों को मिनी ओलम्पिक कहा जाता है और राष्ट्रमंडलीय खेलों को ओलम्पिक का पूर्वाभ्यास।

यूं राष्ट्रमंडलीय खेलों का बीजारोपण आधुनिक ओलम्पिक खेलों से पांच वर्ष पूर्व हो चुका था। एशेल कूपर ने ब्रिटिश एम्पायर खेलों के आयोजन की योजना तैयार की थी लेकिन इसका आयोजन 35 वर्ष बाद संभव हो सका। इस योजना को सार्थक करने वाले आस्ट्रेलिया के थी रिचर्ड कुम्बम थे। रिचर्ड की गिनती आस्ट्रेलिया के प्रख्यात एथलीटों में की जाती थी।

ब्रिटिश एम्पायर का सदस्य होने के नाते भारत का राष्ट्रमंडलीय खेलों से बड़ा निकट का सम्बन्ध रहा है। भारत ने पहली बार 1934 के लंदन राष्ट्रमंडलीय खेलों में भाग लेना शुरू किया और पहले दाव में आर० वेरनुऐन्स, जे० खान, जी० भल्ला और एन० सिंह ने 4 × 110 गज की रिले-दौड़ में छठा स्थान प्राप्त कर राष्ट्रमंडलीय स्कोर-शीट पर अपना नाम खुदवा दिया।

1936 में सिडनी राष्ट्रमंडलीय खेलों में जानकी दास (जो बाद में फिल्म में काम करने लगे) ने साइकिल प्रतियोगिता में भाग लिया। 1954 के वेनकूवर खेलों मे भारत के तीन एथलीट खाली हाथ लौटने को मजबूर हो गए।

राष्ट्रमंडलीय खेलो का पहला स्वर्ण पदक जीतने का अद्वितीय गौरव भारत के 'फ्लाइंगसिख' मिल्खा सिंह को मिला जो 440 गज की दौड़ 46.6 से० में पूरी

कर प्रथम रहे। मिल्खा सिंह के साथ डी० सिंह, जे० सिंह और सिलवेरा की रिले टीम 4 × 440 गज की दौड़ (3 : 15.3 से०) में पांचवें स्थान पर पिछड़ गई।

कार्डिफ खेलों में एथलीटों के अलावा हमारे पहलवान हवलदार लीलाराम ने हैवीवेट का स्वर्ण पदक जीता जबकिएल० के० पाण्डे को वेल्टर में रजत पर संतोष करना पड़ा।

पहलवानों का सिक्का

किंग्स्टन खेलों में पहली बार भारतीय पहलवान दल ने अपना सिक्का जमाना शुरू कर दिया था। हमारे पहलवानों ने यहां तीन स्वर्ण सहित सात पदकों का अम्बार जुटा लिया। विशम्भर सिंह और भीम सिंह ने स्वर्ण पदक जीते जबकि श्याम राव साबले और रंधावा सिंह को रजत पर संतोष करना पड़ा।

राष्ट्रीय हाकी

1935 में न्यूजीलैंड दौरे के समय माउरी लोगो ने भारतीय टीम को एक शील्ड उपहार स्वरूप भेंट की थी। यह शील्ड बहुत सुन्दर ढंग से खुदी हुई थी। उस समय यह शील्ड पंजाब हाकी एसोसिएशन के पास थी लेकिन 1947 में देश के विभाजन के कारण यह शील्ड एसोसिएशन के सचिव श्री बशीर अली शेख से हासिल नही की जा सकी जो पाकिस्तान में रह गए थे।

लेकिन बाद में इस प्रतियोगिता के लिए हिन्दू और स्पोर्ट्स एण्ड पास्ट टाइम अखबारों के मालिकों ने सम्मिलित रूप से हिन्दू के भूतपूर्व सम्पादक श्रीरंगा स्वामी के नाम पर एक कप भेंट में दिया। वर्तमान में यही कप विजेता टीम को दिया जाता है। रंगास्वामी को यह सम्मान इसलिए दिया गया कि वह अपने समय के अच्छे खिलाड़ियों में से एक थे।

दूसरे नम्बर पर आने वाली टीम को मानवदार के नवाब द्वारा भेंट की गई ट्रॉफी दी जाती है।

1928 में भारतीय हाकी फडरेशन ने राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिता अन्तर-प्रान्तीय आधार पर दो साल में एक बार करने का निर्णय लिया और 1944 तक यह चैंपियनशिप इसी तरह होती रही पर अब यह प्रतिवर्ष सम्पन्न होती है।

आजकल यह चैंपियनशिप ओलम्पिक और अन्तर्राष्ट्रीय हाकी प्रतियोगिता के अनुभव के आधार पर राष्ट्रीय हाकी फेडरेशन में 1968 से चैंपियनशिप लीग व नाक आउट आधार पर की जाने लगी है।

वर्ष	स्थान	विजेता	उपविजेता
1928	कलकत्ता	संयुक्त प्रान्त	राजपूताना
1930	लाहौर	संयुक्त रेलवे	पंजाब
1932	कलकत्ता	पंजाब	बंगाल
1936	कलकत्ता	बंगाल	मानवदार
1938	कलकत्ता	बंगाल	भोपाल
1940	बंबई	बंबई	दिल्ली
1942	लाहौर	दिल्ली	पंजाब
1944	बबई	बंबई	ग्वालियर
1945	गोरखपुर	भोपाल	संयुक्त प्रान्त
1946	कलकत्ता	पंजाब	दिल्ली
1947	बंबई	पजाब	बबई
1948	बबई	भोपाल	बंबई
1949	दिल्ली	पंजाब	बंगाल
1950	भोपाल	पंजाब	भोपाल
1951	मद्रास	पंजाब	सेना
1952	कलकत्ता	बंगाल	पंजाब
1953	बंगलौर	सेना	पंजाब
1954	हैदराबाद	पंजाब	सेना
1955	मद्रास	सेना और मद्रास सं० वि०	
1956	जालधर	सेना	उ० प्र०
1957	बंबई	रेलवे	बंबई
1958	बबई	रेलवे	बंबई
1959	हैदराबाद	रेलवे	सेना
1960	कलकत्ता	सेना	उ० प्र०
1961	हैदराबाद	रेलवे	सेना
1962	भोपाल	पंजाब	भोपाल
1963	मद्रास	रेलवे	सेना
1964	दिल्ली	रेलवे	सेना
1965	बंबई	पंजाब	बंबई
1966	पूना	सेना और रेलवे सं० वि०	
1867	मदुरई	रेलवे और मद्रास सं० वि०	
1968	वेलिंगटन	रेलवे	मैसूर

1969	अर्नाकुलम	पंजाब	रेलवे
1970	जालंधर	पंजाब और रेलवे सं० वि०	
1971	बंगलौर	पंजाब	बंबई
1972	जालंधर	पंजाब	रेलवे
1973	बंबई	सेना	रेलवे
1974	पूना	रेलवे	तमिलनाडु
1975	भोपाल	रेलवे	भोपाल
1976	कटक	रेलवे	सेना
1977	मद्रास	रेलवे और एयरलाइंस सं० विजेता	
1978	मदुरई	एयर लाइंस	रेलवे
1979	हैदराबाद	एयर लाइंस	रेलवे
1980	कटक	रेलवे	एयर लाइंस
1981	जालंधर	पंजाब	रेलवे
1982	कलकत्ता	पंजाब	एयर लाइंस
1983	मेरठ	पंजाब	बंबई
1984	दिल्ली	एयर लाइंस	सेना
1985	पालघाट	सेना	पंजाब
1986	बंगलौर	एयर लाइंस	रेलवे
1987	पुणे	रेलवे	पंजाब
1988	दिल्ली, लखनऊ	पंजाब	इंडियन एयर लाइंस

रिचर्ड हैडली

एक घातक गेंदबाज और एक आक्रामक बल्लेबाज के रूप में हैडली ने जितनी सफलता पाई है उससे वो न्यूजीलैंड क्रिकेट का पर्याय बन गया है। हैडली के बिना न्यूजीलैंड की टीम बिल्कुल बेजान-सी लगती है। भारत दौरे से पहले तक उसने आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 22 टेस्ट मैचों में 123 विकेट, इंग्लैंड के विरुद्ध 10 टेस्ट मैचों में 81 विकेट, वेस्टइंडीज के विरुद्ध 10 टेस्ट मैचों में 51 विकेट, पाकिस्तान के विरुद्ध 10 टेस्ट मैचों में 46 विकेट, भारत के विरुद्ध 8 टेस्ट मैचों में 35 विकेट तथा श्रीलंका के विरुद्ध मात्र 6 टेस्ट मैचो में 37 विकेट हासिल किए हैं।

रिचर्ड हैडली उन महान खिलाड़ियों में से एक है जिन्हें प्रारम्भ में खास सफलता नहीं मिली लेकिन अपनी प्रतिभा और कड़ी मेहनत के बल पर आज उसने सफलताओं के सर्वोच्च शिखर को छू लिया है। आज 37 वर्ष की उम्र में भी वो निर्विवाद रूप से विश्व के सबसे अच्छे गेंदबाजों में से एक है। बढ़ती उम्र ने उसकी सफलताओं की राह में फिलहाल अभी तक कोई बाधा नहीं डाली है। इस

वर्ष हैडली को अधिक मैच खेलने का मौका नहीं मिल सका है। पिछले वर्ष उसने सात टेस्ट मैचों में 39 विकेट लेकर अब्दुल कादिर के बाद सबसे अधिक विकेट प्राप्त किए थे।

हाल ही में कम्प्यूटर द्वारा इंग्लैंड में की गई सर्वश्रेष्ठ गेंदबाजी की गणना मे रिचर्ड हैडली को मैल्कम मार्शल के बाद दूसरा स्थान प्राप्त हुआ है।

टेस्ट क्रिकेट में सबसे अधिक विकेट लेने का विश्व रिकार्ड बनाने के बाद हैडली का अगला लक्ष्य 400 विकेट पूरे करना है। इसके साथ ही वो 3000 रन और 300 विकेट का आश्चर्यजनक डबल बनाने के भी करीब है। टेस्ट क्रिकेट में अब तक कारनामा इयान बॉथम और कपिल देव ही दिखा सके हैं।

37 वर्षीय रिचर्ड हैडली आज भी पूरे दमखम और जोश के साथ टेस्ट क्रिकेट में जमा हुआ है। अगले दो तीन वर्ष यदि वो इसी तरह से सफलता हासिल करता रहा तो गेंदबाजी के क्षेत्र में कोई भी रिकार्ड रिचर्ड हैडली की पकड़ से दूर नहीं रह जाएगा।

रिची बेनो

यदि सर डान ब्रैडमैन को आस्ट्रेलियाई क्रिकेट में भीष्म पितामह माना जाता है तो रिची बेनो की गरिमा अर्जुन से कम नहीं आंकी जाती। एक कुशल बल्लेबाज, सर्वश्रेष्ठ स्पिनर और चुस्त फील्डर से कही बढ़कर उन्हें सफल कप्तान के रूप में माना जाता है। आस्ट्रेलिया में जिस क्रिकेटर को सर्वाधिक प्रसिद्धि, मान व सम्मान मिला वह भी रिची बेनो हैं। जिनका जन्म 6 अक्तूबर, 1930 को पेनरिथ (सिडनी) में हुआ था।

रिची को क्रिकेट प्रतिभा विरासत मे मिली थी। उनके पिता सिडनी की ओर से प्रथम श्रेणी क्रिकेट खेलते थे। रिची और उनके छोटे भाई जान ने अपने पिता से ही क्रिकेट के गुरुमन्त्र सीखे थे।

18 वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते रिची निर्विवाद रूप से आक्रामक बल्लेबाज के रूप मे ख्याति अर्जित कर चुके थे। तभी उन्हें शेफील्ड शील्ड में खेलने का मौका मिला। यद्यपि रिची बेनो को एक आलराण्डर के रूप में कामयाबी मिली लेकिन प्रारम्भ के वर्षों में वह केवल बल्लेबाज के रूप में ही प्रसिद्ध हुए थे। शेफील्ड शील्ड मे भी इन वर्षों में वह बल्लेबाज के रूप में ही स्थापित हुए।

1948 से 1964 तक न्यू साउथ वेल्स की ओर से खेलते हुए प्रथम श्रेणी क्रिकेट की शुरुआत की और 11,432 रन (23 शतक 935 विकेट) बनाए। 25 जनवरी 1952 को टेस्ट क्रिकेट में प्रवेश—वेस्टइंडीज के विरुद्ध सिडनी में।

टेस्ट रिकार्ड --63 टेस्ट, 97 पारी, 2201 रन, 3 शतक, 245 विकेट, 65 कैच।

1962 में ओ० बी० ई०, विजडन से अलंकृत।

रीमादत्त

सोलह वर्ष की उम्र में ही तैराकी के क्षेत्र में कमाल कर दिखाने वाली कुमारी रीमा दत्त ने आठ-नौ साल की उम्र से ही पानी से खिलवाड़ करना शुरू कर दिया था। उनका कहना है कि इस खेल में भाग लेने की प्रेरणा उन्हें अपने बड़े भाई से मिली। 13 वर्ष की उम्र में तो रीमादत्त ने जिला और राज्य की तैराकी प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। एक बार अमेरिकी प्रशिक्षक ने जब उसे तैरते देखा तो उसने तुरन्त राष्ट्रीय खेल कूद संस्थान से सिफारिश की कि इस तैराक को तो अमेरिकी प्रशिक्षक केन शेफर के पास भेज दिया जाना चाहिए। पटियाला के इस संस्थान ने अमेरिकी प्रशिक्षक की सिफारिश को मान लिया और रीमा दत्त को अमेरिका भेज दिया। शेफर से प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद जब रीमा दत्त भारत लौटी तो उन्होंने देश की जानी-मानी तैराकों को पीछे छोड़ दिया।

1964 में राष्ट्रीय तैराकी प्रतियोगिता जब जयपुर विश्वविद्यालय के तरणताल में हुई तो रीमा ने 100 मीटर की फ्री स्टाइल में चौथा स्थान प्राप्त किया।

रूप सिंह

भारतीय हाकी के मशहूर खिलाड़ी कैप्टन रूप सिंह हाकी के जादूगर मेजर ध्यानचन्द के छोटे भाई थे और उनका जन्म 9 सितम्बर, 1909 को जबलपुर में हुआ था। लास एंजेल्स (1932) में हुए ओलम्पिक खेलों में उन्होंने पहली बार ओलम्पिक खेलों में भाग लिया था और अमेरिका के विरुद्ध खेलते हुए भारत ने अमेरिका को 24-1 से हराया था। इनमें 12 गोल अकेले रूप सिंह ने ही किए जो कि अपने आप में एक रिकार्ड है। उसके बाद उन्होंने 1936 में हुए बर्लिन ओलम्पिक खेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया। उसके बाद 1944 में भी उन्हें भारतीय टीम में शामिल कर लिया गया था, लेकिन तब युद्ध के कारण खेलों का आयोजन नहीं हो सकता था।

1972 में म्यूनिख ओलम्पिक खेल शुरू होने से पहले भारतीय खेल-प्रेमियों को यह समाचार सुनने को मिला था कि म्यूनिख ओलम्पिक गांव में जिन 22 मार्गों का नामकरण खेल-जगत की महान् हस्तियों के नाम पर किया जाएगा उनमें एक मार्ग का नाम रूप सिंह मार्ग रखा जाएगा। बर्लिन ओलम्पिक में दोनों भाइयों (ध्यानचन्द और रूप सिंह) ने 11-11 गोल किए थे।

भारतीय हाकी के इस अद्भुत सितारे का देहान्त 10 दिसम्बर, 1977 को

हृदय गति रुक जाने से हो गया। उस समय कैप्टन रूप सिंह की आयु 68 वर्ष थी।

रूसी मोदी

जन्म : 11 नवम्बर, 1924। रूसी मोदी बम्बई ही नहीं भारत के महान बल्लेबाजों में से हैं। दायें हाथ के इस पारसी बल्लेबाज ने रणजी ट्राफी के 1944 के सत्र में प्रति पारी 201.6 रन की औसत से 1,008 रन बनाए, जो आज तक एक रिकार्ड है। रूसी मोदी ने रणजी ट्राफी में 81.70 रन प्रति पारी की औसत से कुल 2696 रन बनाए। रणजी ट्राफी में इतनी ऊंची औसत मर्चेन्ट के बाद मोदी की ही है। 1964 में इंग्लैंड यात्रा पर गए और 1106 रन बनाए। उनके टेस्ट आंकड़े इस प्रकार हैं—10 टेस्ट, 736 रन, 0 विकेट, 3 कैच।

रूसी सुर्ती

जन्म 25 मई, 1936। गुजरात का बायें हाथ का यह बेहतरीन आलराउंडर सभी देशों के खिलाफ टेस्ट खेला। पाकिस्तान के अलावा सभी देशों की यात्रा की। 1959 में राजस्थान की ओर से उत्तर प्रदेश के विरुद्ध रणजी ट्राफी मैच में एक पारी में 242 अविजित रन। रणजी ट्राफी में 2300 से अधिक रन, उत्कृष्ट फील्डर। बायें हाथ से मीडियम पेस और धीमी गेंदबाजी करने में सक्षम। आस्ट्रेलिया में क्वीन्सलैंड की ओर से शेफील्ड शील्ड प्रतियोगिता में खेला। उनके टेस्ट आंकड़े इस प्रकार हैं—26 टेस्ट, 1263 रन, 42 विकेट, 28 कैच।

रैंडी मैटसन

अमेरिका के रैंडी मैटसन दुनिया के ऐसे खिलाड़ी हैं जिन्हें 16 पौंड वजन का गोला 70 फुट से ज्यादा दूर फेंकने का गौरव प्राप्त है। रैंडी मैटसन ने, जिनका कद 6 फुट $6\frac{1}{2}$ इंच, वजन 263 पौंड है, 8 मई, 1965 को 21 वर्ष की उम्र में ही 71 फुट $5\frac{1}{2}$ इंच का गोला फेंककर इस प्रतियोगिता में नया विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। कुछ समय पहले तक किसी के ख्याल या ख्वाब में भी यह बात नहीं थी कि कोई व्यक्ति 16 पौंड वजन के गोले को 70 फुट से भी ज्यादा दूर तक फेंक सकता है।

खेलकूद के कीर्तिमानों और आंकड़ों की पोथियां लिखने वाले पंडित अक्सर कहा करते हैं कि आखिर इन्सान की शक्ति की कोई सीमा है। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाएगा त्यों-त्यों नये विश्व कीर्तिमान स्थापित करने का सिलसिला कम होता जाएगा। मगर मैटसन ने इन आंकड़ेबाजों के सारे सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया।

रोवर्स कप

बंबई में होने वाली रोवर्स कप देश की दूसरी प्राचीन तथा प्रमुख फुटबाल प्रतियोगिता है। 1891 में कुछ अंग्रेज फुटबाल प्रेमियों ने मिलकर रोवर्स क्लब का गठन किया और इसी से रोवर्स कप प्रतियोगिता का आरंभ हुआ। आज यह भारत की प्रमुख फुटबाल प्रतियोगिता बन गयी है।

आरंभ में इस प्रतियोगिता पर ब्रिटिश सेना तथा रेजीमेंटल टीम का ही वर्चस्व रहा है। बाद में इस प्रतियोगिता में सेना के अतिरिक्त देश की अन्य टीमें भाग लेने लगीं थी। बंगलौर मुस्लिम पहली भारतीय टीम थी जिसने 1937-38 में दोनों वर्ष लगातार रोवर्स कप पर कब्जा किया। आंध्र प्रदेश पुलिस तथा मोहन बागान की टीम इस कप को 9-9 बार जीत चुकी है और 9-9 बार उपविजेता भी रही हैं। मुहम्मडन स्पोर्टिंग की टीम ने इस कप को सात बार जीता है।

रोहन कन्हाई

कलकत्ता का खूबसूरत ईडन गार्डन। 1958 वर्ष की अंतिम सुबह। सर्द मौसम के बीच सूरज अपनी गरमाहट बिखेर रहा था। भारत-वेस्ट इंडीज शृंखला का तीसरा टेस्ट प्रारंभ होने जा रहा था। टॉस लिये भारत के कप्तान गुलाम अहमद और इंडीज के कप्तान एलेक्जेंडर मैदान में पहुंचे। भाग्य ने वेस्ट इंडीज का साथ दिया। हाल्ट तथा हंट ने वेस्ट इंडीज की पारी की शुरुआत की। लेकिन दोनों ही बल्लेबाज क्रमशः 12 और 72 के कुल स्कोर पर पेवेलियन लौट चुके थे। वेस्ट इंडीज की पारी संकट में पड़ गयी। लेकिन ऐसे समय में वेस्ट इंडीज के युवा बल्लेबाज रोहन कन्हाई (जन्म: 26 दिसंबर, 1935) ने बल्ला संभाला और ऐसा संभाला कि 256 का विशाल व्यक्तिगत स्कोर बनने के बाद ही पेवेलियन में उसकी वापसी हुई। यह कीर्तिमान आज भी यानी 31 वर्ष बाद भी अपराजेय बना हुआ है।

कन्हाई सबसे पहले 1954-55 में ब्रिटिश गुयाना की तरफ से खेलकर प्रकाश में आये थे। हैरानी की बात यह है कि उस समय कन्हाई को सिद्धहस्त विकेट कीपर माना जाता था। 1957 में जब उन्होंने इंग्लैंड के खिलाफ एजबस्टन में अपना टेस्ट जीवन प्रारंभ किया, उस समय भी उन्होंने विकेट कीपर और प्रारंभिक बल्लेबाज की ही भूमिका निभायी थी। पहले टेस्ट की पहली पारी में उन्होंने खूबसूरत 42 रन बनाये और फिर विकेट कीपिंग छोड़कर अपना सारा ध्यान बल्लेबाजी की ओर ही केंद्रित कर लिया।

रोहन कन्हाई का खेलने का अंदाज बड़ा ही प्राकृतिक रहा। कद छोटा होने के बावजूद उन्होंने कभी भी आक्रामक खेल दिखाने में परहेज नहीं किया। उन्हें

बाएं हाथ का संपूर्ण बल्लेबाज माना जाता था। क्रिकेट में 'आफ' दिशा में पाइंट के ऊपर छक्का लगाना अत्यंत ही दुष्कर कार्य माना जाता है लेकिन कन्हाई ने इस नयनाभिराम शॉट का कई बार नजारा पेश किया। 'लेग' दिशा पर भी उनके द्वारा पूरी शक्ति से किये गये स्वीप को कोई भी क्षेत्ररक्षक रोक पाने का साहस नहीं जुटा पाता था।

1957 में इंग्लैंड का पहला दौरा करने के बाद उन्होंने 1963 में दूसरी बार क्रिकेट की जन्म भूमि का भ्रमण किया। इस बार उन्होंने कुल 1149 और टेस्ट मैचों मे 55.22 की औसत से 497 रन जोड़े। 1966 में उन्होंने ओवल टेस्ट में शतक जड़ा, किंतु दुर्भाग्य से वेस्ट इंडीज इस शृंखला का एकमात्र टेस्ट हारा। 1973 मे कप्तान के रूप में उन्होने इंग्लैंड का एक और दौरा किया। इस बार उन्होने 50.23 की औसत से 653 रन ठोके। इसमें लार्ड्स टेस्ट में बनाये गये 147 रन भी शामिल है।

भारत में वह पहली बार 1958-59 मे आये, पांचों टेस्ट खेलते हुए उन्होंने 67.25 की औसत से 538 रन बनाये थे। इसी शृंखला में उन्होंने कलकत्ता में 256 रन की वह मैराथन पारी खेली जो आज भी रिकार्ड बना हुआ है।

इसके फौरन बाद कन्हाई ने पाकिस्तान का भ्रमण कर वहां भी तहलका मचा दिया। लाहौर टेस्ट मे उन्होने ताबड़तोड़ _17 रन बनाये। उन्हीं के इस शानदार प्रदर्शन की बदौलत पाकिस्तान पहली बार अपनी ही धरती पर वेस्ट इंडीज के खिलाफ शृंखला में पराजित हुआ।

आस्ट्रेलिया में उन्होने 1960-61 के दौरे में ऐडीलेड टेस्ट में 117 और 115 रन बनाये और वह वेस्ट इंडीज के पहले ऐसे खिलाड़ी बने जिन्होंने एक ही टेस्ट की दोनो पारियों मे शतक जमाया हो। पूरी शृंखला में उन्होने 50.30 की औसत से खूबसूरत 503 रन बनाकर शानदार फार्म का परिचय दिया। इसी वर्ष अपने ही देश में भारत के खिलाफ उन्होने दो शानदार शतक बनाकर 70.71 की औसत से 495 रन बनाये थे। 1964-65 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ उन्होंने बेहतरीन पारियां खेली। इस शृंखला के बाद यह महसूस किया जाने लगा कि वह अपनी फार्म खोने लगे हैं। उन्होने 1966-67 के भारत दौरे के समय केवल 463 रन जोड़े किंतु शीघ्र ही उन्होने अपनी खोई फार्म पुनः प्राप्त कर ली।

1967-68 मे अपनी शानदार पारियों से कन्हाई एक बार फिर वेस्ट इंडीज क्रिकेट के विश्वसनीय बल्लेबाज बन गए। उन्होंने तब इंग्लैंड के खिलाफ 59.44 की औसत से 535 रन एकत्र किये जिनमें पोर्ट आफ स्पेन की 143 रन और जार्ज टाउन की 150 रन की पारियां शामिल हैं।

1972-73 में कन्हाई को सोबर्स के उत्तराधिकारी के रूप में वेस्ट इंडीज का कप्तान बना दिया गया। कुछ लोगों ने इसका विरोध किया लेकिन कन्हाई की

प्रतिभा पर कोई भी उंगली नहीं उठा सका।

कप्तान के रूप में कन्हाई को अधिक सफलता नहीं मिली। 1972-73 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ उन्होंने अपने बल्ले के जोर से तो प्रतिपक्षी गेंदबाजों की नाक में दम किया लेकिन शृंखला में वेस्ट इंडीज को पराजय का वरण करना पड़ा।

1973 में इंग्लैंड के खिलाफ उन्होंने फिर 653 रन बनाये। लेकिन गृह-शृंखला में इंग्लैंड के ही विरुद्ध उनका प्रदर्शन सबसे खराब रहा। तदुपरांत उन्होंने टेस्ट क्रिकेट को अलविदा कह दिया।

प्रथम श्रेणी क्रिकेट में कन्हाई ने गुयाना, त्रिनिडाड, वारविकशायर, पश्चिम आस्ट्रेलिया और तस्मानिया का प्रतिनिधित्व करते हुए 28639 रन बनाये, जिनमें 83 शतक भी शामिल हैं। वह उत्कृष्ट क्षेत्ररक्षण भी करते थे। टेस्ट मैचों में उन्होंने 50 और प्रथम श्रेणी क्रिकेट में 315 कैच पकड़े।

कन्हाई को कैरेबियन के सफलतम खिलाड़ियों में से एक माना जाता है। उन्होंने लंकाशायर (इंग्लैंड) की ही एक लड़की से विवाह रचाया। आजकल वह युवा क्रिकेटरों को प्रशिक्षण देने का काम भी करते हैं।

टेस्ट रिकार्ड : 79 टेस्ट, 137 पारी, 6227 रन, 256 उच्चतम, 47.53 औसत, 15 शतक, 28 अर्धशतक, 50 कैच।

ल

लांस गिब्स

गिब्स (जन्म : 29 सितंबर, 1934) को 1957-58 की शृंखला में पाकिस्तान के खिलाफ दूसरे टेस्ट में पहली बार मौका मिला था। पहला टेस्ट मैच अनिर्णीत समाप्त हो गया था लेकिन उस टेस्ट की दूसरी पारी में, जब पाकिस्तान 8 विकेट पर 657 रन बनाने में सफल हो गया तो वेस्ट इंडीज की गेंदबाजी बड़ी असहाय नजर आने लगी थी। फलस्वरूप गिब्स को पहला मौका मिला।

गिब्स का नाम 1960-61 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ सिडनी टेस्ट से चमका, इस टेस्ट की पहली पारी में उन्होने चार गेंदों में आस्ट्रेलिया के तीन खिलाड़ियों मैके, मार्टिन और ग्राउट को पैवेलियन भेज दिया था। अगले (ऐडीलेड) टेस्ट में

तो गिब्स एक कदम और आगे निकल गये। उन्होंने तीन गेंदों पर मैके, ग्राउट और मिसन का विकेट लेकर हैट्रिक का विलक्षण गौरव हासिल कर लिया था। सिडनी टेस्ट के बाद वह टेस्ट इंडीज की ओर से लगातार 42 टेस्ट मैचों में खेले।

अपनी पहली ही शृंखला में पाकिस्तान के खिलाफ गिब्स ने 23.05 की औसत से 18 विकेट लेकर गेंदबाजी तालिका में पहला स्थान प्राप्त कर लिया था। 1960-61 में आस्ट्रेलिया के खिलाफ उन्होंने 20.78 की औसत से कुल 19 विकेट हासिल कीं और पूरी शृंखला में आस्ट्रेलियाई बल्लेबाजों को भयभीत रखा। 1961-62 में भारत ने वेस्ट इंडीज का दौरा किया था। उस दौरे में उन्होंने 24 विकेट लेकर स्पिन गेंदबाजी में माहिर कहे जाने वाले बल्लेबाजों को भी झकझोर कर रख दिया था।

टेस्ट प्रदर्शन : 79 टेस्ट, 488 रन, 25 उच्चतम, 6.97 औसत, 52 कैच, 309 विकेट, 29.09 औसत।

लायड (क्लाइव)

31 अगस्त, 1944 को जार्ज टाउन गुयाना (वेस्ट इंडीज) में एक ऐसी शख्सियत ने जन्म लिया जो बाद में विश्व क्रिकेट का सबसे उज्जवल सितारा बनकर चमका। जी हां, यह लड़का था क्लाइव ह्यूबर्ट लायड जो इंडीज के लिए लगभग 10 वर्षों तक 74 रिकार्ड टेस्टों में शानदार कप्तानी कर टेस्ट क्रिकेट को अलविदा कह चुका है।

हालांकि क्लाइव लायड ने जनवरी 1985 में टेस्ट क्रिकेट से संन्यास की घोषणा की लेकिन इससे पहले तक वह क्रिकेट में कई ऐसे आयाम स्थापित कर चुका था जो हमेशा-हमेशा के लिए उसकी यशोगाथा अक्षुण्ण रखेंगे। न केवल लायड ने सर्वाधिक टेस्टों में कप्तानी की, बल्कि अपने प्रेरक नेतृत्व और सहज मानवीय व्यवहार से भी वह दर्शकों और खिलाड़ियों का चहेता बना।

वेस्ट इंडीज के अन्य बच्चों की ही तरह लायड भी बचपन से क्रिकेट के प्रति दीवाना था। हां इसमें उसके 10 वर्ष बड़े मौसेरे भाई लान्स गिब्स ने भी काफी मदद की। उसके घर के पास ही गुयाना की सबसे मजबूत क्रिकेट टीम डेमेरारा क्रिकेट क्लब था। वहीं नेट पर अन्य बच्चों के साथ लायड भी मैच देखता और फील्डिंग करता। स्कूल में वह क्रिकेट, एथलेटिक और फुटबाल का खिलाड़ी था। 14 वर्ष की आयु में लायड को अपने स्कूल का नेतृत्व करने का मौका मिला।

लेकिन उसी वर्ष लायड के पिता, जो एक डाक्टर के सहायक थे, उनका निधन हो गया। दो भाइयों और चार बहनों में सबसे बड़े लायड को घर का खर्च चलाने के लिए पढ़ाई छोड़कर जार्ज टाउन अस्पताल में 16 डालर महीने पर

क्लर्क की नौकरी करनी पड़ी। हां, यहां नौकरी के साथ-साथ क्रिकेट का अभ्यास भी जारी रखने की सुविधा थी। 15 वर्ष में ही वह डेमेरारा क्लब नं० 2 के सदस्य बने। उसी वर्ष वह क्लब की नं० एक एकादश में भी आ गये।

प्रसिद्ध बोर्डा मैदान पर लायड ने अपना पहला मैच खेला और 12 रन पर ही आउट हो गया। लेकिन कप्तान फ्रेड विल्स ने उसका हौंसला बनाए रखा। अपनी आत्मकथा में लायड खुद कहते हैं "फ्रेड विल्स बहुत बड़े दिल का आदमी था वह मैच से पहले घोषणा करता था कि शतक बनाने पर 20 डालर दूंगा। अगर मैं 90 के आस-पास भी आउट होऊं तो वह मुझे 20 डालर देता था और शतक बनाने पर 40 डालर।"

अपनी आयु के 19 वर्ष तक लायड क्लब और राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो चुका था। टेस्ट टीम के लिए अब उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती थी। अंततः 13 दिसंबर, 1966 को बम्बई में भारत के विरुद्ध वह टेस्ट खेलने मैदान में उतरा। उसके आत्मकथा लेखक ट्रेवर मैकडोनल्ड ने सही ही लिखा है कि 'उस दिन टेस्ट क्रिकेट में एक नये अध्याय की शुरूआत हुई'। लगभग 7 वर्षों तक वेस्ट इंडीज के लिए लगभग हर देश के विरुद्ध अच्छा प्रदर्शन करने के बाद लायड को उनके देश का नेतृत्व मिला।

यह इत्तफाक ही रहा कि भारत के ही विरुद्ध लायड को कप्तानी की भी शुरुआत करनी पड़ी। भारत के विरुद्ध पहली शृंखला 3-2 से जीतने के बाद सिर्फ दो बार ही ऐसे मौके आये जब उसकी कप्तानी पर कोई आंच आई हो। एक बार 1975-76 में आस्ट्रेलिया से 5-1 से शृंखला हारने के बाद और दोबारा 1976 में भारत से एक टेस्ट हारने के बाद।

वह अपने लंबे कप्तानी कैरियर में सिर्फ दो बार शृंखला हारा। एक बार 1975-76 में आस्ट्रेलिया से और फिर 1980 में न्यूजीलैंड से 0-1 से। इसके अलावा वह 1983 विश्व कप जीतने में भी असफल रहा और अपनी अंतिम शृंखला में बेंसन एंड हैजेस सेमी-फाइनल में भी पाकिस्तान से इंडीज को हारना पड़ा।

लेकिन इसके पहले अपनी कप्तानी में खेले 74 टेस्टों में लायड ने 36 में वेस्ट इंडीज को जिताया, सिर्फ 12 हारा और 26 ड्रा किये। इसमें 1984 और 85 की शुरुआत के बीच लगातार 11 टेस्टों में जीत का रिकार्ड भी शामिल है। इसके अलावा उसने 1975-1979 में प्रूडेंशियल विश्व कप में भी अपनी टीम को चैंपियन बनाया।

हां, जनवरी 1985 में अपने अंतिम सिडनी टेस्ट की अंतिम पारी में वह 72 रन बनाने के बावजूद अपने टीम की हार को टाल न सका। इसके बाद बेंसन एंड हैजेस शृंखला में भी सेमी-फाइनल में वह पाकिस्तान के विरुद्ध अपनी टीम

को जिता न सका। इस तरह इस महान् खिलाड़ी के खेल जीवन का हार के रूप मे अंत हुआ।

बावजूद इसके लायड का करिश्मा हमेशा क्रिकेट जगत में उसका नाम रोशन रखेंगे। कुल 110 टेस्टों की 175 पारियों में 14 वार नाट आउट रहते हुए 242 उच्चतम स्कोर की मदद से (औसत 46.67) 7515 रन जिसमें कुल 19 शतक हैं, लायड की महानता की कहानी कहते रहेंगे।

इसके साथ ही लायड ने अपने टीम मे कई खिलाड़ियों को तैयार भी किया और उन्हें सही मार्गदर्शन देकर आगे बढाया था। ऐसे ही खिलाड़ी विवियन अलेक्जेंडर इसाक रिचर्ड्स इस समय उनके उत्तराधिकारी कप्तान बनाये गये हैं। विश्व के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज के रूप में प्रतिष्ठित रिचर्ड्स को स्वाभाविक प्रतिभा संपन्न एक एक पूरी टीम भी सहयोगियों के रूप मे मिली है।

इस प्रतिभा संपन्न टीम को लायड को अपने व्यक्तिगत उदाहरण से नेतृत्व दिया था। रिचर्ड्स नेतृत्व के मामले में कितने सफल रहते है यह तो वक्त बताएगा पर अभी उनकी ऐसी कोई कड़ी परीक्षा भी नही हुई है। रिचर्ड्स के नेतृत्व में वेस्ट इंडीज को अभी तक सिर्फ न्यूजीलेंड के विरुद्ध एक टेस्ट शृंखला और शारजाह में रायमेंस कप तथा पाकिस्तान में एक दिवसीय शृंखला खेलने का मौका मिला है।

न्यूजीलेंड के विरुद्ध 2-0 से जीतने के बाद रिचर्ड्स की टीम शारजाह में भी चैंपियन रही है। पाकिस्तान के विरुद्ध 5 मैचों की एकदिवसीय शृंखला में भी वह जीत चुकी है। लेकिन कप्तान की हैसियत से रिचर्ड्स के गुण दोषों का पता बाद में चलेगा। वह लायड से खराब कप्तान भी हो सकते हैं—अच्छे कप्तान भी हो सकते हैं पर लायड जैसे कप्तान नहीं हो सकते। लायड जैसा कप्तान सिर्फ और सिर्फ लायड ही हो सकते थे, जिन्होने क्रिकेट में अपनी शानदार स्वर्णिम पारी का अंत कर संन्यास ले लिया। निःसंदेह सारी दुनिया के क्रिकेट प्रेमी उन्हें याद रखेंगे।

लाल सिंह

अगर कोई क्रिकेटर दूसरे देश में रहता हो लेकिन उसे अपनी टीम में शामिल करने के लिये कोई देश विशेप रूप से आग्रह करे, यही नहीं, टीम में उसके प्रवेश के लिये अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट कान्फ्रेंस से विशेप अनुमति भी ली जाये तो जाहिर है कि वह खिलाड़ी कोई विलक्षण प्रतिभा का मालिक ही होगा।

आप जानते हैं वह खिलाड़ी कौन थे ? लाल सिंह जिनका जन्म 12 दिसबर, 1909 में हुआ था। लाल सिंह भारत की उस पहली टीम में थे जो 1932 मे पहला टेस्ट मैच खेलने इंग्लैंड गयी थी। उस समय वह सिंगापुर में थे। उन्हें

भारतीय टीम में शामिल करने के लिये अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट कांफ्रेंस से अनुमति ली गयी तब कहीं जाकर वह टीम में शामिल हो सके।

जन्म : लाल सिंह के जन्म स्थान के बारे में कुछ विवाद है। कुछ लोग कहते हैं कि उनका जन्म पंजाब में हुआ था लेकिन मलेशिया के एक पत्र का दावा है कि उनका जन्म कुआलालुंपुर के निकट एक स्थान रावांग में हुआ था। 'विजडन बुक आफ टेस्ट क्रिकेट' ने भी इसे सही बताया है।

शुरुआत : लाल सिंह का क्रिकेट के प्रति प्रेम 14 वर्ष की उम्र में जागृत हुआ। तब वह मलेशिया में ही विक्टोरिया संस्थान मे पढ़ रहे थे। दो वर्ष में ही वह मलाया की तरफ से खेलने के लिये चुन लिये गये। उन्हें क्रिकेट खेलते हुए देखकर एक प्रशिक्षक ने उनकी प्रतिभा देखते हुए कहा था, "एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब तुम क्रिकेट के मक्का लार्ड्स में खेलने का गौरव हासिल करोगे।" उस प्रशिक्षक की यह बात अक्षरशः सही साबित हुई, जब 1932 में उन्हें भारतीय टीम में शामिल करने की घोषणा की गयी।

एकमात्र टेस्ट : लाल सिंह ने इंग्लैंड में भारत की ओर से 1932 में एकमात्र टेस्ट में भाग लिया। यद्यपि इस टेस्ट में भारत 158 रन से हार गया था लेकिन इस मैच के विवरण में विजडन लाल सिंह का नाम अब भी दर्ज है जिससे पता चलता है कि वह कितने धाकड़ तथा आक्रमक बल्लेबाज थे। इंग्लैंड ने टॉस जीतकर पहले खेलते हुए 259 रन बनाये थे। भारतीय पारी 188 रन पर समाप्त हुई और भारत 70 रन से पिछड़ गया। इंग्लैंड ने दूसरी पारी 8 विकेट पर 275 रन बनाकर घोषित कर दी। इस प्रकार भारत को 235 रन बनाकर मैच जीतने की चुनौती मिली। परंतु सात विकेट 108 रन पर ही निकल गये। अब लाल सिंह और अमरसिंह की जोड़ी मैदान में थी। लगता था भारत की पराजय बस चंद क्षणों मे ही सामने आ जायेगी। परंतु अमरसिंह के साथ लाल सिंह ने जिस संघर्ष पूर्ण क्रिकेट का नजारा पेश किया उसे देखकर अंग्रेज समीक्षक भी उनकी सराहना किये बिना न रह सके। इन दोनों बल्लेबाजों ने केवल 40 मिनट में 74 रन बनाकर इंग्लैंड की जीत को उतना सरल नही रहने दिया। जितना वे सोचते थे। भारत 158 रन से टेस्ट हार गया।

सर्वश्रेष्ठ फील्डर : 1932 में इंग्लैंड दौरे से पूर्व 'डेली टेलीग्राफ' के ई० डब्लू० स्टाटन ने भारतीय टीम के बारे में यह पूछताछ की कि सर्वश्रेष्ठ फील्डर कौन है? लाल सिंह ने निःसकोच रूप से कहा "मैं" और वास्तव में उन्होंने यह सिद्ध भी किया।

भारत के लोगों को शायद मालूम नही कि मलेशिया में भी क्रिकेट खेली जाती है लेकिन लाल सिंह ने भारत मे भी काफी नाम कमाया। पंजाब की तरफ से उन्होंने रणजी ट्रॉफी में भी भाग लिया। दिल्ली में उनके 98 रन अब भी दिल्ली वालों

को याद है। पटियाला में भी उन्होंने तेजतर्रार 49 रन बनाये। एक फील्डर ने उनके शाट को रोकने की कोशिश की तो वह इतनी बुरी तरह से गिरा कि उसकी आंतें ही कट गयीं।

चयन और विवाद : लाल सिंह को 1936 में इंग्लैंड वाली भारतीय टीम में पुन चुन लिया गया था लेकिन कुछ विवादों के कारण वह इंग्लैंड नहीं जा सके। दरअसल भारतीय टीम में कुछ सदस्य लाल सिंह को नापसंद करते थे। कप्तान महाराज कुमार विजयनगरम भी नहीं चाहते थे कि लाल सिंह टीम में रहे। इसी विवाद को देखते हुए वह टीम से हट गये। हालांकि इनका परिवार चाहता था कि मलाया वापस चले आयें लेकिन वह पेरिस चले गये और द्वितीय विश्व युद्ध तक वहीं अपना व्यापार चलाते रहे। विश्व युद्ध के दौरान सभी बैंक आदि बंद हो गये थे। लाल सिंह के पास वापस लौटने का किराया तक न था। वह ब्रिटिश दूतावास गये जहां सभी अधिकारियों ने उन्हें क्रिकेट खिलाड़ी होने के नाते पहचान लिया तथा उनकी वापसी का इंतजाम किया।

क्रिकेट से अगाध प्रेम : क्रिकेट का मैदान छूट जाने पर भी लाल सिंह क्रिकेट से दूर नहीं रह सके। उन्हें जब भी मौका मिलता वह मैदान में जा डटते। विश्व युद्ध के बाद वह कुछ बरस के लिये सिंगापुर व सुमात्रा चले गये लेकिन फिर कुआलालंपुर आ गये जहां उन्हें नेशनल विद्युत बोर्ड में सुपरवाइजर की नौकरी मिल गयी। 1969 में वह इस पद से रिटायर हुए। अपने जीवन की एक घटना वह बड़े ही उत्साह से सुनाया करते थे। 69 वर्ष की उम्र में एक स्थानीय टीम उन्हें हांगकांग में ले गयी। हैरानी की बात यह है कि उन्हें प्रारंभिक बल्लेबाज के रूप में ले जाया गया। पहले ही ओवर में उन्होंने भन्नाटेदार शाट्स द्वारा तीन चौके लगाये। यह देखते हुए कि प्रतिपक्षी सेना को टीम के गेंदबाज बहुत साधारण है और उन्हें आउट नहीं कर पायेंगे, वह स्वयं ही वापस लौट आये और बल्ला अगले बल्लेबाज के हाथ में थमा दिया।

क्रिकेट की लौ : लाल सिंह उन क्रिकेटरों में रहे जिन्होंने अंतिम समय तक मलेशिया में क्रिकेट की लौ जगाये रखी। अपने अंतिम दिनों वह वहां से प्रसिद्ध रायल सेलांगोर क्लब के ग्राउंड्समैन थे।

लाल सिंह क्रिकेट की बगिया के खूबसूरत लाल गुलाब थे। 1932 के इंग्लैंड दौरे में एक अंग्रेज युवती ने उन्हें यह विशेषण दिया था। बेशक, वह इसके अधिकारी थे।

उनकी मृत्यु 77 वर्ष की आयु में जनवरी 1986 में (सिंगापुर) हुई।

टेस्ट रिकार्ड : एक टेस्ट, 2 पारी, 44 रन, 29 उच्चतम, 20.00 औसत, एक कैच।

रही थी; केरलवासी कुमारी एम० डी० वालसम्मा। उन्हें आठवीं लेन में रखा गया था। अचानक बिजली की गति से वे आगे निकलीं और स्कोर बोर्ड पर नाम उभरा—एम० डी० वालसम्मा। भारत प्रथम, उसे स्वर्ण पदक। 58.47 सेकंड में यह दूरी तय करके उन्होने एक कीर्तिमान स्थापित किया।

सुखद अनुभूति थी कि, यह स्वर्ण पदक भारत द्वारा नवें एशियाई खेलों में अर्जित पहला स्वर्ण पदक साबित हुआ और भारत की किसी महिला एथलीट द्वारा तीसरा सम्मानजनक स्वर्ण पदक था यह। 4 × 400 मीटर की रिले दौड़ में भी वालसम्मा एक सदस्य थी।

इस उपलब्धि को सरकार ने कम नहीं आंका। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया। केरल प्रदेश सरकार ने कुमारी मानामर देवासिया वालसम्मा को तुरंत एक लाख रुपए नगद देने का एलान किया। तमिलनाडु खेल पत्रकार संघ ने उन्हें वर्ष की सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी घोषित किया।

वालेरी ब्रूमेल

एक मील के फासले की दौड़ के इतिहास में जो स्थान रॉजर बैनिस्टर का है या लम्बी कूद के इतिहास में जो स्थान रॉल्फ बोस्टन का है वही स्थान ऊंची कूद के इतिहास मे सोवियत संघ के चैम्पियन वालेरी ब्रूमेल का है। पांचवें दशक के पूर्वार्द्ध तक यह माना जाता था कि जिस प्रकार एक मील की दौड़ को चार मिनट से कम समय में पूरा करना इन्सान के बस की बात नही है वैसे ही 7 फुट से ऊंचा कूद सकना भी इन्सान के लिए एक प्रकार का असम्भव काम है। इसके लिए मानव को अतिमानव (सुपरमैन) होना बहुत जरूरी है। लेकिन 1956 में अमेरिका के चार्ली डूमस ने 2.15 मीटर ऊंचा कूदकर असंभव को सम्भव बनाकर दिखा दिया। ऊंची कूद में तब तक अमेरिका के ही खिलाड़ी नये रिकार्ड स्थापित करते आ रहे थे। 1912 से लेकर 1956 तक ऊंची कूद के कीर्तिमानों के विकास क्रम को अमेरिकी खिलाड़ियों ने ही आगे बढ़ाया, लेकिन सोवियत संघ के वालेरी ब्रूमेल ने 1963 में ऊंची कूद का एक नया विश्व कीर्तिमान 7 फुट 3.75 इंच (2.28 मीटर) स्थापित किया और ऊंची कूद के क्षेत्र में अमेरिका का 40 वर्ष पुराना प्रभुत्व समाप्त हो गया। इससे अमेरिका की परेशानी और सोवियत संघ की प्रसन्नता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

ब्रूमेल का जन्म 14 अप्रैल, 1942 को साइबेरिया के एक छोटे से गांव में हुआ। ऊंची कूद के बारे में लोगों की यह भी धारणा थी कि खिलाड़ी अपने कद से ज्यादा ऊंचा नही कूद सकता, लेकिन उन्होंने तो अपने कद से भी 16.875 इंच ज्यादा ऊंची कूद लगाई। उनका कद 6 फुट .875 इंच और वज़न 170 पौंड है। बचपन में ही उन्हे ऊंची कूद का काफी शौक था। 11 वर्ष की उम्र मे ही उन्होंने

लालशाह बोखारी

लालशाह बोखारी ने 1932 में लास एंजेल्स में हुए ओलम्पिक खेलों में भारतीय हाकी टीम का नेतृत्व किया था। लाल शाह बोखारी अपने ज़माने में भारत के एक विशिष्ट खिलाड़ी माने जाते थे। जिस समय वह लाहौर में गवर्नमेंट कालेज के छात्र थे उस समय वह लम्बी कूद के चोटी के खिलाड़ी माने जाते थे। फिर उन्होंने लम्बी दौड़, क्रास कंट्री रेस और मेराथन दौड़ों में हिस्सा लेना शुरू किया। एथलीट के रूप में काफी ख्याति अर्जित करने के बाद उन्होंने हाकी के खेल में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इतिहास विषय में एम० ए० करने के बाद उनकी नियुक्ति उसी कालेज में हो गई। पहले पहल वह पंजाब की टीम की ओर से हाकी खेलने लगे। 1932 में उन्हें लास एंजेल्स में होने वाले ओलम्पिक खेलों में भाग लेने वाली भारतीय हाकी टीम के नेतृत्व का भार सौंपा गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद विदेशी मामलों के विभाग में उनकी एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी के रूप में नियुक्ति हुई और राजदूत के रूप में उन्हें जेदाह भी भेजा गया। भारत विभाजन के बाद वह पाकिस्तान चले गए। और श्रीलंका में वह पाकिस्तान के उच्चायुक्त नियुक्त हुए जहां 1958 में उनकी मृत्यु हो गई।

लेव याशीन

लेव याशीन रूस के महान फुटबाल, खिलाड़ी तथा उच्च कोटि के गोल रक्षक थे। 1956 में उनके उत्कृष्ट गोल रक्षक से ओलम्पिक फुटबाल टूर्नामेंट में रूस की टीम चैंपियन रही। इसके उपरांत इनके उत्तम खेल देखने का अवसर 1958, 62 तथा 66 के विश्व कप प्रतियोगिताओं में मिला। जिसमें याशिन का प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ रहा।

व

वालसम्मा

सत्ताईस नवंबर 1982 का दिन, नवें एशियाई खेलकूद दिल्ली में जवाहर लाल नेहरू स्टेडियम। समय लगभग दोपहर बाद का। चार सौ मीटर महिला बाधा दौड़ में भारत का प्रतिनिधित्व करने वालों में एक सांवली-सी लड़की भी थी

गया था। अचानक विजली की गति से वे आगे निकली और स्कोर वोर्ड पर नाम उभरा—एम० डी० वालसम्मा। भारत प्रथम, उसे स्वर्ण पदक। 58.47 सेकंड में यह दूरी तय करके उन्होंने एक कीर्तिमान स्थापित किया।

सुखद अनुभूति थी कि, यह स्वर्ण पदक भारत द्वारा नवें एशियाई खेलों में अर्जित पहला स्वर्ण पदक साबित हुआ और भारत की किसी महिला एथलीट द्वारा तीसरा सम्मानजनक स्वर्ण पदक था यह। 4 × 400 मीटर की रिले दौड़ में भी वालसम्मा एक सदस्य थी।

इस उपलब्धि को सरकार ने कम नहीं आंका। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया। केरल प्रदेश सरकार ने कुमारी मानामर देवासिया वालसम्मा को तुरंत एक लाख रुपए नगद देने का एलान किया। तमिलनाडु खेल पत्रकार संघ ने उन्हें वर्ष की सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी घोषित किया।

वालेरी ब्रूमेल

एक मील के फासले की दौड़ के इतिहास में जो स्थान रॉजर बॅनिस्टर का है या लम्बी कूद के इतिहास में जो स्थान रॉल्फ बोस्टन का है वही स्थान ऊंची कूद के इतिहास में सोवियत संघ के चैम्पियन वालेरी ब्रूमेल का है। पांचवें दशक के पूर्वार्द्ध तक यह माना जाता था कि जिस प्रकार एक मील की दौड़ को चार मिनट से कम समय में पूरा करना इन्सान के बस की बात नहीं है वैसे ही 7 फुट से ऊंचा कूद सकना भी इन्सान के लिए एक प्रकार का असम्भव काम है। इसके लिए मानव को अतिमानव (सुपरमैन) होना बहुत जरूरी है। लेकिन 1956 में अमेरिका के चार्ली डूमस ने 2.15 मीटर ऊंचा कूदकर असंभव को सम्भव बनाकर दिखा दिया। ऊंची कूद में तब तक अमेरिका के ही खिलाड़ी नये रिकार्ड स्थापित करते आ रहे थे। 1912 से लेकर 1956 तक ऊंची कूद के कीर्तिमानों के विकास क्रम को अमेरिकी खिलाड़ियों ने ही आगे बढ़ाया, लेकिन सोवियत संघ के वालेरी ब्रूमेल ने 1963 में ऊंची कूद का एक नया विश्व कीर्तिमान 7 फुट 3.75 इंच (2.28 मीटर) स्थापित किया और ऊंची कूद के क्षेत्र में अमेरिका का 40 वर्ष पुराना प्रभुत्व समाप्त हो गया। इससे अमेरिका की परेशानी और सोवियत संघ की प्रसन्नता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

ब्रूमेल का जन्म 14 अप्रैल, 1942 को साइबेरिया के एक छोटे से गांव में हुआ। ऊंची कूद के बारे में लोगों की यह भी धारणा थी कि खिलाड़ी अपने कद से ज्यादा ऊंचा नहीं कूद सकता, लेकिन उन्होंने तो अपने कद से भी 16.875 इंच ज्यादा ऊंची कूद लगाई। उनका कद 6 फुट .875 इंच और वजन 170 पौंड है। बचपन में ही उन्हें ऊंची कूद का काफी शौक था। 11 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने

ऊंची कूद का अभ्यास शुरू कर दिया, लेकिन 1956 और 1957 तक उनकी प्रगति बहुत धीमी रही। लेकिन 18 साल की उम्र में (यानी 1960 में) उन्होंने 7 फुट 2.75 इंच ऊंचा कूदकर नया युरोपियन रिकार्ड स्थापित किया। उसी वर्ष रोम में हुए ओलम्पिक खेलो में उन्होंने रजत पदक प्राप्त किया।

वासिम बारी

23 मार्च, 1948 को जन्मे वासिम बारी ने 1967 से पाकिस्तानी टीम में विकेट कीपर के रूप मे अपना स्थान बनाया। क्रिकेट जगत में चिर कुंवारे के रूप में मशहूर वासिम बारी ने अब विवाह करने का फैसला किया है और अपना अधिक समय व्यावसायिक कार्यों में व्यतीत करने की इच्छा प्रकट की है। हालांकि टेस्ट क्रिकेट को छोड़ने का विवाह से संबंध नहीं है।

वह अपने देश के पहले ऐसे विकेट कीपर हैं जिन्होने 1,000 रन भी बनाए और 100 विकेट भी उखाड़े। छः टेस्टो मे वह पाकिस्तानी टीम की कप्तानी भी कर चुके हैं।

1967 में लार्ड्स के मैदान पर इंग्लैंड के विरुद्ध जब उन्होंने पहला टेस्ट खेला तो उनकी उम्र 19 वर्ष की थी। उनकी तुलना आज भी विश्व के चोटी के विकेट कीपरों के साथ की जाती है।

नाम : वासिम बारी

जन्म : 23 मार्च, 1948

जन्म स्थान : कराची

लंबाई : 5 फुट साढ़े दस इंच

वजन : 76 किलो

वैवाहिक स्तर : अविवाहित

शैक्षिक योग्यता : बी० काम० पास

कालेज : सेंट पैट्रिक

क्रिकेट की शुरुआत : सिटी जीमखाना, कराची

पहला मैच : 1964-65 में कराची के लिए

पहला टेस्ट : 1967 में लार्ड्स में इंग्लैंड के विरुद्ध

प्रभावित : गार्डन ग्रीनिज (वेस्ट इंडीज)

प्रमुख उपलब्धियां : 1978-79 में एक पारी में सात कैच (आकलैंड, न्यूज़ीलैंड) लपक कर विश्व रिकार्ड बनाना, भारत के विरुद्ध (1982-83) पाकिस्तान के लिए एक ही शृंखला में 17 सर्वाधिकार शिकार (15 कैच, 2 स्टंप) बनाना, 200 से अधिक शिकार (201) पूरा करने वाला पहला एशियाई विकेट कीपर

मन पसंद मैदान : बाग-ए-जिन्नाह, लाहौर
आदर्श खिलाड़ी : सोबर्स

बारी : टेस्ट प्रदर्शन

देश	टे०	पा०	ना०न०	रन	उ०	औ०	शतक	अर्धशतक	कैच	स्ट०
न्यूजीलैंड	11	15	8	216	37	30.85	—	—	27	5
वेस्ट इंडीज़	9	17	6	227	60*	20.63	—	2	18	3
भारत	15	17	2	276	85	18.40	—	1	39	4
इंग्लैंड	24	32	6	384	63	14.76	—	1	50	4
आस्ट्रेलिया	14	21	2	156	72	8.20	—	1	41	10
कुल	73	102	24	1259	85	16 14	—	5	175	26

विजडन

विजडन का नाम अपने ज़रूर सुना होगा। विजडन को क्रिकेट की 'बाइबल' कहा जाता है। इसका प्रकाशन वार्षिक है तथा इसमें हर साल दुनिया के पांच सबसे अच्छे खिलाड़ियों को स्थान मिलता है। आपने यह अवश्य ही सोचा होगा कि आखिर को

क्रिकेटर थे।

दोनों में ही कमाल की महारत हासिल थी। उन्होंने 10 वर्ष की अल्पायु से क्रिकेट खेलना प्रारंभ किया और 37 वर्ष की आयु तक वह खेलते रहे। इसके बाद उन्होंने क्रिकेट की एक वार्षिकी निकालने का निर्णय लिया और इसे 'विजडन' नाम दिया।

हालांकि 5 अप्रैल 1884 को उनकी कैंसर की वजह से असामयिक मृत्यु हो गई लेकिन उनकी वार्षिक पत्रिका 'विजडन' बिना किसी बाधा के 1864 से आज तक नियमित प्रकाशित हो रही है।

क्रिकेट के बारे में अछूती और सर्वथा नई जानकारी देने वाली इस पत्रिका की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

विजडन से सम्मानित भारतीय खिलाड़ी

किसी भी खिलाड़ी को जितने भी सम्मान दिए जा सकते हैं उनमें सम्भवतः अत्यन्त दुर्लभ और दुष्प्राप्य सम्मान विजडन का है, जिसके क्रिकेट अलमनेक (विवरणिका) में वर्ष के दुनिया के पांच सर्वश्रेष्ठ क्रिकेट खिलाड़ियों के नाम दिए

जाते हैं। यह एक ऐसा सम्मान है जिसे पाने के लिए प्रायः हर खिलाड़ी लालायित रहता है। विजडन पहले-पहल सन् 1864 में इंग्लैंड में प्रकाशित होना शुरू हुआ। तब से इसकी सम्मान सूची में क्रिकेट जगत के महानतम खिलाड़ियों के नाम अंकित हो चुके हैं। सच पूछो तो यह क्रिकेट के इतिहास का अंग ही बन गया। कहना न होगा कि विजडन की सूची में सम्मान पाना बहुत ही कठिन है। अब तक जिन भारतीय क्रिकेट खिलाड़ियों को यह सम्मान प्राप्त हुआ है उनके नाम इस प्रकार हैं :

रणजीत सिंहजी को 1897 में 'विजडन' द्वारा सम्मानित किया गया था। उन्होंने कुल मिलाकर इंग्लैंड की ओर से 15 टेस्ट मैच खेले थे। वह उन खिलाड़ियों में से एक हैं जिन्होंने अपने पहले ही टेस्ट मैच में शतक बनाया था। 1896 में उन्होंने 57.91 की औसत से 10 शतकों सहित प्रथम श्रेणी के मैचों में कुल 2780 रन बनाए थे।

दलीप सिंहजी को 1930 में 'विजडन' द्वारा सम्मानित किया गया। उन्होंने अपना टेस्ट जीवन 1929 में दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ शुरू किया था। इसी वर्ष न्यूजीलैंड के खिलाफ उनके प्रदर्शन से उनका नाम काफी लोकप्रिय हुआ। 1930 में ही उन्होंने ससैक्स के लिए नार्थंपटनशायर के खिलाफ खेलते हुए आक्रामक 333 रन बनाये थे।

इफ्तिखार अली खां पटौदी को 1932 में 'विजडन' सम्मान मिला। 1931 में उन्होंने इंग्लैंड में प्रथम श्रेणी क्रिकेट में लगातार चार शतक बनाए थे। इसके अलावा आक्सफोर्ड की ओर से कैंब्रिज के खिलाफ 238 रन बनाकर भी उन्होंने क्रिकेट जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था।

सी० के० नायडू भारत के प्रथम क्रिकेट कप्तान थे। उन्होंने इंग्लैंड में हरफनमौला खेल का प्रदर्शन किया फलस्वरूप वह उसी वर्ष 1932 में 'विजडन' सम्मान के भागी बन गये।

विजय मर्चेंट को 1937 में 'विजडन' में शामिल होने का सम्मान प्राप्त हुआ। 1936 के इंग्लैंड दौरे पर उन्होंने जबरदस्त नाम कमाया था। उन्होंने उस दौरे में कुल मिलाकर 1745 रन बनाये थे जिनमें 3 टेस्ट मैचों में बनाये गये 282 रन भी शामिल हैं।

वीनू मांकड ने 1946 में इंग्लैंड के दौरे पर शानदार प्रदर्शन किया। उन्होंने सबसे कम समय में 1000 रन और 100 विकेट का गौरव हासिल किया था। बाद में यह रिकार्ड इंग्लैंड के इयान बाथम ने तोड़ा। 1946 में वीनू मांकड ने प्रथम श्रेणी के मैचों में इंग्लैंड में 1120 रन बनाये थे और 129 विकेट उखाड़े थे। इसी कारण उनका नाम 'विजडन' में शामिल हुआ।

मंसूर अली खां पटौदी को 1968 में 'विजडन' में शुमार किया गया। उन्होंने उस वर्ष इंग्लैंड के विरुद्ध चार टेस्ट मैचों में ताबड़तोड़ रन बनाए थे।

भगवत चन्द्रशेखर का नाम 1971 में सुर्खियों में आया था जब ओवल टेस्ट में भारत पहली बार इंग्लैंड के खिलाफ उसी की धरती पर श्रृंखला जीतने में सफल हुआ। चन्द्रशेखर ने दूसरी पारी में केवल 38 रन देकर इंग्लैंड के 6 बल्लेबाजों को पेवेलियन लौटाया था। इसी प्रदर्शन के आधार पर 1972 में उन्हें 'विजडन' से सम्मानित किया गया।

सुनील गावसकर को 1979 में 'विजडन' में शामिल किया गया। इस वर्ष उन्होंने वेस्ट इंडीज और पाकिस्तान के खिलाफ रनों का अंबार जुटाया था।

कपिल देव : छह जनवरी 1959 को पैदा हुए कपिल देव को भारत का सर्वश्रेष्ठ आलराउंडर माना जाता है। इस मध्य तेज गेंदबाज का बहुत ही अच्छा एक्शन है। इयान बाथम के बाद वे दूसरे खिलाड़ी हैं, जिसने 3500 से अधिक रन बनाए हैं और 300 से अधिक विकेट लिए हैं।

कपिल देव का विजडन द्वारा चयन 1983 में इंग्लैंड के खिलाफ 1982 में किए गए प्रदर्शन के आधार पर किया गया था।

इस सीरिज में उन्होंने लार्ड्स में 41 और 89 ओल्ड ट्रेफर्ड में 65, और ओवल में 97 रन बनाए। इसके अलावा उन्होंने तीन टेस्टों में दस विकेट भी लिए इसमें लार्ड्स पर 125 पर पांच और 43 पर तीन विकेट भी शामिल है। उन्हें इस दौरे पर 'मैन आफ द सीरिज' भी चुना गया।

कपिल देव ने अभी तक खेले 88 टेस्टों में पांच शतकों से 32.17 के औसत से 3668 रन बनाए हैं और 29.40 के औसत से 311 विकेट लिए हैं। उन्होंने एक पारी में पांच या उससे अधिक विकेट लेने का करिश्मा 19 बार किया है। उन्हें दस या उससे अधिक विकेट लेने का गौरव दो बार मिला है।

मोहिंदर अमरनाथ : 24 सितंबर 1950 को पैदा हुए मोहिंदर अमरनाथ अपने पिता की ही तरह दाहिने हाथ के बल्लेबाज और मध्यम तेज गेंदबाज हैं।

अमरनाथ को विजडन सम्मान 1984 में मिला। यह सम्मान उन्हें 1982-83 की फार्म को देखकर दिया गया। इस सीजन में उन्होंने 34 पारियों में 2234 रन बनाने का विश्व रिकार्ड बनाया। इसमें उन्होंने सात शतक ठोंके। इंग्लैंड के बाहर प्रथम श्रेणी के सीजन में कोई अन्य बल्लेबाज ऐसा करिश्मा नहीं कर सका है।

1983 में प्रुडेंशियल क्रिकेट विश्व कप सेमी फाइनल में इंग्लैंड के खिलाफ (46 रन और दो विकेट) और फाइनल में वेस्ट इंडीज के खिलाफ (26 रन और तीन विकेट) ने उन्हें 'मैन आफ द मैच' बनाया और उन्होंने भारत को विश्व कप दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उनके अन्य उत्कृष्ट प्रदर्शनों में 1983 में एक कैलेंडर साल में सबसे जल्दी 1000 रन बनाना है। उन्होंने यह गौरव तीन मई को पा लिया था, जो कि एक विश्व रिकार्ड है।

उन्होंने 66 टेस्टों में 44.09 के औसत से 4321 रन बनाए हैं, जिसमें 11 शतक शामिल हैं। उन्होंने 54.37 के औसत से 32 विकेट भी लिए हैं।

विजय मंजरेकर

सन् 1952-53 में हजारे युग के समाप्त होते ही विजय मंजरेकर युग शुरू हो गया था। मर्चेंट की तरह मंजरेकर ने भी अपने स्कूली वक्त से यह साबित कर दिखाया था कि आने कल उनका है। स्कूली जीवन में मंजरेकर ने 207 रन मद्रास, 114 नाबाद बड़ोदा, 231 रन महाराष्ट्र व 91 रन संयुक्त स्कूल की ओर से कॉमनवेल्थ टीम के विरुद्ध बनाये। उसी वर्ष (1949) उन्हें रणजी ट्रॉफी में प्रवेश मिल गया।

1951-52 में इंग्लैंड के विरुद्ध कलकत्ता टेस्ट में मंजरेकर को टेस्ट कैप मिली। उस टेस्ट में विपरीत परिस्थितियों में 48 रन बनाये। उसके बाद वह इंग्लैंड गए, जहाँ लीड्स टेस्ट में उन्होंने एक बार फिर भारत को संकट से उबारा। भारत के 3 विकेट पर 42 रन थे। उस दिन मंजरेकर ने अपने सीनियर हजारे के साथ धैर्यपूर्वक खेलते हुए चौथे विकेट की भागीदारी में 222 रन जोड़े। संघर्ष-शील पारी में मंजरेकर ने अपना पहला टेस्ट शतक (133 रन) बनाया। इसके बाद मंजरेकर की सफलताओं का कारवां 55 टेस्ट मैचों से होता हुआ अपनी अंतिम मंजिल में मर्चेंट के समान एक शतक (102 नाबाद) के साथ समाप्त हुआ। इस दौरान विजय मंजरेकर 10 बार नाबाद रहे। 7 शतक व 15 अर्द्ध-शतक की मदद से उन्होंने 3,209 (39.13 औसत) रन बनाये। दो कैच व एक विकेट भी लिया। मंजरेकर का सर्वाधिक स्कोर 189 रन (नाबाद) रहा।

सन् 1965 में भारत का स्वर्णिम व ठोस 'विजय युग' समाप्त हो गया। सन् 33 से 65 तक 32 वर्षों के भारतीय क्रिकेट इतिहास में विजय मर्चेंट, विजय हजारे व विजय मंजरेकर ने कई-कई अविस्मरणीय प्रदर्शन किए। इन तीनों ने भारत का नाम विश्व के धुरंधर बल्लेबाजों की सूची में हमेशा जोड़े रखा।

विजय मर्चेंट

बल्ले से विश्व क्रिकेट का इतिहास लिखने वाले खिलाड़ियों की एक लंबी फेहरिस्त है। भारत भी इस फेहरिस्त में अहम स्थान रखता है। सी० के० नायडू से लेकर गावसकर तक कितने ही खिलाड़ी समय-समय पर भारत का नाम विश्व क्रिकेट में रोशन करते आये हैं। इनमें भारत के तीन विजय—मर्चेंट, हजारे व

मंजरेकर भी उल्लेखनीय हैं। अपने-अपने युग में तीनो विजय अपने सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शनो की बदौलत चर्चित रहे।

सबसे पहले आता है मर्चेंट युग। 1933 से लेकर 51-52 तक विजय मर्चेंट (जन्म 12 अक्तूबर, 1911) विश्व क्रिकेट मे एक चर्चित व्यक्तित्व के रूप छाए रहे। अपनी नैसर्गिक प्रतिभा, खेल के प्रति अटूट आस्था के कारण मर्चेंट ने अपने स्कूली जमाने से ही सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। सन् 1926 मे मर्चेंट एक संपूर्ण खिलाड़ी के रूप मे स्थापित हो चुके थे। स्कूल से निकलकर कालेज आए तो टीम के कप्तान बना गए। 1931 में उनके वजनदार प्रदर्शन के बल पर ही सिडेनहम कालेज ने अंतर महाविद्यालय क्रिकेट प्रतियोगिता जीती। मर्चेंट ने पूरी प्रतियोगिता मे 504 रन बनाए व 29 विकेट लिये। उसी वर्ष हैदराबाद मे फ्रीलूस्टर एकादश की ओर से खेलते हुए अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विरुद्ध शानदार 157 रन बनाये। अपने उस धुआधार प्रदर्शन के फलस्वरूप 1932 में भारतीय टेस्ट टीम मे उनका चुनाव हो जाता, यदि बंबई का उनका क्लब उन पर प्रतिबंध नही लगाता।

सन् 1933 मे जब जार्डिन के नेतृत्व मे एम० सी० सी० दल भारत की धरती पर अधिकृत टेस्ट खेलने आया तो मर्चेंट तीनों टेस्ट खेले। उस लघु शृंखला में विजय ने कुल 178 रन बनाये। 1933 से मर्चेंट की सफलताओं का जो दौर आरंभ हुआ, वह 1951-52 मे एक शतक (154 रन) के साथ सम्मानपूर्वक समाप्त हुआ। इन वर्षों में मर्चेंट ने मात्र 10 टेस्ट खेले, जिसमे उन्होने 3 शतक व 3 अर्द्धशतकों की मदद से 859 रन 47.72 की औसत से बनाये। क्रिकेट की गीता 'विजडन' ने मर्चेंट को 1936 में वर्ष के सर्वश्रेष्ठ पाच खिलाड़ियों मे चुनकर सम्मानित किया। यह मर्चेंट का दुर्भाग्य ही रहा कि दूसरे विश्व युद्ध की विभीषिका के कारण 1936 से 1946 तक कोई टेस्ट नही हुआ वरना मर्चेंट के आकड़े कुछ और ही कहानी लिखते। उनका एक दुर्भाग्य यह भी रहा कि सर्वगुण सपन्न होने के बावजूद उन्हें भारतीय टीम की कप्तानी नहीं मिली। वैसे तो विजय ने कई ठोस प्रदर्शन किये पर स्थिति को देखते हुए उनके टेस्ट जीवन का सबसे शानदार प्रदर्शन 1936 मे मानचेस्टर (इंग्लैंड) में था जहां दूसरी पारी में सकट-पूर्ण स्थिति में मर्चेंट ने मुश्ताक अली के साथ मिलकर पहले विकेट की भागीदारी मे 203 रन की भागीरथी पारी खेली। मर्चेंट 113 व मुश्ताक अली 112 रनो की वह शतकीय पारी आज भी मानचेस्टर निवासी भूल नही पाये। सन् 1951-52 इंग्लेंड के विरुद्ध दिल्ली टेस्ट की एकमात्र पारी में 14 रन बनाकर विजय मर्चेंट टेस्ट क्रिकेट से विदा हो गये। मर्चेंट ने सभी दस टेस्ट इंग्लेंड के विरुद्ध खेले। इनकी मृत्यु 27 अक्तूबर, 1987 को हुई।

विजय मेहरा

जन्म 15 मार्च, 1938। दायें हाथ के इस बल्लेबाज ने 17 वर्ष 265 दिन की आयु में न्यूज़ीलैंड के विरुद्ध अपना टेस्ट जीवन शुरू किया। इस तरह वह भारत का सबसे कम उम्र का टेस्ट खिलाड़ी बना। 1962 में वेस्टइंडीज यात्रा पर गया। रणजी ट्राफी में 3222 रन बनाए। इसमें 20 शतक भी शामिल हैं। बाद में टेस्ट चयन समिति के सदस्य रहे। उनके टेस्ट आंकड़े इस प्रकार हैं : 8 टेस्ट 329 रन, 0 विकेट 1 कैच।

विजय हजारे

मर्चेंट युग जब करीब-करीब समाप्ति की ओर था, उसी समय विजय हजारे युग का श्रीगणेश हुआ। विजय सैमुअल हजारे उन भाग्यशाली भारतीय कप्तानों में से हैं जिनका नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। 1952 में भारत की पहली टेस्ट विजय हजारे के नाम है।

1934-35 में हजारे ने अपना प्रथम श्रेणी क्रिकेट जीवन आरंभ किया, लेकिन 1939-40 का सत्र हजारे के जीवन का सर्वश्रेष्ठ काल था। उनके आलराउंड प्रदर्शन के फलस्वरूप महाराष्ट्र को रणजी ट्राफी जीतने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उस सत्र में हजारे ने 154.7 की औसत से 619 रन बनाये। बबई की पारंपरिक पेंटेंगुलर प्रतियोगिता में हजारे का योगदान अविस्मरणीय रहा है।

1946 में इग्लैंड जाने वाली भारतीय टीम में हजारे को पहली बार चुना गया। उस दौरे के प्रथम श्रेणी के मैचों में हजारे ने शानदार प्रदर्शन करते हुए 2,344 रन बनाये। पर टेस्ट मैचों में वह मात्र 123 रन ही बना पाये, जिसमें 44 उनका सर्वाधिक स्कोर था।

1947 में आस्ट्रेलिया दौरे हेतु मर्चेंट, मुश्ताक अली, रूसी मोदी व फजल महमूद को नहीं चुना गया। फलस्वरूप हजारे को उप-कप्तान बनाया गया। 5 टेस्ट मैचों की उस श्रृंखला में भारत चार में बुरी तरह पराजित हुआ, पर हजारे के बल्ले से निकली आग की तपश कगारू गेंदबाज सहन न कर पाये। ऐडीलेड टेस्ट में हजारे ने कहर बरसाते हुए दोनों पारियों में शतक क्रमशः 116 व 145 रन बनाये। दोनों पारियों में शतक बनाने वाले पहले भारतीय थे।

1952 में हजारे को भारतीय टीम का कप्तान नियुक्त किया। अपने नेतृत्व में हजारे ने उसी वर्ष भारत की टेस्ट क्रिकेट में पहली विजय दिलवायी। 14 टेस्टों में विजय हजारे ने टीम को नेतृत्व किया—1 जीता, 5 हारे व 8 बराबर रहे। अपने जीवन के कुल 30 टेस्ट मैचों में 7 शतक व 9 अर्द्धशतक की मदद से 2192 रन (46.65 औसत) बनाये। उन्होंने 11 कैच और 20 विकेट भी

लिये इंग्लैंड के विरुद्ध दिल्ली में 265 अविजित रन उनका सर्वाधिक स्कोर था।

विम्बलडन

> टेनिस के महाकुंभ विम्बलडन का इतिहास इस बात का गवाह है कि उस हरे-भरे मैदान पर कब कौन-सा स्थापित खिलाड़ी धराशायी हो जाए और टेनिस की दुनिया का कोई गुमनाम खिलाड़ी अपने तेज-तर्रार खेल से कौन-सा इतिहास रच जाए कुछ भी नहीं कहा जा सकता……

इंग्लैंड में अगर लार्ड्स क्रिकेट का मक्का तो विम्बलडन को टेनिस का महाकुंभ कहा जाता है। हर खिलाड़ी और खेल-प्रेमी की निगाह विम्बलडन के सेंटर कोर्ट पर रैकटों से झर रहे वॉली, स्मैश और लॉब के तेज-तर्रार और रोमांचक टकराव पर टिकी रहती है।

विम्बलडन का इतिहास इस बात का गवाह है कि उसके हरे-भरे मैदान पर कब कौन-सा स्थापित खिलाड़ी धराशायी हो जाए और टेनिस की दुनिया का कोई गुमनाम खिलाड़ी अपने तेज-तर्रार खेल से कौन-सा इतिहास रच जाए कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पिछले ही साल हर खेल समीक्षक पूरे साल इवान लेंडल के खेल को देखते हुए समीक्षा कर रहा था कि वर्ष 1987 का विम्बलडन विजेता वही बनेगा पर आस्ट्रेलिया के पेंट कैश ने ऐसा धमाका किया कि सभी लोग सकते मे आ गए। वह फाइनल मुकाबले मे नम्बर एक खिलाड़ी इवान लेंडल को 7-6, 6-2, 7-5 से हरा कर टेनिस का बादशाह बन गया।

1985 से पहले टेनिस की दुनिया में बेकर को कौन जानता था मगर फाइनल में केविन करेन को हरा कर बेकर 17 वर्ष की अवस्था में टेनिस का स्टार बन गया।

पुरुषों की तरह महिला विम्बलडन खिलाडियो मे नवरातिलोवा व क्रिस एवर्ट के बाद एक नाम और भी जुड़ा है—स्टेफी ग्राफ। 18-19 साल की इस किशोरी ने एक के बाद एक जीत दर्ज करके बेकर के बाद पश्चिमी जर्मनी का नाम टेनिस जगत मे बरकरार रखते हुए अन्य महिला खिलाडियों को चुनौती दे रही है। पिछले साल विम्बलडन के फाइनल मे नवरातिलोवा से हारने के बाद इस साल यह अनुमान लगाया गया कि नवरातिलोवा के लिए विम्बलडन के मैदान पर यह बड़ी चुनौती साबित करेगी।

बेस लाइन पर अद्भुत और कुशल फोरहैंड खेल का प्रदर्शन करने वाली

स्टेफी विश्व के कई मुकाबले में अब तक नवरातिलोवा को हरा चुकी है। लेकिन इसकी सबसे बड़ी कमजोरी है घास का मैदान और विम्बलडन मे नवरातिलोवा इसी का फायदा उठाती है।

उम्र में छोटी होते हुए भी स्टेफी क्रम के लिहाज से पैम श्राइवर, हाना मादलिकोवा, कैथी रिनाल्डी, और जीन गैरीसन से आगे निकल चुकी है। स्टेफी ग्राफ के साथ-साथ गैब्रिएला सबातीनो का नाम भी चमक रहा है। इस महिला खिलाडी ने महिला इटेलियन ओपन चैंपियनशिप का खिताब जीता है।

मार्तिना नवरातिलोवा, क्रिस एवर्ट, स्टेफी ग्राफ, गेब्रिएला सबातीनो के अलावा पश्चिमी जर्मनी की क्लाउडिया, कोड विल्स, चेकोस्लोवाकिया की हाना मांदलिकोवा का नाम भी महिला टेनिस जगत मे मशहूर है जो विभिन्न प्रतियोगिताओं में एक-दूसरे से हारती व जीतती रहती हैं।

पिछले 11 वर्षों के विम्बलडन विजेता

वर्ष	पुरुष खिलाड़ी का नाम	देश का नाम
1978	बियोन बोर्ग	स्वीडन
1979	बियोन बोर्ग	स्वीडन
1980	बियोन बोर्ग	स्वीडन
1981	जॉन मैकनरो	अमरीका
1982	जिमी कोनर्स	अमरीका
1983	जॉन मैकनरो	अमरीका
1984	जॉन मैकनरो	अमरीका
1985	बोरिस बेकर	पश्चिमी जर्मनी
1986	बोरिस बेकर	पश्चिमी जर्मनी
1987	पैट कैश	आस्ट्रेलिया
1988	स्टीफन एडबर्ग	स्वीडन

वर्ष	महिला खिलाड़ी का नाम	देश का नाम
1978	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1979	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1980	ईवान गुलगांग	आस्ट्रेलिया
1981	क्रिस एवर्ट	अमरीका

1982	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1983	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1984	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1985	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1986	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1987	मार्तिना नवरातिलोवा	अमरीका
1988	स्टेफी ग्राफ	पश्चिमी जर्मनी

12 दिन के उतार-चढ़ाव भरे खेल के इतिहास पर नजर डालें तो 1988 की प्रतियोगिता 111वी थी। 12 दिनों के इस खेल में इंग्लंडवासियों का सारा ध्यान टेनिस की तरफ होता है। दुनिया भर के टेनिस के खिलाड़ियों के लिए विम्बलडन एक तीर्थ की हैसियत रखता है। कोई खिलाड़ी अंतरराष्ट्रीय टेनिस मे कितने भी खिताब क्यो न जीत ले अगर उसने विम्बलडन नही जीता तो अपनी उपलब्धि अधूरी ही मानता है। इस संबंध मे पिछले साल इवान लेंडल ने कहा था कि मेरे सभी खिताब छिन जाए तो मुझे कोई दुःख नही होगा पर मैं विम्बलडन खिताब जीतना चाहता हू।

इस प्रतियोगिता को इतनी अधिक प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय अंग्रेजों को ही है। इस प्रतियोगिता के विषय मे कहा जाता है कि यहां खिलाड़ी बदलते हैं प्रतियोगिता नही। विम्बलडन का हर मैच ठीक समय पर दोपहर 2 बजे शुरू होता है। (अगर बारिश न हो तो) हर खिलाड़ी को सफेद यूनीफार्म पहननी पड़ती है, चाहे वह पुरुष हो या महिला। प्रतियोगिता के दौरान किसी भी खिलाडी को सेंटर कोर्ट पर प्रैक्टिस नही करने दिया जाता। आम प्रैक्टिस के लिए खिलाडी को दूसरी जगह भेजा जाता है। चाहे विश्व रैंकिंग का खिलाड़ी पहले नम्बर पर हो या अंतिम सब को समान सुविधाएं प्रदान की जाती है।

सवाल यह है कि तमाम पेशेवर खिलाड़ी जो लाखों डालर की इनामी प्रतियोगिताओं को जीतते हैं आखिर वह कौन-सा मोह है जो उपरोक्त कड़ी शर्तों को स्वीकार करते हुए वहा खेलना चाहते हैं।

विंबलडन में भारत

भारत के संबंध में जब भी विंबलडन की चर्चा उठती है, रामनाथन कृष्णन का नाम लिये बिना शुरू हो ही नही सकती। यद्यपि 106 साल से चली आ रही विश्व टेनिस जगत की इस सर्वाधिक प्रतिष्ठापूर्ण प्रतिस्पर्धा मे भारत का पहला सितारा चमका था गौस मुहम्मद के रूप में, जिन्होंने 1939 में विंबलडन के क्वार्टर-फाइनल में पहुच कर सनसनी फैला दी थी और क्रिकेट व हाकी के साथ टेनिस मे भी भारत का नाम रोशन किया। लेकिन भारत का यह सितारा अधिक

दिन तक नहीं टिमटिमा पाया और दो दशक बाद ही भारत के दूसरे सितारे ने देश का नाम टेनिस जगत में चकाचौंध कर दिया। यह वही रामनाथन कृष्णन थे। 17 वर्ष की आयु में विंबलडन का जूनियर खिताब जीतने वाला रामनाथन कृष्णन अपनी विलक्षण टेनिस कौशल की ऊंचाइयों पर था। रामनाथन कृष्णन कई चोटियों पर फतह पाता हुआ विंबलडन में भारत की पताका ऊंची फहराता जा रहा था लेकिन भारत को विंबलडन के एवरेस्ट पर नहीं पहुंचा सका। एवरेस्ट की चोटी से कुछ कदम नीचे ही दो-दो बार उनके पैर डगमगाये और वहीं फिसल कर रह गया। 1960 में विंबलडन के सेमी-फाइनल तक पहुंचने वाला कृष्णन 1961 में भी सेमी-फाइनल तक पहुंचा। रामनाथन भारत का एकमात्र खिलाड़ी है जिसे विंबलडन में नामांकित खिलाड़ी का दर्जा दिया गया। फिर भी वरीयता क्रम में रामनाथन की चढ़ाई चौथी तक रही। 1962 में जब उसे पूर्ववत प्रदर्शनों के आधार पर चौथी वरीयता मिली तो पहले तीन स्थान पर विश्व टेनिस के तीन सरताज आस्ट्रेलियाई खिलाड़ी राड लेवर, एमरसन और फ्रेजर का नाम था।

रामनाथन कृष्णन के इस सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के बाद एक दशक के लिए भारत विंबलडन टेनिस की द्वार ही खटखटाता रहा। प्रेमजीत लाल और जयदीप मुखर्जी विंबलडन में सीधी प्रतिस्पर्धा के लिये प्रवेश तो पा जाते थे लेकिन उनकी औकात तीसरे राउंड तक ही रहती।

इस बीच अचानक भारतीय टेनिस क्षितिज पर या यदि विश्व टेनिस क्षितिज कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, एक और धूमकेतु का उदय हुआ। दक्षिण भारत के ही इस युवा खिलाड़ी विजय अमृतराज ने 20 वर्ष की उम्र में अमेरिका के प्रतिष्ठापूर्ण वोल्वो इंटरनेशनल में विंबलडन चैंपियन जिमी कोनर्स को हराकर अपना तथा भारतीय टेनिस का सिक्का पुनः जमाया था। इसी बीच विजय अमृतराज ने हागकाग खुली टेनिस का खिताब जीत लिया, तो उसके नाम का दबदबा बढ़ने लगा। उसने विश्व के सभी धुरंधर खिलाड़ियों, राड लेवर, ब्योन बोर्ग, इवान लैंडल आदि को पराजित किया। 1973 में उसे एक सुनहरा मौका हाथ लगा। विश्व के अधिसख्य नामी पेशेवर खिलाड़ी विंबलडन का बहिष्कार कर रहे थे। विजय अमृतराज ने खेलने का दृढ़ निश्चय किया और पहला तथा तीसरा मैच जीतने के बाद क्वार्टर-फाइनल में पहुच गया। इस चक्र में विजय की भिड़ंत उसी वर्ष के होने वाले विंबलडन चैंपियन चेकोस्लोवाकिया के जान कोड्स से हो गयी। विजय अमृतराज और जान कोड्स के बीच बहुत ही संघर्षपूर्ण मैच में विजय का पलड़ा अंतिम दम तक भारी रहा लेकिन एक भारतीय होना उसकी सबसे बड़ी खामी साबित हुई।

जैसा अक्सर होता है चुस्ती-फुर्ती के अभाव में भारतीय खिलाड़ी ढीले पड़ते हैं, बेचारा अमृतराज पांचवें सेट के अंतिम संघर्षपूर्ण गेम में एक फाल्ट कर गया और सेट के साथ-साथ एक तरह से विंबलडन खिताब ही खो बैठा क्योंकि उसे हराने वाले ने अंततः उस वर्ष के खिताब पर अधिकार जमाया। विजय अमृतराज की प्रतिभा नई ऊंचाइयों को छूती रही लेकिन विंबलडन में उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया। दूसरे या तीसरे राउंड में ही कभी उसकी टक्कर बोर्ग से हो जाती, कभी मैकनरो से और कभी कानर्स से। यद्यपि इन सभी मैचों में विजय ने इन धुरंधर खिलाडियों को पानी पिलाया लेकिन विजय के भाग्य में विंबलडन में विजय लिखी ही नहीं है। हां, अपने बड़े भाई आनंद अमृतराज के साथ युगल मुकाबले में अवश्य वह एक बार सेमीफाइनल तक पहुंच गया। लेकिन युगल मुकाबलों की कोई खास प्रतिष्ठा होती नहीं। खैर, 1981 में विजय अमृतराज एक बार फिर क्वार्टर फाइनल में पहुंचा लेकिन यहां भी उसकी टक्कर कोनर्स से हो गयी। उस वर्ष दर्शकों को विजय और कानर्स के बीच का मैच सर्वाधिक रोमांचक और संघर्षपूर्ण लगा था लेकिन विजय इसमें भी पांच सैटों में पराजित हो गया।

इस तरह विंबलडन में कुछ कर दिखाने की जिस एकमात्र भारतीय खिलाड़ी से आशा थी उसका सितारा भी अब डूबता नजर आ रहा है।

विजय तक विंबलडन में भारत की हिस्सेदारी को महत्व दिया जाता रहेगा लेकिन विजय के बाद कोई भी खिलाड़ी उसकी टक्कर का सामने नहीं आ रहा।

हां, रामनाथन कृष्णन की तरह ही उनके बेटे रमेश कृष्णन ने विश्व टेनिस जगत में धमाके के साथ प्रवेश किया था। उसने विंबलडन का जूनियर खिताब जीता लेकिन उसने भारत के टेनिस प्रेमियों को बहुत निराश किया। बोर्ग, मैकनरो आदि 20-21 वर्ष की अवस्था में ही विंबलडन की बड़ी चुनौती के रूप में उपस्थित हो गये थे लेकिन रमेश कृष्णन जल्दी ही शांत हो गया।

विल्मा रुडोल्फ (एथलेटिक)

23 जून 1940 को अमेरिका के क्लार्कसविली शहर में जन्मी विल्मा रुडोल्फ एक प्रमुख महिला एथलीट के रूप में जानी जाती हैं। उन्हें 1960 में ओलम्पिक चैंपियन का खिताब दिया गया जब रोम ओलम्पिक में 100 मी० 11.0 से०, 200 मी० 24.0 से० 4 × 100 मी० रिले दौड़ जीतकर उसने तीन स्वर्ण पदक प्राप्त किए। इसके पूर्व 1956 ओलम्पिक में रुडोल्फ को 4 × 100 मी० रिले दौड़ में कांस्य पदक मिला था।

विल्सन जोंस

विश्व चैंपियन का पद ग्रहण करने वाले भारतीय खिलाड़ियों की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती है और एक से अधिक बार विश्व चैंपियन बनने वाले भारतीय खिलाड़ियों की संख्या तो एक हाथ की उंगलियों से भी कम है। लेकिन क्या आप नहीं मानते कि उन को हम जरूरत से ज्यादा जल्दी भुला देते हैं। या यह, हम उस की केवल उपलब्धियों को ही जानते हैं, उस की साधना और संकल्प को नहीं।

विल्सन जोंस भारत के जाने-माने ऐसे खिलाड़ी हैं जिन्हें बिलियर्ड के खेल में दो बार विश्व चैंपियन होने का गौरव प्राप्त हुआ है। 1958 का वह दिन कभी नहीं भूल सकते जिस दिन उन्होंने कलकत्ता में आयोजित विश्व बिलियर्ड प्रतियोगिता में प्रथम बार विजेता बन कर सारे विश्व को चकित कर दिया था। विश्व प्रतियोगिता जीत लेने के बाद भी वह बिलियर्ड खेल का कठोर अभ्यास करते रहे।

दरअसल उन के जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य था कि किसी प्रकार दूसरी बार भी विश्व प्रतियोगिता जीत कर भारतीय युवकों में बिलियर्ड को लोकप्रिय बना दें। उन्हें यह अवसर भी जल्दी ही मिल गया जब 1964 में न्यूजीलैंड में उन्होंने दूसरी बार बिलियर्ड में विश्व चैंपियन का खिताब जीत लिया तो उनके खेल के चमत्कार से सारा विश्व चमत्कृत रह गया। भारत के सारे खेल प्रेमी उनकी दूसरी सफलता पर खुशी से झूम उठे। उनकी इन दो अभूतपूर्व सफलताओं पर भारत सरकार ने उन्हें 1963 में अर्जुन पुरस्कार और 1965 में पद्मश्री की उपाधि दे कर सम्मानित किया।

एंग्लो इंडियन विल्सन जोंस ने बारह या तेरह वर्ष की आयु में ही बिलियर्ड में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। हालांकि शुरू में उन्हें हाकी खेल में भी काफी रुचि थी। परन्तु उन्हें बिलियर्ड खेलने की प्रेरणा अपने चाचा ओसी मासे से मिली 18 वर्ष की आयु में तो उन्होंने अपने चाचा के साथ पूना स्थित बिलियर्ड सैलून में जोर-शोर से अभ्यास शुरू कर दिया। मगर उन्हें उस वक्त सपने में भी यह खयाल नहीं था कि वे इस खेल में दो बार विश्व चैंपियन बनेंगे। लेकिन जैसे-जैसे वह कठिन अभ्यास करने लगे तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि वह किसी दिन जरूर विश्व चैंपियन बन कर रहेंगे। 1948 में जब पहली बार उन्होंने राष्ट्रीय स्नूकर प्रतियोगिता जीती तो उन के उत्साह का ठिकाना न था। वह शीघ्र ही स्नूकर के खिलाड़ी के रूप में मशहूर हो गए। परन्तु जब 1950 में उन्होंने

बिलियर्ड की भी राष्ट्रीय प्रतियोगिता जीत ली तो उन की सफलता पर सभी हैरान रह गए।

अब जोंस भारतीय चेंपियन के रूप में विश्व चेंपियन बनने का भी स्वप्न देखने लगे। 1950 में वह विश्व बिलियर्ड प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए लंदन गए परन्तु भाग्य उन के साथ नहीं था। शायद इसीलिए इस प्रतियोगिता में वह अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सके। इसके बाद उन्हें कई अवसर भी मिले परन्तु किसी न किसी परिस्थितिवश वह चूक जाते। यह भाग्य का ही खेल है कि जिस वर्ष उन्होंने विश्व प्रतियोगिता जीती थी, वह स्वयं अपने देश के अन्य खिलाड़ी हीरजी से हार कर चेंपियनशिप जीतने की समस्त आशाओं पर तुषारापात कर बैठे थे लेकिन एकाएक नाटकीय रूप से उन के भाग्य ने पलटा खाया।

उस वर्ष विश्व प्रतियोगिता दक्षिण अफ्रीका में हो रही थी। अचानक वहां राजनैतिक उथल-पुथल हो जाने के कारण प्रतियोगिता स्थगित कर दी गयी। बाद में जब यह प्रतियोगिता कलकत्ता में हुई तो मेजबान के रूप में भारत को दो प्रतिनिधियों के लिए प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला। विल्सन तो इस मौके की तलाश में थे ही, उन्होंने अपने एकमात्र प्रतिद्वंद्वी लेसले ड्रिफिल्ड को कड़े मुकाबले के बाद हरा कर विश्व ट्राफी छीन ली। यह प्रतियोगिता कितनी रोमांचक रही थी इस का पता इसी से लगता है कि अभी खेल में अंतिम 90 मिनट शेष रह गए थे और लैंसले 663 अंक से जीतते हुए बढ़-चढ़ कर खेल रहे थे।

जोंस की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह खेल के अंतिम क्षण तक हिम्मत नहीं हारते। यहां भी वह उसी विश्वास के साथ खेलते रहे। सहसा खेल का रुख पलट गया। अंकों का फासला धीरे-धीरे कम होने लगा और एकाएक उन के अंतिम प्रयास ने तो उन के विरोधी पर वज्रपात ही कर डाला। जोंस 135 अंकों से जीत कर विश्व विजेता बन गए। जोंस आज भी मानते हैं कि कलकत्ता की यह उन की अप्रत्याशित विजय थी।

भारत के अन्य उदीयमान खिलाड़ी विशेष रूप से माइकेल फरेरा के उत्कृष्ट प्रदर्शन और सर्राफ सोमनाथ बनर्जी के शानदार प्रदर्शनों ने इस खेल को और भी लोकप्रिय बना दिया है।

जोंस का खेल दर्शनीय होता है। वह 'टाप आफ द टेबल' में विश्वास रखते हैं। उनकी सफलता की शायद यही कुंजी है लेकिन इस तरीके के साथ ही उनके गेंद छूने का ढंग अपना है। वह इस चतुरता से स्ट्रोक लगाते हैं कि उनका प्रतिस्पर्धी देखता ही रह जाता है।

यह सही है कि बिलियर्ड का खेल आम जनता का खेल नहीं है परन्तु भारत विल्सन जोंस का आभारी रहेगा कि उन्होंने अपने साहसिक और कुशल खेल से सारे संसार को चकित करते हुए अपने देश का नाम रोशन किया है।

विव रिचर्ड्स

वेस्टइंडीज के कप्तान विवियन रिचर्ड्स ने 7,000 रन की सीमा पूरी कर ली है।

रिचर्ड्स वेस्टइण्डोज के सबसे जोरदार बल्लेबाजों में से एक है वह लगातार एक के बाद एक रिकार्ड बना रहा है। वेस्टइण्डीज की ओर से रिचर्ड्स से ज्यादा रन सिर्फ गैरी सोबर्स और क्लाइव लॉयड ने बनाए हैं। इन दोनों का रिकार्ड रिचर्ड्स के लिए कोई ज्यादा मुश्किल नजर नहीं आ रहा है। रिचर्ड्स ने अपने ये 7000 रन 94वें टैस्ट की 140वी पारी में बनाए हैं।

विव रिचर्ड्स टेस्ट क्रिकेट का 9वा बल्लेबाज है जिसने 7000 रन बनाए हैं और जैसा कि आप जानते है टैस्ट क्रिकेट में सबसे अधिक रन बनाने का रिकार्ड भारत के सुनील गावस्करके नाम पर है। अब तक जो बल्लेबाज 7000 या इसमे अधिक रन बना चुके हैं उनमे से सिर्फ एलन बोर्डर और विव रिचर्ड्स ही अभी भी खेल रहे है। इस तरह से ये दोनों बल्लेबाज सुनील गावस्कर का रिकार्ड तोड़ने के सबसे करीब हैं।

विव रिचर्ड्स का जन्म 7 मार्च 1952 को सैंन्ट जान्स, एन्टिगुआ में हुआ था और उसने अपना सबसे पहला टैस्ट मैच 1974-75 में भारत के विरुद्ध खेला था। उसके बाद से विव रिचर्ड्स को टैस्ट क्रिकेट और एकदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय क्रिकेट में बराबर की सफलता मिली है।

'स्मोकिन जो,' 'कैप्टन,' 'किंग' जैसे उप नामो से मशहूर रिचर्ड्स ने उसके बाद पीछे मुड़ कर नहीं देखा। हर तरह की पिच पर हर तरह की गेंदो का विध्वंस करने वाले रिचर्ड्स आकडो की नजर से क्रिकेट के बादशाह नहीं ठहरते लेकिन अपने स्टाइल और रन बनाने की रफ्तार ने तो उन्हे निर्विवाद रूप से आज की क्रिकेट का बादशाह बना दिया है।

आकड़े देखे जाएं तो हर फील्ड मे रिचर्ड्स पिछडे नजर आएगे। पिछले दिनों आस्ट्रेलिया मे उन्होने फर्स्ट क्लास मैचों की सोवीं सेंचुरी बनाई। पर यह कारनामा तो बीसियों खिलाड़ी कर चुके है। आस्ट्रेलिया के खिलाफ ब्रिसबेन का टैस्ट उनके कॅरियर का सौवा टेस्ट था। पर उनमे पहले गावस्कर (124 टेस्ट), कॉलिन काउड्री (114), क्लाइव लायड (110), ज्योफ बायकाट (108) और गावर (100) इस सीमा तक पहुच चुके हैं और अब तो इस कतार मे भारत के दिलीप वेंगसरकर और आस्ट्रेलिया के एलन बोर्डर भी शामिल हो गए हैं। रिचर्ड्स ने टैस्टों में अब तक 22 शतक बनाए हैं। गावसकर, ब्रेडमैन और सोबर्स की बात छोड़ भी दी जाए तो भी रिचर्ड्स इस मामले मे बोर्डर से पीछे हैं।

रिचर्ड्स ने पर्थ मे चल रहे दूसरे टेस्ट से पहले तक 7336 रन बनाए थे। गावसकर से तो वे काफी पीछे हैं। मौजूदा खिलाड़ियों में बोर्डर उनसे आगे हैं।

रिचर्ड्स टेस्टों में सौ कैच ले चुके हैं लेकिन यह उपलब्धि तो कोलिन काउड्री, वाबी सिमसन, वाल्टर हैमंड, सोवर्स, इयान व ग्रेग चैपल, बोर्डर, गावसकर और लायड के नाम तो पहले से ही दर्ज हैं। लेकिन इन सबके लिए रिचर्ड्स को तो दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने तो टेस्ट क्रिकेट की शुरुआत नहीं की थी। वे तो काफी बाद में इस गौरवशाली खेल से जुड़े थे। इसके बावजूद अपने तूफानी अंदाज और आकर्षक खेल की वजह से रिचर्ड्स ने जो जगह बना ली है उसका कोई सानी नहीं है।

व्यक्तिगत उपलब्धियों के आगे भी अपने नैसर्गिक खेल को खेल पाने की क्षमता बहुत कम खिलाड़ियों में होती है। रिचर्ड्स में यह क्षमता कूट-कूट कर भरी हुई है। तभी तो 1976 में इंग्लैंड के खिलाफ ओवल टेस्ट में 291 रन पर पहुंच कर भी तिहरे शतक की चिंता में वे सुस्त नहीं हुए। उनका कहना है—'300 रन एक पारी में बनाने की तमन्ना किस खिलाड़ी में नहीं होती। मेरी भी है लेकिन मैं इसके लिए अपने खेल को नहीं बदल सकता। जैसा खेलता हूं वैसा ही खेलता रहूंगा।

एक दिन के मैचों में रिचर्ड्स बिना किसी शक के बादशाह हो गए हैं। यह आंकड़ों की भाषा में वे सिर्फ इस मायने में बोर्डर से हारे हैं कि बोर्डर के मुकाबले उन्होंने कम मैच खेले हैं। लेकिन 7 जून 1975 को वन डे क्रिकेट में शुरू किए गए सफर में उन्होंने जो सफलताएं पाई हैं उनका मुकाबला करने वाला कोई खिलाड़ी नहीं है। 149 मैचों में उन्होंने सबसे ज्यादा 5869 रन बनाए हैं। सबसे ज्यादा 11 शतक उनके नाम है। सबसे ज्यादा अर्धशतक—41 भी उन्होंने ही बनाए हैं। टेस्टों और वन डे में प्रति पारी 40 से ज्यादा रन बनाने का औसत उन्होंने कायम रखा है।

रंगीले मिजाज के खिलाड़ी रिचर्ड्स चुटकुले सुनाने में माहिर हैं। उनकी हंसी का अंदाज भी निराला है। हकलाते हुए बोलना और यकायक हंस कर बात पूरी करने का उनका अंदाज सिर्फ उन्हीं का है। लेकिन उन्हें गुस्सा भी बहुत जल्दी आ जाता है। आज तो वे यह मानते हैं कि अंपायरों के फैसले पर चिड़चिड़ाना नहीं चाहिए लेकिन एक समय था जब अंपायर के फैसले पर वे भन्ना जाते थे। उन्हें याद है अपनी जिंदगी का वह पहला महत्वपूर्ण मैच जिसमें दर्शक सिर्फ उनकी ही बल्लेबाजी देखने आए थे। रिचर्ड्स कहते हैं कि पहली गेंद उनके पैड में लगी पर अंपायर ने उन्हें बैट-पैड कैच आउट दे दिया। रिचर्ड्स बौखला गए। नाराजगी उन्हें अपने आउट होने की नहीं थी बल्कि इस बात की थी कि दर्शकों पर क्या प्रतिक्रिया होगी।

आज रिचर्ड्स के मन में अंपायरों के लिए सम्मान है। लेकिन वे तटस्थ अंपायर नियुक्त करने के खिलाफ हैं। उनका मानना है है कि इससे बेवजह

अंपायर की निष्पक्षता पर उंगली उठती है। रिचर्ड्स की राय है कि अंपायरों का एक पैनल बना लिया जाए और उन्ही में से अपायर नियुक्त किए जाए।

टैस्ट क्रिकेट में 7000 रन बनाने वाले बल्लेबाज

बल्लेबाज	टैस्ट	रन	औसत	7000 रन पूरे करने के लिए टैस्ट
सुनील गावसकर	125	10122	51.12	80
ज्योफ बॉयकाट	108	8114	47.72	94
गैरी सोबर्स	93	8032	57.78	79
कोलिन काउड्रे	144	7624	44.06	100
सी. लॉयड	110	7515	46.67	102
एलन बोर्डर*	94	7343	53.59	92
वाली हैमण्ड	85	7249	58.45	80
ग्रैग चैपल	87	7110	53.86	87
विव रिचर्ड्स*	94	7045	53.37	94

*अभी भी खेल रहे हैं

विश्व-कप, क्रिकेट

एक दिन के क्रिकेट की आज जो स्थिति बन गई है उसे देख कर नहीं लगता कि यह विश्व क्रिकेट से कभी अलग हो पाएगा।

दरअसल परम्परागत टेस्ट क्रिकेट से ऊबे लोगों को तेज रफ्तार क्रिकेट का मजा देने के लिए ही सीमित ओवर की क्रिकेट शुरू की गई थी। कोई 20 साल पहले इंग्लैंड में यह हालत हो गई थी कि दर्शकों ने टेस्ट मैचों का रुख करना ही बन्द या कम कर दिया था। क्रिकेट में उनके आकर्षण को बनाए रखा जाए, इसके लिए ही सीमित ओवर के सनसनीखेज क्रिकेट की शुरुआत की गई। यह तरकीब काम कर गई। मैदान में दर्शक भी जुटने लगे और उसी अनुपात में पैसा भी आने लगा, जिससे क्रिकेट पहले की तुलना में आर्थिक स्तर पर काफी सम्पन्न हो गया।

एक दिन के क्रिकेट की तेजी से बढ़ती लोकप्रियता को ध्यान में रखकर 1975 में इसकी विश्व कप प्रतियोगिता आयोजित करने का फैसला किया और इंग्लैण्ड की प्रुडेंशियल इन्श्योरेंस कम्पनी के प्रायोजकत्व में इंग्लैण्ड में इसी वर्ष प्रुडेंशियल कप के नाम से पहली बार विश्व 7 से 21 जून 1975 के बीच सम्पन्न इस प्रति-

योगिता में आठ टीमों को दो ग्रुपों में इंगलैण्ड, भारत न्यूजीलैण्ड तथा पूर्वी अफ्रीका तथा दूसरे ग्रुप में आस्ट्रेलिया पाकिस्तान, वेस्टइण्डीज तथा श्रीलंका की टीमों को रखा गया। कुल 14 मैंच खेले गए और क्लाइव लायड के नेतृत्व में वेस्टइण्डीज की टीम ने 21 जून को लार्ड्स के ऐतिहासिक मैदान पर आस्ट्रेलिया को सघर्षपूर्ण मुकाबले में 17 रन से हराकर पहले विश्व कप पर अधिकार जमाया।

कपिलदेव के नेतृत्व में भारतीय रणबांकुरों ने लार्ड्स के ऐतिहासिक मैदान पर 25 जून 1983 को जो करिश्मा कर दिखाया वह छह वर्ष बीत जाने के बाद भी लगता है जैसे कल की ही बात है।

वेस्टइण्डीज की शक्तिशाली टीम को 43 रन से हराकर भारत ने पहली बार एक दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय क्रिकेट में अपनी ख्याति स्थापित की। तीसरी प्रुडेंशियल कप क्रिकेट प्रतियोगिता में मैचों की संख्या बढ़ा दी गई थी। इस बार कुल 27 मैंच खेले गए जबकि पहली दो प्रतियोगिताओं में केवल 14-14 मैंच ही हुए थे। लीग में प्रत्येक टीमों को एक दूसरे के साथ एक की जगह दो-दो मैंच खेलने को मिलें जिससे आठ ही टीमों के रहते हुए भी मैंचों की संख्या काफी बढ़ गयी।

चौथे विश्व कप का आयोजन 1987 में भारत और पाकिस्तान की सयुक्त मेजबानी से किया गया। यह पहला अवसर था जब इसका आयोजन इंग्लैंड से बाहर हुआ।

प्रतियोगिता	वर्ष	चैंपियन देश
पहली	1975	वेस्ट इण्डीज
दूसरी	1979	वेस्ट इण्डीज
तीसरी	1983	भारत
चौथी	1987	आस्ट्रेलिया

विश्वकप (फुटबाल)

लोकप्रियता की दृष्टि मे फुटबाल इस समय विश्व का सर्वाधिक लोकप्रिय खेल है। एक समय था जब फुटबाल को हिकारत की दृष्टि से देखा जाता था और फुटबाल के लिए यह उक्ति प्रचलित थी कि यह साधारण लोगों द्वारा साधारण से आनन्द के लिए खेला जाने वाला साधारण सा खेल है। लेकिन समय के साथ-साथ फुटबाल के नियम और कायदे-कानून बदलते रहे और आज विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय खेल के रूप में फुटबाल प्रतिष्ठित है।

फुटबाल की लोकप्रियता से प्रोत्साहित होकर सात देशों के प्रतिनिधियों ने

21 मई, 1904 को फेडरेशन, इंटरनेशनल द फुटबाल एसोसिएशन (फीफा) की स्थापना की।

फीफा ने 1930 से हर 4 वर्ष के अंतराल से विश्व कप की शुरूआत का निश्चय लिया। 1920 में फीफा के अध्यक्ष फ्रांस के जूले रीमे थे। उनके नाम पर नौ पौंड ठोस सोने की एक फुट ऊंची चमचमाती जूले रीमे ट्रॉफी (अब यह गला कर समाप्त कर दी गई है) बनाई गई।

प्रथम विश्व कप

उरुग्वे की स्वतन्त्रता की सौवीं वर्षगाठ पर उरुग्वे के शहर मोंटेवीडियों में 13 से 30 जुलाई 1930 तक प्रथम विश्व कप फुटबाल का आयोजन हुआ। मेजबान उरुग्वे और अर्जेंटीना के बीच फाइनल हुआ।

मध्यावकाश तक दर्शकों से भरा स्टेडियम स्तब्ध बैठा रहा क्योंकि मेजबान 2-0 से पिछड़ रहे थे लेकिन उत्तरार्द्ध में उरुग्वे ने फुटबाल कौशल और सारी शक्ति लगा दी। उन्हें फल भी मिला। थोड़ी ही देर में उनके पक्ष में 2-4 का स्कोर था और उरुग्वे प्रथम विश्व कप का विजेता।

इटली-1934

रोम में 27 मई, 1934 से दूसरी प्रतियोगिता हुई। इस बार से प्रतियोगिता का स्वरूप बदलकर ग्रुप मैचों के बदले नाक आउट मुकाबले कर दिए गए।

इटली और चेकोस्लोवाकिया के बीच शानदार ढंग से खेले गए फाइनल में पुक ने चेक टीम को बढ़त दिलाई। इस बढ़त की बराबरी की ओरसे के सपनीले घुमावदार(डिप) शाट ने। फिर आया शियावो का गोल और उसी के साथ इटली विश्व विजेता।

फ्रांस-1938

युद्ध की आशंका से ग्रस्त विश्व में तीसरे विश्व कप फुटबाल की मेजबानी फ्रांस ने की।

पेरिस में हुए फाइनल में एक बार फिर इटली ने जूले रीमे कप जीता। तेज गति और श्रेष्ठ फुटबाल शैली का प्रदर्शन करते हुए कोलोजी और पिआलो के गोलों से इटली ने हंगरी पर 4-2 की जीत दर्ज की। इस प्रतियोगिता मे लियोनीदस डी सिल्वा को उनके गेंद नियंत्रण और चुस्ती-फुर्ती के कारण काले हीरे की संज्ञा दी गई।

ब्राजील-1950

विश्वयुद्ध के कारण 12 वर्षों तक फुटबाल स्थगित रही। ब्राजील मे आयो-

जित इस प्रतियोगिता में पहली वार चार-चार टीमों के ग्रुप बनाए गए। पहली वार सेमी-फाइनल और फाइनल जैसी कोई चीज नही थी वल्कि इसके बदले चारों ग्रुपों की 'टाप' टीमों को आपस मे भिड़कर फैसला करना था। उरुग्वे की टीम स्पेन से 2-2 से वरावर रही।

इसके वाद सबसे महत्वपूर्ण मंच हुआ। उरुग्वे ने शिफॅनिओ और गेगिया के गोलों से ब्राजील पर 2-1 से जीत दर्ज की, साथ ही साथ विश्व विजेता का खिताब भी जीता।

स्विटजरलैंड-1954

चौथे विश्व कप की मेजबानी स्विटजरलैंड को सौंपी गई। इसे जीतने का प्रवलतम दावेदार हंगरी की टीम को समझा जा रहा था क्योंकि उसने विश्व कप से कुछ पहले इंग्लेंड को उसी की भूमि पर 6-3 से हराने का गौरव पाया था।

लेकिन फाइनल मे आशाओं के विपरीत जर्मनी ने 3-2 की शानदार जीत दर्ज की। फुटवाल का खेल अपने पूरे कौशल पर था। तेज गति की दौड़, लवे पास, जोरदार शाट और कुल 5 गोल।

स्वीडन-1958

अगला फुटबाल मेला एक वार फिर से यूरोप के दूसरे सुन्दर देश स्वीडन मे लगा। यहां से ब्राजील के काले हीरे और फुटवाल के जादूगर पेले का चकाचौंध भरा खेल फुटबाल क्षितिज पर उभरा, जो दो दशकों तक छाया रहा।

वावा और पेले के 2-2 गोलो तथा जगाले के गोल ने ब्राजील को 5-2 से ट्रॉफी जिताने मे मदद की।

चिली-1962

चिली में एक बार फिर अपने फुटवाल कौशल का जबरदस्त प्रदर्शन करते हुए ब्राजील ने दोबारा रीमे ट्रॉफी पर कब्जा किया। फाइनल में पेले के बिना भी, जो घायल होकर अनुपस्थित थे, ब्राजील ने चेकोस्लोवाकिया को 3-1 से हराया। अमरील्डो, जीटो और वावा ने ब्राजील के गोल किए।

इंग्लैंड-1966

फुटवाल की जन्मदाता और विश्व को फुटवाल सिखाने वाले इंग्लैंड मे विश्व कप फुटवाल का आठवां मेला लगा।

30 जुलाई को विश्व के सभी फुटबाल प्रेमियों की निगाहें वेंबली स्टेडियम लंदन पर लगी थी। इंग्लैंड की ओर से हर्स्ट ने तीन गोल और पीटर ने एक गोल

किया। परिणाम रहा इंग्लैंड के पक्ष में 4-2 की विजय व जूले रीमे ट्रॉफी पर कब्जा।

मैक्सिको-1970

मैक्सिको में फाइनल इटली और ब्राजील दोनों के लिए ही महत्वपूर्ण था क्योंकि दोनों ही देश इस कप को इससे पहले दो बार जीत चुके थे। एक और विजय उन्हें सदा के लिए जूले रीमे ट्रॉफी देने जा रही थी।

चिर प्रतीक्षित फाइनल में एक लाख से अधिक दर्शकों के सम्मुख ब्राजील ने *4-1 की निर्णायक जीत से अपने फुटबाल की श्रेष्ठता का डंका बजा दिया।* पेले, ग्रेसन, जैरिक और अल्बर्टो ने ब्राजील को रीमे ट्रॉफी जिताने वाले गोल किए।

पश्चिम जर्मनी-1974

पं० जर्मनी में 10वां विश्व कप हुआ। इस बार से विजेताओं के लिए 17 हजार पौंड की 18 कैरट सोने की नयी 'फीफा' ट्रॉफी तैयार की गई।

फाइनल में हालांकि हालैंड ने काफी तेज और अच्छे फुटबाल का प्रदर्शन किया लेकिन मुलर और ब्रेटर के गोलों में से सिर्फ एक उतार पाई और 2-1 से हार गई।

अर्जेंटीना-1978

अर्जेंटीना में एक बार फिर हालैंड ग्रुप 'ए' से और ग्रुप 'बी' से अर्जेंटीना सर्वोच्च स्थान पर रहते हुए फाइनल मे पहुंची।

फाइनल में एक बार फिर हालैंड दुर्भाग्यशाली रही। पूरे समय तक 1-1 से बराबरी के बाद अर्जेंटीना के कैम्प्स (2) और बोटोनी के गोल से हालैंड को 3-1 से पराजित किया।

स्पेन-1982

स्पेन मे हुए विश्व कप को इटली के फुटबाल का पुनर्जागरण कहा जा सकता है। 1938 के बाद इटली ने तीसरी बार विश्व कप पर अधिकार किया। इस बार अंतिम दौर मे 16 टीमों से बढ़कर 24 टीमें थी।

फाइनल में रोसी व एंटोनियो के गोलों से जर्मनी पर 3-1 से इटली ने जीत दर्ज की। इटली की जीत में उनके 40 वर्षीय कप्तान व गोली डायनो जोफ ने कमाल का खेल दिखाया।

मैक्सिको में हुए विश्व कप प्रतियोगिता में अर्जेंटीना ने विजेता और पश्चिम जर्मनी ने उपविजेता का गौरव प्राप्त किया।

विश्व कप, हाकी

15 मार्च 1975 को भारतीय हाकी के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय और जुड़ गया। क्वालालम्पुर में हुई तीसरी विश्व कप प्रतियोगिता में भारतीय हाकी टीम की विजय के हर्षोल्लास में भारतीय हाकी-प्रेमियों ने पराजय की सभी पुरानी यादों को भुला दिया। 11 साल बाद हाकी-जगत में भारत ने पुनः अपनी विजय पताका फहराई और अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर लिया। यों तो एक जमाने में भारत ने ओलम्पिक खेलों में लगातार छह बार चैम्पियन बनने का गौरव प्राप्त किया था, लेकिन पिछले 21 वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में लगातार हारते-हारते भारतीय हाकी-प्रेमी इतने हताश और निराश हो चुके थे कि यह मान लिया गया कि भारतीय हाकी का स्वर्ण युग समाप्त हो चुका है। 1964 में तोक्यो ओलम्पिक खेलों में विजय के बाद से अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त करना हमारे लिए एक सपना बन गया था 1986 में लन्दन में हुई प्रतियोगिता में भारत को अन्तिम स्थान प्राप्त हुआ।

पहला विश्व कप
(बारसेलोना—1971)

1. पाकिस्तान
2. स्पेन
3. भारत
4. केनिया
5. पश्चिमी जर्मनी
6. हालैंड
7. फ्रांस
8. आस्ट्रेलिया
9. जापान
10. अर्जेन्टीना

दूसरा विश्व कप
(एम्स्टर्डम—1973)

1. हालैंड
2. भारत
3. पश्चिमी जर्मनी
4. पाकिस्तान
5. स्पेन
6. इंग्लैंड
7. न्यूजीलैंड
8. बेल्जियम
9. अर्जेन्टीना
10. जापान
11. मलयेशिया
12. केनिया

तीसरा विश्व कप
(क्वालालम्पुर—1975)

1. भारत
2. पाकिस्तान
3. पश्चिमी जर्मनी
4. मलयेसिया
5. आस्ट्रेलिया
6. इंग्लेंड
7. न्यूज़ीलेंड
8. स्पेन
9. हालेंड
10. पोलेंड
11. अर्जेन्टीना
12. घाना

पांचवा विश्व कप
बम्बई—1982

1. पाकिस्तान
2. पश्चिमी जर्मनी
3. आस्ट्रेलिया
4. हालेंड
5. भारत
6. सोवियत संघ
7. न्यूज़ीलेंड
8. पोलेंड
9. इंग्लेंड
10. मलयेशिया
11. स्पेन
12. अर्जेन्टाइना

चौथा विश्व कप
(ब्यूनस आयर्स—1978)

1. पाकिस्तान
2. हालेंड
3. आस्ट्रेलिया
4. प० जर्मनी
5. स्पेन
6. भारत
7. इंग्लेंड
8. अर्जेन्टीना
9. पोलेंड
10. मलयेसिया
11. कैना
12. आयरलेंड
13. इटली
14. बेल्जियम

छठा विश्व कप
लन्दन—1986

1. आस्ट्रेलिया
2. इंग्लेंड
3. पश्चिमी जर्मनी
4. सोवियत संघ
5. स्पेन
6. अर्जेन्टाइना
7. नीदरलेंड
8. पोलेंड
9. न्यूज़ीलेंड
10. कनाडा
11. पाकिस्तान
12. भारत

विश्वनाथ (गुंडप्पा रंगनाथ)

गुंडप्पा विश्वनाथ का जन्म 12 फरवरी, 1949 को बंगलौर में हुआ। 14 साल की उम्र से ही उन्होंने बंगलौर के फोर्ट हाईस्कूल में क्रिकेट खेलना शुरू कर दिया था।

किसी भी टेस्ट शृंखला के समाप्त होने के बाद खिलाड़ियों के खेल-प्रदर्शन के आधार पर अक्सर क्रिकेट के जानकार लोग बल्लेबाज़ी और गेंदबाज़ी का औसत-क्रम निकालते हैं। भारत और वेस्टइंडीज (1974-75) की टेस्ट-शृंखला समाप्त होने के बाद अब दोनों टीमों का 'बल्लेबाज़ी औसतक्रम' निकाला गया तो वेस्टइंडीज की टीम में पहला स्थान कप्तान क्लाइव लॉयड को मिला और भारतीय टीम में पहला स्थान भारत के विश्वस्त बल्लेबाज गुंडप्पा रंगनाथ विश्वनाथ को प्राप्त हुआ। उक्त टेस्ट-शृंखला मे विश्वनाथ ने 10 पारियो मे 63.11 रनो के औसत से कुल 568 रन बनाए थे और उसमें उनका सर्वोच्च स्कोर 139 रन का था।

यों भी विश्वनाथ भारत के ऐसे खिलाड़ी हैं जिन्होने भारत की उस पुरानी धारणा को तोड़ा है जिसमे यह कहा जाता था कि जो खिलाड़ी अपने जीवन के पहले टेस्ट में शतक बनाने में सफल हो जाता है वह कभी पुनः शतक बनाने मे सफल नही होता। विश्वनाथ ने पहला शतक 1969 मे कानपुर में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध अपना पहला टेस्ट खेलते हुए बनाया था, जिसमे उन्होने 137 रन बनाए थे। दूसरा शतक उन्होंने 1973 में बम्बई में इंग्लैंड के विरुद्ध शृंखला का आखिरी टेस्ट खेलते हुए बनाया था, जिसमे उन्होने 113 रन बनाए थे। तीसरा शतक उन्होने 31 दिसम्बर, 1973 को ईडन गार्डन में वेस्टइंडीज शृंखला के तीसरे टेस्ट मे बनाया, जिसमें उन्होंने 139 रन बनाए, जो उनका अब तक का सर्वाधिक स्कोर है। यह टेस्ट भारत ने 85 रनों से जीता था और इस जीत का सारा श्रेय विश्वनाथ को ही था।

विश्वनाथ भारत के ऐसे छठें खिलाड़ी हैं जिन्हें अपने पहले ही टेस्ट में शतक बनाने का गौरव प्राप्त हुआ है। इससे पहले यह गौरव लाला अमरनाथ, दीपक शोधन, कृपाल सिह, अब्बास अली बेग और हनुमन्त सिंह को प्राप्त हुआ।

पाच फुट दो इंच लम्बे विश्वनाथ टेस्ट क्रिकेट में चार, पाच और छह हज़ार रन पूरे करने वाले पहले भारतीय बल्लेबाज़ रहे। विजय मर्चेंट के बाद वे एकमात्र ऐसे बल्लेबाज थे जो लेट कट में निपुण थे। 1969-70 में बिल लारी की आस्ट्रेलियाई टीम के खिलाफ उन्होने पहले ही टेस्ट में सेंकड़ा बनाया था। वे टेस्ट मे दुबारा खेलने के इच्छुक थे। 1984-85 तक उन्होंने वापसी के लिए काफी कठिन परिश्रम भी किया, अन्त में टेस्ट क्रिकेट से सन्यास लेकर अलग हो गये।

वीनू मांकड

वीनू मांकड उन गिने-चुने प्रमुख खिलाड़ियों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने टेस्ट क्रिकेट को गौरव मंडित किया हो। वह ऐसे पहले भारतीय खिलाड़ी हैं जिन्होंने टेस्ट क्रिकेट में 2000 से अधिक रन व 100 से अधिक विकेट लिये हैं। मांकड से पहले यह श्रेय सिर्फ विल्फ्रेड रोड्स और कीथ मिलर को ही प्राप्त था। बाद में ट्रेवर बेली, रिची बेनो, गैरी सोबर्स, टाम गोडार्ड भी इस गौरव में भागीदार बने।

वीनू मांकड पहले आलराउंडर हैं जिन्होंने 1946 की इंग्लैंड यात्रा में एक हजार से अधिक रन व 100 से अधिक विकेट लिये थे। भारतीय क्रिकेट में वीनू ऐसे पहले खिलाड़ी थे जिन्होंने दो दोहरे शतक बनाये। बाद में यह श्रेय दलीप सरदेसाई और सुनील गावसकर को भी मिल चुका है। गावसकर अब तीन दुहरे शतक लगाकर सर्वोच्च हैं। साथ ही मांकड पहले भारतीय क्रिकेटर हैं जो टेस्ट क्रिकेट में पहले नंबर से अंतिम नंबर तक हर स्थान पर बल्लेबाजी कर चुके हैं।

बंबई से त्रिनिडाड और लंदन से मेलबोर्न तक तहलका मचाने वाले वीनू मूलवतराय मांकड का जन्म 12 अप्रैल 1917 को महान रणजी के राज्य (जाम नगर) गुजरात में हुआ था। दायें हाथ से बल्लेबाजी और बायें हाथ से गेंदबाजी करने वाले वीनू की प्रतिभा स्कूली दिनों से ही चमक उठी थी। वेंसेले की खोज वीनू ने 15 वर्ष की ही उम्र में काफी नाम कमा लिया था। वीनू के प्रदर्शन से प्रभावित वेंसेले ने इंग्लिश कप्तान आर्थर गिलीगन से कहा था "मुझे एक ऐसा प्रतिभाशाली खिलाड़ी मिला है, जो न केवल बल्लेबाजी में परिपक्व है बल्कि लब्बू स्पिन गेंदबाजी में भी बेजोड़ है। आप मेरे शब्दों को स्मरण रखें कि अगले 10-15 वर्षों में यह खिलाड़ी विश्व क्रिकेट में गजब ढायेगा।"

अपने पूरे क्रिकेट जीवन में मांकड ने 44 टेस्टों में भारत का प्रतिनिधित्व किया। जिसमें 31.47 रन प्रति पारी की औसत से 2109 रन 5 शतकों की सहायता से बनाये तथा कुल 162 विकेट 32.31 की औसत से लिए।

टेस्ट क्रिकेट से अवकाश के बाद वह आ० एल० टायरसी मेमोरियल सेंटर में कुछ वर्षों तक कोच रहे। दिलीप सरदेसाई, रामनाथ पारकर, एकनाथ सोलकर, अशोक मांकड और कैलाश गट्टानी को प्रकाश में लाने का श्रेय वीनू मांकड को ही है।

21 अगस्त 1978 को इस महान भारतीय हरफनमौला ने ग्रेट पेवेलियन की राह ली। भारतीय क्रिकेट उनके खेल और प्रतिभा की हमेशा ऋणी रहेगी।

संतोष ट्रॉफी

'संतोष ट्रॉफी' फुटबाल की प्राचीन प्रतियोगिता है। इस ट्रॉफी का आयोजन 1941 में बंगाल फुटबाल एसोसिएशन द्वारा संतोष (अब बंगला देश) के स्वर्गीय महाराजा सर मनमथराय चौधरी की स्मृति को चिर स्थायी रखने के उद्देश्य से किया गया था। इस प्रतियोगिता का पहला आयोजन ढाका स्पोर्टिंग एसोसिएशन द्वारा क्षेत्रीय आधार पर किया गया किंतु असुविधाओं को देखते हुए यह प्रतियोगिता एक ही स्थान पर आयोजित की जाने लगी। बंगाल की टीम ने 1949-51 में इस ट्रॉफी को लगातार तीन वर्ष तथा 1975-79 लगातार 5 वर्ष और कुल मिलाकर 21 बार जीता। दूसरा स्थान कर्नाटक का रहा है जिसने चार बार इस ट्रॉफी पर विजय प्राप्त की है।

कर्नाटक ने, जो पहले मैसूर के नाम से जाना जाता था, 9 बार इसके फाइनल में प्रवेश पाया। पंजाब, और रेलवे की टीमों ने 3-3 बार ट्रॉफी पर अधिकार जमाया।

सतपाल

बवाना (हरियाणा) में 10 दिसंबर, 1956 में जन्मे महाबली सतपाल को कुश्ती में भारत के लिए एकमात्र स्वर्ण जीतने का गौरव प्राप्त हुआ।

सौ किलोग्राम वजन में सतपाल एशिया का सबसे महान पहलवान है, इसमें कोई दो राय नहीं। सतपाल ने पहले दौर में अफगानिस्तान के रेहीना नीरीस्तानी को केवल 2 मिनट 52 सेकिंड में हराकर अपना विजय अभियान शुरू किया। अंबेडकर स्टेडियम में ही सतपाल ने अपने जीवन के सभी खिताब जीते थे। यह स्टेडियम इसके लिए भाग्यशाली रहा है।

दूसरे दौरे में सतपाल ने जापान के सुजुकी अकीरा को अंकों से पराजित कर फाइनल दौर में प्रवेश पा लिया। फाइनल में सतपाल की टक्कर मंगोलिया के नामी गतोख से हुई।

हजारों दर्शकों के सामने भारत के चहेते सतपाल ने अपनी सिंह गर्जना से मंगोलियाई चैंपियन को चकित कर दिया।

उपलब्धियां

फ्री-स्टाइल कुश्ती : 1968-69 अंतर स्कूल। 1970 में राष्ट्रीय स्कूली

खेलों में 46 किलो में स्वर्ण । 1971 मे दिल्ली राज्य प्रतियोगिता में स्वर्ण ।

1972 से 1982 तक 62, 74, 82, 100, 100 किलो से ऊपर भार के वजनों मे लगातार राष्ट्रीय चैंपियन ।

मिट्टी के अखाड़े में : 1971 में हिंदुओं में एकमात्र नोर्वेंरवां विजेता—

1973 में भारत कुमार; 1974 में रुस्तम-ए-हिंद; 1975 में भारत केसरी; 1975 में रुस्तम-ए-हिंद; 1975 में रुस्तम-ए-भारत; 1976 में रुस्तम-ए-हिंद, 1976 मे अर्जुन पुरस्कार; 1976 में एक लाख की कुश्ती जीती (संजय गांधी से पुरस्कृत); 1977 में महाभारत केसरी; 1978 मे भारत बलराम ।

अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में

1972, म्यूनिख ओलम्पिक—आठवां स्थान ।
1973 में विश्व चैंपियनशिप, तेहरान —पांचवां स्थान ।
1974 में राष्ट्रमंडलीय खेल क्राइस्टचर्च, न्यूजीलैंड—रजत पदक ।
1974 में एशियाई खेल, तेहरान—रजत पदक ।
1978 में राष्ट्रमंडलीय खेल, बैंकाक—रजत पदक ।
1978 में अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता, एडमंटन—रजत पदक ।
1979 में एशियाई कुश्ती प्रतियोगिता—रजत पदक ।
1980 में ओलम्पिक खेल, मास्को (चोट ग्रस्त) ।
1980 में अंतरराष्ट्रीय कुश्ती, उलन बटोर—कांस्य पदक ।
1982, विश्व कुश्ती, एडमंटन—छठा स्थान ।
1982, ब्रिस्बेन राष्ट्रमंडल खेल—रजत पदक ।
1982, एशियाई खेल, दिल्ली—स्वर्ण पदक ।

सरगमाथा

'सरगमाथा' नहीं 'एवरेस्ट' : भारत में ब्रितानी सरकार का राज था और जॉर्ज एवरेस्ट सन् 1823 से 1847 तक भारत के महासर्वेक्षक थे । अपने कार्यकाल मे उन्होंने 'विशाल त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण' कराया जिस का एक उद्देश्य था हिमालय के शिखरों की ठीक स्थिति और ऊंचाई की गणना । 1852 में भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मुख्य गणक राधानाथ सिकदार ने हिमालय के सर्वोच्च शिखर को खोज निकाला और उसका नाम 'पन्द्रहवां शिखर' रख दिया । कारण ? कहा जाता है कि सर्वेक्षण विभाग के अधिकारियों ने शिखर का स्थानीय नाम (सरगमाथा) पता लगाने की बहुत कोशिश की जिस में वे सफल नहीं हुए और तिब्बती नाम (चोमोलुंग्म) सर्वोच्च शिखर का न होकर पूरे शिखर-समूह का था । फिर 1862 मे एवरेस्ट साहब की महत्त्वपूर्ण सेवाओं के उपलक्ष्य में 'पन्द्रहवें

शिखर' का नामकरण हुआ—एवरेस्ट। अपना देशी नाम खो कर 'सरगमाथा' एक विदेशी नाम से ख्यात हो गया यह तो आश्चर्य की बात नहीं, लेकिन आज भी वही बिल्ला चिपका रहे, यह जरूर आश्चर्य की ही नहीं दु:ख की भी बात है।

(1953) कर्नल जॉन हंट के नेतृत्व मे फिर एक ब्रितानी अभियान का आयोजन हुआ। इस दल के दो सदस्यों—तेनसिंह नोर्के और एडमंड हिलेरी—को पहली बार सरगमाथा के 'माथे' पर 'तिलक' लगाने का सौभाग्य मिला। 29 मई का वह क्षण—मानव की एक महत्त्वाकांक्षा पूरी होने का वह क्षण (11 बज कर 30 मिनट)—अमर है। ("सात बार मैं कोशिश कर चुका हूं। वापस आया हूं और फिर प्रयत्न में लग गया हूं; किसी घमंड मे भर कर या जबर्दस्ती नहीं, दुश्मन पर हमला करने वाले सिपाही की तरह नहीं, बल्कि अपनी मां की गोदी की ओर ललकने वाले बच्चे की तरह।"—तेनसिंह)।

सरवटे (चंदू)

जन्म 22 जून, 1920। चंदू सरवटे बायें हाथ के बहुत अच्छे आलराउंडर थे। होलकर और मध्य प्रदेश का यह खिलाड़ी भारतीय टीम की प्रथम आस्ट्रेलिया यात्रा मे ओपनिंग बल्लेबाज के रूप मे खेला। उसकी आफब्रेक गेंदें भी काफी सधी हुई थी। दो बार इंग्लैंड यात्रा पर भी गया। 1947 में पहली इंग्लैंड यात्रा में शूटे बनर्जी (121 रन) के साथ मिलकर दसवें विकेट की साझेदारी मे 249 रन का रिकार्ड कायम किया, जिसमें स्वयं के 124 अविजित रन थे। रणजी ट्रॉफी में 12 शतकों की सहायता से 4889 रन बनाए और 281 विकेट भी लिये। उनके टेस्ट आकड़े इस प्रकार है—9 टेस्ट, 208 रन, 3 विकेट, 0 कैच।

सलीम दुर्रानी

विश्व का अब तक का सर्वश्रेष्ठ आलराउंडर कौन है—यदि आपसे यह प्रश्न पूछा जाये तो आप फौरन जवाब देंगे वेस्ट इंडीज का गारफील्ड सोबर्स। लेकिन नहीं, महान क्रिकेटर सर फ्रेंक वारेल का यह मत नहीं था। 1961-62 मे उन्होंने सोबर्स और भारत के सलीम दुर्रानी का खेल देखकर कहा था "दुर्रानी दुनिया का सर्वश्रेष्ठ आलराउंडर है।"

दुर्रानी अपने 22 वर्षों से अधिक के टेस्ट कैरियर में केवल 29 टेस्ट मैच ही खेल सके। इसका कारण क्रिकेट चयनकर्ताओ के साथ उनके कुछ मतभेद थे। यदि उनकी इस तरह उपेक्षा न की जाती तो वह संभवतः भारत के सफलतम आलराउंडर होते।

दुर्रानी (जन्म: 11 दिसंबर, 1934) ने अपना टेस्ट जीवन रिची बेनो की आस्ट्रेलियाई टीम के विरुद्ध 1959-60 की शृंखला में बंबई टेस्ट से किया था।

आलराउंडर होने के बावजूद उन्हें बल्लेबाजी में नंबर 10 पर उतारा गया था। उन्होंने 18 रन बनाये और लगभग एक घंटे तक बनाड और मैकिफ जैसे गेंदबाज़ों का डटकर प्रतिरोध किया।

टेस्ट रिकार्ड : आस्ट्रेलिया के विरुद्ध बंबई में बल्लेबाजी : 29 टेस्ट, 50 पारी 1202 रन, 104 उच्चतम, एक शतक सात अर्द्ध शतक।

गेंदबाज़ी : 6446 गेंद 2657 रन, 75 विकेट, 35.42 औसत, 6-73 सर्वश्रेष्ठ।

अलंकरण : अर्जुन पुरस्कार 1961।

सवाई मानसिंह

जयपुर के नरेश और पोलो के बादशाह, सवाई मानसिंह का इंग्लैंड के सिरेन-सेस्टर नामक स्थान में एक काउंटी पोलो मैच खेलते हुए 1970 में देहान्त हुआ था।

उनकी मृत्यु के बाद भारत में पोलो का गढ जयपुर, मानो निर्जीव हो गया हो। रामबाग पैलेस पोलो ग्राउण्ड, जहा न जाने सवाई मानसिंह ने कितने ऐतिहासिक मैच खेले थे, सूना-सूना सा लगता है। जब तक वे जीवित थे पोलो की चहल-पहल चलती रहती थी। सवाई मानसिंह अपने जमाने मे इस महंगे खेल को जनता को निःशुल्क दिखाते थे। उनकी यह उदारता आज भी लोग याद करते हैं।

1921 मे जयपुर नरेश महाराजा माधोसिंह द्वारा गोद लिए जाने से एक ही वर्ष पश्चात् 1922 में वे राजगद्दी पर आसीन हुए। जब वे मेयो कालेज अजमेर में अन्य राजघरानों के बालको के साथ अध्ययन करते थे, तभी उन्होने हॉकी, क्रिकेट, टेनिस और पोलो मे अपनी कुशलता का परिचय देना शुरू कर दिया था।

अच्छे घुडसवार होने के कारण ठाकुर धोकल सिंह की प्रेरणा से आपने जो एक बार पोलो को अपनाया, तो जीवन पर्यन्त आप पोलो के साथ ही जुड़े रहे, भारतीय पोलो को वर्तमान स्वरूप मे लोकप्रिय और 1947 मे ड्यूविल (फ्रांस) मे आयोजित विश्व प्रतियोगिता में विजयी बनाने में उनके नेतृत्व का योगदान अपने आपमें उनकी महानता का परिचायक है।

ब्रिटिश शासन के दौरान कतिपय घुड़सवार रेजीमेंटो तक सीमित पोलो के खेल को जनसाधारण के बीच लोकप्रिय बनाने में उनके अपूर्व योगदान को देखते हुए, यदि उन्हें आधुनिक भारतीय पोलो का 'जनक' भी कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। पोलो-प्रेम उनमे इस सीमा तक घर किए था कि उन्होंने अपनी तीसरी शादी भी प्रसिद्ध पोलो खिलाड़िन और कमेंटेटर, कूचबिहार की राजकुमारी (अब राजमाता) गायत्री देवी से की।

जयपुर रियासत के शासक के रूप में वे 1933 में अपनी निजी टीम लेकर इंग्लैंड गए और सभी 28 मैचों में विजय प्राप्त कर लौटे।

सर्वाधिकारी, बेरी

देश के मशहूर खेल-समीक्षक, लेखक और आकाशवाणी पर 'आंखों देखा हाल' सुनाने वाले 65 वर्षीय बेरी सर्वाधिकारी की कलम और आवाज सदा-सदा के लिए खामोश हो गई। भारतीय खेल पत्रकारिता का गौरव बढ़ने वाले इस यशस्वी पत्रकार को जिन दुखद परिस्थितियों से बाध्य होकर मृत्यु को अपनाना पड़ा (उन्होंने घर की तीसरी मंजिल की छत से कूद कर आत्महत्या की थी) उसने देश के हर खेल-प्रेमी के तन और मन को झकझोर-सा दिया।

खेल जगत में 'बेरी' या 'बेरी दा' के नाम से जाने वाले इस कर्मयोगी का पूरा नाम विजय सर्वाधिकारी था। वह केवल खेल समीक्षक ही नहीं थे बल्कि अपने जमाने में स्वयं क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी भी थे। इनके परिवार के अन्य सदस्यों का भी खेलकूद से काफी गहरा संबंध रहा। उनके चाचा नगेन सर्वाधिकारी को भारतीय फुटबाल का पिता कहा जाता था और बिनाय सर्वाधिकारी ऐसे पहले भारतीय थे जिन्होंने 1898 में खुली टेनिस प्रतियोगिता जीती थी। बंगाल के एक बहुत पुराने क्लब 'शोभाबाजार क्लब' की स्थापना भी सर्वाधिकारी परिवार द्वारा की गई थी।

जिस समय बेरी विद्यासागर कालेज में पढ़ रहे थे तभी उन्होंने क्रिकेट खेलना शुरू कर दिया था। बाद में वह स्पोटिंग यूनियन और कालीघाट की ओर से खेलते रहे। उन्होंने 'यूनिवर्सिटी ओकेजनल' नाम से एक ऐसी टीम बनाई जिसका विश्वविद्यालय में पढ़ने वाला हर छात्र सदस्य बन सकता था। इस टीम में खेलने वाले कई खिलाड़ी बाद में भारतीय टीम में भी शामिल हुए जैसे शूटे बैनर्जी और कार्तिक बोस आदि।

यों तो उन्होंने ओलम्पिक, विम्बलडन, टेस्ट क्रिकेट और कई अन्य महत्वपूर्ण प्रतियोगिताओं के विवरण लिखे लेकिन उन्हें सबसे ज्यादा सफलता क्रिकेट की समीक्षाओं पर मिली। दक्षिण अफ्रीका को छोड़ उन्होंने ऐसे सभी देशों का दौरा किया जहां क्रिकेट खेली जाती है। उन्होंने 140 टेस्ट मैचों से भी अधिक के विवरण लिखे और 100 से अधिक टेस्टों का आकाशवाणी से आखों देखा हाल सुनाया। 1967 में जब कलकत्ता के ईडन गार्डन में भारत और वेस्टइंडीज के बीच खेले गए टेस्ट में दर्शकों के हंगामे के कारण खेल में रुकावट आ गई तो उन्होंने वेस्टइंडीज की टीम को खेल जारी करने का परामर्श दिया।

स्वतंत्र लेखन के रूप में वह स्टेट्समैन, अमृत बाजार पत्रिका, हिंदुस्तान स्टेंडर्ड, और कई पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे। यों उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखी

है जिनमे से दो 'इंडियन क्रिकेट अनकवर्ड' और 'माइ वर्ल्ड आफ क्रिकेट' विशेष रूप से चर्चित रहीं। कुछ अन्य पुस्तकें हैं—'प्रिजेंटिंग इंडियन क्रिकेट' 'एज आई हैव सीन इट'।

सरोलकर (नीलिमा चन्द्रकान्त कुमारी)

आपका जन्म 1 अक्तूबर, 1957 को हुआ। आपने अपना खेल-जीवन 1969 में ही खो-खो राष्ट्रीय स्कूल खेल प्रतियोगिताओं मे मध्य प्रदेश का प्रतिनिधित्व करके आरम्भ किया था तथा 1969, 1970 और 1971 में अपनी टीम के लिए चैम्पियनशिप जीतने में सहायक रही। अपने राष्ट्रीय चैंपियन 1970 (विजेता), 1971 (विजेता), 1972 (रनरअप) तथा 1974 (विजेता) मे भी मध्य प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व किया था। आप 1971 मे राष्ट्रीय चैम्पियनशिप में मध्य प्रदेश खो-खो टीम की कप्तान भी रह चुकी हैं। आप खो-खो की एक श्रेष्ठ उत्साही खिलाड़ी हैं और जूनियर तथा सीनियर खिलाड़ी दोनो ही रूपों में सर्वोत्तम रही हैं।

सांड से लड़ाई (बुल फाइटिंग)

इन्सान जंगल की दुनिया से दूर, इस्पात और कंक्रीट की दुनिया मे आ बसा है, लेकिन बाहुबल की बानगी दिखाने की भावना उसमे आज भी बनी हुई है। जोर आजमाने के लिए और तो और मशीनें भी चल निकली हैं, जिनकी बेसुरी आवाज हाट-बाजार और मेले-ठेले मे अक्सर सुनाई पड़ती है। अगले जमाने के लोग मशीनों के कायल नही थे, वे जोर आजमाइश करते थे, बबर शेरो, रीछों और सांडों से। साड से भिड़ने के खेल दुनिया के कई हिस्सों में प्रचलित थे, कहीं-कहीं आज भी हैं। हमारे यहा तमिलनाडु के गांवों में मकर संक्रान्ति के दूसरे दिन माट्टू, पोंगल (मवेशी त्योहार) मनाया जाता है, जिसका प्रमुख आकर्षण होता है 'जाल्लिकट्टू' यानी साड से संघर्ष। एक बडी रकम, रेशमी धोती मे लपेटकर गाव के सबसे अड़ियल सांड के सीगों से बांध दी जाती है कि हिम्मत हो तो साड से भिडो और रकम ले लो। प्राचीन काल मे 'जल्लिकट्टू' का विजेता ही गाव के मुखिया की बेटी का वरण कर सकता था।

प्राचीन काल की बात छोड़िए, स्पेन और इस्पहानी अमेरिका में साड से लड़ने वाले मातादोर (मैटाडोर) आज भी लोकप्रियता की 'सबसे ऊंची पायदान' के अधिकारी समझे जाते हैं। तॉरोमाकी (साड-संघर्ष) इन दोनो प्रदेशों का राष्ट्रीय खेल है। इस खेल की शुरुआत हुई थी, प्राचीन रोम और थेस्साली मे। उत्तर अफ्रीका के मूर योद्धाओ ने इसे अपनाया। स्पेन का अन्दालुसिया प्रदेश जीतने के बाद उन्होंने वहां भी इसे चलाया। मूर आए और गए, मगर तॉरोमाकी

स्पेन में चलता ही रहा। सत्रहवीं शताब्दी में सामन्तों ने अपना यह खेल पेशेवर खिलाड़ियों को सौंपकर स्वयं संरक्षक का पद ग्रहण किया। इसी ज़माने में प्रसिद्धि पाई माताडोर फ्रान्सियों रोमेरो ने, जिनका तॉरोमाकी में वही स्थान है जो हाकी में ध्यानचन्द का था। रोमेरो ने तॉरोमाकी को वही रूप दिया जिस रूप में वह आज तक प्रचलित है।

स्पेन और इस्पहानी अमेरिका के सभी बड़े नगरों में सांड-संघर्ष के लिए विशेष क्रीड़ांगन बने हुए हैं, जिन्हें प्लाज़ा द तोरो (साड-अखाड़ा) कहते हैं। स्पेन की राजधानी मेड्रिड में इस तरह का सबसे बड़ा प्लाज़ा है, जिसमें बारह हज़ार दर्शक बैठ सकते हैं।

साइकिल पोलो

'पोलो' शब्द सुनते ही एक तेज खेल की कल्पना उभरती है। मस्तिष्क में तेज गति से दौड़ते घोड़ों और उन पर सवार चुस्त लोगों की छवि आती है जो 300 × 200 गज के मैदान में लंम्बी छड़ियों से गेंद खेलते हैं। चार-चार खिलाड़ियों की दो प्रतिद्वंद्वी टीमों द्वारा आधे घंटे के इस खेल को विश्वव्यापी स्तर पर मान्यता मिल चुकी है। लेकिन घोड़ों की अपेक्षा साइकिलों से यदि यह खेल हो तो सहज ही उसकी कल्पना नहीं होती। तथापि साइकिल पोलो भी एक खेल है—और विशुद्ध भारतीय।

साइकिल पोलो जोधपुर के भूतपूर्व राजघराने की देन है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अचानक घोड़ों की संख्या बहुत कम हो गयी। यूरोप में इसके तुरंत बाद भोजन का जो भीषण अकाल पड़ा तो लोग अंधाधुंध घोड़ों को मारकर खाने लगे। ऐसा लगता था मानों घोड़े की जाति ही समाप्त हो जायेगी। भारत में अच्छे घोड़े यूरोप के कुछ देशों से मंगवाये जाते थे। अचानक उनकी कमी देखकर तत्कालीन जोधपुर राज्य के राजा उमेदसिंह, जो स्वयं पोलो के उत्कृष्ट खिलाड़ी होने के अतिरिक्त इस खेल के संरक्षक भी थे, ने सर्वप्रथम साइकिल पोलो की कल्पना की। सन् 1920 में उन्होंने सोचा—क्यों न घोड़े की बजाय साइकिलों का उपयोग किया जाए? तत्काल ही छड़ियों के आकार छोटे किये गये और टेनिस की गेंद अपनायी गयीं।

राजस्थान के बाद इस खेल को सेना के जवानों में लोकप्रियता मिली। स्वतंत्रता के बाद पंजाब में भी साइकिल पोलो दूर-दूर तक खेला जाने लगा। इसका राष्ट्रीय संगठन इस समय नयी दिल्ली में है।

साइकिल पोलो मडगार्ड रहित साधारण साइकिलों पर सवार होकर खेला जाता है। इसके नियम प्रायः वही हैं जो पोलो में रहते हैं। केवल एक ही अंतर

यह है कि इसमें खिलाड़ी एक-दूसरे को धक्का नहीं दे सकता। यहां तक कि स्पर्श होना भी फाउल है।

साइकिल पोलो श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया और नेपाल में भी खेला जाता है पर अंतरराष्ट्रीय खेल के रूप में इसे अब तक मान्यता नहीं मिली है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पोलो की तुलना में साइकिल पोलो एक धीमा खेल है। लेकिन इस पर खर्च इतना कम है कि टीम बनाकर कहीं भी इसे खेला जा सकता है।

वर्षों से राजस्थान इस खेल का राष्ट्रीय चैंपियन रहता आया है। पिछली प्रतियोगिता में पंजाब का दूसरा स्थान रहा। महिलाओं ने यह खेल अब तक नहीं अपनाया है।

सानी लिस्टन

मुक्केबाजी के इतिहास में सानी लिस्टन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 1962 में जब लिस्टन ने पहले ही राउण्ड में विश्व चैंम्पियन फ्लायड पैटर्सन को हराकर विश्व-विजेता का पद प्राप्त किया तो मुक्केबाजी की दुनिया में एक हलचल-सी मच गई। लेकिन वह केवल दो वर्ष तक ही विश्व-विजेता के पद को बरकरार रख सके और उसके बाद कैंसियस क्ले (मोहम्मद अली) से हार गए। पैटर्सन को हराने पर उन्हें जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई, क्ले से हारने पर उतनी मायूसी भी हुई। कारण यह कि क्ले ने उन्हें एक ही मिनट में ढेर कर दिया था।

लिस्टन को मुक्केबाजी का शौक बचपन से ही था। वह बाल्यावस्था में अक्सर मारधाड़ के अपराध में जेल चले जाते। उन्होंने जेल में ही मुक्केबाजी का अभ्यास किया। उनका जन्म 8 मई, 1932 को हुआ। उनके पिता ने दो बार विवाह किया। लिस्टन के 25 भाई-बहन थे, इसलिए उन्हें बचपन से ही काफी संघर्ष करना पड़ा। 13 साल की उम्र में वह अपना घर-बार छोड़कर भाग गए। किसी अपराध में पकड़े गए और पांच साल की सजा हो गई और अपने जेल-जीवन में ही मुक्केबाजी के उस्ताद बनकर बाहर निकले। 1953 तक वह शौकिया मुक्केबाज थे, बाद में वह पेशेवर बन गए। अखाड़े में वह मतवाले रीछ की तरह लड़ते और जख्मी हो जाने के बावजूद लड़ाई जारी रखते। कैंसियस क्ले से हार जाने के बावजूद दुनिया के समाचार पत्रों में मोटी-मोटी सुर्खियों में उनके समाचार छपते रहे। 1969 में उन्हें दुनिया का तीसरे नम्बर का मुक्केबाज कहा गया। उन्होंने एक बार कहा था कि मैं 1978 में मुक्केबाजी से सन्यास ले लूंगा, लेकिन तब तक मेरा पौत्र मुक्केबाजी में काफी नाम पैदा कर लेगा। आखिरी दिनों में वह बड़े आराम की जिन्दगी बसर कर रहे थे। 50 हजार डालर के शानदार बंगले में रहते और दादागिरी करते। उन्होंने कहा था कि मैं आराम करना चाहता हूं।

सी बड़े मुक्केबाज को चुनौती देकर अपना चेहरा जख्मी करना नहीं चाहता ।

लेकिन सन् 1978 का साल देखने का मौका उन्हें नही मिला और 38 साल की उम्र में, ठीक दो साल बाद 1971 में, वह अपने कमरे मे मृत पाए गए ।

सी० के० नायडू

एक ऐसा व्यक्तित्व जिसके सिर से पांव तक क्रिकेट ही झलकती हो, इंग्लैंड का महान क्रिकेटर डगलस जार्डिन उसे दायें हाथ से खेलने वाला पीटर वूली कहता हो, वह स्पिन और तेज दोनों तरह की गेंदबाजी पर निर्मम प्रहार करना जानता हो, जिसकी अद्‌भुत शारीरिक क्षमता पर प्रत्येक क्रिकेट प्रेमी को नाज हो—आप जानते हैं, वह कौन है? जी हा, निश्चित रूप से आपके लबों पर मुखरित होने वाला नाम सी० के० नायडू ही होगा।

सी० के० को भारतीय क्रिकेट का भीष्म पितामह कहा जाता है। केवल इसलिये नही कि भारतीय टेस्ट क्रिकेट में पहला कप्तान होने का गौरव उन्हें हासिल है बल्कि इसलिये कि वह अपने आप में एक पूरा क्रिकेट संस्थान थे। एक खिलाड़ी के रूप मे, एक कप्तान के रूप में और बाद में एक प्रशिक्षक के रूप में वह हमेशा क्रिकेट के प्रति समर्पित रहे।

सी० के० नायडू ने जब प्रथम श्रेणी क्रिकेट मे प्रवेश किया था उस समय उनकी आयु 21 वर्ष थी। इसके बाद 40 वर्ष तक वह भारतीय क्रिकेट पर छाये रहे। 1926-27 में हिंदू की तरफ से एम० सी० सी० के नामी तेज गेंदबाजों स्पाट और बायस के समक्ष खेलते हुए उन्होंने केवल 100 मिनट में ही 153 रन खड़े कर दिखाये थे। इस स्कोर में 11 छक्के लगाये थे।

सी० के० कभी थकते नही थे। 51 वर्ष की आयु में उन्होने एक प्रथम श्रेणी मैच में गेंदबाजी करते हुए विश्लेषण अर्जित किया था 80-12-178-4। 61 वर्ष की आयु में उन्होंने अपना अंतिम मैच उत्तर प्रदेश का नेतृत्व करते हुए रणजी ट्रॉफी में खेला, जिसमें शानदार 84 रन बनाये।

1932 मे वह भारतीय टीम के साथ इंग्लैंड गये। हालांकि उन्हें भारत के प्रथम टेस्ट के लिये कप्तान बनाकर नही भेजा गया था। लेकिन परिस्थितिवश यह भार उन्हें उठाना पड़ा। इस दौरे में उन्होने कुल 1842 रन बनाये और 79 विकेट लिये। 1933-34 में वह औपचारिक रूप से कप्तान बने। तीन टेस्ट की श्रृंखला में उन्होंने 26.27 की औसत से 160 रन बनाये और दूसरे टेस्ट मे 40 रन देकर तीन विकेट भी लिये।

1936 में वह फिर क्रिकेट राजनीति के शिकार बने और कप्तानी से हटा दिये गये। विजयनगरम के महाराज कुमार भारतीय टीम के कप्तान बनकर

इग्लेंड गये। इस दौरे में भी वह बेहद सफल रहे। उन्होंने कुल 1102 रन बनाये और 51 विकेट झटके।

भारतीय क्रिकेट मे वह सदा विवादग्रस्त रहे। इसी कारण उनका टेस्ट जीवन केवल 7 टेस्टों तक सीमित रहा हालांकि रणजी ट्रॉफी और अन्य प्रथम श्रेणी मैंचों मे वह तावड़तोड़ सफलताएं अर्जित करते रहे।

सी० के० का निधन 14 नवंबर 1967 को इंदौर में हुआ यानी अपने 72वें जन्म दिवस में एक पखवाड़े बाद।

सुदेश कुमार

वर्ष 1950 में जन्मे सुदेश कुमार ने बाल्यकाल ही से मल्ल विद्या का प्रशिक्षण लेना प्रारम्भ कर दिया था। कुश्ती के परम प्रशिक्षक पद्मश्री गुरु हनुमान के संरक्षण मे आपने बाल पहलवान के रूप मे अनेक उपलब्धियां प्राप्त की। छात्र जीवन के दौरान ही अपनी भार श्रेणी के अनेक पहलवानों को आपने धूल चटाई है। सर्व प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आपने वर्ष 1968 में मैक्सिको ओलम्पिक मे अच्छा प्रदर्शन करके छठा स्थान प्राप्त किया। वर्ष 1970 मे एडिनबर्ग (स्काटलेंड) मे ब्रिटिश कॉमनवेल्थ मुकाबलो में आपने स्वर्ण पदक जीतकर अपने देश को गौरवान्वित किया। इस उपलब्धि पर भारत सरकार ने आपके सफल प्रयासो के सम्मानार्थ अर्जुन अवार्ड से विभूषित किया। तत्पश्चात् म्यूनिख मे वर्ष 1972 के विश्व ओलम्पिक खेलो में आपने चौथा स्थान प्राप्त किया।

ब्रिटिश कॉमनवैल्थ मुकाबलों मे अनेक स्थानो पर आपने स्वर्ण पदक जीतकर अपने साहस का परिचय दिया है और देश का गौरव बढ़ाया है! वर्ष 1968 से 1972 तक आपने पांच बार राष्ट्रीय स्तर पर स्वर्ण पदक जीतकर अपना लोहा मनवाया है।

वर्ष 1973 में आपने दिल्ली पुलिस सेवा में पदार्पण किया। आपने अखिल भारतीय पुलिस खेलों में वर्ष 1974 से 1978 तक लगातार स्वर्ण पदक जीतकर अपने विभाग को गौरवान्वित किया एवं अपने गुरु का सम्मान बढ़ाया है।

आपने अपने सेवा काल में राष्ट्रीय खेल संस्थान पटियाला से प्रशिक्षक के रूप मे उच्च श्रेणी का प्रशिक्षण कोर्स पास करके दिल्ली पुलिस के अनेक पहलवानों को प्रशिक्षित किया है और आज भी आप अपने विभाग में कोच के रूप मे क्रियाशील हैं।

आपने अपने कठिन परिश्रम एवं खेल के प्रति निष्ठा से अनेक सम्मान प्राप्त करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने देश का प्रतिनिधित्व किया है जिसमे वर्ष 1984 लॉस ऐंजिलिस ओलम्पिक खेलों मे भारत की टीम के प्रशिक्षक के रूप में आपको गौरव प्राप्त हुआ है।

सुभाष गुप्ते

भारत को स्पिनरों का गढ़ कहा जाता है। जितने स्पिनर भारत में पनपे हैं उतने किसी भी देश में नही पनप सके। इन स्पिनरों के बल पर भारत को टेस्ट क्रिकेट में गौरवपूर्ण स्थान मिला।

भारत के स्पिनरों की यह सफल कड़ी वास्तव में वीनू मांकड से ही शुरू हुई थी और इस कडी को जिस स्पिनर ने सुदृढ़ता प्रदान की वह था सुभाष गुप्ते।

11 दिसंबर, 1929 को जन्मे सुभाष गुप्ते ने अपनी उंगलियों के जादू से शैशवकाल में ही सभी को प्रभावित कर लिया था। इसीलिये 18 वर्ष की आयु में ही उनकी प्रतिभा को मद्देनजर रखते हुए पहला प्रथम श्रेणी खेलने का अवसर प्रदान कर दिया गया।

आखिरकार गुप्ते को 1952 में बंबई टेस्ट में पाकिस्तान के खिलाफ खिलाया गया। इस बार भारतीय कप्तान थे लाला अमरनाथ। गुप्ते ने पहली पारी में पहली सफलता के रूप में महमूद हुसैन का विकेट लिया और फिर इसरार अली को आउट किया।

फिर भी गुप्ते अपने प्रदर्शन से संतुष्ट न थे क्योंकि यह दोनों ही खिलाड़ी पुच्छल बल्लेबाज थे। उनके शब्दों में 'किसी भी गेंदबाज को तब तक आत्मिक शांति नही मिलती जब तक वह विश्व के जाने-माने बल्लेबाजों को आउट नहीं करता।'

इसी वर्ष के अंत में भारतीय टीम हजारे के नेतृत्व में वेस्ट इंडीज गयी। सही मायनों में पहली बार गुप्ते को पूरा मौका मिला। इस दौरे में उन्होंने कुल 50 विकेट 23.64 की औसत से हासिल की जिनमें 29.22 की औसत से 27 टेस्ट विकेट भी प्राप्त की गयी।

अब गुप्ते को एक सफल और आक्रामक लेग स्पिनर के रूप में मान्यता मिल चुकी थी। फलस्वरूप उन्हें 1954-55 में पाकिस्तान और 1955-56 में शृंखला के सभी 5-5 टेस्टों में मौका दिया गया। पाकिस्तान के खिलाफ उन्होने कुल 21 विकट ली जिनमें ढाका टेस्ट मे केवल 18 रन देकर पांच खिलाड़ियों को आउट करना भी शामिल है।

न्यूजीलैंड के खिलाफ गुप्ते को रिकार्ड सफलता मिली। उन्होंने 5 टेस्टों में 19.68 की औसत से 34 खिलाड़ियों को पेवेलियन लौटने पर विवश किया था। अन्य सभी भारतीय गेंदबाजों को भी कुल मिलाकर 34 विकेट ही मिली थी। यह रिकार्ड 1972-73 मे चंद्रशेखर ने इंग्लैंड के खिलाफ 35 विकेट लेकर तोड़ा था।

आस्ट्रेलिया के विरुद्ध अगली शृंखला मे 1956 मे सुभाष गुप्ते ने 3 टेस्ट मैचों में 32.88 की औसत से 8 विकेट हासिल की।

1958-59 में वेस्ट इंडीज के खिलाफ 5 टेस्ट मैचों में गुप्ते को 22 विकेट तो मिली लेकिन इसके लिये उन्हें रन बहुत अधिक (42.14 औसत) खर्च करने पड़े किंतु श्रृंखला के दूसरे ग्रीन पार्क टेस्ट में गुप्ते का प्रदर्शन लाजवाब था। वेस्ट इंडीज के नौ खिलाड़ियों को उन्होंने आउट कर दिया था। अंतिम खिलाड़ी गिब्स की कैच उनकी गेंद पर यदि न छूटती तो वह इंग्लैंड के जिम लेकर की बराबरी कर लेते जिन्होंने एक पारी में सभी दस विकेट हासिल किये थे।

1959 में इंग्लैंड के विरुद्ध गुप्ते ने 34.65 की औसत से 17 विकेट और 1960-61 में पाकिस्तान के विरुद्ध 3 टेस्ट मैचों में 30.37 की औसत से 8 विकेट ली।

प्रथम श्रेणी क्रिकेट में गुप्ते ने बंबई और बंगाल का प्रतिनिधित्व करते हुए 23.71 की औसत से कुल 530 विकेट झटकीं।

सुभाष गुप्ते जब 1953 में वेस्ट इंडीज गये थे तो वहीं की एक लड़की से उनका इश्क हो गया था और जब वह वापस आये तो पत्नी भी साथ ले आये थे। जब उन्होंने 1962 में क्रिकेट से अलविदा कहा तो वेस्ट इंडीज जाकर ही बस गये।

सुभाष गुप्ते आज भी भारतीय स्पिनरों के लिये एक प्रेरणा स्रोत हैं।

टेस्ट रिकार्ड : बल्लेबाजी : 36 टेस्ट 42 पारियां, 183 रन, 6.31 औसत, 21 उच्चतम, गेंदबाजी 29.55 की औसत से 149 विकेट।

सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन : 1958-59 में ग्रीनपार्क कानपुर में आस्ट्रेलिया के खिलाफ पहली पारी में 102 रन देकर 9 विकेट लिए।

सैयद मोदी

यदि किसी बैडमिंटन प्रेमी से पूछा जाये कि प्रकाश पादुकोन के बाद भारत का बेहतरीन खिलाड़ी कौन है तो वह इस आसान प्रश्न का चटपट जवाब देगा—सैयद मोदी।

31 दिसंबर 1962 को गोरखपुर के सरदार नगर में पैदा हुए सैयद मोदी ने पिछले दिनों लगातार दूसरी बार राष्ट्रीय चैम्पियनशिप का खिताब जीता। पहली बार 1980-81 में उसने विजयवाड़ा में नौ वर्ष से लगातार चैंपियन प्रकाश पादुकोन को दो सीधे गेमों में हराया था और इस बार उनके हाथों उदय पवार पराजित हुआ।

इन दोनों सफलताओं के बाद जब मैं सैयद मोदी से मिला और पहला प्रश्न यही पूछा कि इन दोनों वर्षों की चैंपियनशिप में उन्हें क्या फर्क लगा?

"बहुत बड़ा फर्क लगा…पिछले साल अंतिम मैच में मुझे प्रकाश के खिलाफ खेलना था…उस जीत की अहमियत ही अलग थी। इस बार की जीत तो बस जीत थी।'

प्रकाश को हराने के बाद ऐसा नही सोचा कि आप प्रकाश से बेहतर खेलने लगे हैं।

"सवाल ही नही उठता…मैं जीत गया, यह बात अलग है। मैं यह नही मानता कि उस मैच में मैं बहुत अच्छा खेल कर जीता बल्कि मेरा मानना है कि उस दिन प्रकाश फार्म में नही था इसलिए मुझे जीतने का मौका मिल गया।"

शैशव काल में मोदी बास्कटबाल के रसिया थे। दो बड़े भाइयों प्यारे मियां और आबिद हैदर, जो स्वयं अच्छे खिलाड़ी रहे हैं, की देखादेखी उन्होंने भी रैकेट थाम लिया।

"बचपन में मुझे सीखने का मौका बड़े भाई प्यारे मियां से मिला। बहुत मेहनत की है उन्होंने मेरे साथ। फिर स्कूल, कालेज, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर कोचिंग कैंपों में बहुत कुछ सीखा। लेकिन 1977 में जकार्ता में ढाई माह रह कर मैंने जो कुछ सीखा, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।"

मोदी को पहली बड़ी सफलता 14 वर्ष की आयु में प्राप्त हुई थी जब उसने गुजरात के वल्लभ विद्यानगर में जूनियर राष्ट्रीय चैंपियन बनने का गौरव हासिल किया था। इतनी ऊंचाई पर पहुंचने के लिए उसकी यात्रा जहां सफलताओं से परिपूर्ण रही, वहां मेहनत, लगन और लगातार कोशिश में उसने कभी कमी नहीं होने दी।

प्रदर्शन :

सैयद मोदी 1975, 77 व 72 में जूनियर राष्ट्रीय चैम्पियन रहे। 1981 से सीनियर राष्ट्रीय चैम्पियन।

सैयद मोदी ने विभिन्न अंतरराष्ट्रीय टूर्नामेंटों मे भारत का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने आल इंग्लैंड बैडमिंटन चैम्पियनशिप 1979 से 1985 तक। डेनिस ओपन में 1980 से 1984 तक, स्वीडिश ओपन में 1980, 81, 83 और 1985 मे हिस्सा लिया। 1980 में उन्होंने आकलैंड टूर्नामेंट में पुरुष एकल खिताब जीता। उन्होंने मिनी राष्ट्रमंडल खेलों तथा 1982 में राष्ट्रमंडल खेलों में ब्रिसबेन में स्वर्ण पदक जीता।

सैयद मोदी ने 1982 में नई दिल्ली के एशियाई खेलों में कांस्य पदक जीता।

सैयद मोदी को 1982 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

28,जुलाई, 1988 को कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने राष्ट्रीय बैडमिंटन चैम्पियन सैयद मोदी की गोली मार कर हत्या कर दी।

सोबर्स (सर गारफील्ड)

विश्व का सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज कौन है, विश्व का सर्वश्रेष्ठ गेंदबाज कौन है, विश्व का सर्वश्रेष्ठ क्षेत्ररक्षक कौन है और विश्व का सर्वश्रेष्ठ कप्तान कौन है?

यदि आपसे कहा जाए कि इन चारों प्रश्नों का एक ही उत्तर दीजिए तो आप आंखें मूंदकर कहेंगे सोबर्स।

सोबर्स को 106 वर्ष लंबे टेस्ट क्रिकेट इतिहास में महानतम और सफलतम खिलाड़ी माना जाता है। उसने जिस प्राकृतिक खेल, एकाग्रता, क्षमता और प्रतिभा का प्रदर्शन किया वह अभूतपूर्व है। न सोबर्स जैसा खिलाड़ी आज तक पैदा हुआ है और न ही निकट भविष्य में कोई खिलाड़ी सोबर्स के व्यक्तित्व को चुनौती देने में सक्षम नजर आता है।

सोबर्स का जन्म 18 जुलाई 1936 को बारबाडोज के निहायत ही गरीब परिवार में हुआ। उसके पिता समुद्री जहाज में बहुत ही निचले स्तर के कर्मचारी थे। जब वह पैदा हुए तो उनके हाथों में पांच की बजाय छह-छह उंगलियां थीं। बाद मे दोनों हाथों से एक एक उंगली काट दी गई।

जब सोबर्स केवल पांच वर्ष के ही थे उनके पिता की एक समुद्री लड़ाई में मृत्यु हो गई। फलस्वरूप छोटे-छोटे सात भाई-बहनों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी सोबर्स और उनकी निर्धन मां पर आ गई। सोबर्स को पढ़ाई तो छोड़नी ही पड़ी मौत और भूख से बिलखते परिवार को भी संभालना पड़ा।

ऐसी स्थिति में क्रिकेट खेलना या महान खिलाड़ी बनने की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी किंतु सोबर्स जहां एक ओर जिम्मेदारी से परिवार को संभालने में सफल रहे वहां क्रिकेट खेलने की उनकी लग्न और उत्साह बराबर बना रहा।

सोबर्स ने प्रारंभ में टेनिस की गेंद के साथ खेलना प्रारम्भ किया था। उनके खेल को जिसने भी एक बार देखा उनकी प्रतिभा का लोहा मान लिया। सोबर्स को क्रिकेट से ही नहीं, गोल्फ, फुटबाल और बास्केटबाल से भी काफी लगाव था और इन तीनों ही खेलों में उन्होंने बारबाडोज का प्रतिनिधित्व किया था।

1952-53 में विजय हजारे के नेतृत्व में भारतीय क्रिकेट टीम वेस्ट इंडीज के दौरे पर गई थी। सोबर्स की आयु उस समय केवल 16 वर्ष ही थी। लेकिन तब तक बारबाडोज में उनका नाम काफी लोकप्रिय हो चुका था। उन्हें भारत के विरुद्ध प्रथम श्रेणी मैच के लिए चुना गया यहीं से अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट में उनका प्रवेश हुआ।

अगले वर्ष इंग्लैंड की टीम वेस्टइंडीज गई। सबीना पार्क में खेले गए अंतिम टेस्ट के लिए उन्हें चुना गया। तब तक उन्हें भरोसेमन्द बल्लेबाज नहीं माना जाता था फलस्वरूप उन्हें नम्बर 9 पर भेजा गया। वह पहली पारी में 14 (नाबाद) और दूसरी पारी में 26 रन बटोर सके किंतु गेंदबाजी में उन्होंने 75 रन देकर इंग्लैंड के चार विकेट उखाड़ फेंके।

1954-55 में आस्ट्रेलिया की टीम वेस्टइंडीज आयी लेकिन चयनकर्ता उनके पहले प्रदर्शन से पूर्णतः संतुष्ट नहीं थे। उन्हें पहले टेस्ट में मौका नहीं मिला

लेकिन दूसरे टेस्ट में उन्होंने 47 रन बनाकर अपनी बल्लेबाजी का जौहर भी दिखाया।

चार वर्ष तक सोबर्स टीम में स्थान पाने के लिए संघर्ष करते रहे लेकिन 1957-58 की शृखला के बाद तो सोबर्स ने एक पूर्ण आलराउंडर के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर ली। यह शृंखला पाकिस्तान के खिलाफ खेली गई थी। किंग्स्टन टेस्ट मे उन्होंने 365 (आ. न.) रन की पारी खेल कर लेन हटन (364) के 1938 मे बनाए गए रिकार्ड को तोड़ डाला था। उन्होंने इस पारी के लिए केवल दस घटे का समय लिया और 38 चौके लगाए। त्रिशतक ही नही बल्कि सर्वोच्च व्यक्तिगत स्कोर बनाते समय सोबर्स की आयु मात्र 21 वर्ष ही थी। उनका 365 का कीर्तिमान आज भी कायम है।

उस पारी के बाद तो सोबर्स रनो और विकेटों का अंबार लगाने लगे। उन्होंने पाच शृंखलाओं में 500 से अधिक रन जोड़े। 1958-59 में भारत के खिलाफ 92.83 की औसत से 557 रन, इंग्लैंड के खिलाफ 1959-60 में 101.28 की औसत से 709 रन, इंग्लैंड के ही खिलाफ में 103.14 की औसत से 722 और 1967-68 में 90.83 औसत से 543 रन तथा भारत के खिलाफ 1971 की शृंखला में 74.62 की औसत से 597 रन उनकी सर्वश्रेष्ठ शृखलाएं रही हैं।

गेंदबाजी में भी वह इन शृंखलाओ मे भारी सफलता प्राप्त करते रहे। उन्होंने वेस्टइंडीज की ओर से कुल 22 शृंखलाएं खेली जिनमें से 13 में 10 या इससे अधिक खिलाड़ियों को आउट किया।

सोबर्स को सर्वाधिक कामयाबी आस्ट्रेलिया के खिलाफ मिली। आस्ट्रेलिया में एक ही सीजन में 1000 रन बनाने और 50 विकेट चटकाने वाले दुनिया के एकमात्र खिलाड़ी हैं। 1971-72 में विश्व एकादश की ओर से खेलते हुए उन्होंने आस्ट्रेलिया के खिलाफ 254 रन की पारी भी खेली थी। इसके अतिरिक्त सोबर्स का आस्ट्रेलिया के साथ एक और अटूट रिश्ता भी है। उनकी पत्नी आस्ट्रेलिया की ही रहने वाली हैं। अब तो सोबर्स भी आस्ट्रेलिया में ही जाकर बस गए हैं।

सोबर्स ने 1967 से 1974 अर्थात सात वर्ष तक वेस्टइंडीज का नेतृत्व किया था। वह प्रथम श्रेणी क्रिकेट बारबाडोज तथा नाटिंघमशायर की ओर से खेलते थे। नाटिंघम की ओर से ही ग्लेमरगन के विरुद्ध खेलते हुए 1968 मे उन्होंने मैल्कम नैश की छह गेंदो पर छह छक्के लगाने का अभूतपूर्व रिकार्ड बनाया।

उनमें खेल भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। 1967-68 की शृखला में उन्होने इंग्लैंड के खिलाफ नीरस हो रही शृखला में जान लाने के लिए जोखिम उठाते हुए पारी समाप्ति की घोषणा कर दी थी और टेस्ट व शृंखला हार गए थे।

सोबर्स हर तरह से एक पूर्ण क्रिकेटर रहे हैं। बल्लेबाजी में उनका आक्रमण

जितना पैना था, सुरक्षा उतनी ही दृढ़। वह तेज या स्पिन हर तरह की गेंदबाजी करने में माहिर थे। आजकल विश्व में कपिल देव, इयान बाथम, इमरान खान, और रिचर्ड हैडली को श्रेष्ठतम आलराउंडर माना जाता है लेकिन सोबर्स इन सभी से बहुत आगे हैं।

टेस्ट रिकार्ड : बल्लेबाजी *93* टेस्ट, *160* पारी, *8032* रन *365* (आ.न.) उच्चतम, 57.78 औसत, 26 शतक, 30 अर्द्धशतक, 109 कैच। गेंदबाजी : 235 विकेट, 34.03 औसत।

सौ टेस्ट मैच

100 टैस्ट मैच खेलना कोई साधारण किस्म का रिकार्ड नही है। जब हर सत्र में थोड़े से टैस्ट मैच खेले जाते थे तो ये सोचा भी नहीं गया था कि कभी कोई बल्लेबाज 100 टैस्ट मैच तक पहुंचेगा। यही बात है कि 1876-78 में टैस्ट मैच खेलने का सिलसिला शुरू हो जाने के बावजूद पहली बार 1967 मे कोई खिलाड़ी इस रिकार्ड तक पहुंच पाया। उस समय तक भी बहरहाल कुछ ज्यादा टैस्ट मैच खेले जाने लगे थे और 1954 में अपना पहला टैस्ट मैच खेलने वाले इंग्लैंड के कोलिन काउड्रे ने 1968 अपना 100वां टैस्ट मैच खेला।

इसके बाद टैस्ट मैच खेले जाने की रफ्तार और तेज हुई तथा धीरे-धीरे 100 टैस्ट मैच खेलने वाले खिलाड़ियों की गिनती बढ़ती गई। इस बात का इससे बेहतर भला और क्या सबूत हो सकता है कि *1988* के कैलेंडर साल में *4 खिलाड़ियों को अपना 100 टैस्ट खेलने का गौरव* मिला। जुलाई के महीने में इंग्लैंड के डेविड गावर ने ये रिकार्ड बनाया, नवम्बर मे वेस्टइंडीज़ के विव रिचर्डस ने *आस्ट्रेलिया के विरुद्ध ब्रिसबेन* में तथा भारत के दिलीप वेंगसरकर ने न्यूजीलेंड के विरुद्ध बंबई मे अपना 100 वां टैस्ट खेला। क्रिसमस की पूर्व संध्या पर आस्ट्रेलिया और वेस्टइंडीज के बीच जो तीसरा मैच शुरू हुआ वह आस्ट्रेलियाई एलन बोर्डर का 100वां टैस्ट था।

100 टैस्ट मैच खेलने वाले खिलाड़ी

खिलाड़ी	100वां टैस्ट कब	कुल टैस्ट	पारी	आ. न.	रन	औसत
कोलिन काउड्रे (इंग्लैंड)	11 जुलाई *1968*	114	188	15	*7624*	*44.06*
ज्योफ बायकाट (इंग्लैंड)	2 जुलाई 1981	103	193	23	8114	47.72

क्लाइव लायड (वेस्टइंडीज)	28 अप्रैल 1984	110	165	14	1715	46.67
सुनील गावसकर (भारत)	16 अक्तूबर 1984	125	214	16	10122	51.12
डेविड गोवर (इंग्लैंड)	21 जुलाई 1988	100	172	13	6000	44.02
विव रिचर्डस (वेस्टइंडीज)	18 नवंबर 1988	100	148	9	6336	54.93
दिलीप वेंगसरकर (भारत)	24 नवंबर 1988	100	161	22		

100 टैस्ट मैच खेलने वाले खिलाड़ियों के नाम पर नजर डालने से एक बड़ी मजेदार बात ये सामने आती है कि ये सभी खिलाड़ी बल्लेबाज हैं।

100वें टेस्ट में प्रदर्शन

कोलिन काउड्रे

काउड्रे 100 टैस्ट खेलने वाले पहले खिलाड़ी थे। 1968 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध एजबेस्टन में काउड्रे ने इस रिकार्ड का जश्न अपना 21वां शतक ठोक कर मनाया। इसी पारी के दौरान काउड्रे टैस्ट क्रिकेट में 7000 रन बनाने वाले सिर्फ दूसरे बल्लेबाज बने। अपने 100 वें टेस्ट में और किसी ने भी काउड्रे से बेहतर प्रदर्शन नहीं किया है।

ज्योफ बायकाट

काउड्रे ने अपने 100वें टैस्ट की शतकीय पारी में कुछ समय के लिए बायकाट को रनर के तौर पर प्रयोग किया था। संयोग से फिर बायकाट ने यही रिकार्ड बनाया 1981 में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध लार्डस में। बायकाट ने इस टैस्ट में 16 और 60 का स्कोर बनाए।

क्लाइव लायड

वेस्टइंडीज की ओर से लायड ने पहली बार ये रिकार्ड बनाया—आस्ट्रेलिया के विरुद्ध 1983-84 में किंग्सटन में। संयोग से ये वेस्टइंडीज में खेला जाने वाला 100वां टैस्ट था। लायड ने इसमें 20 रन बनाए पर वेस्टइंडीज ने ये टैस्ट जीता।

सुनील गावसकर

गावसकर ये रिकार्ड बनाने वाला पहला भारतीय खिलाड़ी बना। पाकिस्तान

के विरुद्ध 1984-85 के लाहौर टैस्ट में गावसकर ने 48 और 37 के स्कोर बनाए।

डेविड गोवर

गोवर ये रिकार्ड बनाने वाला इंग्लैंड का तीसरा खिलाड़ी बना। गोवर ने इस टैस्ट में ठीक 6000 रन पूरे किए। पर वैसे गोवर टैस्ट में पूरी तरह असफल रहा 1988 में वेस्टइंडीज के विरुद्ध।

विव रिचर्डस

रिचर्डस ने ये रिकार्ड पिछले दिनों आस्ट्रेलिया के विरुद्ध ब्रिसबेन टैस्ट में बनाया। उसने 68 रन बनाए पर वेस्टइंडीज के लिए टैस्ट मैच जीता।

दिलीप वेंगसरकर

न्यूजीलैंड के विरुद्ध बंबई टैस्ट वेंगसरकर का 100वां टैस्ट था। बल्लेबाज के रूप में वेंगसरकर टैस्ट में बुरी तरह असफल रहा और कप्तान के रूप में वह टैस्ट भी हारा। 100 टैस्ट खेलने वाला वह सिर्फ दूसरा भारतीय खिलाड़ी है।

कोलिन काउड्रे का 100वें टैस्ट में शतक बनाने का रिकार्ड आज भी एक चुनौती बना हुआ है।

स्टेनले मैथ्यूज

इंग्लैंड के सर स्टेनले मैथ्यूज विश्व के उत्तम फुटबाल खिलाड़ियों में से एक थे। ये अपने विद्यालय जीवन से ही अतरराष्ट्रीय स्तर पर सेंटर हाफ के रूप में उदीयमान फुटबाल खिलाड़ी के रूप में उभरे और शीघ्र ही अपने कुशल क्रीडा-कौशल से विश्व के प्रसिद्ध राइट विंग खिलाड़ी बन गए।

फुटबाल खेलते हुए मैथ्यूज गेंद पर अपने प्रभावशाली नियंत्रण, सुन्दर शारीरिक घुमाव तथा उचित पास कौशल से विपक्षी खिलाड़ियों को दुविधा में डाल देते थे। 1947 में स्टोक क्लब ने 11,500 पौंड मे इन्हें ब्लैकपूल क्लब को दे दिया और 1962 मे ये 25 सौ पौंड में पुन: स्टोक क्लब मे आ गए। इन्होंने 84 बार इंग्लैंड की टीम का प्रतिनिधित्व किया और 1950 तथा 54 में इंग्लैंड की तरफ से विश्व कप में भी खेले। 1956 मे मैथ्यूज यूरोप के सर्वश्रेष्ठ फुटबाल खिलाड़ी घोषित किए गए। ये कुल 701 लीग मैचों और 86 बार एफ. ए. मैचों में खेले। 21 सितम्बर 1983 को मैथ्यूज का देहांत हो गया। मैथ्यूज ऐसे खिलाड़ी थे जिन्हें इंग्लैंड के फुटबाल से कभी अलग नहीं किया जा सकता।

स्टेफी ग्राफ

बड़े काम के लिए कोई उम्र छोटी नहीं होती। पश्चिम जर्मनी के 17 वर्षीय

वेकर ने विंबलडन में ऐसी सनसनी पैदा की थी, जिसमें विश्व की सभी चोटी के खिलाड़ी सिहर उठे थे।

अब उसी देश की एक दुधमुंही 16 वर्षीया स्टेफी ग्राफ ने ताकत और फुर्ती के बल पर विश्व की नम्बर एक मार्तिना नवरातिलोवा को निचोड़ कर टेनिस जगत मे थरथराहट पैदा कर दी है।

ग्राफ की इस विजय ने साबित कर दिया कि टेनिस जगत के चमकते सितारों की रोशनी अब धीमी पड़ने लगी है। दूसरी ओर सुगबुगाती प्रतिभाओ ने अपनी सफलता के अंकुर ऊपर फेंकने शुरू कर दिए हैं। प्रतियोगिता के आरंभ तक किसी को विश्वास नही था कि जर्मन की यह चुलबुली बालिका ऐसा धमाका करेगी। इसने पहले राउंड मे एमी होल्टन को, दूसरे मे अपने दनदनाते शॉटों से युगोस्लाविया की सबीना गोल्स को और क्वार्टर-फाइनल में हंगरी की एड्रिया तामेश्वरी को ध्वस्त कर दिखाया। सेमी फाइनल में हॉना मांडलिकोवा से वाकओवर पाकर वह फाइनल में जा कूदी।

फाइनल में उसने शुरू से अपने शक्तिशाली फोरहैंड और डीप बैंक हैंड ने मार्तिना पर दबाव बनाए रखा। जुझारू खिलाडी के रूप में बेहतर फार्म का प्रदर्शन करते हुए पहले गेम में ही चार ब्रेक पाइंट बचाकर उसने अपनी श्रेष्ठता का परिचय दे दिया था। दूसरे गेम में ग्राफ की बैक हैंड सही नही पडी जिसका लाभ उठाते हुए मार्तिना ने ग्राफ की सर्विस तोड़ कर 3-1 से बढ़त हासिल की। इसके बाद तो स्टेफी अपने यौवन पर आ गयी। बेहतरीन सर्विस, जवाबी शॉटों तथा रैकेट से निकलती गेंदों से उसने प्रलयंकारी खेल का प्रदर्शन किया। बिना कोई गलती किए पांच गेम जीत कर इसने दूसरा सेट भी मार्तिना से छीन लिया। स्वाभाविक था चोटी की मार्तिना को हराने के बाद उसके आंसू छलछला उठे। स्टेफी ने कहा : 'मैं नही समझती कि मार्तिना ने अपने सर्वश्रेष्ठ खेल का प्रदर्शन किया। मेरे लिए वे अब भी विश्व की नम्बर एक है। हां, इस जीत से मैं रोमांचित अवश्य हुई हूं।"

किसी भी अतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता मे यह ग्राफ का चौथा अनमोल खिताब रहा और लगातार 19वी जीत। इससे पूर्व क्रिस एवर्ट लायड सहित वह विश्व की चोटी की खिलाड़ियो को पराजित कर चुकी हैं। मार्तिना के साथ यह उनकी चौथी मुठभेड़ थी। तीन में वह हार चुकी थी।

टेनिस का प्रशिक्षण उन्हें अपने पिता पीटर ग्राफ से मिला जो टेनिस का एक स्कूल चलाते हैं। उनके पिता के अनुसार ग्राफ जब 3 वर्ष की थी तभी से टेनिस खेलने लगी थी। अक्सर सही शॉट लगाने पर उसे कोई न कोई उपहार देकर पुरस्कृत किया जाता था। 8 वर्ष की उम्र में ही टेनिस के प्रति उसमें गहरा लगाव आ गया था। 13 वर्ष की अवस्था मे वह विश्व टेनिस वरीयता क्रम में आ गई।

14 वर्ष की आयु में उसने लास एंजल्स ओलम्पिक में भी भाग लिया।

स्टेफी पुरुषों के साथ अभ्यास करना अधिक पसंद करती है। उसके फोरहैंड शॉट विस्मित करने वाले हैं। उसकी सर्विस और बैक हैंड शॉट काफी तेज है। नेट पर उसमें गजब की चपलता है। उसके फुटवर्क नपे-तुले और संतुलित हैं। इतनी छोटी उम्र में ही दो बार खिताब, ग्रैंडस्लम व ओलम्पिक स्वर्ण पदक जीतकर आज वह विश्व की नम्बर एक महिला खिलाड़ी हैं।

श

शंकर लक्ष्मण

मध्य प्रदेश के शंकर लक्ष्मण ध्यानचन्द की ही भांति विश्व के सर्वकालिक सर्वश्रेष्ठ गोल कीपर के रूप में याद किए जायेंगे। शंकर लक्ष्मण ने सन् 56,60 और 64 के ओलम्पिक खेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया। 66 के एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक विजेता टीम का नेतृत्व भी शंकर लक्ष्मण ने किया था।

शतरंज

शतरंज के मोहरो में बादशाह या राजा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह इस लिए नहीं कि बादशाह ज्यादा शक्तिशाली होता है, बल्कि इसलिए कि सारी बाजी बादशाह पर ही केन्द्रित रहती है। विपक्षी शह अथवा किश्त (चेक) से बचने के लिए जब कोई उपाय न हो और इस प्रकार बादशाह कैद हो जाए अथवा फस जाए तो मात (मेट) होकर बाजी खत्म हो जाती है।

इसलिए सबसे पहले अपने बादशाह की सुरक्षा पर ध्यान दिया जाता है, इसी उद्देश्य से किलाबंदी की जाती है। वैसे जहां तक चाल का संबंध है, किलाबंदी की चाल के सिवा बादशाह चारों तरफ सिर्फ एक घर चल सकता है।

बादशाह का दमखम—शुरूआत या मध्य मे अथवा घने मोहरों की बिसात में बादशाह को ज्यादा सक्रिय होने का अवसर नहीं मिल पाता। लेकिन खेल के अंतिम दौर मे उसकी निर्णायक भूमिका होती है।

बादशाह सिर्फ एक प्यादे के साथ भी सावधानी से विपक्षी अकेले बादशाह को मात दे सकता है (प्यादे के बदले वजीर बनाकर)।

अक्सर खेल में ऐसा होता है कि दोनों ओर के सभी प्रमुख मोहरे कट जाते हैं तो एक या अधिक प्यादों को सहारा देते हुए बादशाह आगे बढ़कर बाजी जीत लेता है। बादशाह विपक्षी प्यादे अथवा प्यादों की जोड़ी को भी रोके रख सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि खेल के अंतिम दौर में आमतौर पर बादशाह और प्यादों की शक्ति या सामर्थ्य काफी बढ़ जाती है। और उनकी भूमिका निर्णायक रहती है।

वजीर सबसे शक्तिशाली—वजीर अथवा मंत्री (क्वीन) सबसे अधिक शक्तिशाली मोहरा होता है जो रास्ता साफ हो तो चारों ओर सीधे अथवा तिरछे दूसरे सिरे तक जा सकता है इस प्रकार हाथी और ऊंट दोनों की चालें उसे हासिल हैं।

वजीर की यह खासियत है कि खेल का शुरू का दौर हो, बीच का दौर हो या आखिरी दौर हो, हर स्थिति में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि विपक्षी खिलाड़ी की असावधानी से वजीर भरी बिसात में भी अकेले मात दे देता है। खासकर तब जबकि अपने ही मोहरों से बादशाह के रास्ते बंद हों।

खेल के आखिरी दौर में प्यादे के दूसरे सिरे पर पहुंचने पर इसे ज्यादातर वजीर ही बनाया जाता है, क्योंकि वजीर ही बादशाह या किसी अन्य मोहरे के सहयोग से सबसे जल्दी मात कर सकता है। वजीर के अलावा सिर्फ हाथी ही विपक्षी अकेले बादशाह को अपने बादशाह के सहयोग से मात दे सकता है।

मात के लिए—ज्ञातव्य है कि विपक्षी अकेले बादशाह को मात देने के लिए दूसरे बादशाह के साथ कम से कम एक प्यादा (जो वजीर या हाथी बन सके) अथवा एक वजीर अथवा दो ऊंट अथवा तीन घोड़े या एक हाथी होना चाहिए। वैसे व्यावहारिक रूप में तीसरा घोड़ा बनाने का कोई मतलब नहीं। इसकी बजाय तो वजीर ही बनाया जाता है।

शुरुआत के दौरे में अथवा घने मोहरों की बिसात में वजीर को आगे बढ़ाने में बड़ी सावधानी बरती जाती है, ताकि विपक्षी मोहरों के जाल में न फंस सके।

कितना बलवान—नक्शे-नक्शे की अलग-अलग बात होती है, फिर भी मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि हाथियों की जोड़ी को छोड़कर अन्य किन्हीं भी मोहरों की जोड़ी (समान या भिन्न मोहरों की) से वजीर ज्यादा बलवान सिद्ध हो सकता है। खाली मैदान में हाथियों की जोड़ी विपक्षी वजीर से ज्यादा प्रभावशाली हो सकती है। तथापि वजीर तो सूझबूझ से विपक्षी वजीर और हाथी के मुकाबले में भी बाजी बराबर अथवा अनिर्णीत रखने की क्षमता रखता है।

खेल के अंतिम दौर में यदि अपना बादशाह विपक्षी प्यादों को रोकने में

उलझा हो और विपक्षी बादशाह अकेला हो, तो वजीर अपने किसी एक मोहरे की सहायता से भी मात कर सकता है।

अन्य मोहरों में सिर्फ हाथी ही केवल पैदल के साथ (पैदल बढ़कर मंत्री अथवा दूसरा हाथी बनाकर) मात कर सकता है, यह भी तब संभव है जब हाथी पहले विपक्षी बादशाह को अपने प्यादे के पास न फटकने दे।

संहारक शक्ति—विशेष दाव-पेच से विपक्षी मोहरों को मारने में भी वजीर सबसे अधिक शक्तिशाली है।

वजीर चार तरह से विपक्षी बेजोर मोहरों को पीट सकता है जिसमें विपक्षी खिलाड़ी अपने मोहरों की बलि देने के लिए मजबूर हो जाता है।

ये चार दांव-पेच हैं (1) दो मोहरों पर एक साथ प्रहार (2) किसी मोहरे को अड़दब या एराब (पिन) में लेना (3) शह के साथ-साथ किसी मोहरे पर भी वार और (4) ऐसी स्थिति बना देना कि मात बचाने के लिए विपक्षी खिलाड़ी को अपना मोहरा पिटवाना पड़े। ज्ञातव्य है कि अड़दब में विपक्षी मोहरा उठ नहीं सकता क्योंकि उसके हटते ही बादशाह पर शह पड़ती है।

वजीर के अलावा हाथी भी उपयुक्त चारों दांव-पेच चल सकता है। ऊंट पहले के सिर्फ तीन और घोड़ा सिर्फ नं. (1) और (3) के दाव लगा सकता है। प्यादा भी ये दाव लगा सकता है और आगे बढ़कर वजीर भी बन सकता है।

शारजाह ट्रॉफी

शारजाह क्रिकेट टूर्नामेंट यानी रेगिस्तान में रोमांच!

जब से इस रेगिस्तान में क्रिकेट शुरू हुआ है, मनोरंजन और उत्तेजना अपनी बुलन्दियों पर है। शारजाह के इस खेल ने यह बात बिल्कुल सच्ची साबित कर दी है कि क्रिकेट पूरी तरह अनिश्चितता का खेल है।

वेस्ट इंडीज 1985 में पहली बार शारजाह में खेली जाने वाली प्रतियोगिता में शरीक हुआ। उसने भारत और पाकिस्तान को पहले टूर्नामेंट में ही धूल चटा दी। वेस्ट इंडीज की टीम में उस वक्त मार्शल, गारनर, रिचर्डसन जैसे धुरंधर खिलाड़ी थे।

1988 में वेस्टइंडीज की इस मैदान पर लगातार तीसरी खिताबी जीत थी। 1985 में उन्होंने रोथमेंस चैलेंज कप और 1986 में चैंपियन कप जीता था।

शारजाह आज क्रिकेट की विख्यात जगहों, लन्दन, मेलबोर्न, क्राइस्ट चर्च, पोर्ट आफ स्पेन, दिल्ली, कराची या कोलम्बो से बखूबी टक्कर ले सकता है। किसी व्यक्ति को इससे अधिक और चाहिए भी क्या? वस्तुतः शेख बुखातिर सचमुच अपनी धुन के पक्के हैं और उन्होंने साबित कर दिया है कि हिम्मत रखने वाला व्यक्ति क्या नहीं कर सकता।

शिवनाथ सिंह

आपका जन्म 11 जुलाई, 1946 को हुआ। आप मध्यम दूरी के एक उत्कृष्ट धावक हैं जो अपने खेलों में लगातार सुधार करते रहे है तथा आपने अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में देश का नाम ऊंचा किया है। आप 1972 और 1974 में 10,000 मीटर की दौड़ में, राष्ट्रीय चैंम्पियन थे तथा इसी तरह 1973 में 5,000 मीटर की दौड़ में भी राष्ट्रीय चैंम्पियन रहे। वर्ष 1973 में आयोजित प्रथम एशियाई एमेच्योर (ट्रैक एण्ड फील्ड) एथ्लेटिक्स चैंम्पियनशिप मे आपने 10,000 और 5,000 मीटर की दौड में एक-एक रजत पदक जीते। वर्ष 1974 में तेहरान में आयोजित सातवें एशियाई खेलों मे आपने 5,000 मीटर की दौड़ 4.20 सैकण्ड (एक नया एशियाई रिकार्ड) में पूरी करके एक स्वर्णपदक तथा 10,000 मीटर की दौड़ में एक रजत पदक जीता। आप अभी भी देश के सर्वोत्तम खिलाड़ियों में से एक निष्ठावान एथलीट हैं।

शिवलाल यादव

हैदराबाद के इस होनहार युवक ने केवल 14 टेस्ट मैच खेलते हुए 41 विकेटों का योग अपनी झोली मे डाल लिया है जिनका औसत है 34.02।

बंगलौर में पहले टेस्ट में ही यादव ने अपनी उपस्थिति का ठोस आभास दे दिया था। उसने दोनों पारियो में 4 और 3 विकेट लेकर अपने लिए टेस्ट क्रिकेट के द्वार खोल दिए थे। प्रथम टेस्ट में सात विकेट प्राप्त करना केवल एक संयोग या खुशकिस्मती नहीं कही जा सकती बल्कि यह गेंदबाज की योग्यता और लगन के कारण ही संभव हो सकता है। यादव ने भारतीय क्रिकेट टीम में जिस समय स्थान प्राप्त किया था उस समय उसकी आयु 22 वर्ष की भी नहीं थी।

इसी शृंखला के कानपुर टेस्ट में शिवलाल यादव ने चिरस्मरणीय गेंदबाजी का प्रदर्शन किया। दूसरी पारी में आस्ट्रेलिया विजय के लिए प्रयास कर रहा था और पराजय से बचने का यत्न कर रहा था। ऐसे में यादव ने आस्ट्रेलिया के चार बल्लेबाजों को झटपट आउट करके यह टेस्ट मैच भारत की झोली में डाल दिया। यादव ने उस पारी में केवल 35 रन खर्च किए थे। यह उसका अब तक का सर्वश्रेष्ठ गेंदबाजी विश्लेषण भी है।

आस्ट्रेलिया के बाद पाकिस्तान की टीम भारत आई। यादव ने उसके विरुद्ध भी अपने शानदार प्रदर्शन की पुनरावृत्ति जारी रखी। इस शृंखला की समाप्ति तक वह 11 टेस्ट मैचों मे 32 विकेट हासिल कर चुका था अर्थात् प्रति टेस्ट लगभग 3 विकेट।

शैलेन मन्ना

शैलेन नाथ मन्ना ऐसे दूसरे फुटबाल खिलाड़ी थे जिन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया गया। यह सम्मान इन्हें 1971 में दिया गया था। उन्होंने अपने खेल प्रदर्शन से दर्शकों का दिल जीत लिया था। जब तक वे खेले, खूब खेले। लंबे कद का भरपूर लाभ उठाकर वे लंबे और तेज शाट लगाते थे। खेल भावना तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। 1941 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की टीम की ओर से खेलते हुए वे प्रकाश में आये और पहले ही वर्ष संतोष ट्राफी पर बंगाल की जिस टीम ने विजय प्राप्त की, वह उसके महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। दस वर्षों के अपने खिलाड़ी जीवन में उन्होंने अपने राज्य और देश की काफी सेवा की। मोहन बागान टीम के वह महत्त्वपूर्ण सदस्य थे ही, 1948 में लंदन में हुए ओलम्पिक खेलों में भाग लेने वाली टीम के सदस्य और चार वर्ष बाद हेलसिंकी ओलम्पिक में भारतीय टीम के कप्तान नियुक्त किए गए। 1951 में नयी दिल्ली में हुए पहले एशियाई खेलों में उनकी टीम ने फुटबाल में स्वर्ण पदक हासिल किया। उसके बाद 1952, 1953 और 1958 में आयोजित एशियाई क्वाड्रेंगुलर फुटबाल प्रतियोगिताएं भी उन्हीं के कुशल नेतृत्व में जीती गयीं। डूरंड कप में उनके आकर्षक खेल प्रदर्शन की सराहना की गयी। कुछ वर्ष बाद जब वह टीम के मैनेजर के रूप में आये तो अचानक मैदान में जब हंगामा हुआ तो अपने खिलाड़ियों को शांत करने या बीच बचाव करने के भाव से मैदान में जाने लगे तो पुलिस ने उन्हें रोकना चाहा। बस फिर क्या था, उधर मोहन बागान के खिलाड़ियों ने वाक आउट कर मैदान छोड़ने की धमकी शुरू कर दी। प्रबंधकों को तुरंत हाथ जोड़कर मामला रफा-दफा करना पड़ा।

ह

हनुत सिंह

राजाराय हनुतसिंह शाही खेल पोलो के बादशाह थे और विश्व भर में जहां जहां पोलो खेली जाती है वहां-वहां उनके पराक्रम को लोग आज भी याद करते हैं। जब वह अपने बेहतरीन फार्म में थे उसी समय हाकी में ध्यानचंद का नाम भी मैदानों में गूंजा था। दोनों का गेंद पर नियंत्रण गजब का था और इसी

कारण हनुत सिंह को पोलो का ध्यानचंद भी कहा जाता था।

जोधपुर के राज परिवार में 20 मार्च, 1900 को जन्मे राव राजा हनुतसिंह रावराजा सरप्रताप सिंह के तीसरे पुत्र थे।

दिल्ली में आयोजित एक प्रतियोगिता में हनुतसिंह ने इतना बेहतरीन खेल दिखाया कि इंग्लैंड के एक पोलो विशेषज्ञ को यह जानकर ताज्जुब हुआ कि 14 वर्ष के बालक हनुतसिंह का हैंडीकेप (पोलो में एक प्रकार की वरीयता) शून्य है। अंग्रेज पोलो विशेषज्ञ ने उन्हें तीन हैंडीकेप देने का सुझाव रखा। प्रतियोगिता के बाद उनका हैंडीकेप पांच कर दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पोलो पुनः आरंभ हुई। हनुत पांच के हैंडीकेप से मैदान में उतरे। 21 वर्ष की आयु तक हनुत विश्व स्तर के खिलाड़ी हो गए थे और उनकी पूरे यूरोप और अमेरिका में धूम रहने लगी।

1925 में हनुतसिंह पहली बार जोधपुर की टीम के साथ इंग्लैंड में खेले और अंग्रेज खिलाड़ियों को अपने खेल कौशल से हैरत में डाल दिया। उधर जोधपुर के महाराजा लंबे समय तक पोलो टीम के रखरखाव का खर्च उठाने में स्वयं को असमर्थ मान रहे थे। हनुतसिंह की ही प्रेरणा के कारण जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई मानसिंह ने पोलो टीम तैयार की। 1933 में जयपुर की पोलो टीम बनी और इंग्लैंड खेलने गयी। 1933 की जयपुर की इस टीम ने इंग्लैंड में खेली गयी सभी प्रतियोगिताएं जीतीं हनुतसिंह और मानसिंह ने मैदान में राजस्थान का ऐसा डंका बजाया कि अंग्रेज भी देखते रह गये।

हनुत को इंग्लैंड की राष्ट्रीय टीम से अमेरिका के विरुद्ध खेलने को कहा गया लेकिन चोट लगने के कारण वह कुछ समय घुड़सवारी करने में असमर्थ थे।

हनुतसिंह शारीरिक चुस्ती पर सबसे अधिक बल देते थे। उनका यह मानना था कि जब तक खिलाड़ी और घोड़े दुरुस्त नहीं होंगे तब तक पोलो का मजा नहीं रहेगा।

पोलो के योग्य घोड़े तैयार करने में उन जैसी योग्यता कोई नहीं रखता था। घोड़े की नस्ल, उसकी वंश परंपरा आदि की वह पूरी जानकारी हासिल करने के बाद उसको प्रशिक्षित किया करते थे।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद 'हाई हैंडीकेप' पोलो रुक गयी थी। लेकिन भारत और इंग्लैंड दोनों ही में इसे राव राजा हनुतसिंह ने पुनर्जीवित किया।

इंग्लैंड में तो उनके बगैर पोलो अधूरी रहती थी। 1950 में विश्व प्रसिद्ध अर्जेन्टीना टीम भारत आयी लेकिन हनुत का खेल देखकर वह भी चौंक गये।

1951 में फ्रांस में आयोजित विश्व चैम्पियनशिप में भारतीय टीम ने विश्व कप पोलो जीता। इस टीम में हनुतसिंह के अलावा उनके पुत्र विजयसिंह भी थे। इस टीम ने पिता और पुत्र के बेहतरीन खेल के कारण विश्व कप जीता।

हनुतसिंह की ही उस्तादी में पिकल सोढ़ी, फारुख बिजली, वी. पी. सिंह आदि खिलाड़ी प्रशिक्षित हुए।

यही नहीं, उन्होंने ब्रिटेन के पोलो कप्तान जूलियन हिपवुड, आस्ट्रेलिया के सिंकलेयर हिल, केन्या के पैट्रिक कैंपल, अर्जेन्टीना के एडूआर्डो मूर, जुआन जोंस अलवर्डी और रिकार्डो डायज को भी प्रशिक्षित किया। एशियाई खेलों के गोल्फ के स्वर्णपदक विजेता लक्ष्मणसिंह हनुतसिंह के पौत्र हैं।

1958 में उन्हें पद्म भूषण मिला था तथा 1964 में अर्जुन पुरस्कार।

वह लगभग सत्तर वर्ष की आयु तक घुड़सवारी करते रहे। 1973 में उन्हें लकवा मार गया तब से वह जोधपुर में रहने लगे थे और 12 अक्टूबर 1982 को इस महान खिलाड़ी ने अंतिम सांस ली।

हनुतसिंह की पोलो के मैदान पर कहानी हमेशा याद रहेगी।

हनीफ मुहम्मद

टेस्ट क्रिकेट में पिता-पुत्र या दो भाइयों द्वारा अपनी टीम का प्रतिनिधित्व करना अब कोई बहुत बड़ी बात नहीं रही। प्रायः प्रत्येक देश में ऐसी जोड़ियां मिल जाती हैं किन्तु पाकिस्तान के मुहम्मद परिवार का कीर्तिमान शायद ही कभी टूट पाये। इस परिवार ने वजीर, हनीफ, मुश्ताक और सादिक—चार भाई टेस्ट क्रिकेट को प्रदान किए। तीन वर्ष पूर्व तक तो यह स्थिति थी कि पाकिस्तान की कोई टीम मुहम्मद भाइयों के बिना नहीं बन पाई थी। एक अवसर तो ऐसा भी आया जब पाक टीम के ग्यारह खिलाड़ियों में तीन नाम मुहम्मद भाइयों के थे। 1969-70 में कराची टेस्ट में न्यूज़ीलैंड के विरुद्ध हनीफ, मुश्ताक और सादिक तीनों ने ही भाग लिया था एक ही टेस्ट में तीन भाइयों के एक साथ भाग की लेने यह विलक्षण घटना है।

यह थी मुहम्मद परिवार की बात किंतु यदि व्यक्तिगत दृष्टिकोण से देखा जाये तो इनमें सर्वाधिक सफलता मिली हनीफ मुहम्मद को जिनका जन्म 21 दिसम्बर, 1934 को जूनागढ़ (गुजरात) में हुआ।

1964-65 में कराची टेस्ट में पहली बार हनीफ को पाकिस्तान की कप्तानी मिली। इसी वर्ष पाकिस्तानी टीम आस्ट्रेलिया में एकमात्र टेस्ट खेलने गयी। हनीफ पाकिस्तानी टीम के कप्तान ही नहीं बने बल्कि उन्हें विकेट कीपर की भूमिका भी निभानी पड़ी क्योंकि नियमित विकेट कीपर अब्दुल कादिर को बल्लेबाजी करते हुए चोट लग गयी थी। हनीफ ने इस टेस्ट में 104 व 93 रन जोड़े।

टेस्ट क्रिकेट में प्रदर्शन : बल्लेबाजी : 55 टेस्ट, 97 पारियां, 3915

रन, 337 उच्चतम, 43.98 औसत, 12 शतक, 25 अर्द्धशतक गेंदबाजी : 206 गेंद, 95 रन, एक विकेट।

हवा सिंह

1970 में बैंकाक में हुए छठें एशियाई खेलों में हैवी वेट वर्ग में स्वर्ण पदक प्राप्त कर भारतीय मुक्केबाज हवा सिंह ने यह सिद्ध कर दिया कि वह इस वर्ग में एशिया के सर्वश्रेष्ठ मुक्केबाज हैं।

हवा सिंह का जन्म सन् 1945 में ग्राम उमरवास, जिला महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) में एक सम्पन्न जाट परिवार में हुआ। इनके पिता चौधरी किनका राम अपने जमाने के अच्छे पहलवान थे। इनके बड़े भाई सज्जन सिंह ने कुश्ती में काफी नाम पैदा किया। हवा सिंह ने 16 वर्ष की उम्र में ही गार्ड बटालियन में प्रवेश किया। शुरू-शुरू में उन्होंने लाइट हैवी वेट वर्ग में सभी दावेदारों को पीछे छोड़ना शुरू किया। 1962 में वह इस वर्ग के राष्ट्रीय चैम्पियन बने। उनका कहना है कि 1964 में मैंने हैवीवेट में प्रवेश किया और राष्ट्रीय विजेता बनकर दिसम्बर 1966 में बैंकाक में हुए पांचवें एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक जीतने में सफल रहा। पहले तो वहा पाकिस्तानी मुक्केबाज अब्दुल रहमान की बड़ी चर्चा थी, लेकिन वहां की रोमांचकारी टक्कर में तीसरे चक्कर में मुझे विजयी घोषित किया गया। जिस समय स्वर्ण पदक मेरे गले में पहनाया जा रहा था उस समय मैं खुशी से फूला नहीं समा रहा था।

भारतीय मुक्केबाजों में डिसूजा और पद्मबहादुर मल्ल के पश्चात तीसरा अर्जुन पुरस्कार हवासिंह को दिया गया। हवा सिंह 100 किलो (210 पौंड) के हैवी वेट बाक्सर हैं। कद 6 फुट 3 इंच और छाती 46 इंच हैं। हवा सिंह का कहना है कि मैं प्रातः उठकर तीन मील की दौड़ लगाता हूं। अभी मैं 10-12 साल तक मुक्केबाजी के मुकाबलों में भाग लेता रहूंगा और विश्व में भारत का नाम रोशन करूंगा। वह मुक्केबाजी को खतरनाक खेल नहीं मानते।

1970 के छठें एशियाई खेलो में हवा सिंह ने पहले चक्र में दक्षिण कोरिया के साग यान किम को अंको पर पराजित किया और बाद में ईरान के ओमरान खतायी को तीसरे दौर में हराकर भारत के लिए स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

हाकी

मैदान : इसका आकार इस प्रकार होता है—किनारा रेखा 100 गज, गोल रेखा 60 गज, प्रहार रेखा 16 गज, पेनेल्टी कारनर प्रहार के चिह्न की गोल रेखा खंभे से दूरी 10 गज, पेनेल्टी बिंदु की गोल खंभों से दूरी 8 गज, गोल खंभों के मध्य की दूरी 4 गज, झंडियों की किनारा रेखा से दूरी 1 गज, गोल पोस्ट की

ऊंचाई 7 फुट, झंडियों की ऊंचाई 4 फुट, गोल बोर्ड, (जो जमीन के साथ-साथ लकड़ी का तख्ता होता है) की चौड़ाई 1 इंच, गोल खंभों की गहराई 3 इंच तथा पेनेल्टी स्ट्रोक बिंदु का व्यास 6 इंच होता है।

अधिकारी : दो अंपायर तथा एक या दो टाइमकीपर होते हैं। हर अंपायर खेल मैदान के अपने आधे भाग में खेल का नियंत्रण करता है। नियंत्रण सीटी के द्वारा किया जाता है।

टीमें : इसमें दो टीमें होती हैं और हर टीम में 11 खिलाड़ी होते हैं। प्रत्येक टीम का एक कप्तान होता है। पुरुषों के मैचों में यदि खिलाड़ी को चोट लग जाए तो उसके स्थान पर कोई दूसरा खिलाड़ी नहीं लिया जा सकता। महिलाओं के मैचों मे दो तक खिलाड़ियों को बदला जा सकता है।

खेल समय : टीमें 35-35 मिनट की अवधि के लिए दो सत्रों मे खेलती हैं। पहले सत्र के बाद 5 से 10 मिनट तक का विश्राम काल होता है। विश्राम काल के बाद टीमे जिन ओर पहले विरोधी टीम खेल रही थी, उस ओर चली जाती हैं। किसी कारणवश खेल रुक जाए तो रुका समय जोड़ लिया जाता है।

खेल का आरंभ : खेल का आरंभ टास द्वारा किया जाता है। टास जीतने वाला कप्तान फैसला करता है कि उसकी टीम खेल के मैदान के किस ओर से खेलेगी। इसके बाद मैदान के बीचोंबीच रखी गेंद से 'पास बैक' के साथ खेल शुरू हो जाता है।

पास बैक : खेल का आरंभ करने के लिए, विश्राम काल के बाद या गोल हो जाने के पश्चात बुली के स्थान पर खेल पास बैक से शुरू किया जाता है। टास विजेता कप्तान अपने क्षेत्र की ओर से गेंद धकेलता है। विरोधी टीम के खिलाड़ी अपने भाग मे गेंद से 5 गज की दूरी पर रहते हैं।

गेंद : यह सफेद चमडे की होती है। कार्क और ट्वाइन से बनी गेंद की गोलाई $8^{13}/_{16}$ से $9\frac{1}{4}$ इंच तक हो सकती है। वजन $5\frac{1}{2}$ औंस से कम तथा $5\frac{3}{4}$ औंस से अधिक नहीं होना चाहिए।

स्टिक : हाकी बाईं ओर से चपटी होती है। स्टिक का कोई सिरा धारदार नहीं होना चाहिए और उसमें किसी प्रकार का लोहा या अन्य धातु नहीं लगी होनी चाहिए।

स्टिक्स : नए नियम के अनुसार स्टिक को कंधे से ऊपर ले जाना फाउल तभी माना जाएग, जब स्टिक को इस तरीके से उठाया जाए जो विरोधी खिलाड़ी के लिए नुकसानदायक सिद्ध हो रही हो।

आफ साइड : स्ट्राइक करने वाली या पुश करने वाली टीम का खिलाड़ी उस वक्त आफ साइड हो जाता है, यदि उसकी टीम का खिलाडी जो उसके मुकाबले गोल रेखा से परे है, गेंद को इस प्रकार खेलता है कि गोल रेखा के पास विरोधी

खिलाड़ियों की संख्या 2 (महिला मैचों में 3) से कम है। यह नियम भंग तभी माना जाता है, जब आफ साइड होने वाला खिलाड़ी किसी तरह का लाभ उठा ले। इस हालत में विरोधी टीम को उस स्थान पर फ्री हिट दी जाती है।

फ्री हिट : किसी टीम के फाउल करने के फलस्वरूप विपक्षी टीम को फ्री हिट दी जाती है। यह उस निर्धारित स्थान से ली जाती है जहां पर नियम को तोड़ा गया। पुराने नियम के अनुसार फ्री हिट लेते वक्त गेंद जमीन के साथ लगती हुई जानी चाहिए, पर नए नियम के अनुसार पुश या हिट लेने के बाद पृथ्वी से उठती हुई भी जा सकती है।

हां, इस बात का ध्यान रहे कि इस तरीके से गेंद खिलाड़ी के लिए चोट का कारण न बने। इसके अलावा अब फ्री हिट लेते समय साथी खिलाड़ियों के लिए गेंद से 5 गज की दूरी पर खड़ा होना जरूरी नहीं है।

पुश इन : यदि किसी खिलाड़ी की हाकी से छूकर गेंद किनारा रेखा के बाहर निकल जाए तो विरोधी टीम (पुरुष) को 'पुश इन' का अधिकार दिया जाता है। महिला मैचों में 'पुश इन' के बजाए 'राल इन' या अन्दर लुढ़काने का नियम है। 'राल इन' में गेंद को जमीन पर हाथों से लुढ़काया जाता है।

'पुश इन' में खेल को शुरू करने के लिए गेंद को जमीन पर हाकी से लुढ़काया जाता है, किंतु अब नए नियम बन जाने से खेल 'हिट' के साथ भी शुरू किया जा सकता है। अब गेंद मैदान से चाहे पक्ष रेखा से बाहर निकले या गोल रेखा (विहाइंड) से, खेल इसी एक ढंग से शुरू होगा।

कारनर : 25 गज की रेखा के अन्दर रक्षक खिलाड़ी की स्टिक से छूकर गेंद का उनकी अपनी गोल रेखा से पार कर जाने की अवस्था में आक्रामक टीम को कारनर हिट दी जाती है। गोल के जिस ओर से गेंद गोल रेखा से बाहर गई होती है, उसके कोने से लगी झंडी के 3 गज के अन्दर (महिला मैचों में 5 गज) कारनर हिट ली जाती है। अब कारनर हिट लेते समय रक्षक खिलाड़ियों को गोल रेखा और मध्य रेखा के पीछे खड़े होने के बजाए कहीं भी खड़े होने की छूट दे दी गई है। पहले 6 खिलाड़ी अपनी गोल रेखा के पीछे खड़े होते थे। इस तरह कारनर हिट मात्र फ्री हिट बन कर रह गई।

पेनल्टी कारनर : रक्षक यदि जानबूझ कर गेंद को अपनी गोल रेखा से परे भेजे तो आक्रामक टीम को पेनेल्टी कारनर दिया जाता है।

इसके अलावा 25 गज की रेखा के खिलाड़ी को गलत तरीके से रोकने पर यह दंड दिया जाता है।

कारनर गोल खंभे से 10 गज दूर से लिया जाता है। गोल रेखा से पीछे 6 से अधिक खिलाड़ी नहीं रहने चाहिए। नए नियमों के अनुसार गोल लाइन से पुश की गई गेंद को 'डी' के ऊपरी छोर पर हाथ के बजाए स्टिक से दबाना होता है।

आज से छह दशक पहले भारतीय हाकी का स्वर्णिम इतिहास शुरू हुआ था। 26 मई को वह ऐतिहासिक दिन था जब भारतीय हाकी ने नई ऊंचाइयों पर कदम रखा था 1928 के एम्स्टर्डम ओलम्पिक में हालैंड को 3-0 से पीट कर भारत ने पहला ओलम्पिक स्वर्ण जीता था।

हाकी में इस बादशाही को भारत ने अगले 30 साल बनाए रखा। लेकिन अब न तो भारत की बादशाही रही और न ही भारतीय हाकी आसमान में है। सच्चाई यह है कि भारतीय हाकी पाताल में पड़ी है जिसके उठने के प्रति बेचैन सभी हैं लेकिन उठाने के लिए तैयार कोई नही है।

भारतीय चुनौती को तोड़ने की शुरूआत सबसे पहले पाकिस्तान ने की। समय आगे बढ़ने के साथ हम थोड़ा पीछे हटते गए और विश्व के अन्य देश आगे बढ़ते गए और अब स्थिति यह है कि आस्ट्रेलिया, पश्चिम जर्मनी, ब्रिटेन, हालैंड और सोवियत संघ हमसे काफी आगे निकल गए हैं।

ओलम्पिक खेलों के इतिहास में भारत को आज जो स्थान और सम्मान प्राप्त है उसका श्रेय हाकी के खेल को ही है। हाकी को छोड़कर हम आज तक अन्य किसी प्रतियोगिता में कोई पदक प्राप्त करने में सफल नही हो सके। हाकी के खेल में आज भी भारत को विश्व-विजेता होने का गौरव प्राप्त है।

1928 के ओलम्पिक खेल एम्स्टर्डम (हालैंड) में हुए थे। उस समय भारतीय टीम ने पांच मैच बड़ी आसानी से जीत लिए। किसी भी देश की टीम भारत पर कोई गोल नही कर सकी। उस समय भारत ने आस्ट्रिया को 6-0 से, बेल्जियम को 9-0 से, डेनमार्क को 5-0 से, स्विट्जरलेंड को 6-0 से और हालैंड को 3-0 से हराया। लोग भारतीय खिलाड़ियों का खेल देखकर हैरान हो गए। उस समय हाकी के खेल मे बड़ी मार-धाड़ होती थी। लम्बे-चौड़े शरीर वाले खिलाड़ी लम्बी-लम्बी हिट लगाते थे। मगर भारतीय खिलाड़ियों ने यह सिद्ध कर दिया कि हाकी के खेल का सम्बन्ध हाकी और गेंद के तालमेल से है। भारतीय सिपाही ध्यानचन्द ने जब हाकी और गेंद के चमत्कार दिखाने शुरू किए तो दुनिया के लोग हैरान हो गए।

चार साल बाद 1932 में लास एंजेल्स (अमेरिका) में ओलम्पिक खेल हुए। भारतीय खिलाड़ी पहली बार अमेरिका की धरती पर गए। इस बार भी जब भारत ने स्वर्ण पदक जीत लिया तो दुनिया के देश बड़ी गहरी सोच में पड़ गए। यहां यह बता देना उचित होगा कि 1932 के ओलम्पिक खेलों में भारतीय टीम का नेतृत्व एक मुसलमान खिलाड़ी ने किया था। उस खिलाड़ी का नाम लाल शाह बुखारी था। यह बड़े महत्त्व की बात है कि हाकी के खेल में भारत को आज जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है उसका श्रेय हिन्दू, सिख, मुसलमान और एंग्लो इंडियन आदि सभी जातियों के खिलाड़ियों को है। स्वाधीनता से पहले भारतीय

खिलाड़ियों को ब्रिटिश पताका के अधीन खेलना पड़ता था। उस समय सभी जातियों और धर्मों के खिलाड़ी बिना किसी भेदभाव के एक सच्चे खिलाड़ी की भावना से एक साथ मिल कर खेला करते थे।

भारतीय हाकी और ओलम्पिक खेल

वर्ष	स्थान	विजेता
1928	एम्स्टर्डम	भारत
1932	लास एंजेल्स	भारत
1936	बर्लिन	भारत
1948	लन्दन	भारत
1952	हेलसिंकी	भारत
1956	मेलबोर्न	भारत
1960	रोम	पाकिस्तान
1964	तोक्यो	भारत
1968	मैक्सिको	पाकिस्तान
1972	म्यूनिख	पश्चिम जर्मनी
1976	मांट्रियल	न्यूज़ीलैंड
1980	मास्को	भारत
1984	लास एंजेल्स	पाकिस्तान
1988	सिओल	इंग्लैंड

भारत के हाकी कप्तान

वर्ष	कप्तान	वर्ष	कप्तान
1928	जयपाल सिंह	1968	पृथीपाल सिंह, गुरबख्श सिंह } संयुक्त
1932	लाल शाह बुखारी	1972	हरमीक सिंह
1936	ध्यानचन्द	1976	अजीतपाल सिंह
1948	किशनलाल	1980	भास्करण
1952	कुंवर दिग्विजयसिंह बाबू	1984	जफर इकबाल
1956	बलबीर सिंह	1988	एस० सोमाया
1960	लेज़ली क्लाडियस		
1964	चरजीत सिंह		

इंदिरा गांधी गोल्ड कप हाकी

भारत में हाकी की अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का आयोजन हर वर्ष किया

जाता है। यह बात तो अब जग जाहिर है कि अन्तरराष्ट्रीय हाकी मुकाबलों का आयोजन, भले ही दुनिया के किसी भी कोने पर किया जाये, केवल सिंथेटिक टर्फ ही होगा। अन्तरराष्ट्रीय मुकाबलों में एशियाई हाकी को यदि कोई देन प्राप्त हुई है तो वह है सिंथेटिक टर्फ (एस्ट्रो टर्फ)

इसकी पहली प्रतियोगिता का आयोजन दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में किया गया था और दूसरी और तीसरी का लखनऊ के ध्यानचन्द स्टेडियम में। पहली प्रतियोगिता में भारत को तीसरा और दूसरी में पांचवां स्थान प्राप्त हुआ।

पाकिस्तान ने लगातार दो बार इस कप पर अधिकार जमाया। तीसरी प्रतियोगिता में विभिन्न देशों की स्थिति इस प्रकार रही : 1. पाकिस्तान, 2. हालैंड, 3. भारत, 4. केन्या, 5. पोलंड, 6 मलयेशिया, सोवियत संघ, 8. स्पेन

हेमू, अधिकारी

1971 में भारतीय क्रिकेट टीम पहली बार वेस्ट इंडीज और इंग्लैंड को उसी की धरती पर हराकर लौटी थी। वह भारतीय क्रिकेट का स्वर्णिम युग था। कप्तान अजित वाडेकर, भगवत चंद्रशेखर, दलीप सरदेसाई और सुनील गावसकर के साथ-साथ जिस व्यक्ति को इस विजय की सर्वाधिक बधाइयां मिली, वह थे कर्नल हेमू अधिकारी, जो विजय का सेहरा बांधकर आयी भारतीय टीम के मैनेजर थे। उनके अनुशासन प्रेम और कठोर अभ्यास के सिद्धांत ने ही भारतीय खिलाड़ियों में वह भावना जागृत की कि वे विश्व के महारथियों वेस्ट इंडीज और इंग्लैंड को उन्हीं के घर में पछाड़ने की शक्ति रखते हैं।

हेमू अधिकारी (जन्म : 12 अगस्त, 1919 बड़ोदा में) भारत के उन क्रिकेट खिलाड़ियों से मे रहे हैं जो अक्सर चयनकर्ताओं की राजनीति का शिकार बनते रहे। 1952 में वह टीम के उपकप्तान बने तो अगली तीन शृंखलाओं में उनका नाम सामान्य खिलाड़ी की हैसियत से भी नहीं रखा गया। इसी तरह 1959 में वेस्ट इंडीज के विरुद्ध कप्तानी उन्हें सौंपी किंतु उसी वर्ष इंग्लैंड जाने वाली टीम से उनका नाम नदारद था। उस समय इस ज्यादती के खिलाफ काफी विवाद भी छिड़ा था लेकिन हेमू अधिकारी हमेशा की तरह इस बार भी विवाद का शिकार बन गये और इसके बाद उन्होंने टेस्ट जीवन से सन्यास की घोषणा कर डाली।

1947 में भारत के विभाजन के साथ-साथ क्रिकेट शक्ति भी बट गयी। तब सर्वाधिक नुकसान हुआ भारत के मध्य क्रम को। अब्दुल हफीज कारदार और गुल मुहम्मद की अनुपस्थिति में भारत की टीम एकदम आधी-अधूरी प्रतीत होने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के तीन माह बाद ही भारतीय टीम को पांच टेस्टों की शृंखला खेलने आस्ट्रेलिया जाना था। इस शृंखला में आठ भारतीय खिलाड़ियों को टेस्ट

कैप पहनायी गयी। किंतु इन सभी खिलाड़ियों में केवल हेमू अधिकारी और दत्तु फड़कर ही अधिक चमक पाये।

औसत कद के दायें हाथ के बल्लेबाज अधिकारी के लिये पहली शृंखला अधिक सफल रही। पूरी शृंखला में उन्होंने 17.33 की औसत से केवल 156 रन बनाये।

अगले वर्ष वेस्ट इंडीज की टीम गोडार्ड के नेतृत्व में भारत भ्रमण पर आई। हेमू अधिकारी को इस बार फिर पांच टेस्टों में मौका मिला। नई दिल्ली के पहले टेस्ट में ही शतक (114 आ० न०) बनाकर उन्होंने शानदार शुरुआत की। दूसरी पारी में भी उन्हें 29 रन पर कोई आउट न कर सका। पूरी शृंखला में अधिकारी इसके बाद अर्द्धशतक भी न बना पाए। शृंखला में उनका औसत रहा 50.80 और कुल रन बनाए 254।

इसके बाद हॉवर्ड के नेतृत्व में एम० सी० सी० की टीम पांच टैस्ट खेलने भारत आई। इनमें से तीन टेस्टों में अधिकारी को अवसर मिला जिनमें उन्होंने 38.00 की औसत से कुल 144 रन बनाए जिनमें कानपुर टेस्ट में बनाए गए 60 रन भी शामिल हैं।

तत्पश्चात इंग्लैंड में खेले गए चार टेस्टों की शृंखला में अधिकारी को उप-कप्तान घोषित किया गया। कप्तान थे विजय हजारे। उन्हें तीन टेस्टों में मौका मिला लेकिन वह बेहद असफल रहे।

तीन महीने बाद अक्तूबर में पाकिस्तान की टीम अब्दुल हफीज कारदार के नेतृत्व में भारत आई। पहला टेस्ट दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान पर खेला गया। भारतीय टीम के 9 विकेट 263 रन पर उखड़ चुके थे। तब हेमू अधिकारी ने गुलाम अहमद के साथ मिलकर बड़ी दिलेरी से फजल और इलाही की गेंदों का सामना करते हुए अंतिम विकेट के लिए शतकीय साझेदारी निभायी थी। अधिकारी 81 रन बनाकर भी अंत तक आउट नहीं हुए थे जबकि गुलाम अहमद 50 रन पर इलाही द्वारा ही क्लीन बोल्ड हो गया था। 109 रन की यह साझेदारी भारत की ओर से अंतिम विकेट के लिये एकमात्र साझेदारी है। बाद में भारत यह टेस्ट एक पारी और 70 रन से जीत गया था। दूसरे (लखनऊ) टेस्ट में वह भाग न ले सके और भारत यह टेस्ट पारी से हारा था। लेकिन बंबई टेस्ट में अधिकारी फिर मैदान में उतरे। 31 रन बनाकर वह फिर आउट नहीं हुए।

1953 में वेस्ट इंडीज, 1954-55 में पाकिस्तान और 1955-56 में न्यूजीलैंड के खिलाफ उन्हें एक भी टेस्ट नहीं खिलाया गया। आखिर यह दौर भी खत्म हुआ जब 1956 में जानसन के नेतृत्व में आई आस्ट्रेलियाई टीम के विरुद्ध अधिकारी को मौका मिला। बंबई टेस्ट में उन्होंने पहली पारी में 33 रन बनाये और दूसरी पारी में 22 रन पर अविजित रहे।

1958-59 में वेस्ट इंडीज की टीम विकेट कीपर एलेगजेंडर की अगुवाई में भारत आई। उस श्रृंखला में पाली उमरीगर को कप्तानी से हटाने के बाद वीनू मांकड को नेतृत्व सौंपा गया लेकिन वह भी बीमार पड़ गए। फलस्वरूप पहले टेस्ट में उमरीगर दूसरे-तीसरे में गुलाम अहमद और चौथे में वीनू माकड को कप्तानी मिली। अंतिम नई दिल्ली टेस्ट में यह अधिकार अधिकारी को मिला। उन्होंने इस टेस्ट मे चहुंमुखी प्रदर्शन किया। जहां उन्होंने दोनों पारियों में क्रमश: 63 व 40 रन बनाये वहां अपनी लेग ब्रेक गेंदों से 26 ओवरो मे 68 रन लेकर 3 विकेट भी उखाड़े। इसके बाद उन्हें 1959 के इंग्लैंड दौरे के लिये नही चुना गया और उन्होंने टेस्ट क्रिकेट से अलविदा कह दिया।

प्रथम श्रेणी क्रिकेट मे अधिकारी ने सेना, बड़ौदा और गुजरात का प्रतिनिधित्व करते हुए 1936 से 1960 तक कुल 7988 रन बनाये जिनमें 17 शतक भी शामिल हैं।

वह उत्कृष्ट क्षेत्ररक्षक भी थे। कवर पाइंट पर उनकी फील्डिंग आज भी उनके व्यक्तित्व की तरह एक आदर्श और उदाहरण बनी हुई है।

टेस्ट प्रदर्शन : 21 टेस्ट, 36 पारिया, 8 बार आउट नही, 872 रन, 114 (आ० न०) उच्चतम, 31.15 औसत, एक शतक, 4 अर्द्धशतक, 8 कैच, 27.33 की औसत से 3 विकेट।

हैट्रिक

क्रिकेट के खेल मे, जब कोई गेंदबाज लगातार तीन गेंदो में तीन खिलाड़ी आउट करता है तो हैट्रिक कहा जाता है। क्रिकेट मे, और वह भी टेस्ट क्रिकेट मे हैट्रिक करना अपने आप मे एक असाधारण घटना होती है।

—नवम्बर और दिसम्बर 1988 में आस्ट्रेलिया और वेस्टइंडीज के बीच आस्ट्रेलिया में खेली गई टेस्ट श्रृंखला मे दो खिलाड़ियों कर्टनी वाल्स (वेस्टइंडीज) ने प्रथम टेस्ट मैच मे जबकि आस्ट्रेलिया के तेज गेंदबाज मर्व ह्यूज ने दूसरे टेस्ट में हैट्रिक की।

—टेस्ट क्रिकेट की प्रथा 1877 में आरंभ हुई जबकि इग्लेंड और आस्ट्रेलिया ने पहला टेस्ट मैच खेला।

19 विभिन्न अवसरों पर टेस्ट क्रिकेट मे हैट्रिक हुई है। (कृपया पृष्ठ 378 पर दी गई तालिका देखें)।

—इसमें मोरिस एलोम (इंग्लैंड) और न्यूजीलेंड के पीटर पैथरिक ने अपने जीवन के प्रथम टेस्ट मैच में हैट्रिक प्राप्त की।

एलोम ने तो वास्तव में लगातार पाच गेंदो मे चार विकेट ली। यह सफलता उसने पहले टेस्ट के आठवें ओवर में प्राप्त की।

टेस्ट क्रिकेट की सर्वप्रथम हैट्रिक आस्ट्रेलिया के खिलाड़ी एफ० आर० स्पाफोर्थ ने जनवरी 1889 में की थी।

टेस्ट क्रिकेट में हैट्रिक करना अत्यंत कठिन है तब भी आस्ट्रेलिया के एक खिलाड़ी टामस जे० मैथ्यू ने दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध मई 1912 में अप्रतिम सफलता प्राप्त की। इस खिलाड़ी ने ओल्ड ट्रेफोर्ड (मेनचेस्टर इंग्लैंड) में खेले गए टेस्ट मैच की दो पारियों में हैट्रिक की और वह भी एक ही दिन में। मजेदार बात तो यह थी कि इसने दो खिलाड़ी क्लीन बोल्ड, दो खिलाड़ी एल० बी० डब्ल्यू और बाकी दो को अपनी ही गेंद पर कैच आउट किया।

आस्ट्रेलिया के ह्यू ज ट्रेम्बले ने दो अलग-अलग टेस्ट मैचों मे हैट्रिक की और यह अपने आप में एक उपलब्धि है और इनमें से एक हैट्रिक (1904 में) अपने जीवन के अंतिम टेस्ट मैच में की।

हैट्रिक करने वाले इन 19 व्यक्तियों में से जोनी ब्रिग्स, लिंडसे क्लाइन बाएं हाथ के गेंदबाज थे।

टेस्ट हैट्रिक करने वालों में सात इग्लैंड, पांच आस्ट्रलिया और तीन वेस्ट-इंडीज, एक द० अफ्रीका और एक न्यूजीलैंड के गेंदबाज हैं।

भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका के किसी भी गेंदबाज ने आज तक टेस्ट क्रिकेट में हैट्रिक नहीं की।

भारत तथा श्रीलंका के विरुद्ध भी किसी देश ने टेस्ट क्रिकेट में हैट्रिक नहीं की है।

गत वर्ष नवम्बर और दिसंबर में आस्ट्रेलिया मे वेस्टइडीज और मेजबान देश के बीच खेली गई टेस्ट शृंखला मे ब्रिसबेन और पर्थ के प्रथम दो टेस्ट मैचो मे दो असामान्य तरह की हैट्रिक हुईं। नवम्बर 1988 मे ब्रिसबेन मे खेले टेस्ट मैच में वेस्टइंडीज के तेज गेंदबाज कर्टनी वाल्स ने असामान्य रूप की हैट्रिक की। वाल्स ने आस्ट्रेलिया की पहली पारी में अपने अंतिम ओवर की अंतिम गेंद मे टोनी डेडमैन को आउट किया और फिर आस्ट्रेलिया की दूसरी पारी में अपने प्रथम ओवर की प्रथम दो गेंदों में माइक विलेटा और ग्रामवुड को आउट किया।

पर्थ टेस्ट मे आस्ट्रेलिया के तेज गेंदबाज मर्व ह्यू ज द्वारा की गई हैट्रिक तो अपने आप में अनोखी थी। वेस्टइंडीज की प्रथम पारी में मर्वह्यू ज ने अपने 37वें ओवर की अन्तिम गेंद पर वेस्टइडीज के खिलाड़ी एम्ब्रोस को आउट किया। यह आउट होने वाले आठवें खिलाड़ी थे। वेस्टइंडीज के नौवें खिलाड़ी को टिम मे ने आउट किया। इसके बाद ह्यू ज का 38वां ओवर प्रारम्भ हुआ। उसने इस ओवर की प्रथम गेंद में वेस्टइंडीज के आखिरी खिलाड़ी को आउट किया। वेस्टइंडीज की दूसरी पारी मे ह्यू ज ने अपने प्रथम ओवर की प्रथम गेंद पर, गोर्डन ग्रीनिच को आउट किया।

हैट्रिक की तालिका

1877 से (जब से टेस्ट क्रिकेट आरम्भ हुआ है) 31 जनवरी, 1989 तक

टेस्ट क्रिकेट में हुई हैट्रिक की सूची

क्रम०	खिलाड़ी का नाम	देश	विरुद्ध	स्थान	पारी	वर्ष
1.	एफ० आर० स्पोफोर्थ	आस्ट्रेलिया	इंग्लैंड	मेलबोर्न	प्रथम	1878-79
2.	डब्ल्यू० बेट्स	इंग्लैंड	आस्ट्रेलिया	मेलबोर्न	प्रथम	1882-83
3.	जे० ब्रिग्स	इंग्लैंड	आस्ट्रेलिया	सिडनी	द्वितीय	1891-92
4.	जी० ए० लोहमेन	इंग्लैंड	द० अफ्रीका	पो० एलिजाबेथ	द्वितीय	1895-96
5.	जे० टी० हिरसे	इंग्लैंड	आस्ट्रेलिया	लीड्स	द्वितीय	1899
6.	एच० ट्रम्बल	आस्ट्रेलिया	इंग्लैंड	मेलबोर्न	द्वितीय	1901-02
7.	एच० ट्रम्बल	आस्ट्रेलिया	इंग्लैंड	मेलबोर्न	द्वितीय	1903-04
8.	टी० जे० मैथ्यू	आस्ट्रेलिया	द० अफ्रीका	मेनचेस्टर	प्रथम	1912
9.	टी० जे० मैथ्यू	आस्ट्रेलिया	द० अफ्रीका	मेनचेस्टर	द्वितीय	1912
(क) 10.	एम० जे० सी० एलोम	इंग्लैंड	न्यूजीलैंड	क्राइस्ट चर्च	प्रथम	1929-30

	11.	टी० जे० गोडार्ड	इग्लैंड	द० अफीका	जोहन्सबर्ग	प्रथम	1938-39
	12.	पी० जे० लोडर	इग्लैंड	वेस्टइंडीज	लीड्स	प्रथम	1957
	13.	एल० एफ० क्लाइन	आस्ट्रेलिया	द० अफीका	केपटाउन	द्वितीय	1957-58
	14.	डब्ल्यू० हाल	वेस्टइंडीज	पाकिस्तान	लाहौर	प्रथम	1958-59
	15.	जी० एम० ग्रिफीन	द० अफीका	इंग्लैंड	लार्ड्स	प्रथम	1960
	16.	एल० आर० गिब्स	वेस्टइंडीज	आस्ट्रेलिया	ऐडीलेड	प्रथम	1960-61
(क)	17.	पी० जे० पैथरिक	न्यूजीलैंड	पाकिस्तान	लाहौर	प्रथम	1976-77
(ख)	18.	कर्टनी वाल्स	वेस्टइंडीज	आस्ट्रेलिया	ब्रिसबेन	प्रथम/द्वितीय	1988-89
(ख)	19.	मर्वन ह्यूज	आस्ट्रेलिया	वेस्टइंडीज	पर्थ	प्रथम/द्वितीय	1988-89

नोट—टेस्ट क्रिकेट के इतिहास में टी० जे० मैथ्यू ही एकमात्र बालर है जिसने एक टेस्ट मैच की दोनो पारियों में हैट्रिक की है।

(क) इन दोनो खिलाड़ियो ने अपने जीवन के प्रथम टेस्ट मैच में हैट्रिक की।

(ख) इन दोनों खिलाड़ियों में से कर्टनी वाल्स ने पथम पारी में अंतिम खिलाड़ी को आउट किया। और दूसरी प्रथम पारी में प्रथम ओवर की दो गेंदों में दो खिलाड़ियो को आउट किया। जबकि ह्यूज ने भी इसी प्रकार से प्रथम पारी में अतिम दो खिलाड़ी तथा दूसरी पारी में प्रथम ओवर की प्रथम गेंद पर एक खिलाड़ी को आउट किया। इस तरह के हैट्रिक को 'ब्रोकन हैट्रिक' कहा जाता है।

विशेष नोट

आज तक किसी भी क्रिकेट टेस्ट में न तो भारत ने कोई हैट्रिक की और न ही भारत के खिलाफ कोई हैट्रिक हुई है।

उन गेंदबाजों की सूची जिन्होंने अपने जीवन के प्रथम छः टेस्ट मैचों में लगभग पचास विकेट ली—

अपने जीवन के प्रथम 6 टेस्ट मैचों में 35 या अधिक विकेट लेने वाले बॉलर

क्र० स०	गेंदबाज		कुल विकेट	वर्ष
		प्रथम टेस्ट मैच		
1.	बॉब मैसी	आस्ट्रेलिया	16	1972
2.	फ्रैड मार्टिन	इंग्लैंड	12	1890
		दूसरा टेस्ट मैच		
1.	एलक वेडसर	इंग्लैंड	22	1946
2.	बॉब मैसी	आस्ट्रेलिया	21	1972
		तीसरा टेस्ट मैच		
1.	चार्ली टर्नर	आस्ट्रेलिया	29	1886-87
		चौथा टेस्ट मैच		
1.	चार्ली टर्नर	आस्ट्रेलिया	39	1886-87
		पांचवा टेस्ट मैच		
1.	चार्ली टर्नर	आस्ट्रेलिया	45	1886-87
		छठा टेस्ट मैच		
1.	चार्ली टर्नर	आस्ट्रेलिया	50	1886-87

स्पिनर्स

स्पिन गेंदबाज का नाम	देश	कुल विकेट	वर्ष
प्रथम टेस्ट मैच			
1. नरेन्द्र हिरवाणी	भारत	16	1987-88
2. क्लेरी ग्रिमेट	आस्ट्रेलिया	11	1924-25
3. मेरियेट	इंग्लैंड	11	1933
4. एल्फ वेलेनटाइन	वेस्टइंडीज	11	1950
दूसरा टेस्ट मैच			
1. नरेन्द्र हिरवाणी	भारत	24	1987-88
2. क्लेरी ग्रिमेट	आस्ट्रेलिया	18	1924-25
3. एल्फ वेलेनटाइन	वेस्टइंडीज	18	1950
तीसरा टेस्ट मैच			
1. नरेन्द्र हिरवाणी	भारत	31	1987-88
2. रंजी होरडन	आस्ट्रेलिया	26	1910-11
चौथा टेस्ट मैच			
1. नरेन्द्र हिरवाणी	भारत	35	1987-88
2. एल्फ वेलेनटाइन	वेस्टइंडीज	33	1950
पांचवां टेस्ट मैच			
1. एल्फ वेलेनटाइन	वेस्टइंडीज	39	1950-51
छठा टेस्ट मैच			
1. एल्फ मेलेनटाइन	वेस्टइंडीज	43	1950-51

श्रीकांत कृष्णमाचारी

भारत के प्रारम्भिक बल्लेबाज श्रीकांत ने अब आल राउंडर के रूप में अपना दावा पेश करना शुरू कर दिया है। वह एकमात्र ऐसे भारतीय गेंदबाज रहे हैं जिन्होंने एक सीरिज में एक से ज्यादा बार पांच विकेट लिये। यह गौरव उन्होंने भारत न्यूजीलैंड टेस्ट शृंखला (1988) में प्राप्त किया था। टेस्ट और एक दिवसीय मैचों में अपनी पारी की जिम्मेदारी बड़ी समझदारी से सम्भालते हैं। 'रन मशीन' के नाम से विख्यात श्रीकांत अपनी शैली के इकलौते बल्लेबाज हैं। गावस्कर के साथ पारी की शुरुआत करने वाले श्रीकांत आजकल अपने साथी की तलाश में हैं।

टेस्ट रिकार्ड : 32 टेस्टों में 2 शतकों की सहायता से 1590 रन।

श्रीराम सिंह

श्रीराम सिंह खिलाड़ी जीवन में देश के सर्वश्रेष्ठ दौड़ाक माने जाते थे। 800 मीटर के एशियाई रिकार्ड बनाने वाले श्रीराम सिंह भारत के एकमात्र खिलाड़ी थे जिन्होंने मांट्रियल—1976 में आयोजित ओलम्पिक में भारत का नाम ऊंचा किया। मांट्रियल में श्रीराम सिंह ने इस दूरी को 1 मिनट 45. 77 सैकिंड में पूरा करके सातवां स्थान प्राप्त किया। मांट्रियल में यह दौड़ क्यूबा के अल्बर्टो जुआनतोरीना ने 1 मि॰ 43.5 सैकिंड में जीत कर नया विश्व रिकार्ड स्थापित किया था। दौड़ जीतने के बाद जुआनतोरीन ने यह स्वीकार किया था कि मुझे सबसे ज्यादा डर श्रीराम सिंह से था और उन्हीं की बदौलत मैं तेज दौड़ा और नया विश्व रिकार्ड बनाने में सफल हो गया।

1966 में जब वह सेना में भर्ती हुए तो उन्होंने इस बात की शायद कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन वह लोकप्रियता के इस शिखर पर पहुंच जायेंगे। स्कूली जीवन में वह फुटबाल खेला करते थे, फिर उन्होंने लम्बी कूद में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। 1967 में वह अपनी यूनिट (राजपूताना राइफल्स सेंटर) के साथियों के साथ राजधानी में प्रति सप्ताह होने वाली पेल्ट्जर क्रास कंट्री रेस में हिस्सा लेने लगे। उनके दौड़ने के ढंग से देश के मशहूर प्रशिक्षक इलियास बाबर बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उन्हें अपनी देखरेख में प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। दो ही साल के अंदर वह सेना के और राष्ट्रीय चैंपियन हो गए। 1970 में दिल्ली में हुई एक प्रतियोगिता में उन्होंने एशियाई चैंपियन वी॰ एस॰

वरुआ को हराया। उसी वर्ष
लेकिन अपने सर्वश्रेष्ठ
जिमी क्राम्प्टन को हराने में स
1972 में उन्होंने म्यूनि
800 मीटर की दूरी को 1 f
फाइनल तक नहीं पहुच पाये
उन्होंने तीन स्वर्ण पदक प्राप्त
उन्होंने 4 × 400 मीटर रिले
निभाई। 1974 मे तेहरान
1 मि० 47.6 सेकिंड मे पूरा
उनका सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन
पहुचे। लेकिन नया रिकार्ड
हो सका। फाइनल में पहुंचने
मिल्खा सिंह और गुरबचन f
है। माट्रियल ओलम्पिक मे
बेल्जियम के इवो वनडामे को

मुद्रक : जितेन्द्र प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक : जितेन्द्र प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32